आप्तवाणी
श्रेणी-१२ (उत्तरार्ध)

दादा भगवान प्ररूपित

स्वरूपज्ञान साक्षात्कार प्राप्त किए हुए अक्रम मार्ग के महात्माओं के लिए केवलज्ञान की श्रेणियाँ प्राप्त करवाने वाला ग्रंथ

आप्तवाणी

श्रेणी - 12

(उत्तरार्ध)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करने वाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?'

- दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आप श्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरू माँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरू माँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त करके ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

समर्पण

स्थूल में से सूक्ष्म की तरफ ले जाए, बारहवीं के आप्तवचन;
नहीं है मात्र पठन हेतु, माँगे गहरा परम अर्थघटन!

आज्ञाओं का महत्व, स्वच्छंद निर्मूलन;
ऊपरी रखकर दादा को ले ले, मोक्ष तक का संरक्षण!

ज्ञाता–द्रष्टा सहज ही संप्राप्य, शुद्ध उपयोग निरावरण;
बारहवें गुणस्थानधारियों! पाओ अनंत भेदी यह समझ!

प्रगति के सोपान चढ़ाए, शिखर पर लक्ष्य दृढ़ीकरण;
एक ही शब्द पचे तो पहुँचाए मोक्ष के गर्भग्रह में कदम!

अहो, अहो, दादा! आपका वचन बल, एक–एक शब्द भेदे आवरण;
तुच्छ लगती है प्रचंड शक्ति, अज़माई थी जो 'पोखरण'!

ज्ञानी की जागृति की झलक, झुकाए शीश ज्ञानी चरण;
अहो भाव की अश्रुधारा, पढ़ते हुए सूखने दे न नयन!

बारहवाँ गुणस्थानक व्यवहार से पाने को, करो नित्य आराधन;
बारहवीं आप्तवाणी के लिए, महात्माओं से यह प्रार्थना!

जागृति यज्ञ की अकल्प्य सामग्रियों का कलेक्शन;
समर्पण, समर्पण, अक्रम के महात्माओं को समर्पण!

संपादकीय

अक्रम विज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के महात्माओं को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है। अब केवलज्ञान प्राप्ति तक की क्षपक श्रेणियाँ पार करनी हैं। संसार की बाकी की ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते-करते यानी कि निश्चय में रहकर शेष बचा व्यवहार पूरा करते-करते, अंत में केवलज्ञान प्राप्त करना है। दादाश्री ने जगह-जगह पर महात्माओं के व्यवहार की उलझनों, आज्ञा में रहने की मुश्किलों का खुलासा और सूक्ष्म जागृति में किस प्रकार से रहें, वे खुलासे दिए हैं। अलग-अलग जगह पर, अलग-अलग निमित्तों के अधीन निकली वाणी को टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड किया है। उसके बाद ऑडियो कैसेट में से दादा की वाणी को लिखकर बिखरे हुए मोतियों की माला पिरोई है! जो कि मोक्ष पंथ पर महात्माओं की प्रगति के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। पढ़ते ही कितनी ही चीज़ों का अंदर से उघाड़ हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे कि परम पूज्य दादाश्री खुद ही हमें कह रहे हों। सुज्ञ पाठकों को दादाश्री के प्रिय पात्र 'चंदू' की जगह पर खुद का नाम रखकर पढ़ना है। चंदू अर्थात् नामधारी, हम खुद ही। एक-एक वाक्य में ज़ोर देकर कहा गया है कि ''मैं चंदू हूँ' की मान्यता में से 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ', 'अकर्ता ही हूँ', 'केवल ज्ञाता-द्रष्टा ही हूँ।' आत्मा के अलावा बाकी का कुछ भी 'मेरा नहीं है', बाकी का सब जो पहले चार्ज किया हुआ है, उसका डिस्चार्ज है। भरा हुआ माल ही निकल रहा है, किसी भी संयोगों में नए कॉज़ेज़ उत्पन्न हो ही नहीं सकते, आप मात्र इफेक्ट को ही 'देखते हो''। ऐसा सब भार पूर्वक कहा गया है। पढ़ते-पढ़ते अंदर इसका ज़बरदस्त दृढ़ीकरण हो जाता है।

ज्ञान मिलने के बाद निरंतर पाँच आज्ञा में रहने के अलावा महात्माओं को अन्य कुछ भी करना नहीं रहता। क्योंकि तीर्थंकरों ने क्या कहा है? आज्ञा ही धर्म है और आज्ञा ही तप। फिर अन्य कोई भी तप करने को बाकी नहीं रहते। ये पाँच आज्ञाएँ ज्ञान प्राप्त महात्माओं के लिए ही हैं, अन्य लोगों के लिए फायदेमंद नहीं हैं। जो एक्ज़ेक्ट पाँच आज्ञाओं में रहता है, वह भगवान महावीर जैसी दशा प्राप्त कर सकता है! एकावतारी पद को प्राप्त कर सकता है! हाँ, पाँच आज्ञाओं का पालन प्रज्ञा से करना

है, बुद्धि से नहीं। बुद्धि से पालन की हुई आज्ञाएँ, कर्मों में से छुड़वा नहीं सकेंगी!

महात्माओं को प्रस्तुत आप्तवाणी के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध की गहराई से 'स्टडी' करनी है। जब तक अंदर का उघाड़ न हो जाए तब तक मनन-चिंतन और प्रत्यक्ष सत्संग में प्रश्न पूछने हैं, छोड़ना नहीं है। डीप स्टडी (गहरा अभ्यास) करनी है। वाणी पढ़ते हुए, अहो, अहो, अहो हो जाता है और ऐसा यर्थाथ रूप से समझ में आ जाता है कि वास्तव में 'ज्ञानी पुरुष' कैसे होते हैं। खुद को ज्ञानी कहलवाने वाले, शुष्क ज्ञानियों की वाणी से दादा की वाणी की तुलना करते ही पता चल जाता है कि असली हीरा और काँच में कितना फर्क है! इतना एक्ज़ेक्ट स्पष्टीकरण, इतनी सूक्ष्मता की सटीक समझ कहीं भी अनावृत हुई हो, ऐसा देखने नहीं मिलता। धन्य है, इन बेजोड़ 'ज्ञानी पुरुष' को! उनके अनुभवों को पढ़कर 'न भूतो, न भविष्यति' सार्थक होता है!

जगह-जगह पर इन अनुभवों का वर्णन किया है कि खुद किस प्रकार से जागृति में, शुद्ध उपयोग में, जुदापन में और वीतरागता में रहते हैं। जो हमें अपना लक्ष्य बनाने में और हम से कहाँ भूल हो जाती है, उसे समझने में प्रकाश स्तंभ समान बन जाते हैं! तब हृदय 'अहो भाव' से भरकर पुकार उठता है कि 'दादा धन्य है आपको! इस काल के हर प्रकार से हतभागी लोगों को आपने अद्भुत आप्तवाणी अर्पण करके मोक्ष की प्राप्ति अति-अति-अति सुलभ कर दी है!' इस काल में अध्यात्म के शिखर तक पहुँचे हुए ज्ञानी की संपूर्ण अनुभव वाणी को पढ़ते हुए, बाकी सभी उलझाने वाली वाणियों को, पढ़ने के भार में से मुक्त कर देते हैं और 'दादावाणी' हाथ में आते ही हाथ-पैर और हृदय थन-थन नाचने लगते हैं!

महात्माओं को एक खास लाल सिग्नल दिखाने से रोक नहीं पा रहे हैं। परम पूज्य दादाश्री की वाणी व्यवहारलक्षी और निश्चयलक्षी है, दोनों ही प्रकार की है। अब वाणी की सीमा ऐसी है कि एट ए टाइम दो व्यू पोइन्ट को क्लियर नहीं कर सकती! जिस प्रकार बिलियर्ड में एक स्ट्रोक से अनेक बॉल छेद में डाली जा सकती हैं, यहाँ वाणी में उस

तरह से नहीं हो सकता। एट ए टाइम एक ही बात निकलती है। इसलिए जब निश्चय वाली वाणी निकलती है तब 'केवल आत्मा में ही स्थिर रहने के लिए कहा जाता है कि चंदूभाई से चाहे कैसा भी आचरण हो जाए, तब भी आप शुद्ध ही हो, शुद्धात्मा ही हो। और उसके अलावा एक-एक परमाणु डिस्चार्ज ही है, 'मेरा नहीं है'। महात्माओं को नया चार्ज होता ही नहीं है', इत्यादि, इत्यादि कहते हैं। वास्तव में वह करेक्ट ही है लेकिन जब व्यवहार की बात आती है, तब यह भी बताया है कि चंदूभाई को 'कौन सी जागृति में रहना है'। आदर्श व्यवहार कैसा होना चाहिए? घर या बाहर कहीं भी किसी के लिए दुःखदायी न हों, वैसा! किसी को दुःख हो जाए तो चंदूभाई को प्रतिक्रमण करना होगा। वहाँ पर सही हकीकत यह है कि यह चंदूभाई का डिस्चार्ज ही है लेकिन चंदूभाई के सामने वाले व्यक्ति के लिए रोंग अभिप्राय को तोड़ने के लिए, उसके प्रति स्पंदनों को प्योर करने के लिए, चंदूभाई से प्रतिक्रमण करवाना है और 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ, मुझे प्रतिक्रमण नहीं करना है लेकिन चंदूभाई को तो करना ही पड़ेगा।' वर्ना दुरुपयोग हो जाएगा और व्यवहार बिगड़ जाएगा। जिसका व्यवहार बिगड़ा, उसका निश्चय बिगड़ना ही है।

अब अगर महात्मा दादा की निश्चय वाणी को एकांतिक रूप से ले लें या फिर व्यवहार वाली वाणी को एकांतिक रूप से ले लें तो बहुत घोटाला हो जाएगा और गाड़ी न जाने कौन से गाँव चली जाएगी, उसका पता ही नहीं चलेगा।

संक्षेप में अक्रम विज्ञान का सार क्या है? ''मैं शुद्धात्मा ही हूँ', केवल ज्ञाता-द्रष्टा ही हूँ और मेरे खुद के जीवन में जो कुछ भी हो रहा है, वह पिछला भरा हुआ माल निकल रहा है, उसे 'देखते' रहना है।' अब वहाँ कहाँ पर भूल हो जाती है? (1) भरा हुआ माल है, ऐसा पता नहीं चले तो पूरा नुकसान। (2) पता चला इसलिए 'जाना' कि यह भरा हुआ माल है लेकिन उसे अलग नहीं देखा तो पार्शियल नुकसान। इसमें वह भूल को चलने देता है, उसका विरोध नहीं करता इसलिए वह उन्हें देखने और जानने में कब चूक जाएगा, वह पता नहीं चलेगा। (3) 'मैं शुद्धात्मा हूँ' के अलावा जो कुछ भी निकल रहा है, वह भरा हुआ माल

है। उसे अलग जानना और देखना है, बस इतना ही नहीं, लेकिन साथ-साथ अपना प्रज्ञा की तरफ से हर समय स्ट्रोंग विरोध रहना ही चाहिए कि, 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए' तो हम जीत जाएँगे और भरा हुआ माल घर खाली करके चला जाएगा।

कई बार इस तरह से अलग देखते और जानते हैं कि 'भरा हुआ माल है' लेकिन कुछ ही देर में यह दुष्ट बुद्धि वापस कब गुलाट खिला दे, उसका पता नहीं चलेगा। अतः इस बात का ध्यान रहेगा कि यह 'भरा हुआ माल है' लेकिन बुद्धि अपना चलन चलाकर ध्यान को ध्यान में ही रहने देने के बजाय, खुद ही सर्वेसर्वा बन जाएगी। परिणाम स्वरूप सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक के *भोगवटे* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) में ला देगी! फिर भी इससे नया चार्ज तो होगा ही नहीं, लेकिन पुराना पूरा डिस्चार्ज नहीं होगा और उतने समय तक हम आत्मसुख खो देंगे। इन सब में से एक्ज़ेक्टनेस में रहने के लिए यदि इस सादी, सरल और सब से आसान चाबी का उपयोग करेंगे तो अक्रम की लिफ्ट में तेज़ी से एकावतारी पद प्राप्त करके मोक्ष में पहुँच जाएँगे, गारन्टी से! वह चाबी कौन सी? भरे हुए माल का विरोध किया तो तन्मयाकार होने की संभावना खत्म हो जाएगी। उसके बाद चंदू जो कुछ भी करता है, अच्छा करे या खराब करे, किसी सुंदर स्त्री को देखकर अंदर तार हिल उठें, जैसे कि लोहचुंबक के सामने हो जाता है, उस तरह से, तब भी वह डिस्चार्ज ही है, परमाणुओं का *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) ही है, 'वह मेरा स्वरूप नहीं है' और हमें विरोध ही करते रहना है। सतत इतनी जागृति में रहने से अवश्य ही सारा माल खाली हो जाएगा। जिसे हमेशा के लिए अक्रम की इतनी समझ फिट हो जाएगी, वह इस काल में भी ज्ञानियों की तरह, निरंतर निराकुलता में, जीवन मुक्त दशा में जी सकेगा और एक ही जन्म में मोक्ष प्राप्त कर सकेगा। यह हकीकत है।

पूज्य दादाश्री ने एक जगह पर कहा है कि चंदूभाई खराब काम करें या अच्छा, दोनों को 'देखते' रहो। क्योंकि देखने वाले के लिए वह दोष नहीं है, खराब या अच्छा नहीं है। देखने वाला ज्ञान प्रकाश रूपी है। जिस प्रकार फूल लाइट को सुगंधित नहीं कर सकता और कीचड़ उसे बिगाड़ नहीं सकता, बदबूदार नहीं बना सकता, उसी प्रकार आत्मा अच्छे

या खराब कामों में भी निर्लेप ही है। अत:, 'मैं ऐसा निर्लेप हूँ', लेकिन चंदूभाई से अगर कुछ खराब काम हो जाए तो जुदा रखकर उससे प्रतिक्रमण करवाना है या *ठपका* (डाँटना) देना है। अगर चंदूभाई निर्लेप रहें तो वह गुनाह है। आत्मा अर्थात् जो खुद निर्लेप है। इस तरह निश्चयात्मक वाणी और व्यवहारात्मक वाणी का सुंदर बैलेन्स किया है। यों कोई भी बात एकांतिक रूप से नहीं है। मोक्ष में जाना हो तो व्यवहार और निश्चय, रिलेटिव और रियल, दोनों ही तरफ एक सरीखा रहना चाहिए, तभी संभव हो सकेगा। इसका यदि दुरुपयोग होगा तो लाभ नहीं मिलेगा और नुकसान हो जाएगा। व्यवहार में सभी कर्मों को डिस्चार्ज कहा गया है लेकिन ये तीन, *अणहक्क* (बिना हक़ का, अवैध) का विषय, माँसाहार और शराब, निषेध हैं। जब तक ये रहेंगे तब तक वहाँ पर मोक्ष या धर्म की बात ही नहीं हो सकती। अत: जब समग्र प्रकार से समझेंगे तभी प्रगति हो सकेगी, एकांतिक रूप से नहीं।

कई बार 'पहले व्यवहार और फिर निश्चय', ऐसा समझकर; 'फाइलों का *निकाल* करने के लिए तो कहा ही है न', ऐसा करके महात्मा अपनी सुविधानुसार फाइल के प्रति खुद का जो मोह है, उसे ढकते हैं। ऐसा करके महात्मा सत्संग में आना टालते हैं। दादा ने फाइल अर्थात् जैसे पुलिस वाला डंडे मारकर माँस खिलाए, तो उसे फाइल कहा है। जबकि इसमें तो अच्छा लगता है और करते हैं और कहते हैं कि 'फाइलों का *निकाल* (निपटारा) कर रहे हैं', तो उसे ज्ञान का दुरुपयोग करना कहा जाएगा।

परम पूज्य दादाश्री की अपूर्व वाणी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और निमित्त के अधीन सहज रूप से निकली है। सुज्ञ पाठक को इसमें कहीं भी त्रुटि या विरोधाभास लग सकता है लेकिन वास्तव में ज्ञानी का एक भी वाक्य विरोधाभास वाला नहीं होता। मोक्षमार्ग एक व्यक्तिगत सिंचन का मार्ग है। पूज्य दादाश्री हर एक व्यक्ति की प्रकृति को खपाने के लिए उसकी प्रकृति का जैसा है वैसा, उसकी स्क्रीनिंग करके उसे समझ फिट करवाते थे। वह उनकी ग़ज़ब की शक्ति थी! प्रस्तुत ग्रंथ में अलग-अलग प्रकृतियों को खत्म करने के अलग-अलग तरीके बताए गए हैं, वहाँ पर

शायद विरोधाभास का आभास हो! जैसे कि सौ मरीज़ों को एक ही प्रकार का एक सौ चार डिग्री का बुखार होता है लेकिन अनुभवी डॉक्टर हर एक को अलग-अलग दवाई देता है, किसी को मलेरिया की तो किसी को टाइफॉइड की तो किसी को वायरस की तो किसी को किडनी इन्फेक्शन की! सामान्य व्यक्ति को इसमें विरोधाभास लग सकता है या नहीं?

कभी किसी व्यक्ति ने यदि कोई भारी गुनाह कर दिया हो और वह स्ट्रोंग माइन्ड वाला हो तब पूज्य दादाश्री ने उसे खुद अपने आपको *ठपका* देने (डाँटना) को कहा है। और किसी और से ऐसा कहा कि '*ठपका* देने की ज़रूरत नहीं है, प्रतिक्रमण कर लेना।' तो वह उस व्यक्ति के लिए है जो बहुत ही सेन्सिटिव और डिप्रेसिव नेचर वाला हो, वर्ना यदि बहुत *ठपका* देगा तो मेन्टल डिप्रेशन में चला जाएगा! फिर ज्ञान की उच्च कक्षा की बात में ऐसा कहा है कि 'जो ज्ञाता-द्रष्टा रहे, उसे प्रतिक्रमण करने की भी ज़रूरत नहीं है'। अब ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाए और इस वाक्य को एकांतिक रूप से, स्वच्छंद रूप से पकड़कर 'मुझे प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है', ऐसा करके चले तो कहाँ जाकर गिरेगा वह?

हज़ारों महात्माओं के साथ बीस सालों में अलग-अलग जगह पर निकली हुई वाणी को इस प्रकार से संकलित करने के प्रयास हुए हैं कि वह एक ही प्रवाह में लगे। सुज्ञ पाठक को कहीं कोई भी क्षति लगे तो वह संकलन की कमी के कारण है, नहीं कि ज्ञानी की वाणी क्षतिपूर्ण है। ज्ञानी का एक-एक वाक्य ऐसा है कि तीनों ही काल में कोई उनका छेदन नहीं कर सकता!

पूज्य दादाश्री की वाणी सहज रूप से चरोतरी तलपदी भाषा में निकली है। उसे जैसा है वैसा रखा गया है, ताकि श्रीमुख से निकली हुई वाणी की वास्तविकता विकृति के बिना संजोई जा सके और उसकी मिठास, उसके हृदय भेदी असर की तो बात ही अलग है न! इसका आनंद तो जो ले, वही जाने!

-डॉ. नीरू बहन अमीन

उपोद्घात

-डॉ. नीरू बहन अमीन

[1] आज्ञा का महत्व

स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति करवाने के बाद ज्ञानी पुरुष परम पूज्य दादाश्री व्यवहार को संपूर्ण शुद्ध करके और उसे पूरा करने के लिए पाँच आज्ञाएँ देते हैं। जिनका जीवन में हर पल प्रयोग करके संसार के सर्व बंधनों से छूट जाना होता है। इन पाँच आज्ञाओं का महत्व इतना अधिक है कि दादाश्री कहते हैं कि, 'पाँच आज्ञा का पालन करे तो महावीर भगवान जैसी दशा रहेगी, वह मैं लिखकर देता हूँ। पाँच के बजाय अगर एक पालोगे न, तब भी ज़िम्मेदारी हमारी है।' इन पाँच ही वाक्यों में पूरे वर्ल्ड का साइन्स आ जाता है।

सतत स्वरूप जागृति में रहने के लिए पाँच आज्ञाएँ ही मुख्य हैं। पाँच आज्ञाएँ ज्ञान की रक्षा करने वाली बाड़ हैं!

दादाश्री ने जगत् को जो अक्रम विज्ञान दिया है, वह एकदम शॉर्ट है, बगैर मेहनत वाला है। सहज रूप से आंतरिक जागृति रहा करती है और कर्म खप जाते हैं!

ज्ञानी का वचनबल ज़बरदस्त होने के कारण पाँच आज्ञाएँ स्वयं ही हाज़िर हो जाती हैं और वे प्रत्येक अवस्था में सर्व समाधानकारी सिद्ध होती हैं! यह विज्ञान है - विज्ञान अर्थात् स्वयं क्रियाकारी! स्वयं निरंतर भूलों के सामने सावधान करता है!

अक्रम विज्ञान, पाँच आज्ञा के आधार पर शादीशुदा लोगों के लिए भी, पत्नी, बच्चों, व्यापार और नौकरी के साथ भी मोक्ष में जाने का मार्ग खोल देता है। सिर्फ शादीशुदा लोगों के सामने विषय के बारे में एक लाल बत्ती दिखाते हैं कि 'अपने हक़ का ही और वह भी, बुखार चढ़े तभी दवाई पीना!' और पाँच आज्ञा का पालन करना।

दादाश्री गारन्टी देते हैं कि हम से ज्ञानविधि करवाने के बाद में जो पाँच आज्ञा का पालन करेगा, गारन्टी से उसका मोक्ष है! फिर सौ

प्रतिशत पालन करो, ऐसा भी नहीं कहते। लेकिन सत्तर प्रतिशत पालन किया जाए तब भी बहुत हो गया। बाकी की अगर पालन नहीं की जा सकें तो उसके लिए माँफी माँग लेना।

दादाश्री तो कहते हैं कि, 'जो हमारी पाँच आज्ञा का पालन करता है, उस पर हमारा रक्षण रहता है। हमें वहाँ पर हाज़िर होना ही पड़ता है। यदि डॉक्टर परहेज करने कहते हैं तो वहाँ उसका पालन करते ही हैं न? वैसे ही मोक्ष के लिए ये पाँच आज्ञा पालन करना, यह परहेज है।' दादाश्री तो यहाँ तक कहते हैं कि 'हमारी पाँच आज्ञा का पालन करने वाले को यदि एक भी चिंता हो तो मुझ पर दो लाख का दावा दायर करना!'

आज्ञा का पालन नहीं हो सके, उसका क्या? सिन्सियरली जिसे आज्ञा पालन करना है लेकिन पालन नहीं हो पाता तो ज़िम्मेदारी दादा लेते हैं। दुरुपयोग करने वालों के लिए नहीं। आज्ञा का पालन नहीं हो पाए तो उसमें हर्ज नहीं है। यदि कोई आज्ञा पालन ही नहीं करता हो तो उसकी ज़िम्मेदारी ज्ञानी नहीं लेते।

आज्ञा देने वाले को (ज्ञानी की) जोखिमदारी है क्या? नहीं। क्योंकि यह पर-हेतु के लिए ही है। इसलिए उन्हें किंचित्‌मात्र भी कुछ असर नहीं डालता। जप-तप-त्याग वगैरह कुछ भी किए बिना मोक्ष की गारन्टी मिल जाती है, ऐसा यह अक्रम मार्ग मिला है तो उसे पूरा कर ही लेना है! संसार में रहने के बावजूद एक क्षण के लिए भी अंदर का आनंद चूके बिना जीना, वह एक अद्‌भुत लब्धि है!

जो ज्ञानी की आज्ञा में रहा, उसका स्वच्छंद जड़ से खत्म हो जाता है। अध्यात्म में निज मत से चलने को ही स्वच्छंद कहते हैं! ज्ञानी की आज्ञा में रहे बिना, कभी भी स्वच्छंद नहीं जा सकता।

ज्ञान की जागृति में रहने के लिए सिर्फ निश्चय ही करना है, ज्ञान में और आज्ञा में रहने का! जागृति क्यों नहीं रह पाती? इसमें अभ्यास या क्रिया की ज़रूरत ही कहाँ है?

जिस प्रकार गाड़ी चलाने वाले के *लक्ष* में गाड़ी चलाने के नियम होते हैं, उसी प्रकार महात्माओं के *लक्ष* में निरंतर पाँच आज्ञा रहनी

चाहिए। आज्ञा पालन नहीं हो पाए तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन मन में ऐसा नहीं रहना चाहिए कि पालन नहीं करना है। आज्ञा पालन करने का निश्चय तो सौ प्रतिशत रहना ही चाहिए।

जब प्रत्यक्ष ज्ञानी का सानिध्य नहीं हो तब उनकी आज्ञा ही उनकी उपस्थिति के बराबर है! जब भयंकर कर्म के उदय आएँ तब यदि आज्ञा में रहा जाए तो सबकुछ अच्छी तरह से सुलझ जाएगा! जो आज्ञा पालन करता है, उसे अन्य कुछ भी करने को नहीं रहता। कोई क्रिया या शास्त्र नहीं पढ़ने होते।

ज्ञानी के आशीर्वाद और उनकी शक्ति प्राप्त करने के बाद में आज्ञा पालन करना मुश्किल नहीं है। पुरुष होने के बाद में पुरुषार्थ क्यों नहीं होगा?

निश्चय ही मुख्य चीज़ है। हर रोज़ निश्चय से पाँच बार बोलो कि, 'मुझे निश्चय से आज्ञा का पालन करना ही है, चाहे जो भी हो!' और फिर यदि पालन नहीं हो पाए तो उतना हम बोनस दे देते हैं। आज्ञा को ठीक से समझने जैसा और कुछ भी नहीं है। फिर तो वे स्वयं हाज़िर हो ही जाती हैं! जो आज्ञा का संपूर्ण रूप से पालन करता है उसे दादा से मिलने की भी ज़रूरत नहीं है। लेकिन मिलना इसलिए है ताकि सभी चीज़ों का स्पीडी हल आ जाए! इसलिए ज्ञानी का परिचय रखना, उनके सानिध्य में रहना, अति-अति आवश्यक है! वही मोक्ष है!

सत्संग भी किसलिए करना है? आज्ञा में रह पाएँ उसके लिए। इस कलियुग के कुसंग से बचने के लिए आज्ञा एक बाड़ है।

दादा का निदिध्यासन करने से दादा कहीं भी हाज़िर हो जाते हैं। आज्ञारूपी फ्लाईव्हील 180 डिग्री तक घुमाने में ज़रा कष्ट होता है लेकिन 181 डिग्री पर पहुँचते ही, अपने आप ही एकदम से 360 डिग्री पूरे कर देगा, उसके अपने ही फोर्स से! ऐसा ज्ञान और ऐसे ज्ञानी फिर कभी किसी जन्म में नहीं मिलेंगे, इसलिए उनकी पाँच आज्ञा में रहकर काम निकाल लेने जैसा है!

काम निकाल लेना अर्थात् क्या? इस तरह से पास हो जाओ कि

किसी की जी-हुजूरी न करनी पड़े। इसलिए बहुत मेहनत करो, अच्छी तरह से पढ़ो।

आज्ञा पालन क्यों नहीं हो पाता? पिछले कर्मों के कारण। कर्म खपाए बिना, अक्रम तरीके से यह ज्ञान मिल गया है।

आज्ञा, आत्मा की रक्षा के लिए हैं। जो आज्ञा में रहते हैं, उन्हें कर्म के उदय हिला नहीं सकते! जो सौ प्रतिशत आज्ञा का पालन करता है, वह तो भगवान ही हो गया! आज्ञा चूक जाओ तो उसके लिए तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए, तब भी पास हो जाओगे!

आज्ञा में रहने से सांसारिक काम सहज भाव से होते रहते हैं और तब भाविक ऐसा कहते हैं कि, 'दादा, आपकी कृपा से हुआ!' अरे, कृपा से नहीं, आज्ञा पालन किया इसलिए हुआ! कृपा तो कभी ही, जब बहुत बड़ी परेशानी आए तब रहती है!

आज्ञा में रहे तो उसे, शुद्ध उपयोग रहा, ऐसा कहा जाता है और उससे शुद्ध व्यवहार में रह पाते हैं।

दादाश्री आज्ञा चूकने वालों को लालबत्ती दिखाते हैं कि, 'जो हमारी आज्ञा में नहीं रहता उस पर फिर धीरे-धीरे प्रकृति चढ़ बैठती है।' दादा की कृपा से उसे शांति तो रहती है लेकिन वह सिर्फ दो-पाँच सालों तक रहती है। उसके बाद प्रकृति उसे खा जाती है, यानी कि प्रकृति उसे खुद अपने जैसा ही बना देती है।

आज्ञा चूक गए, उसका थर्मामीटर क्या? तुरंत ही अंदर सफोकेशन होने लगता है। अंदर की समाधि टूट जाती है। जो आज्ञा में रहता है, उसे तो आधि, व्याधि और *उपाधि* में भी समाधि रहती है!

ज्ञानी की आज्ञा में रहने के बावजूद भी यदि कुछ नहीं बरते तो? तो वह ज्ञानी की ही खामी है! और आज्ञा में नहीं रहे तो वहाँ पर खुद की ही भूल है! पिछला ज्ञान उलझा देता है, वह आज्ञा में नहीं रहने देता।

ज्ञान मिलने के बाद में शुद्धात्मा का '*लक्ष*' आ जाता है लेकिन यदि आज्ञा का पालन नहीं किया जाए तो वह '*लक्ष*' चला जाता है।

इतना ही नहीं, परंतु उल्टी जगह पर चला जाता है। स्त्रियों को दादा की भक्ति रहती है इसलिए उन्हें उल्टे जाने का जोखिम नहीं है। उन्हें आज्ञा और ज्ञान बहुत समझ में नहीं आते। आज्ञा ही मुख्य है। फिर भी आज्ञा से बाहर धर्मध्यान और अंदर शुद्धात्मा की जागृति से शुक्लध्यान बरतता है। सभी का हल तो आएगा। जो आज्ञा पालन करता है, उसका दो-पाँच जन्मों में मोक्ष हो ही जाएगा और जो पालन नहीं करता, उसके ज़रा ज़्यादा जन्म होंगे। सब से अधिक कीमत तो आज्ञा की है, ज्ञान से भी ज़्यादा।

महात्माओं के लिए टॉपमोस्ट जागृति अर्थात् पाँच आज्ञा का पालन करना। या फिर यह कि दादा निरंतर याद रहें। उसमें आज्ञा में रहे तो पुरुषार्थ है। दादा निरंतर याद रहें तो उसमें क्या पुरुषार्थ है? अत: आज्ञा ही सर्वश्रेष्ठ हैं!

ज्ञान लिए बिना पाँच आज्ञा का पालन किया जा सकता है? दादाश्री कहते हैं, 'नहीं, ज्ञान के बिना तो संभव ही नहीं है'।

आज्ञा पालन नहीं करता तो उससे दोष नहीं लगता लेकिन वह मोक्षफल खो बैठता है। आज्ञा में रहने वाला सर्व दु:खों से मुक्त ही रहता है!

दादा की पाँच आज्ञाओं में पूरे वर्ल्ड का दोहन है। तमाम धर्म, तमाम शास्त्र इसमें समा जाते हैं! कुछ भी बाकी नहीं रहता।

पाँच आज्ञाओं में पहली दो आज्ञाएँ निश्चय के लिए हैं और बाकी की तीनों व्यवहार के लिए हैं।

दादाश्री के देहविलय के बाद में फॉलोअर्स (अनुयायियों) का क्या? इसके उत्तर में दादाश्री कहते हैं कि, 'हमें तो शाश्वत दादा ढूँढ निकालने हैं। इन दादा का तो शरीर छूट भी जाएगा। पाँच आज्ञाएँ दे दी हैं, फिर हमें क्या? आज्ञाएँ वे दादा खुद ही हैं न!'

पाँच आज्ञा से प्रगति स्पीडी और ऐश्वर्य सहित होती है! तरह-तरह की शक्तियाँ प्रकट होती हैं, आवरण टूटने पर!

ज्ञानी की कृपा हो तो आज्ञा का पालन हो सकता है और आज्ञा

पालन करने से कृपा मिलती है! इसमें प्रथम उन्हें राज़ी (खुश) करना है! आज्ञा से ही *राजीपा* मिलता है। वर्ल्ड में ज्ञानी को राज़ी करने जैसा उत्तम अन्य कोई धर्म नहीं हैं। ज्ञानी का *राजीपा* हर एक पर अलग-अलग रहता है। उन्हें किसी के प्रति भेद नहीं है फिर भी ऐसा भेद क्यों? ऐसा साधक के परम विनय के आधार पर होता है। निरंतर परम विनयी पर विशेष कृपा रहती है! विशेष कृपा का मतलब क्या है? संपूर्ण काम निकल जाता है। और कृपा 'दादा भगवान' की, ज्ञानी की नहीं।

दादाश्री से दिल से प्रार्थना करना, 'दादा, हमारे संसार का भार आपके सिर पर और आपकी आज्ञा हमारे सिर पर!'

आज्ञा पालन करके प्रतीति में आए हुए आत्मा का पूर्ण अनुभव कर लेना है।

आज्ञा पालन कौन करता है? प्रतिष्ठित आत्मा? नहीं। जो प्रज्ञा जाग्रत हुई है, वह। अज्ञा, आज्ञा पालन नहीं करने देती।

आज्ञा पालन करने का निश्चय कौन करता है? वह भी प्रज्ञाशक्ति का ही काम है।

पाँच आज्ञा *पुद्‌गल* हैं लेकिन रिलेटिव-रियल हैं। आत्मा के तमाम सोपान रिलेटिव-रियल कहलाते हैं और आत्मा खुद रियल है!

दादा की शरण ले लें, तो उस जैसा और कुछ भी नहीं है। 'जो दादा का हो, वही मेरा हो।' दादा के कहे अनुसार ही रहना है।

जिन्हें मोक्ष में जाना है, उन्हें किसी क्रिया की ज़रूरत नहीं है। उन्हें तो ज्ञानी की आज्ञा और स्वरूपज्ञान, सिर्फ इन दोनों की ही ज़रूरत है। आज्ञाएँ मन को शुद्ध रखती हैं और ज्ञान सर्व संयोगों में समाधान देता है।

ये पाँच आज्ञाएँ ए.एम.पटेल की नहीं हैं, ज्ञानी की नहीं हैं परंतु खुद दादा भगवान की हैं, जो चौदह लोक के नाथ हैं। पाँच आज्ञाएँ तो वीतरागों के समय से चली आ रही हैं। दादाश्री तो निमित्त हैं। अक्रम विज्ञान बहुत बड़ा सिद्धांत है। इसमें कहीं भी (शास्त्रों के) पुस्तकों का वाक्य नहीं है।

सतत स्व में कब रह सकेंगे? जब पाँच आज्ञा का पालन करेंगे तब। आज्ञा की कीमत पूरी तरह से समझ में नहीं आई है इसलिए अच्छी तरह से पालन नहीं कर पाते हैं।

ज्ञानी की कोई विशेष आज्ञा मिल जाए तो उसके लिए 'अहो, अहो' हो जाता है!

दादा की सेवा करना अर्थात् आज्ञा की सेवा करना! और आज्ञा की सेवा करना और दादा की सेवा करना, दोनों एक ही हैं। आज्ञा पालन करना देह की स्थूल सेवा करने से भी ज़्यादा है!

[2] रियल-रिलेटिव की भेदरेखा

स्वरूप ज्ञान प्राप्ति के बाद रियल और रिलेटिव, दोनों अलग हो गए हैं। रियल, पुरुष है और रिलेटिव, प्रकृति। पुरुष होने के बाद में पाँच आज्ञारूपी पुरुषार्थ करके, पुरुष में से पुरुषोत्तम होना है!

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ध्यान में, *लक्ष* में रहना चाहिए। उसे शुक्लध्यान कहा गया है। शुद्धात्मा शब्द स्वरूप नहीं है और जप स्वरूप भी नहीं है।

हर एक जीव में शुद्धात्मा देखना, ऐसा लगातार अड़तालीस मिनट तक देखा जाए तो उसे पुणिया श्रावक की सामायिक हुई ऐसा कहा जाएगा। संपूर्ण शुद्ध उपयोग रहा, ऐसा कहा जाता है। इसी को दिव्यचक्षु कहा है।

'तू ही', 'तू ही', नहीं परंतु 'मैं ही', 'मैं ही' करना है। हर एक में 'मैं ही हूँ', 'मैं ही हूँ' वही देखना है, 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं है वहाँ पर।

एक बार डिब्बी में हीरा रखने के बाद में उसे बंद करके अलमारी में रख दिया हो तो यह ध्यान रहता ही है न, कि इस डिब्बी में हीरा है! क्या बार-बार उसे खोलकर देखना पड़ता है? उसी प्रकार एक बार ज्ञान मिलने के बाद में सभी के अंदर शुद्धात्मा है ही, ऐसा पता चल ही जाता है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोलना क्यों पड़ता है? 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं

चंदूभाई हूँ' करके जितना उल्टा चले हैं, उतना ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ' करके लौटना है। लेकिन फिर तो वह आसानी से *लक्ष* में रहेगा ही। चित्त शुद्ध हो जाए तो वैसा सहज रूप से बरतेगा। आत्मा जाग्रत होने के बाद में ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोला जा सकता है। नींद में नहीं बोल सकते! यह उपयोगपूर्वक है, मिकेनिकल नहीं है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह जाप नहीं है। यह ज्ञाता-ज्ञेय संबंध सहित होना चाहिए। जप करने से तो मन शांत होता है लेकिन ज्ञाता-ज्ञेय संबंध नहीं रह पाता!

जन्म लेते ही यदि शेर का बच्चा गलती से भेड़ों की टोली में चला जाए तो भेड़ जैसा ही बन जाता है। लेकिन किसी दिन यदि वह शेर को देखे और उसकी दहाड़ सुने और खुद भी वैसी ही दहाड़ लगाए तो तुरंत ही उसका स्वभाव जाग्रत हो जाएगा। उसी प्रकार पूरी ज़िंदगी ऐसा मानने वाला कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वह ज्ञानी की ज्ञानविधि में एक ही दहाड़ में 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान और ज्ञान प्राप्त कर लेता है और हमेशा के लिए फिर जाग्रत ही रहता है!

एक क्षण के लिए भी आत्मा होकर 'मैं आत्मा हूँ', ऐसा बोले तो छूट जाएगा! 'मैं चंदूलाल हूँ' रहा करता है इसीलिए उससे दिन-रात विष की बूँदे टपकती रहती हैं और ऐसा *लक्ष* में रहे कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो उससे दिन-रात अमृत की बूँदे टपकती रहेंगी! उसके बाद वाणी, वर्तन और विचार अपने आप ही अमृतमय हो जाएँगे!

देखने और जानने के अलावा अन्य कोई क्रिया नहीं है, उसी को कहते हैं रियल। रियल-रिलेटिव अविनाभावि संबंध से है। एक हो, तो दूसरा होता ही है!

रियल-रिलेटिव को देखने वाली है, प्रज्ञा! वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है और रिलेटिव इन्द्रियगम्य है! जो रियल व रिलेटिव को अलग करती है, वह है प्रज्ञा!

हमें क्या बनना है? कोई कहता है, 'मुझे दादा जैसा बनना है!' कोई कुछ और कहता है, कोई कुछ और कहता है। वास्तव में,

ऐसा ही रखो न कि मुझे शुद्ध होना है! मोक्ष के अलावा और कुछ भी नहीं चाहिए। उससे बड़ा और कोई पद वर्ल्ड में है ही नहीं। अन्य कहीं भी फँसने जैसा नहीं है।

'मैं बीमार हूँ', ऐसा चिंतवन करे तो वैसा ही हो जाता है। 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' बोले तो वैसा हो जाता है!

निकाचित कर्म के उदय के समय खुद को ऐसा *लक्ष* में रहे कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या आखिरकार फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलता रहे तब भी वह कर्म हल्का हो जाएगा! और आपको असर नहीं करेगा।

कोमल तो सभी को अच्छा लगता है लेकिन यदि खुरदुरा भी अच्छा लगने लगे तो फिर कुछ भी परेशान ही नहीं करेगा न!

रियल की सीट पर बैठते ही निराकुलता महसूस होती है और रिलेटिव की सीट पर शॉक लगता है! ज्ञान के बाद में दोनों के बीच भेदरेखा डल गई इसलिए रियल की सीट पर ही बैठे रहना है।

आत्मा शुद्ध ही है। त्रिकाल शुद्ध ही है। उस पद की प्राप्ति के बाद में चाहे कितना भी खराब कार्य हो जाए तो वह ''चंदूभाई' से होता है, शुद्धात्मा से, मुझसे नहीं,'' यह नहीं चूकना चाहिए। फिर भी यदि ऐसा मान लिया कि अब मुझे कुछ भी बाधक नहीं है तो लटक जाएगा इसलिए डरते रहना है लेकिन भय नहीं रखना है। आया हुआ कर्म तो चला जाएगा और आत्मा वैसे का वैसा ही रहेगा, शुद्ध ही! जो उल्टा-सुल्टा करता है, वह *पुद्गल* है, शुद्धात्मा नहीं! फिर भी यदि किसी को चंदूभाई से दु:ख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करना होगा।

पैर के नीचे आकर कोई कीड़ा मर जाए, तब भी दोनों अलग ही रहने चाहिए। मारने वाला और मरने वाला और खुद शुद्ध और सामने वाला भी शुद्ध है, ऐसा रहना चाहिए। दादाश्री ने दो धातुओं को अलग कर दिया है, लोहे को और सोने को। उसके बाद लोहे को ज़ंग लग जाए तो उससे हमें क्या लेना-देना? फिर भी चंदूभाई को मनचाहा कुछ भी करने का हक़ नहीं मिल जाता। यदि कुछ उल्टा हो जाता है तो वह सौ प्रतिशत इच्छा के विरुद्ध हो ऐसा ही होना चाहिए। इसके बावजूद

भी चंदूभाई को प्रतिक्रमण तो अवश्य करना ही पड़ेगा! यह बहुत गहन बात है। ऊपर-ऊपर से ही, यानी कि व्यवहार दृष्टि से देखने पर बिल्कुल विपरीत लगता है लेकिन तत्त्वदृष्टि से यह सौ प्रतिशत परम सत्य है!

आत्मा में किस प्रकार से रहना है? पहले चंदूभाई में किस तरह से रहते थे? चंदूभाई की सभी बातों का असर हो जाता था न? अब कोई भी असर नहीं हो तो उसका मतलब आत्मा में रहे! मान-अपमान, फायदा-नुकसान किसी भी चीज़ का असर नहीं।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निश्चय है। निश्चय उसे कहते हैं कि जो फिर कभी बदले ही नहीं।

स्वरूप स्थिति में आने के बाद अंतरदाह नहीं रहता। लेकिन वह जो निर्जीव अहंकार बाकी बचा है, यदि वह पड़ोसी का अपने सिर ले ले तो सिर पर आएगा। यह सारा घमासान बाहर के घेरे में है। उसे 'देखते' रहना है। बाकी, वास्तव में अंतरदाह तो अज्ञान दशा में ही होता है। अंदर इलेक्ट्रिसिटी की तरह जलाता है। अंदर जी जले, उस तरह से भुगतता है, सहन नहीं होता। केवलज्ञान प्राप्ति के पुरुषार्थ में आने के बाद अंतरदाह चला जाता है।

चाहे कैसा भी तूफान आए फिर भी महात्मा तो अब शुद्धात्मा के स्ट्रोंग रूम में घुस जाते हैं! इसलिए किसी भी चीज़ का असर नहीं होता।

मोक्ष में कब जाएँगे, क्या इसका पता चल सकता है? हाँ, चल सकता है। आत्मा थर्मामीटर जैसा है। जिस प्रकार पेशाब या संडास जाने का पता चल जाता है उसी प्रकार इसका भी पता चल सकता है। पता नहीं चलने का कारण यह है कि हम सांसारिक पक्ष में पड़े हुए हैं। उसमें खो गए हैं इसलिए आत्मा की तरफ का कुछ भी दिखाई नहीं देता।

ज्ञानी पुरुष द्वारा ज्ञानविधि करवाने के बाद देह और आत्मा दोनों अलग हैं, ऐसा अनुभव होता है। उसके बाद वे दोनों कभी भी एक हो ही नहीं सकते! दही बिलोकर मक्खन और छाछ के अलग होने के बाद में किसी भी प्रकार से दोनों एकाकार हो ही नहीं सकते, ऐसा है यह

विज्ञान! दादाश्री ने यह विज्ञान जगत् को दिया। मूल विज्ञान तीर्थंकरों का है लेकिन इसे देने का उनका तरीका अक्रम वाला है!

पहले आत्मा *पुद्गल* के आधार पर भटक रहा था। अब ज्ञान मिलने के बाद में आत्मा के आधारी हो गए हैं। सनाथ हो गए हैं! आत्मा के आधारी हो गए हैं इसलिए कषाय निराधार हो गए!

'मैं चंदूभाई हूँ', वह प्रतिष्ठा छूट गई और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा दृढ़ हो गया। अब मात्र पिछली गुनहगारी भुगतनी बाकी है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसका भान होने के बाद में, 'जीवमात्र वास्तव में, रियल में शुद्धात्मा ही है', ऐसी दृष्टि खुल जाती है। अतः 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' हो जाता है। जो सर्वात्माओं को शुद्धात्मा समझे, वही परमात्मा! ज्ञान के बाद परमात्मा होने की श्रेणी शुरू हुई, ऐसा कहा जाएगा!

[3] समभाव से निकाल, फाइलों का

विषमभाव से खड़ा है जगत्, यह समभाव से खत्म हो जाएगा!

फाइलों का *निकाल* करते हुए अंदर ध्यान में ऐसा रहना चाहिए न, कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ?' मुंबई जाना तय करें तो सहज रूप से ऐसा ध्यान में रहता ही है कि मुंबई जाना है!

फाइल किसे कहते हैं? नींद, भूख, सर्दी, गर्मी लगती हैं, वे सभी फाइलें हैं। भीड़ में धक्का-मुक्की हो जाए, घर में पत्नी और बच्चे, वे सभी फाइलें कहलाती हैं।

मन में सिर्फ तय ही रखना है कि फाइलों का समभाव से *निकाल* करना ही है, बस। इसका वैज्ञानिक असर सामने वाले व्यक्ति पर पड़ता है और वैज्ञानिक प्रकार से हेल्प होती है और परिणाम आता है! उसके बजाय 'सामने वाला क्या समझता है अपने मन में? उसे सीधा कर दूँगा।' तब विषमभाव हो जाता है न, तो सामने वाले पर उसका असर होता है और उसके परिणाम भी वैसे ही आते हैं। फाइलें बढ़ती ही जाती हैं।

कलियुग की फाइलें हैं, इस हिसाब से शस्त्र के सामने शस्त्र उठाना चाहिए या नहीं? नहीं। समभाव से *निकाल* ही करना है।

ये शब्द ही ऐसे वचनबल वाले हैं कि 'फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है'। सिर्फ इतना ही मन में रखा जाए तो एक भी दुःख छू नहीं पाएगा! 'मेरा' कहते ही वह जकड़ लेगा। राग होगा और फाइल कहते ही अलग रहेगा। उससे समाधि रहेगी।

आपने तय किया हो कि मुझे समभाव से *निकाल* करना है तो उसी को कहते हैं समभाव से *निकाल*। उसके बाद सामने वाले का समाधान हो या नहीं हो, वह नहीं देखना है। इस आज्ञा में ही रहना है और निश्चय को पकड़े ही रहना है! यदि उसमें अंदर कभी इधर-उधर हो जाए तो 'दादा' से शक्तियाँ माँगते रहना है। शक्तियाँ माँगकर फिर उसका इंतज़ार नहीं करना है। इंतज़ार करना गुनाह है! परिणाम जो भी आए, प्रतिकूल या अनुकूल, फिर उसके लिए आप जवाबदार नहीं हो!

खूब निश्चय करके समभाव से *निकाल* करना है, फिर भी अगर कभी बड़े-बड़े बम फूट भी जाएँ तो उसमें हर्ज नहीं है। घबराना नहीं है, बम को भी देखना है और चंदूभाई को टोकना है कि, 'अरे ऐसा भी माल निकल रहा है!'

'स्टेशन पर जाओ तो पीछे मुड़कर मत देखना', ऐसी आज्ञा देकर यदि आपको भेजा गया हो और आप वैसा तय करके निकलो, उसके बावजूद भी यदि भूल से एक-दो बार पीछे मुड़कर देख लिया तो उसे कोई गुनाह नहीं माना जाएगा! तय तो किया ही है न, कि नहीं देखना है? बस!

समभाव का मतलब क्या है? तारीफ करने वाले पर राग नहीं और निंदा करने वाले पर द्वेष नहीं, उसी को कहते हैं समभाव!

कोर्ट में जाकर लड़ सकते हैं लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। डिस्चार्ज में राग-द्वेष नहीं होते, चार्ज में राग-द्वेष होते हैं!

गालियाँ कौन किसे देता है? यह तो दोनों ही *पुद्गलों* की कुश्ती है और वह भी कर्मों के अधीन है! अब कहाँ पैसे खर्च करके बाहर कुश्ती देखना रहा?!

'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा हो वहाँ पर विषमता आ ही जाती है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा होते ही आसानी से समता बरतती है!

समता और समभाव में क्या फर्क है? कोई धौल लगाए तब भी अंदर ज़रा सा भी परिणाम नहीं बदले और ऊपर से उसे आशीर्वाद दे, उसे कहते हैं समता। समभाव में परिणाम बदल जाते हैं परंतु उसका भी *निकाल* कर देता है और राग-द्वेष को आगे नहीं बढ़ने देता।

और सहज भाव से *निकाल* अर्थात् बिना प्रयत्न के, आसानी से ही *निकाल* हो जाए, वह! ऐसा दादाश्री को रहता था! सहज भाव तो, पिछले जन्म में यदि भाव किया हुआ हो तो उसके फलस्वरूप आज सहज रूप से उत्पन्न होता है, वह। प्रगमित होता है। सहज भाव आज की क्रिया नहीं है।

ज्ञानी में कौशल्य होता है। ज्ञानी का कौशल्य कैसा होता है? ऐसी स्थिति हो कि एक व्यक्ति बोले और सात लोगों को दुःख हो जाए, वहीं पर ज्ञानी ऐसे कौशल्य का उपयोग करके, ऐसे शब्द बोलते हैं कि बोलने वाले को दुःख नहीं होता और उन सात सुनने वालों का दुःख भी चला जाता है! कौशल्य बुद्धिकला में आता है। शुरुआत समभाव से *निकाल* से करनी है, धीरे-धीरे वह वीतरागता में परिणमित होगी। वीतरागों ने ऐसा ही किया था!

समाधान वृत्ति और समभाव से *निकाल* में क्या अंतर है? अपनी वृत्तियाँ कैसी होती हैं कि हर कहीं पर समाधान ही ढूँढती हैं, न्याय ही ढूँढती हैं। और समभाव से *निकाल* करने में तो समाधान हो या न भी हो, तब भी समभाव से ही *निकाल* करना है। हमने किसी को पाँच सौ रुपये उधार दिए हों और जब वापस माँगने जाएँ तो सामने वाला बल्कि हमारे गले पड़ता है कि 'आपने कहाँ दिए थे? बल्कि मेरे पाँच सौ रुपये आपको मुझे वापस देने हैं!' अब जहाँ ऐसा हो वहाँ, जिसे छूटना है उसे तो न्याय नहीं देखना है और तुरंत ही दे देने हैं, तभी छूटेगा। क्योंकि इसका कभी भी समाधान नहीं हो सकता।

जिसके पास आत्मज्ञान है, वही समभाव से *निकाल* कर सकता है और दादाश्री द्वारा तो संपूर्ण ज्ञान से *निकाल* होता था।

ज्ञानी तो पूरे ब्रह्मांड के राजा जैसे दिखाई देते हैं!

कोई थप्पड़ लगाए तब क्या करना चाहिए? तब खुश होना चाहिए कि आज इनाम मिला! या फिर, 'वह कौन है? हम कौन हैं? कौन किसे मार रहा है?,' ऐसा सब 'देखना' है। दादाश्री ने तो एक बार इनाम घोषित किया था कि 'कोई मुझे यदि एक धौल मारेगा तो उसे पाँच सौ रुपये दूँगा', लेकिन कोई धौल मारने आया ही नहीं।

पूरे जगत् के लोगों की वजह से नहीं, लेकिन दो सौ-पाँच सौ फाइलों की वजह से मोक्ष रुका हुआ है। यदि इतने लोगों के साथ ही समभाव से *निकाल* कर लोगे तो मोक्ष मिल जाएगा!

अक्रम मार्ग में ज्ञानविधि के बाद शुद्धात्मा ग्रहण होता है और अहंकार और ममता का त्याग हो जाता है। इसलिए फिर पूरे संसार का त्याग हो जाता है। उसके बाद ग्रहण और त्याग की झंझट ही नहीं रहती!

क्रमिक मार्ग में जो पद और भजन गाए जाते हैं, वे ग्रहणीय हैं और अक्रम में जो पद गाए जाते हैं, वे *निकाली*। अक्रम में तो सभी कुछ *निकाली* ही होता है। ऐसा कैसे पता चले? क्रमिक में कोई पद गा रहा हो और उसे रोका जाए तो गाने वाला गुस्सा हो जाता है, जबकि अक्रम में कोई भी फर्क नहीं पड़ता!

संसार की सभी क्रियाएँ *निकाली* हैं और 'यह' सत्संग ग्रहणीय बाबत है। अक्रम में कर्ताभाव से कुछ भी नहीं होता है। साड़ियाँ पहनते हैं, ज़ेवर पहनते हैं लेकिन यदि नहीं मिलें तो कुछ भी नहीं। आत्मा में ही रहते हैं जबकि क्रमिक में तो यदि नहीं मिलें तो रूठ जाते हैं।

जगत् बैर से खड़ा है। समभाव से *निकाल* करने से पिछला बैर छूट जाएगा और नया बैर नहीं बंधेगा।

एक व्यक्ति को दुकान खाली करके उससे मुक्त हो जाना है तो वह कैसे करेगा? माँगने वालों को दे देगा और आखिर में लेने वालों का छोड़कर भी मुक्त हो जाएगा! जिसके साथ बैर बंध गया है, उसके साथ समाधान कर लेना है प्रतिक्रमण करके, माफी माँगकर।

पुद्गल के आनंद से बैर बढ़ता है और आत्मा के आनंद से बैर छूटता है!

पसंद या नापसंद लोग, सभी फाइलें ही हैं। समान ही हैं। दोनों से छूटना है। नापसंद के साथ भी ड्रामेटिक प्रेम रखना है। माफी माँगकर बैर से छूट जाना है! सामने वाले के अहंकार को पोषण देकर बैर में से छूट जाओ!

कोई व्यक्ति खून करने आए लेकिन जिसके अंदर ऐसा भाव रहे कि फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है तो खूनी के भी भाव बदल जाएँगे और छुरा या गन (बंदूक) रखकर चला जाएगा। फाइल के प्रति पूर्वग्रह छोड़ दिया जाए तो फाइल आपके कहे अनुसार चलेगी।

फाइलों को छोड़कर साधु बन जाने से छूटा नहीं जा सकता। अंदर वाले दावा दायर करेंगे। बाहर के दावे तो एक जन्म में छूट जाएँगे लेकिन अंदर के तो जन्मोंजन्म भटकाएँगे!

यह जगत् बैर से खड़ा है, प्रेम से नहीं। समभाव से *निकाल* करने से छूट जाएँगे।

एक व्यक्ति ने दादाश्री से कहा कि, 'मुझे मेरी सभी फाइलों से जल्दी ही छूट जाना है।' तो दादाश्री ने उसे कहा कि, 'जब तक शरीर में ताकत है तब तक सब फाइलों से कहो कि आओ और वसूल कर जाओ। बुढ़ापे में कहाँ से चुका पाओगे? अपना ही हिसाब है, वह चुका दो न!'

समभाव से *निकाल* किस तरह करना चाहिए? सामने वाला हँसता हुआ आए या चिढ़ता हुआ आए, दोनों के प्रति हमारा एक ही समान भाव, समभाव।

फाइलों को खुश करने नहीं जाना है, यदि वे हम से नाखुश न हों तो बहुत हो गया! वहाँ पर समभाव से रहेगा। सामने वाला क्लेम छोड़कर गया तब भी हम छूट जाएँगे। उसके बाद जितने से और जिस भी चीज़ से वह मान गया तो छूट जाओगे। जगत् के सत्य-असत्य में नहीं पड़ना चाहिए। सामने वाले को समाधान हुआ कि छूट जाओगे।

अपनी फाइल नंबर-1 खाए तो उसे आपको 'देखते' रहना है। उससे बातचीत करते-करते पूरा करना है। चाय-नाश्ता, खाने-पीने का जो भी माँगे, उसे वह देकर छूट जाना है। चाय में शक्कर नहीं आई तब भी पी लेना।

अक्रम में उदासीनता नहीं है लेकिन डायरेक्ट वीतरागता ही प्राप्त करनी है। जितना फाइलों का समभाव से *निकाल* होगा उतने ही वीतराग होते जाओगे।

जबकि क्रमिक मार्ग में वैराग्य के बाद उदासीनता और उसके बाद में वीतरागता आती है!

होम डिपार्टमेन्ट की फाइलों को फॉरेन में या और कहीं पर नहीं ले जाना चाहिए और फॉरेन की फाइलों को होम में नहीं ले जाना चाहिए। घर पर व्यापार को याद मत करो और व्यापार पर घर को याद मत करो! और फिर किसी को इसका पता भी नहीं चलना चाहिए! जो आत्मा में रहे वे होम में और जो व्यवहार में हैं वे फॉरेन में चले गए। फॉरेन में सुपरफ्लुअस रहना है।

ऐसा ज़बरदस्त अक्रम विज्ञान मिला है, फिर भी अभी मोक्ष में क्यों नहीं जा पाते ? तो इसलिए कि पहले के गुनाह थे, उनके केस चलने बाकी हैं। यह सारी गुनहगारियाँ खत्म होने के बाद में फिर मोक्ष में जा पाएँगे! खुद के ही दोषों को देखने से गुनहगारी में से छूटा जा सकता है!

तमाम फाइलों को एक ही शब्द में रखा जा सकता है और वह है संयोग! और फिर संयोग, वियोगी स्वभाव वाले हैं। इसलिए उन्हें 'देखते' ही रहना है। अपने आप ही छूट जाएँगे। जगत् में शुद्धात्मा और संयोग, दो ही हैं। शुद्धात्मा के ज्ञान में रहने से सबकुछ स्वयं क्रियाकारी हो जाता है!

पसंद या नापसंद, दोनों का समभाव से *निकाल* करना है! रास्ते में गटर से बदबू आए तो क्या सरकार को गालियाँ देनी चाहिए? नाक पर रूमाल रखकर निकल जाना, उसे कहते हैं समभाव से *निकाल*।

कोई हम पर जलते हुए कोयले डाले तो वह शुद्धात्मा है और जो कोयले गिरे, वह अपने कर्म का हिसाब है! आज उसने हमें इसमें से छुड़वाया! जबकि हमें वह बैरी लगता है और कोई प्रेमी लगता है!

प्रतिकूल व्यवहार आता है तो वह हमारी शक्तियाँ प्रकट करवाकर जाता है!

ड्रामेटिक रहने से फाइलों का समभाव से *निकाल* होता है। और फिर ड्रामेटिक हार्टिली होना चाहिए। फाइलों का *निकाल* करते हुए, आरोपित भाव से 'मैं हूँ' ऐसा ड्रामेटिक भाव रखना है!

व्यवहार में किसी को डाँटना पड़े तो उसके शुद्धात्मा को विधि करके बाहर बैठा देना। उसके बाद में *पुद्गल* के गुनाह को डाँटना या दंड देना। उसके प्रति हमें ज़रा सा भी राग-द्वेष नहीं होना चाहिए। फिर हम पर सामने वाले की किसी भी बात का असर नहीं होगा!

सड़े हुए पपीते के भाग को काटकर निकाल दिया जाए तो उसे कहते हैं समभाव से *निकाल*। अपने घर में यदि भैंस घुस जाए तो उसे, 'भैंस बहन! ज़रा बाहर चली जाओ न, बाहर जाओ न!' ऐसा कहने से क्या कुछ होगा? वहाँ पर तो भैंस की ही भाषा में बात करनी पड़ेगी। उसे एक डंडा दिखाना या फिर पैर में ज़रा मारना तो भैंस तुरंत ही समझ जाएगी और बाहर भाग जाएगी। उसे कहते हैं समभाव से *निकाल*।

नालायक व्यक्ति के साथ बहुत व्यवहार नहीं रखना चाहिए। वह अपने घर और आप अपने घर।

यदि आपके समभाव से *निकाल* का कोई दुरुपयोग करे तो? 'व्यवस्थित' की सत्ता क्या किसी एक के हाथ में है? किसी की स्वतंत्र शक्ति नहीं है। इसलिए घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है।

फाइलों का समभाव से *निकाल* करना ही है, फिर भी यदि न हो पाए तो क्या करना चाहिए? फिर आपको कोई लेना-देना नहीं रहा। आपने आज्ञा का पालन किया तो फिर आप ज़िम्मेदार नहीं रहे!

सामने वाला नहीं छोड़े तो? एक तरफा *निकाल* हो सकेगा? हाँ, हो सकेगा। किस तरह से होगा? वीतरागता से होगा।

चीकणी फाइलों (गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग) के आने से पहले ही हिल जाएँ कि 'यह हमें नहीं छोड़ेगी', तो ऐसा नहीं होना चाहिए। आपको परिणाम नहीं देखना है, फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है, ऐसा निश्चय पकड़े रखना है। उसके बाद आपकी जवाबदारी नहीं रहेगी, उसकी गारन्टी है!

जहाँ पर *चीकणी फाइलें* हों तो वहाँ पर मौन रहना उत्तम है। फिर भी यदि फाइल खुश नहीं होती है तो आपको नुकसान उठाकर भी फाइलों में से छूट जाना है। लेकिन आपको सिर्फ सत्संग में जाने की बाबत में पकड़ पकड़े रखनी है। उससे जो भी नुकसान होगा वह देखा जाएगा!

राग वाली फाइल किस तरह से मिलेगी आगे जाकर? नहीं। अगले जन्म में वह फाइल तो किसी और के हिस्से में चली जाएगी लेकिन यदि अंदर राग रह गया तो उसका निबेड़ा लाना है, उसका *निकाल* करना होगा! फिर फाइल से कोई लेना-देना नहीं रहेगा।

चाहे कितनी भी गाढ़ फाइल हो लेकिन आपको तो अंत तक भाव पकड़े रखना है कि, 'मुझे उसका समभाव से *निकाल* करना है।' उस भाव को नहीं छोड़ना है। फिर जो भी हुआ, वह व्यवस्थित है। उसके बाद गुनहगार 'व्यवस्थित' है, आप नहीं।

अंदर आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं। सिर्फ तय ही करके रखना है कि मुझे *चीकणी फाइल* का समभाव से *निकाल* करना ही है। वैसा होगा ही। सामान्य रूप से तो दो-चार ही *चीकणी फाइलें* होती हैं!

जिस प्रकार प्याज़ की परतें होती हैं *चीकणी फाइलों* का भी वैसा ही है। हर बार समभाव से *निकाल* करते-करते, एक-एक परत हटती जाएगी और अंत में मुक्त हुआ जा सकेगा!

चीकणी फाइलें तो आपको मोक्ष के मार्ग पर ले जाती हैं! दादाश्री अपनी भाभी को हमेशा अपनी *चीकणी फाइल* कहते थे, 'आप हो तभी मुझे यह प्राप्ति हुई है'। ज्ञान के बाद सभी के लिए *चीकणी फाइलें* उपकारी हैं।

गोंद चिपचिपा है या चुपड़ने वाला चिपचिपा है या पट्टी चिपचिपी है? जो शुद्ध है, उस पर इस चिपचिपेपन का असर कैसे हो सकता है?

चीकणे (गाढ़) कर्म किस तरह से खत्म हो सकते हैं? शुद्धात्मा में रहोगे, ज्ञाता-द्रष्टा रहोगे, तो जल्दी खत्म हो जाएँगे! *चीकणी फाइल* आने वाली हो तो उसके आने से पहले ही शुद्धात्मा देखना शुरू कर देना

है। उसके बाद मन में तय करके रखना है कि इसका समभाव से *निकाल* करना ही है। प्रतिक्रमण करते रहना है। उससे समभाव से *निकाल* हो ही जाएगा।

इन फाइलों ने ही रोका हुआ है। समभाव से *निकाल* हो जाएगा तो छूट जाओगे!

ज्ञान मिलने के बाद निश्चय से राग-द्वेष छूट जाते हैं लेकिन व्यवहार से रह जाते हैं। जब राग-द्वेष हों तब उन्हें देखते रहना है। उससे राग-द्वेष खत्म हो जाएँगे। समभाव से *निकाल* करते हुए आप पर असर न हो, ऐसा खास तौर पर देख लेना है। उसी के लिए आज्ञा का पालन करना है। आपको समभाव रहा, इसका मतलब उसका *निकाल* हो गया। दूसरी परत आती है इसीलिए फाइलें वापस मिलती हैं। लेकिन उससे पहले का तो चला ही गया!

परिवार में सभी आपके विरुद्ध हो जाएँ और चाहे कैसा भी बोलें तो वहाँ पर मौन रहना। समय उन्हें शांत कर देगा।

समभाव से *निकाल* करते हुए, एक को अच्छा और एक को खराब लगे तो वहाँ पर क्या करना चाहिए? आपको ऐसा तय करके रखना है कि समभाव से *निकाल* करना है। फिर जो भी डीलिंग हो, वह ठीक है। फिर जवाबदारी नहीं रहेगी।

जहाँ पर टकराव हो जाए, वहाँ पर ज़रा पागलपन करके भी छूट जाना। अरे, यदि भूल हो जाए तो बच्चों के सामने भी स्वीकार करके छूट जाना। वर्ना मन में डंक रखेंगे! बाप यदि बच्चों के सामने भूल स्वीकार कर ले तो क्या बच्चा बाप बन जाएगा?

समभाव से *निकाल* करते हुए यदि अंदर ऐसा भय लगे कि भविष्य में नुकसान होगा तो उसके लिए क्या करना चाहिए? आपको फायदा-नुकसान करना है या मोक्ष में जाना है? यह दृष्टि तो दु:खी किए बगैर रहेगी ही नहीं। आपको तो समभाव से *निकाल* की आज्ञा का पालन करना है। फिर जो भी होगा, वह करेक्ट!

कोर्ट में केस लड़ने का समय आए तो ऐसे में प्रकृति, प्रकृति से

लड़ती है, उससे आपको क्या? और इस तरह से रहना चाहिए, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। कोर्ट में राग-द्वेष नहीं होने चाहिए, फिर कोई हर्ज नहीं है। कोर्ट में विवेकपूर्वक वर्तन करना चाहिए। विवेकपूर्वक अर्थात् सही-गलत किए बगैर वकील जैसा कहे वैसा ही करना चाहिए, राग-द्वेष के बिना।

खुद ने मशीन बनाई हो फिर भी यदि उसमें आपकी उँगली आ जाए तो क्या वह उसे छोड़ देगी?

जायदाद के लिए भी भय रखे बगैर समभाव से *निकाल* करो। फिर यदि कोर्ट में जाना पड़े तो भी हर्ज नहीं है। द्वेष नहीं होना चाहिए।

आपको किसी से पैसे लेने हों और उसके पास पैसे नहीं हों तो छोड़ देना चाहिए। कोर्ट में जाओगे, वकील रखोगे तो बल्कि खर्चा सिर पर पड़ेगा!

समभाव से *निकाल* करते-करते फाइलों के लिए आपको यदि उल्टे विचार आएँ तो तुरंत ही उसका प्रतिक्रमण कर देना है। उसके स्पंदन उस तक पहुँचेंगे। प्रतिक्रमण से उसके लिए आपका अभिप्राय बदल जाता है।

दादाश्री ने कुदरत का यह अद्भुत नियम दिया है कि सीधा नहीं करना है, 'करने से' तो हमेशा उल्टा ही होगा। और नियम ऐसा है कि सीधा अपने आप ही होता है!

जहाँ पति-पत्नी के बीच ज़ोरदार वैमनस्य (बैर) हो वहाँ पर इन फाइलों का समभाव से *निकाल* किस प्रकार से करें? क्या एक पक्ष को ही ज्ञान में रहना है? सामने वाला व्यक्ति यदि किसी भी प्रकार से नहीं समझे तो? क्या अलग हो जाना है? अलग होकर भी क्या सुखी हो जाना है? तय रखना है कि समभाव से *निकाल* करना ही है। उसके बाद व्यवस्थित पर छोड़ देना है। और आपको छूट जाना है, अतः सामने वाले का नहीं देखना है। उसके लिए जो अभिप्राय हैं, उन्हें तोड़ते जाओगे तो सरलता से हल हो जाएगा।

क्या समभाव से *निकाल* करने की कला होनी चाहिए? कला नहीं,

लेकिन निश्चय होना चहिए। कला तो, किसी को पति बनना भी नहीं आता। लाखों में एकाध-दो लोग ही पति की परीक्षा में पास हो पाएँगे!

बच्चों के साथ समभाव से *निकाल* करते हुए कभी भी हिंसक नहीं होना है, मारना नहीं है।

बच्चे यदि किसी महँगी चीज़ के लिए रूठ गए हों तो ऐसे में आराम से 'देखते' रहना। और पैसों का कारोबार पत्नी को सौंप देना। उन्हें वह करना आता है।

बच्चा चोरी करता हो फिर भी उससे इस प्रकार से डीलिंग करनी चाहिए कि उसे खुद को अंदर रियलाइज़ हो कि यह गलत है तो एक दिन वह बदलेगा। जिसका ऐसा तय होगा कि समभाव से *निकाल* करना ही है तो उसका काम हो जाएगा।

ये बच्चे अपने नहीं हैं, ये तो फाइलें हैं। उनके प्रति अपना फर्ज़ निभाना है। अंदर मोह की पकड़ नहीं रखनी है।

खुद, खुद की फाइल का समभाव से *निकाल* किस प्रकार करे? कभी भी चिढ़े नहीं। चिढ़ जाए तो उसे भी देखते रहना है और फाइल नंबर 1 से बातें करके उसे शांत करना है। ज्ञानी कभी भी नहीं चिढ़ते। फाइल नंबर 1 को सचेत करते रहना है। वह घड़ी भर में एलिवेट हो जाती है और घड़ी भर में डिप्रेस हो जाती है। दोनों ही समय, उसे समता में रहने के लिए सचेत करना है।

अहंकार क्या कहता है कि 'हम ऐसे और हम वैसे' जबकि प्रज्ञा, फाइल से क्या कहती है कि 'आप ऐसे और आप वैसे'।

कुछ लोग कहते हैं कि हमारी बहुत सारी फाइलें हैं। अरे, क्लर्क बड़ा है या फाइलें बड़ी? और फिर खुद ने ही खड़ी की है न? जितनी फाइलें हैं उतनी ही आएँगी। कोई नई नहीं बढ़ रही हैं। यदि ऐसा रहे कि 'समभाव से *निकाल* करना ही है' तो वैसा हो जाएगा और यदि 'नहीं हो पाएगा' ऐसा हुआ तो बिगड़ेगा।

जो-जो फाइलें आपको मिलती हैं, वे सभी पुरानी ही हैं, नई नहीं हैं। ज्ञान के बाद में नई फाइलें नहीं मिलतीं। भावकर्म ही नई फाइलें हैं।

फाइलों का जल्दी-जल्दी *निकाल* हो सकता है? नहीं। उन्नीस सौ अस्सी वाली का उन्नीस सौ अस्सी में ही *निकाल* होगा और उन्नीस सौ इक्यासी वाली का उन्नीस सौ इक्यासी में ही होगा। जब ट्रेन बड़ौदा पहुँचती है तब बड़ौदा का डब्बा कटता है। जब सूरत पहुँचती है तब सूरत का डब्बा कटता है। '*निकाल* कब होगा, कब होगा', ऐसे में कहा जाएगा कि बुद्धि उल्टे रास्ते पर गई।

जैसे-जैसे फाइलें कम होती जाएँगी, वैसे-वैसे उपयोग बढ़ता जाएगा। जहाँ-जहाँ उपयोग चूके, वहाँ-वहाँ पर फिर से धोना पड़ेगा। अब नया कर्म नहीं बंधता।

फाइलों की वजह से 'स्व' में कम रहा जाता है। फाइलें आएँ तो जागृति खर्च हो जाती है। फाइलें संपूर्ण रूप से खत्म हो जाएँगी तो अपार आनंद छलकेगा! जैसे-जैसे आत्मज्ञानी के परिचय में, ज़्यादा से ज़्यादा सत्संग में रहेंगे तो बहुत लाभ होता जाएगा! जिसे हल लाना ही है, उसका हल आए बगैर रहेगा ही नहीं! आत्मशक्ति का लाभ लेना आना चाहिए!

फाइलों का हिसाब खत्म हुआ, ऐसा कब कहा जा सकता है? जब आपको राग-द्वेष नहीं हों, जब वह आए तो आपको बोझ न लगे, ईज़ीनेस रहे तो समझना कि अब फाइलें छूट गईं!

चीकणी फाइल का पूर्ण विलय हो गया, ऐसा कब कहा जाएगा? फाइल हमारे लिए चाहे कितना भी उल्टा बोले फिर भी मन में दुःख न हो तो कहा जाएगा कि द्वेष गया। मन हमेशा क्लियर रहेगा। विचार भी बंद हो जाएँगे उसके बारे में।

महात्माओं के बीच बहस हो जाए तो उसे क्या कहेंगे? दादाश्री कहते हैं कि 'महात्मा लड़ते-करते हैं लेकिन अंदर प्रतिक्रमण करते हैं, पश्चाताप करते हैं इसलिए फाइलों में से छूट जाएँगे! महात्माओं की भूल नहीं देखनी चाहिए।

दादाश्री से एक व्यक्ति ने पूछा कि, 'दादा, हम सभी आपकी फाइलें ही हैं न?' तब दादाश्री ने कहा, 'हाँ, फाइल ही हो न! लेकिन ये सभी फाइलें बोझ रूप नहीं लगतीं। ये सारी वैकल्पिक फाइलें कहलाती

हैं और वे सारी अनिवार्य फाइलें। वे रात को दो बजे भी नहीं छोड़तीं! फाइलें तो डिप्रेशन और एलिवेशन करवाती हैं!'

दादाश्री कहते हैं कि जगत् के तमाम धर्मों के तमाम साधु, आचार्यों, संतों व भक्तों को इकट्ठा किया जाए तब भी इन महात्माओं को जो पद मिला है, वह पद कहीं भी नहीं हो सकता!

क्रमिक मार्ग में बाइसों परिषहों को जीतने का कहा गया है और अक्रम में समभाव से *निकाल* कर देना है!

फाँसी लगने का समय आ जाए तो क्या पुरुषार्थ करना चाहिए? समभाव से *निकाल*।

आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद में मूढ़ात्म दशा में से अंतरात्म दशा, इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट की दशा में आ सकते हैं। इन सभी फाइलों का *निकाल* हो जाने के बाद में फुल गवर्नमेन्ट, यानी कि परमात्म दशा की प्राप्ति हो जाती है! जब तक गुनहगारी है तब तक इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट है।

अज्ञान दशा में ऐसा रहता था कि, 'मुझसे गलती हो गई, मुझसे जंतु कुचला गया।' अब ज्ञान दशा में ऐसा रखना है कि, 'यह सब फाइल नंबर 1 से ही हुआ है इसलिए वह 'अपनी' ज़िम्मेदारी नहीं है।' पहले कर्ता थे, अब 'हम' ज्ञायक हैं। अब जिस रूप हुए हैं, उस रूप में रहने में क्या हर्ज है? बल्कि परमानंद रहेगा।

व्यवहार में कहते हैं कि, 'मेरा है', लेकिन अंदर से, हृदय से कोई चीज़ मेरी नहीं है। अर्थात् ममता चली गई। देहाध्यास चला जाए तो देह का मालिकीपन चला जाएगा।

फाइल नंबर 1 के दखल को देखने से वह चला जाता है। सामने कोई फाइल क्लेम करे तो उसका प्रतिक्रमण करना होगा। लेकिन फाइल नंबर 1 में कौन क्लेम करेगा? तो वह देखने से ही जाएगी।

फाइल नंबर 1 को देखते ही रहना है। होली को देखने से क्या आँखें जलती हैं? फाइल नंबर 1 का उल्टा माल निकल रहा हो तो हमें उसमें सहमत नहीं होना है। सतत उसका सख्त विरोध करते रहना है।

फाइल नंबर 1 का समभाव से *निकाल* हुआ, ऐसा कब कहा जाएगा? फाइल नंबर 1 जब ज़बरदस्त गर्म हो जाए तब हमें ऐसा रहे कि यह संयोग है और वियोगी स्वभाव वाला है, ऐसा ज्ञान हाज़िर रहे और समता रहे, तब कहा जाएगा कि (*निकाल)* हो गया।

फाइल नंबर 1 का समभाव से *निकाल* किस तरह किया जा सकता है? यह तो ऐसा है कि कितनी ही तरह से फाइल नंबर 1 का समभाव से *निकाल* नहीं किया है! सभा में बैठे हुए हों या भाषण दे रहे हों तब थूक निगल जाते हैं या नहीं? पेशाब या संडास घंटे-दो घंटे रोककर रखते हैं न? पेट भर जाए फिर भी होटल में, पार्टी में या किसी के आग्रहवश ज़्यादा खा लेते हैं या नहीं? ऐसा सब करके शरीर को सहज नहीं रहने दिया। थक जाए फिर भी चलता रहता है। परीक्षा आए या फिर कोई मनचाही किताब हो तो रात भर जागकर भी पढ़ता रहता है। भीड़ में या गाड़ी में, थका हुआ हो फिर भी खड़ा ही रहता है, नीचे नहीं बैठता। इज़्ज़त चली जाएगी न! खूब भूख लगी हो फिर भी काम की वजह से या बातों में पड़े हों तो उस समय खाता नहीं है। जब गाड़ी रवाना होने वाली हो तब गरम-गरम चाय पी लेता है! ऐसे असहज हो जाता है। इस प्रकार फाइल नंबर 1 का समभाव से *निकाल* नहीं किया है। वास्तव में तो फाइल नंबर 1 का ही समभाव से *निकाल* करना है!

ये फाइलें किसकी हैं? आत्मा की या शरीर की? दोनों में से किसी की भी नहीं, ये तो प्रज्ञाशक्ति की हैं और फाइलों का समभाव से *निकाल* भी प्रज्ञाशक्ति ही करवाती है।

फाइल नं. 1 कहा कि तुरंत अलग ही बरतेगा। उसमें एक सेन्ट भी चेतन नहीं रहा। यह आश्चर्य है न! फाइल नं. 1 कहते ही आध्यात्मिक विजय हो गई! क्योंकि खुद आत्मा होकर बाकी के सारे भाग को फाइल नं.1 कहा है! जब तक फाइल नं.1 नहीं कहे तब तक अलग पना बरतेगा नहीं न!

'फाइल' शब्द का प्रयोग करते ही ममता खत्म हो जाती है। फिर एक घंटे की ज्ञानविधि में ही आत्मा और शरीर का अलगपन बरतता है! क्योंकि यह बिल्कुल वैज्ञानिक तरीका है!

'*निकाल*' शब्द का भी बहुत असर होता है। ग्रहण नहीं, त्याग नहीं लेकिन '*निकाल*'! '*निकाल*' शब्द बोलते ही परिणाम समझ में आ जाता है कि अब यह सब छूट गया। जबकि कुदरत का नियम है कि, 'त्यागे सो आगे।' क्योंकि ग्रहण-त्याग में अहंकार है और अक्रम में ज्ञानविधि के बाद में अहंकार पूरी तरह से फ्रेक्चर हो जाता है। अतः *निकाल* करना बाकी रहता है, खाली होना बाकी रहता है, निर्अहंकारी पद में रहकर!

यह अक्रम विज्ञान है। एक-एक शब्द के पीछे ज़बरदस्त वचनबल है। परम पूज्य दादाश्री के अनंत जन्मों की खोज के परिणाम स्वरूप यह विज्ञान प्राप्त हुआ है, जो अनुभवगम्य है, इसीलिए तो ज़बरदस्त क्रियाकारी सिद्ध होता है। काल के अधीन कितने ही अंग्रेजी शब्द रखे गए हैं। जैसे कि, रियल, रिलेटिव, फाइल, साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स वगैरह, ये खूब ही सटीक हैं। और आज के युवाओं को तुरंत ही समझ में आ जाते हैं। संस्कृत के या शास्त्रों के पारिभाषिक शब्द समझ में ही नहीं आते हैं तो फिर उनका उपयोग किस प्रकार से हो सकेगा?

महात्माओं की दशा और भगवान महावीर की दशा में क्या फर्क है? भगवान महावीर की फाइलें नहीं थीं और महात्माओं की फाइलें बाकी हैं। बाकी, दोनों ही चिंता रहित हैं!

जो अंदर बैठे हैं वे शुद्धात्मा भगवान हैं। फाइल रहित शुद्धात्मा, वे भगवान हैं और जब तक फाइलें हैं तब तक शुद्धात्मा है। सभी फाइलों का समभाव से *निकाल* करके मुक्त होते ही हो जाएँगे सिद्ध भगवान!

[4.1] भरा हुआ माल

आत्म जागृति में आने के बाद में कई बार ऐसा होता है कि जब भूलें होती हैं तब पता चलता है कि यह गलत है। ऐसा नहीं करना चाहिए, फिर भी हो जाता है, वह क्या? दादाश्री समझाते हैं कि यह भरा हुआ माल निकल रहा है। उसे प्रज्ञा देखती है और प्रतिक्रमण करवाती है। उसे 'नहीं है मेरा' ऐसा कहा तो भी बहुत हो गया।

अज्ञान दशा में तो ऐसा भी कहाँ भान रहता है कि, 'यह गलत हो रहा है?' खुद सही ही है ऐसा लगता है।

यह सारा भरा हुआ माल है तो वह किसी ज्ञानी से पूछे बगैर ही भरा है। अब ज्ञान के बाद जब वह निकलता है तो सहन नहीं होता। लेकिन अब तो उसका समभाव से *निकाल* करना ही होगा। अब महात्माओं को नया चार्ज नहीं रहा। भरी हुई टंकी खाली ही हो रही है। उसे खाली होने देना है और जो निकल रहा है, उसे हमें देखते रहना है।

इन मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ चार्ज करके लाए हैं, वे अब डिस्चार्ज होती रहेंगी। नई चार्ज नहीं होंगी।

टंकी में जैसा माल भरा होगा वैसा ही निकलेगा। मान का, विषय का, लोभ का, हिंसा का - जो भरा होगा वह निकलेगा।

वास्तव में भरे हुए माल का *निकाल* नहीं करना है, हो रहा है ऑटोमैटिक। जब तक इस प्रकार से प्रतीति के पद में हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तब तक भरे हुए माल का *निकाल* करना है। लेकिन आगे जाकर जब वह ज्ञान परिणामित होगा तो फिर, '*निकाल* हो रहा है' ऐसा रहेगा।

अत: भरा हुआ माल निकलना ही चाहिए तभी मुक्त हो सकोगे। बोरे में जो भरा हुआ है, वह निकलेगा। जो अंत में भरा है, वह पहले निकलेगा!

ये सभी जो उधार चढ़ाए हैं तो उन्हें चुकाना तो पड़ेगा न? और उधार चुक जाए तो उसे प्रॉफिट ही माना जाएगा न! उधार चुक जाने के बाद कैसा मज़ा? खुद परमात्मा ही है लेकिन पिछले उधार के कारण सब उलझा हुआ है!

जैसे-जैसे प्रतिक्रमण होते जाएँगे वैसे-वैसे साफ होगा। मेन वॉटर वर्क्स में पानी का कॉक बंद किया फिर भी सौ मील दूर तक पानी तो आता ही रहेगा। क्यों? तो कहते हैं, जितना पाइपों में भरा हुआ है, वह तो खाली होगा ही न! इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। पाइप में भरा हुआ खाली होने पर बंद हो जाएगा। मन-चित्त-बुद्धि-अहंकार सभी कुछ अब खाली ही करने हैं। नया नहीं भरेगा उसकी गारन्टी है। फिर चाहे भरा हुआ माल अच्छा हो या खराब हो लेकिन दोनों ही *निकाली* हैं! दोनों को 'देखते' ही रहना है!

सामने वाला आज्ञा में रहता है या नहीं, वह आपको नहीं देखना है। सभी को अपना-अपना देखना चाहिए। खुद को आज्ञा में रहना चाहिए।

दादाश्री कहते हैं कि हमारी सूक्ष्म उपस्थिति में एक भी वृत्ति इधर-उधर नहीं होती। प्रत्यक्ष हों तो उत्तम है और अगर वे नहीं हों तो दादा दिखाई देते रहें तो वह सूक्ष्म हाज़िरी।

हम मोक्ष में जाने वालों के लिए तो परोपकार, पुण्य वगैरह सभी कुछ *निकाली* माल हैं।

जो दादा के भी दोष दिखाए, वह भी भरा हुआ माल है। उसे 'देखते' रहना है। चंदूभाई से उसके प्रतिक्रमण करवाने हैं।

भरा हुआ माल निकलने पर यदि दखलंदाज़ी नहीं की जाए तो वह अपने आप ही झड़ जाएगा।

[4.2] चार्ज - डिस्चार्ज

आत्मज्ञान मिलने के बाद में क्या करना है और क्या नहीं? ज़िंदगी किस तरह जीनी है? दादाश्री इन प्रश्नों का समाधान देते हैं कि, ''ज़िंदगी किस प्रकार से जी रहे हैं, उसे 'देखना' है।'' महात्माओं को बार-बार यह प्रश्न परेशान करता है कि अंदर से बहुत मनाही होने के बावजूद भी बाहर गलत काम हो जाता है, तब वहाँ क्या करना चाहिए? उसके लिए दादाश्री कहते हैं कि चंदूभाई जो कुछ भी करते हैं, वह सब डिस्चार्ज है, उसमें बदलाव नहीं हो सकता। चंदूभाई जो कुछ भी करते हैं, उससे आपको कोई लेना-देना नहीं है। फिर भी महात्माओं को प्रश्न होता ही रहता है कि उससे नया कर्म चार्ज तो नहीं होगा न? वहाँ पर दादाश्री वैज्ञानिक तरीके से समझाते हैं कि, 'यदि आपका, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह *लक्ष* खत्म हो जाए और वापस निश्चय से, सच्चे दिल से 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा आ जाए तो कर्म चार्ज होगा, नहीं तो नहीं होगा।' 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'ये चंदूभाई कर रहे हैं', वह भी व्यवस्थित की सत्ता में रहकर अतः आप उसके कर्ता नहीं रहे तो फिर चार्ज नहीं होगा।

फिर भी हमारे डिस्चार्ज से किसी को दु:ख हो जाए या हमें

अकुलाहट होने लगे तब भी उसके लिए प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए, तब भी छूट जाएँगे। बगैर राग-द्वेष के हल लाना है।

चार्ज और डिस्चार्ज की भेदरेखा क्या है? चार्ज अहंकार से होता है। फिर भी महात्माओं को कई बार प्रश्न होता है कि, 'मुझे अहंकार आ गया, शुद्धात्मा की जागृति नहीं रही, *भोगवटा* खूब आ गया,' तो उसे चार्ज होना कहा जाएगा न? तब दादाश्री समझाते हैं कि, 'ऐसा होने पर भी आपको चार्ज नहीं होता है। हाँ, जितने कर्मों का जागृतिपूर्वक *निकाल* नहीं किया, वे स्टॉक में रहेंगे, लेकिन यह तय है कि नया कर्म चार्ज नहीं होता है।' सब करने के बावजूद भी अकर्ता, सर्व प्रवृत्ति में निवृत्ति, वह इसी कारण से है! बाहर की सारी प्रवृत्तियाँ डिस्चार्ज हैं और अंदर नया चार्ज हो नहीं रहा इसलिए अंदर निवृत्ति है।

महात्माओं को जो नापसंद हो ऐसा कुछ हो जाए तो उसका बहुत खेद रहता है। ऐसा लगता रहता है कि ऐसा क्यों हो रहा है? तब दादाश्री उन्हें हिम्मत बंधाते हैं कि, 'नापसंद कर्मों को तो आवाज़ लगाकर कहो कि 'सब आओ मिलकर'। घबराने की बात तो तब है जब नया चार्ज हो। यह तो डिस्चार्ज हो जाता है, वहाँ पर क्या परेशान होना है? वहाँ पर तो उसके लिए खुशी मनानी है कि जल्दी से जल्दी आकर खत्म हो जाता है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बहुत लंबे समय तक भूल जाए तो क्या चार्ज नहीं होगा? दादाश्री कहते हैं, नहीं होगा। अगर कुछ देर के लिए आप अपना नाम भूल गए तो उससे नया नाम धारण नहीं हो जाता। वह तो वापस याद आ गया इसलिए उसे फिर से शुरू हुआ ही माना जाएगा!

डिस्चार्ज स्वभाव से ही हो जाता है, उसे करना नहीं पड़ता। जिस प्रकार कि पानी स्वभाव से ही अपने आप ठंडा हो जाता है, उसे करना नहीं पड़ता।

महात्माओं को प्रश्न है कि, 'यह सारा डिस्चार्ज है', ऐसा कहने में कहीं अहंकार तो नहीं आ जाता है न? दादाश्री उन्हें समझाते हैं कि 'हम सूक्ष्मता से महात्माओं का पूरा ध्यान (जाँच) रखते हैं। उनका चार्ज नहीं होता है। वे जो अहंकार करते हैं, वह भी डिस्चार्ज अहंकार है।'

महात्मा निश्चय से आज्ञा का पालन करते हैं इसीलिए वे आज्ञा *निकाली* नहीं मानी जाती, इसलिए उतना ही चार्ज होता है। क्योंकि अभी एक-दो जन्म और होंगे न! दादा की सेवा करना, पैर दबाना, वास्तव में यह सब तो डिस्चार्ज है लेकिन कहने के लिए वह पुण्य का फल है। डिस्चार्ज में जो कुछ भी सेवा की जाती है, उसका फल इसी जन्म में मिल जाता है और आज्ञा पालन करके जो चार्ज करते हो, उसका फल अगले जन्म में मिलेगा।

कोई अज्ञानी गालियाँ दे तो उसका फल उसे अगले जन्म में मिलेगा और यदि महात्मा किसी को गालियाँ दे तो उसका फल उसे इसी जन्म में मिल जाएगा। क्योंकि अज्ञानी का चार्ज होता है और महात्माओं का कम्प्लीट डिस्चार्ज है। डिस्चार्ज अर्थात् भुगतना और चार्ज अर्थात् नया बीज बोना!

महात्माओं का पुरुषार्थ कहाँ पर है ? महात्माओं को तो अब स्वरूप का पुरुषार्थ करना है। पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ, वास्तव में ज्ञाता-द्रष्टा रियल पुरुषार्थ है! 'करना है', ऐसा कहना पड़ता है लेकिन रियल पुरुषार्थ तो स्वाभाविक पुरुषार्थ है, वहाँ पर कर्तापन होता ही नहीं है!

महात्माओं को भावकर्म नहीं होते। भावकर्म अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभ। क्रोध-मान-माया-लोभ महात्माओं को होते ज़रूर हैं लेकिन उनमें उनका शुद्धात्मा अलग रहता है, एकाकार नहीं होता इसीलिए वह भावकर्म नहीं कहा जाता। क्रोध होता है लेकिन अंदर ऐसा लगता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए', तो वह तुरंत ही खत्म हो गया, ऐसा कहा जाएगा।

महात्माओं में डिस्चार्ज का चार्ज होता है, नया चार्ज नहीं होता। डिस्चार्ज का चार्ज, अर्थात् क्या? भूख लगे तो वह डिस्चार्ज है। फिर खाते हैं तो वह चार्ज है और फिर जब संडास जाते हैं तो वह डिस्चार्ज है। इस तरह से यह डिस्चार्ज का डिस्चार्ज है। इस प्रकार से महात्मा जब दादा से शक्तियाँ माँगते हैं, नौ कलमें बोलते हैं तो वह सारा डिस्चार्ज का चार्ज माना जाएगा!

महात्माओं से डिस्चार्ज का दुरुपयोग किस प्रकार से हो जाता है ?

भूल हो जाने पर उसका दिल से पश्चाताप करके प्रतिक्रमण कर लिया जाए तो वह धुल जाएगी तो उसे दुरुपयोग नहीं कहा जाएगा। लेकिन पश्चाताप करने के बजाय 'यह तो डिस्चार्ज है, कोई हर्ज नहीं है', ऐसा हो जाए तो उसे दुरुपयोग हुआ कहा जाएगा। वहाँ पर वे ऐसा समझे तो पश्चाताप भी तुरंत खत्म हो जाएगा।

अक्रम मार्ग के महात्माओं के मन-वचन-काया से जो कुछ भी होता है, वह सारी ही *निर्जरा* है। नया चार्ज नहीं होता अत: इसे *संवरपूर्वक निर्जरा* कहा जाता है और अज्ञान दशा में बंधपूर्वक *निर्जरा* कहलाता है।

कई बार महात्माओं को प्रश्न होता है कि जब बहुत बड़ी बीमारी आए तो इलाज करवाना चाहिए या नहीं? दादाश्री कहते हैं, यदि दवाई मिल जाए तो भी डिस्चार्ज है और अगर नहीं मिले तो वह भी डिस्चार्ज है। सिर्फ इतना ही है कि हाय! हाय! नहीं करना चाहिए।

अक्रम विज्ञान ने तो तमाम मान्यताओं पर बुलडोज़र घुमाकर उन्हें साफ कर दिया है! नहीं तो खुरपी से कब अंत आता?!

[4.3] कॉज़ - इफेक्ट

शुद्धात्मा पद की प्राप्ति के बाद में नए कॉज़ उत्पन्न नहीं होते। पाँच इन्द्रियों से, मन से जो-जो अनुभव होता है, वह सारा सिर्फ इफेक्ट ही है। कॉज़ेज़ में क्या आता है? क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, वे सभी कॉज़ेज़ हैं! लेकिन यदि उनका हार्टिली प्रतिक्रमण किया जाए तो महात्माओं के लिए वे इफेक्ट बन जाते हैं, कॉज़ नहीं डलते।

कॉज़ का पता किस तरह से चलता है? अंदर पश्चाताप होने लगे, प्रतिक्रमण होने लगे तो उससे कॉज़ पूरा ही बदल जाता है।

शुद्धात्मा होने के बाद में शुद्धात्मा के लिए कॉज़ भी नहीं रहे और इफेक्ट भी नहीं रहा। जो कुछ भी रहा है वह सारा चंदूभाई का है, उसे देखते रहना है। अंत में तो फिर यह सारा 'व्यवस्थित' ही है न!

[5] 'नहीं है मेरा'

सम्यक् दर्शन क्या कहता है? जिस दिन से जाना कि 'मैं चंदूलाल

नहीं हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तभी से जो-जो कचरा निकलता है, वह 'नहीं है मेरा'!

चाहे कैसी भी फाइलें हों लेकिन 'नहीं है मेरा' कहते ही तुरंत छूट जाएँगी। 'नहीं है मेरा' कहने पर राग-द्वेष नहीं होते और 'मेरा' कहते ही राग-द्वेष हो जाते हैं।

डिस्चार्ज में राग-द्वेष होते हैं, कषाय होते हैं लेकिन वहाँ पर उसे 'नहीं है मेरा' कहते ही उनका असर नहीं होगा। लेकिन उसे ऐसा कहना पड़ता है कि, 'ऐ! कहाँ से घुस आया? यहाँ तेरा क्या काम है?' जहाँ कोई भी उलझन आए कि तुरंत 'नहीं है मेरा' कह देना। सबकुछ बिखर जाएगा। 'मेरा नहीं है' कहते ही खुद स्वरूप में स्थिर हो जाएगा।

कोई भी संयोग आए तो उसे 'नहीं है मेरा' कहते ही वह छूट जाएगा! मन, भटकता हुआ चित्त, ये सभी संयोग रूपी ही हैं! तन्मयाकार होने के बाद अगले मिनट ही बोल दोगे कि 'मेरा नहीं है' तब भी अलग हो जाएगा! बाद में बोलते हो तो जागृति थोड़ी कम है लेकिन फिर भी हर्ज नहीं है।

परेशानियाँ आएँ, कर्म आएँ तो 'नहीं है मेरा' कह देना। ताकि वह कोई असर न डाले। आत्मा और कर्म, दोनों अलग ही हैं।

अंदर वार्तालाप कौन करता है? प्रज्ञा। प्रज्ञा अंदर से चंदूलाल से कहती रहती है कि, 'आप अलग और हम अलग। आपका और हमारा कोई लेना-देना नहीं है।'

मन की अवस्थाओं में 'खुद' तन्मयाकार हो जाता है, इसीलिए संसार खड़ा है। अतः मन के पर्यायों को तोड़ते रहना पड़ेगा। उन्हें किस तरह से तोड़ा जा सकता है? उन्हें तो, 'नहीं हैं मेरे, नहीं हैं मेरे' कहते ही वे छूट जाएँगे। अनादि के अभ्यास के कारण छूट नहीं सकते, क्योंकि अहंकार को उसमें मिठास बरतती है, इसीलिए 'नहीं है मेरा' कहते ही छूट जाता है।

जब डिप्रेशन आए तब 'नहीं है मेरा' कहते ही आत्मा का अनुभव

हो जाता है। बाहर डिप्रेशन और अंदर आनंद। 'मेरा स्वभाव नहीं है' कहते ही आत्मा में स्थिर हो जाते हैं। अच्छा या खराब, संयोग मात्र *पुद्गल* का है। एक भी संयोग आत्मा का नहीं है। संयोग सिर्फ बाह्य भाव ही हैं। हमें जो-जो संयोग मिलते हैं, वे अपनी पिछली गुनहगारी का परिणाम है।

'मेरा नहीं है' शब्द का साइन्टिफिक इफेक्ट है। उसके बाद वहाँ पर ज्ञाता-द्रष्टा रह पाओ या नहीं लेकिन 'नहीं है मेरा' बोलते ही अलग हो जाता है!

जो भी हमें दु:ख देते हैं, वे अपने कैसे हो सकते हैं? जो हमें दु:ख देते हैं, वे सौतेले हैं, अपने सगे नहीं हैं। सगा मान बैठे हैं इसीलिए दु:ख है। पराया मानेंगे तो दु:ख नहीं है।

कोई भी व्यसन 'मेरा-मेरा' कहने से लगता है और लाख-लाख बार 'नहीं है मेरा-नहीं है मेरा' बोलने से छूट जाता है। 'सिगरेट पीने में हर्ज नहीं है' कहते ही सिगरेट को आयु का एक्सटेन्शन मिल जाता है, उसे ज़बरदस्त रक्षण मिल जाता है!

शरीर में वीकनेस हो तब भी 'मुझे कुछ नहीं हो रहा है' कहा जाए तो कोई असर नहीं होगा। 'नहीं है मेरा' कहते ही असर मुक्त हो जाते हैं।

अपना घर बिक गया। पूरा पैसा आने के बाद में फिर यदि समाचार मिले कि वह जल गया है तो क्या आपको कोई दु:ख होगा? क्यों नहीं होगा? इसलिए क्योंकि वहाँ पर ऐसा हो गया है कि, 'नहीं है मेरा'।

घर जल रहा हो या किसी व्यक्ति के साथ राग-द्वेष हो रहे हों तो कोने में बैठकर पाँच हज़ार बार बोलो कि 'नहीं है मेरा' तो अलग हो जाएगा।

दादाश्री कहते हैं कि हम पूर्ण रूप से ममता रहित हैं। साठ हज़ार लोगों के साथ हमें मेरापन है, ममता है लेकिन वह ड्रामेटिक है। मैं पूरे दिन ड्रामा ही करता हूँ। ड्रामा यानी क्या? मैं देखने वाला रहता हूँ। ड्रामा करने वाला यह भूल जाता है कि मैं कौन हूँ? ड्रामा में ममत्व रहित मालिकी होती है। उसी प्रकार हमें भी अपना व्यवहार ड्रामेटिक कर देना है। मालिकी भाव किसका? अहंकार का।

चाहे कैसे भी कर्म, *शाता-अशाता* वेदनीय आएँ तब 'नहीं है मेरा' कहने से उनका असर नहीं होगा। उन्हें हटा नहीं सकते लेकिन *भोगवटे* में से मुक्त रहा जा सकता है। 'मेरा स्वरूप अव्याबाध स्वरूप है' ऐसा हाज़िर रहना चाहिए।

[6] क्रोध - गुस्सा

अक्रम विज्ञान द्वारा क्रोध को नई ही ज्ञानदृष्टि से समझ लेना है। ज्ञान मिलने के बाद में भी जो क्रोध होता है, वह निर्जीव है। भरा हुआ माल खाली हो रहा है। वह खाली हो जाएगा तो मुक्त हो सकेंगे। जब वह निकले तब उसे अलग देखते रहना है और प्रज्ञा अंदर दिखाती रहेगी कि यह गलत है, प्रतिक्रमण करो! ऐसा करने से संपूर्ण मुक्ति मिल जाती है।

क्रोध-मान-माया-लोभ *पुद्गल* के गुण हैं, आत्मा के नहीं हैं। इसलिए उन्हें अपने सिर पर नहीं लेना चाहिए। जिसके हैं उसके सिर पर डाल देना। जो भी कम-ज़्यादा होते हैं, उन्हें आत्मगुण कैसे कहेंगे?

क्रोध और गुस्से में फर्क है। क्रोध नया चार्ज करता है और गुस्सा डिस्चार्ज है। क्रोध में तंत रहता है, हिंसक भाव रहता है। क्योंकि आत्मा उस समय उसमें तन्मयाकार रहता है।

कषाय बंद होने पर प्रकट होता है शील! शीलवान का बहुत ताप होता है! कषाय निर्बलता है।

पहले मिथ्यात्व का तंत था, अब सम्यक्त्व का तंत आ गया है। इसीलिए अक्रम में निरंतर आत्मा की प्रतीति रहती है!

'चंदूभाई' चाहे कितना भी क्रोध करते हों लेकिन यदि ज़रा सा भी ऐसा नहीं होता कि 'यह मुझे हो रहा है', तो आप जोखिमदार नहीं हो। आपसे किसी को दु:ख हो जाए तब बहुत ही सतर्क रहना है, अलग रखना है और चंदूभाई से जिसे दु:ख हुआ हो उसका हार्टिली प्रतिक्रमण करवाना। गुस्सा *पुद्गल* विभाग है और जो उसे जानता है, वह आत्म विभाग है।

अत: ज्ञान के बाद में अक्रम मार्ग में सभी का क्रोध चला जाता

है। क्योंकि आत्मा क्रोध में एकाकार नहीं होता। यहाँ पर आत्मा शब्द का उपयोग प्रतिष्ठित आत्मा के लिए है। मूल आत्मा तो कभी भी कहीं भी तन्मयाकार होता ही नहीं है। वह दरअसल मूल आत्मा, वही आप खुद हो। बाकी का सारा ही भाग अनात्मा का है!

प्रतिष्ठित आत्मा भी तन्मयाकार नहीं हो सिर्फ उतनी ही जागृति रखनी है!

[7] संयम

महात्मा किसे कहते हैं? जिसे आंतरिक संयम रहे, उसे। बाहर चंदू क्रोध करता है और यदि अंदर से ऐसा रहे कि 'यह नहीं होना चाहिए' तो वह आंतरिक संयम है।

संयमी तो उसे कहते हैं कि यदि सामने वाला असंयमी हो जाए तो उसे भी किंचित्मात्र दुःख नहीं होने दे! जो खुद जल रहा है, वही सामने वाले को जलाता है। जो खुद ठंडक में है, वह किसी को नहीं जलाता।

संयमी अपमान करने वाले को भी निर्दोष देखता है।

दादाश्री के ज्ञान प्राप्त कितने ही महात्माओं के जीवन की घटनाएँ सुनने को और देखने को मिलती हैं कि कोई गाड़ी वाला या रिक्शा वाला अगर महात्मा को गिरा दे और उसे फ्रेक्चर हो जाए तब भी महात्मा नुकसान करने वाले से कहते हैं कि, 'भाई, तू भाग यहाँ से। नहीं तो लोग तुझे पीट देंगे। मेरा तो हो जाएगा।' ऐसा करके उसे भगा देते हैं! इसे संयमी कहते हैं!

जो प्रकृति से अलग हो गया, वह संयमी है। महात्माओं से कुछ खराब हो जाता है लेकिन उसके लिए अंदर उनका अभिप्राय अलग रहता है इसलिए उसे संयम कहा गया है। जिसका देहाध्यास चला गया, वह संयमी। आर्तध्यान-रौद्रध्यान रुक जाएँ तो उसे संयम कहते हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ पर संयम को संयम कहा गया है। ज्ञान मिलने के बाद में पाँच आज्ञाओं का पालन करने से संयम रहता है। महात्माओं को निरंतर संयम रहेगा। उन्हें आंतरिक संयम रहता है, जो

मोक्ष में ले जाएगा। साधु-आचार्यों में बाह्य संयम होता है, जो भौतिक सुख दिलवाता है। जब तक अहंकार है तब तक वास्तविक आंतरिक संयम नहीं आ सकता। जगत् के लोग संयम का ऐसा अर्थ मानते हैं कि वृत्तियों और इन्द्रियों को कंट्रोल करना। जबकि दादाश्री ने उसे हठ योग कहा है। वे तो अहंकार से करने जाते हैं।

अहंकार कब जाता है? जब आत्मज्ञान होता है, तब। उसके बाद में ही यथार्थ संयम आता है, जो मोक्ष में ले जाता है। पाँच आज्ञा में रहने का पुरुषार्थ किया जाए तो उसे भी संयम कहा जाता है।

भरा हुआ माल निकले तो उसे वीतरागता से देखना चाहिए।

एक बार अपमान के प्रसंग में संयम रहा तो उसे यथार्थ प्योर संयम कहा गया है। ज्ञानी उससे खूब राज़ी होते हैं और कितनी ही सीढ़ियाँ चढ़ा देते हैं उसे! और फिर उसे खुद को भी उसका अनुभव होता है!

[8] मोक्ष का तप

तमाम शास्त्रों ने तप करने को कहा है। उपवास करो, पानी में खड़े रहकर जप करो, देह का दमन करो वगैरह वगैरह। इसके सामने दादाश्री ने अक्रम मार्ग में तप का एक नया ही अभिगम दिया है। उन्होंने कहा है कि, 'प्राप्त तप को भुगतो'। कलियुग में खुद तप पैदा करके तप करने की ज़रूरत नहीं है। घर बैठे ही ढेरों तप आएँगे। घर में, ऑफिस में, सभी जगह कलह, पूरे दिन तप ही रहता है। कोई अपमान कर गया या जेब काट गया तब हृदय लाल-लाल हो जाता है, भयंकर अकुलाहट हो जाती है, यदि वह उसका शांत भाव से *निकाल* कर दे, मन से भी किसी पर अटैक किए बगैर, तो वह यथार्थ तप कहा जाएगा। और शायद मन से अटैक हो जाए तो उसका हृदयपूर्वक पछतावा करके प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए! आर्तध्यान और रौद्रध्यान होने की स्थिति में भी यदि खुद समता भाव में रहे और वैसा नहीं होने दे तो वह वास्तविक तप है। इसे अंतर तप कहा गया है। तप दो प्रकार के होते हैं, एक बाह्य तप और दूसरा अंतर तप। जहाँ देखो वहाँ पर बाह्य तप करना सिखाते हैं और वही करते हैं। अंतर तप का महत्व दादाश्री ने ही बताया है। अंतर तप से मोक्ष मिलता है।

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप – ये मोक्ष के चार स्तंभ हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह सम्यक् दर्शन है। उसका अनुभव हो जाए तो वह सम्यक् ज्ञान कहलाता है। और जिस हद तक के अनुभव होंगे उसी हद तक की वीतरागता रहेगी और उतना ही सम्यक् चारित्र माना जाएगा। तप चौथा स्तंभ है। हृदय लाल-लाल तप जाए तब यदि अलग रहकर उसे 'देखता' रहे तो उसे मोक्ष दिलाने वाला सम्यक् तप कहा गया है। पूरा अंत:करण विद्रोह करने लगे तब भी अलग रहकर उसे 'देखते' रहना है, 'जानते' रहना, वही अंतर तप, अदीठ तप है। मोक्ष का तप ऐसा नहीं होता कि दिखाई दे। इस तप से कषाय की *निर्जरा* होती है।

पूज्य दादाश्री अलग-अलग समय पर खुद के तप के बारे में अलग-अलग बातें बताते हैं कि, 'कभी हमें निरंतर तप रहता है तो कभी हमें तप जैसा रहता ही नहीं है।' वहाँ पर ऐसा हो सकता है कि पढ़ने वालों को विरोधाभास लगे। लेकिन अलग-अलग जगह पर अलग-अलग निमित्तों के अधीन निकली हुई वाणी है। इसलिए समझकर इसका अर्थ निकालना है। 'हमें तप होता ही नहीं' वहाँ पर कहने का अंतर आशय यह है कि चाहे कुछ भी आए लेकिन अब उन्हें मानसिक दु:ख रूपी तप कभी भी नहीं होता। वह खत्म हो चुका है। और जब ऐसा कहते हैं कि 'हमें निरंतर तप रहता है', तो वहाँ पर कहने का आशय यह है कि ज्ञान और अज्ञान के संधि स्थान को कभी भी एक नहीं होने देते, तन्मयाकार नहीं होते, उस संधि स्थान पर सदा जाग्रत ही रहते हैं। वह अंतिम सूक्ष्मतम तप है, जो केवलज्ञान के नज़दीक पहुँचे ज्ञानियों को ही निरंतर रहता है, दादाजी का सूक्ष्मतम तप वैसा था!

तप शूरवीरता से करना है। मोक्ष का मार्ग है शूरवीरों का। मोक्ष का अदीठ तप अर्थात् कि अंदर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार उछल-कूद मचाएँ तो उन्हें समता भाव से 'देखता' ही रहे और तन्मयाकार नहीं हो। तब ज़बरदस्त आत्म-ऐश्वर्य प्रकट होगा। ऐश्वर्य तो हर एक आत्मा में है ही लेकिन जब वह प्रकट होता है तभी पूर्णाहुति होती है, मोक्ष होता है!

दादाश्री कहते हैं कि हम पर शारीरिक दु:ख के समय, स्वाद के समय, अपमान या असुविधा के समय ज़रा सा भी असर नहीं होता।

भयंकर वेदना हो रही हो तब भी 'हम' उसे 'जानते हैं'। फिर भी तीर्थंकरों का संपूर्ण होता है और हमारा चार डिग्री कम है!

अंतर तप प्योरिटी से करना चाहिए, इससे अधिक प्योर हो सकते हैं। इसी से सारा कचरा जल जाता है। अब इसमें यदि आप अपने आपका रक्षण करो, बचाव करो, विरोध करने लगो, अरे, बचने का भाव भी हो जाए तब ऐसा कहा जाएगा कि इस तप का पूरा-पूरा लाभ नहीं लिया। ऐसा कहा जाएगा कि रिश्वत ली। सामने वाले के लिए मन ज़रा सा भी बिगड़े, 'मेरे साथ ऐसा क्यों किया?' ऐसा हो जाए तो उसे रिश्वत लेना कहा जाएगा। तप में उतनी कमी रह गई। फिर से तप करके उसका *निकाल* करना पड़ेगा। शुद्ध होना पड़ेगा।

तप अर्थात् दु:ख व जलन। तप के समय अंदर दु:ख होता है, तपता है। तब मन को खुराक चाहिए। ऑफ कोर्स मीठी खुराक ही चाहिए। अंदर चिंता हो रही हो तब उसे आत्म भाव से 'देखने' के बजाय सिनेमा देख आए, टी.वी. देखे, मौज करे, तो उसने सौ के नोट को दो रुपये का कर दिया और यदि तप करेगा तो सौ के हज़ार हो जाएँगे! ऐसे अकुलाहट के समय में सभी के शुद्धात्मा देखने निकल पड़ोगे, ऋणानुबंधियों के प्रतिक्रमण करोगे तो अंदर बहुत बड़ी कमाई हो जाएगी।

कई बार मुश्किलें आती हैं, शरीर बीमार हो जाता है, बुखार आता है तो हम किसी से बात करके आश्वासन लेते हैं, उससे तप कच्चा रह जाता है। दादाश्री कहते हैं कि 'हम ऐसे तप को बिल्कुल भी छोड़ते नहीं है। हमें तो तप जैसा लगता ही नहीं है। बल्कि इनाम जैसा लगता है। ऐसा तप तो हम ढूँढते हैं।' और वास्तव में दादाश्री ने ज़िंदगी में कभी भी किसी को खुद की शारीरिक तकलीफ का पता नहीं लगने दिया। खुले तौर पर दिखाई दे फिर भी, 'मुझे कुछ भी नहीं हुआ', ऐसा करके बात को उड़ा देते थे। सभी को सिखाते थे कि आप भी भावना करो तो आपको भी यह प्राप्त होगा। 'मुझसे तप नहीं होता' बोले कि बिगड़ा। बहुत हुआ तो विवेक पूर्वक, ज्ञान पूर्वक बोलना कि चंदूभाई को बहुत कहता हूँ, फिर भी उससे तप नहीं होता!

तप 'व्यवस्थित' में आता है? नहीं। 'व्यवस्थित' डिस्चार्ज भाग

है। तप करना, प्रतिक्रमण करना डिस्चार्ज है, ऐसा करके प्रतिक्रमण बंद नहीं कर सकते। उसे मिसयूज (दुरुपयोग) करना कहा जाएगा। यथार्थ तप हुआ किसे कहा जाएगा? बाहर दुःख हो और उसमें ज्ञाता-द्रष्टा रहे और एट ए टाइम अंदर उसे ज़बरदस्त आनंद बरते।

[9.1] भोगना - वेदन करना - जानना

ज्ञानी शारीरिक दुःख का *निकाल* कर देते हैं। बाकी लोग दवाईयों से दुःख मिटा देते हैं। ज्ञाता-द्रष्टा रहने से वेदना छू नहीं पाती। 'लाखों वेदनाएँ आओ' कहो। वेदना भाग जाएगी! और यदि ऐसा हो कि 'दुःख आएगा तो क्या होगा?' तो फिर वैसा। दुखता किसे हैं? 'सिर को, पड़ोसी को, मुझे नहीं। मैं तो शुद्धात्मा हूँ।' निरंतर ऐसा ज्ञान रहे तो दुःख छूएगा भी नहीं। और 'मुझे दुखा' कहने से दुःख डबल हो जाएगा। अनेक गुना भी हो सकता है!

वेदकता चंदूभाई पर लागू होती है और वेदकता अर्थात् जानपना, आत्मा पर भी लागू होता है।

महात्माओं को प्रश्न होता है कि ऑपरेशन करवाने से अगले जन्म में वह कर्म फिर वापस खपाना होगा? दादाश्री कहते हैं, ''नहीं। यह पूरा ही हो गया, ऐसा माना जाएगा। जो हुआ वह 'व्यवस्थित।'' ऑपरेशन भी, जब कर्म भुगतना हो तब उसका निमित्त बनता है। सभी संयोग हैं।

देह पड़ोसी है। उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। देह का भी ध्यान रखना है।

महात्माओं का प्रश्न है कि बीमारी में जुदापन की जागृति में कैसे रह सकते हैं? दादाश्री सटीक जवाब देते हैं कि 'खाना खाते समय जुदा रहते हो? जिसका स्वाद चखते हो वह फल तो देगा ही न! स्वाद में सुख चखा तो बीमारी में दुःख भोगना ही पड़ेगा न! आहारी को, आहार को और निराहारी को अलग ही रखना है!' तो बीमारी में भी जुदापन रहेगा।

वेदक का *निकाल* किस तरह से होता है? वेदकर! ज्ञानी ज्ञान से *निकाल* करते हैं। महात्मा वेदन करके करते हैं लेकिन ज्ञान के उपाय करते रहने हैं कि 'शरीर मेरा नहीं है, शरीर ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ',

वगैरह वगैरह। तीर्थंकरों और ज्ञानियों का तरीका सीखने जैसा है। वे तो दु:ख को ही सुख मानते हैं! फिर दु:ख रहा ही कहाँ?!

वेदना अनुभव करने से लेकर अंत में जानने तक रहती है। ज्ञानी दु:ख का वेदन नहीं करते, मात्र जानते ही हैं! इसलिए अंदर का आनंद जाता ही नहीं है। महात्मा कभी वेदन करते हैं और कभी जानते हैं, इस तरह To & Fro होता रहता है। जबकि अज्ञानी लगातार वेदना का अनुभव करते हैं, भोगते हैं! महात्मा धीरे-धीरे सिर्फ जानपने में स्थिर हो जाएँगे। तब तक चंदूलाल को अलग रखना है, धीरज बंधाना है, दर्पण के सामने थपथपाकर कहना, 'हम हैं न, तुम क्यों फिकर करते हो! ठीक हो जाएगा सब!'

चाहे कैसी भी भयंकर वेदना आए लेकिन यदि उससे अलग रहे तो वह तप है। ऐसे तप में आ जाए तब यथार्थ जानपना कहा जाएगा। वेदक अलग और ज्ञायक अलग। ज्ञायक स्वयं आत्मा ही है! वेदता है अहंकार और जानती है प्रज्ञा।

जो दु:ख को वेदता है वह भी खुद नहीं है। खुद तो मात्र जानने वाला ही है। वेदक को भी जानने वाला और वेदना का भी जानकार, दोनों का ज्ञायक। लोग वेदना के ज्ञायक बनते हैं लेकिन वेदक के नहीं बनते। 'अब सिर दुखना बंद हुआ', ऐसा कह सकते हैं क्योंकि वेदना के जानकार बनते हैं। लेकिन वेदने वाले के जानकार नहीं बनते।

खुद को दु:ख हो तो उसका प्रतिक्रमण किस तरह करना चाहिए? उसका प्रतिक्रमण नहीं करना होता। खुद से दूसरों को दु:ख हो तभी उसका प्रतिक्रमण किया जाता है। बाकी तो खुद के दु:ख को तो मात्र 'देखते' रहने से ही छूट जाएँगे!

महात्मा को जब दाढ़ दुखती है, तब जुदा रखते हैं लेकिन एकाध ज़ोरदार टीस उठे तब तन्मयाकार हो जाते हैं। फिर से वापस तुरंत ही जाग्रत हो जाते हैं और जुदा हो जाते हैं। झोंका खाया तो खाया लेकिन वापस जाग तो गए न! यह भी एक अद्‌भुत पद प्राप्त हुआ है महात्माओं को इस काल में!

[9.2] पुद्गल सुख - आत्मसुख

यह *भोगवटा* क्यों आता है? अज्ञान दशा में *पुद्गल* में से जितना आनंद लिया, सुख भोगा, उतना रीपेमेन्ट आए बगैर रहता ही नहीं है। शरीर में से, मन से, वाणी से, वस्तुओं में से और व्यक्तियों में से कितना सुख उठाया! उसमें भी मन, वाणी और बाहर की वस्तुएँ और व्यक्ति दुःख देते हैं, अनेक बार ऐसा अनुभव होता है। उसमें से बोध लेकर छूट भी जाता है लेकिन शरीर दुःख है, वह प्रतीति कितने समय रहती है? ज्ञानियों को ऐसा रहता है कि देह हमेशा ही दुःखदायी है। इसलिए दादाश्री सर्दी में भी ओढ़ने का हटा देते थे, खाने-पीने में से सुख नहीं लेते थे, ऐसे उपाय करते थे। क्योंकि उनके *लक्ष* में ही रहता था कि यह सारा बाह्य सुख उधार का है। रीपे करना (चुकाना) ही पड़ेगा।

मन से भोगा हुआ सुख अर्थात् खाते-पीते हैं और अंदर मज़ा आता है, टेस्ट आता है वह। वाणी का सुख अर्थात् पति डाँटे और फिर कुछ ही देर बाद मीठा-मीठा बोलता हुआ आए तो वह कितना अच्छा लगता है, वह वाणी का सुख।

पुद्गल में से रस लेता है, इससे केवलज्ञान रुक जाता है। महात्माओं को इसका पता ही नहीं चलता। नींद में से, भोजन में से, मान में से, सुविधाओं में से, विषय में से अभी भी कितना अधिक रस लेता है? 'यह गलत है', प्रथम ऐसी प्रतीति बैठने के बाद उसमें रस लेना कम होते-होते खत्म हो जाएगा।

ज्ञान मिलने पर महात्माओं को संसार के तमाम दुःखों का अभाव महसूस होने लगता है। वह प्रथम स्टेज का मोक्ष है। उसके बाद शरीर भी नहीं रहता। केवल आत्मा का ही सुख बरतने लगता है, उसे स्वाभाविक सुख का सद्भाव ही होता है, वह दूसरे स्टेज का, सिद्ध क्षेत्र का मोक्ष कहा जाता है।

[10] समझ, ध्येय स्वरूप की

वास्तव में हेतु शब्द का उपयोग संसार के लिए होता है और ध्येय शब्द आत्मा के लिए है। आत्मा ही ध्येय है।

ध्येय एक ही होना चाहिए कि मुझे शुद्ध ही होना है। उसके अलावा अन्य कोई ध्येय होना ही नहीं चाहिए। 'मुझे दादा जैसा बनना है, तीर्थंकर बनना है' उन सब से भी उच्च प्रकार का ध्येय यह है कि मुझे आत्म स्वरूप में ही रहना है, मोक्ष स्वरूप में ही रहना है। उसके लिए दादा की पाँच आज्ञा में रहने से पूर्णाहुति होगी। ज्ञान मिलने पर आत्मा का ध्येय प्राप्त हो जाता है और आत्मा ज्ञाता हो जाता है। इसलिए अब ध्येय पूर्वक चलना है। ध्याता ध्येय का ध्यान करे तो ध्येय स्वरूप हो सकता है।

भयंकर सर्दी-गर्मी के या अन्य परिषह आएँ तो उनमें से बचने के उपाय करने के बजाय आत्मा में ही घुस जाए तो बहुत उघाड़ हो जाएगा।

ध्येय और निश्चय में बहुत अंतर है। निश्चय छोटी चीज़ है, जबकि ध्येय अर्थात् आत्मा प्राप्त करके मोक्ष में ही जाना है, वह है।

[11] सत्संग का माहात्म्य

ज्ञानविधि के बाद अधिक से अधिक आत्मा में रहने के लिए सत्संग में आने की खूब ज़रूरत है। जिस प्रकार अगर व्यापार में ध्यान नहीं देंगे, तो? उसी प्रकार आत्मा के लिए सत्संग में जाना पड़ता है। कई लोग कहते हैं कि मैं घर पर सत्संग कर लेता हूँ, किताबें पढ़ लेता हूँ। तो फिर स्कूल जाने की किसी को ज़रूरत ही क्या है?

निश्चय स्ट्रोंग रखना कि सत्संग में जाना ही है, तो अनुकूलता हो ही जाएगी। और दादाश्री की तो गारन्टी थी कि यहाँ सत्संग में आओगे तो व्यापार में नुकसान नहीं होगा। यहाँ आत्मा का सत्संग अंतिम स्टेशन वाला है। इससे आगे कुछ भी नहीं रहता। सिर्फ यहाँ पर बैठने से ही स्थूल व सूक्ष्म बदलाव हो जाते हैं। सत्संग में मार पड़े, गालियाँ मिले फिर भी सत्संग नहीं छोड़ना चाहिए। यह सत्संग आत्मा का है, जिसे करने पर वह आत्मा के अकाउन्ट में जाता है। यह सत्संग तो ऐसा है कि देवी-देवता भी सुनने आते हैं!

भयंकर कर्मों का उदय आए तब सत्संग कर लेना, कर्म शांत हो जाएँगे।

महात्माओं को पूर्ण पद की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए? दादा के पास जीवन बिताना चाहिए, इतना ही। दादा की विसिनिटी में (दृष्टि में आ जाए उस तरह से) रात-दिन उनके पास ही रहना चाहिए।

आत्मा की विशेष जागृति के लिए क्या उपाय है? सत्संग में पड़े रहना, वह!

कुसंग का कभी भी भरोसा नहीं करना चाहिए। साइनाइड को कभी परखा जाता है क्या?

ओबेरॉय होटल में एक कप चाय पीने जाओ। फिर देखो, उसका असर! अरे, उसकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगो तभी से असर होने लगता है। एक कली लहसुन को घी में गरम किया जाए तो बाहर क्या असर होता है?

कुसंग में से सत्संग की ओर ले जाता है पुण्य! वहाँ पर आत्मा या प्रज्ञा नहीं हैं। मूल आत्मा तो किसी भी संग का संगी नहीं होता। स्वभाव से ही वह असंग है। लोग उसे असंग करने के लिए भाग-दौड़ करते हैं, सब छोड़कर चले जाते हैं। व्यवहार में सत्संग ज़रूरी है। सत्संग में पड़े हुए व्यक्ति का निबेड़ा है, कुसंग में पड़े हुए का निबेड़ा कहाँ से आएगा?

कई महात्माओं को प्रश्न होता है कि हमारे आगे के जीवन (बुढ़ापे) में ज्ञान की प्रगति के लिए क्या करना चाहिए? दादाश्री कहते हैं कि पूरे समय आज्ञा में कैसे रह सकते हैं? घर में, बाहर, धर्म स्थानकों में, कदम-कदम पर इस काल में कुसंग घुस जाता है। इसलिए जिन्होंने अपनी ज़िंदगी एकावतारी पद की प्राप्ति की तैयारी में होम कर दी है, उन्हें तो जीवन का अंतिम पड़ाव महात्माओं के वास में ही बिताना चाहिए। महात्माओं के टोले में कुसंग छू भी नहीं सकता न! सभी मोक्ष के ही ध्येयी होते हैं, एक ध्येयी होते हैं!

[12] निर्भयता, ज्ञान दशा में

भय की गांठ को किस प्रकार से छेदें? ज्ञान मिलने के बाद में कई भय अपने आप ही कम हो जाते हैं और संपूर्ण निर्भय होने के लिए चार-छः महीने तक ज्ञानी के साथ ही साथ में रहना पड़ेगा। 'व्यवस्थित' जैसे-जैसे समझ में आता जाएगा वैसे-वैसे भय खत्म होते जाएँगे और

‘व्यवस्थित’ जब संपूर्ण रूप से समझ में आ जाएगा तब केवलज्ञान प्रकट हो जाएगा!

अज्ञानी को हर कहीं भय, भय और भय ही लगता है। जबकि ज्ञानी सदा निर्भय ही होते हैं! ‘आत्मा वीतराग है, निर्भय है’ – भगवद् गीता।

पूज्य दादाश्री अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करते हुए बताते हैं कि, ‘एक बार मुझे भी फौजदार ने जेल में डाल देने की धमकी दी थी। मैंने दिल से कहा, डाल दो कोठरी में। घर पर तो मुझे दरवाज़ा बंद करना पड़ता है, यहाँ पर तो रोज़ सिपाही ही दरवाज़ा बंद कर देंगे।’ तो फौजदार चौंक गया।

जहाँ स्थिरता हो वहाँ भय नहीं लगता। कोई भी उसे हिला नहीं सकता।

ज्ञान के बाद में भय नहीं रहता, घबराहट रहती है। घबराहट शरीर का गुण है। अचानक से तेज़ आवाज़ हो जाए तो ज्ञानी का भी शरीर हिल उठता है, लेकिन अंदर आत्मा में ही होते हैं। इसे संगी चेतना कहा गया है। संग से खुद को चेतन भाव हुआ है।

महात्माओं से दादाश्री कहते हैं कि दु:ख न हटे तो आप हट जाओ। आत्मा प्राप्त हुआ है इसलिए आत्मा की गुफा में घुस जाओ!

बम गिरे तब भी आत्मा को कुछ भी नहीं होगा, होगा तो वह इस *पुद्गल* को ही होगा न! बम गिरे, तब ऐसा ज्ञान हाज़िर रहे तो कहा जाएगा कि पूर्णाहुति हुई।

[13] निश्चय – व्यवहार

अक्रम मार्ग में महात्माओं का व्यवहार ‘उचित’ व्यवहार से लेकर अंत में ‘शुद्ध व्यवहार’ तक का होता है।

उचित व्यवहार का मतलब क्या है? किसी की भी किंचित्मात्र कमी निकालने जैसा नहीं है।

दादाश्री कहते हैं कि महात्माओं के व्यवहार में उचित व्यवहार से लेकर शुद्ध व्यवहार तक के भेद होते हैं। ज्ञान मिलने के बाद में व्यवहार

शुद्ध व्यवहार ही होता है लेकिन जुदापन वाला रहता है। उचित शुद्ध व्यवहार से लेकर शुद्ध शुद्ध व्यवहार तक का होता है। अतः शुरुआत उचित शुद्ध से होती है और एन्ड शुद्ध शुद्ध व्यवहार से होता है।

शुद्ध व्यवहार का मतलब क्या है? कोई अपमान करे, नुकसान करे फिर भी हम उसे शुद्धात्मा भाव से ही देखें, निर्दोष देखें, दोषित को भी निर्दोष देखें, वह शुद्ध व्यवहार। महात्माओं का ऐसा शुद्ध व्यवहार। जो बाहर देखा जा सके उसे यथार्थ शुद्ध व्यवहार कहा गया है और बाहर नहीं देखा जा सके, उसे उचित व्यवहार कहा गया है।

दादाश्री कहते हैं कि हमारा शुद्ध व्यवहार 356 डिग्री का होता है और तीर्थंकरों का शुद्ध व्यवहार 360 डिग्री का होता है और वह सहज रूप से होता है।

परफेक्ट शुद्ध व्यवहार कैसा होता है? मन से, वाणी से या वर्तन से किसी को किंचित्मात्र भी नुकसान न हो।

दादाश्री की पाँच आज्ञा का पालन किया जाए तो उसे बिल्कुल शुद्ध व्यवहार कहा जाएगा। जितना पालन करे उतना शुद्ध व्यवहार में जाएगा और जितना पालन नहीं हो सके उतना भाग उचित व्यवहार में जाएगा। और उसका प्रतिक्रमण करके अंत में वापस महात्मा शुद्ध तो कर ही देते हैं।

अक्रम मार्ग में शुद्ध व्यवहार है, परमार्थ या सद्व्यवहार नहीं। शुद्ध व्यवहार में कमी रह जाए तब उसे सद्व्यवहार मानना हो तो माना जा सकता है।

कोई गालियाँ दे, भयंकर अपमान करे तो महात्मा अंदर तय करता है कि मुझे इसका समभाव से *निकाल* कर देना है, वह उसका व्यवहार है। 'मुझे मारामारी नहीं करनी है', उसने ऐसी जो जागृति रखी, वही उसका व्यवहार है। वह जो बोलता है, वह व्यवहार नहीं माना जाता। अंदर का जो व्यवहार है वह आदर्श है, शुद्ध है और जो गालियाँ दीं, वह डिस्चार्ज है, बाहर के भाग का है। इस बात का आशय बाहर के लोगों को कैसे समझ में आ सकता है?

बाहर गुस्सा हो रहा हो और साथ ही साथ अंदर उसे ऐसा रहता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए' वह शुद्ध व्यवहार है। इस प्रकार से बीच में सावधान करने वाली प्रज्ञा है और आत्मा सभी का जानकार है! जो गालियाँ दे उसके लिए भी मन न बिगड़े, वह शुद्ध व्यवहार और वही प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है!

दादाश्री की पाँच आज्ञा का पालन करे तो फिर बाहर का सर्व व्यवहार शुद्ध व्यवहार ही है। ज्ञानी शुद्ध व्यवहार में रख देते हैं!

शुद्ध व्यवहार के लक्षण क्या-क्या हैं? क्रोध-मान-माया-लोभ का उपयोग नहीं होता।

गुस्सा आता है लेकिन क्रोध नहीं होता। क्रोध में तंत होता है और हिंसक भाव होता है। महात्माओं में वह नहीं होता।

शरीर को फाइल नं. 1 मानते हैं और सभी रिश्तेदारों को फाइल की तरह देखते हैं। अत: जुदा ही हो गए न!

खाते-पीते हैं फिर भी शुद्ध व्यवहार है, क्योंकि 'आहारी आहार करता है और मैं निराहारी मात्र उसे जानता हूँ' ऐसी जागृति सहित है।

शुद्ध व्यवहार में आत्मा मात्र जानता ही रहता है, अन्य कोई दखल ही नहीं करता और व्यवहार चलता रहता है।

जहाँ शुद्ध व्यवहार है वहाँ ममता नहीं होती। जहाँ ममता नहीं होती वहाँ कषाय भी नहीं होते।

पेड़, पशु, पक्षी, मनुष्य व जीवमात्र में शुद्धात्मा दिखाई दें, उसे शुद्ध व्यवहार कहा जाएगा।

आत्मज्ञान के बिना शुद्ध व्यवहार नहीं हो सकता। उसके बाद ही जीवमात्र में शुद्धात्मा दिखाई देते हैं। शुद्ध व्यवहार में कर्ताभाव है ही नहीं, अहंकार नहीं है। कषाय नहीं है, निरंतर आंतरिक संयम रहता है, बाह्य संयम हो या न भी हो।

सद्व्यवहार, सदाचार, शुभाशुभ व्यवहार, इनमें अहंकार है।

सद्व्यवहार किसे कहते हैं? जिसमें कषाय किसी को नुकसान

नहीं पहुँचाएँ, सिर्फ खुद को ही नुकसान पहुँचाएँ, उसे। कोई दु:ख दे तो जमा कर ले। शुद्ध व्यवहार कषाय रहित होता है। क्रमिक मार्ग में शास्त्रों के आधार पर खुद का व्यवहार रखना, वह सद्व्यवहार है। व्यवहार में मोक्ष में जाने के जो साधन होते हैं, वह सद्व्यवहार है और संसार के साधन हों, वह शुभ व्यवहार।

शुभ और शुद्ध व्यवहार में क्या अंतर है? आत्मज्ञानी का शुद्ध व्यवहार होता है और अज्ञानी का शुभ व्यवहार होता है। ज्ञानी अकर्ताभाव में होने के कारण उन्हें शुद्ध या शुभ व्यवहार करना नहीं पड़ता, स्वयं हो जाता है। और शुभ व्यवहार तो करना पड़ता है। उसमें अहंकार होने के कारण करना पड़ता है।

इस काल में अशुभ व्यवहार खूब चलता है। जैसे कि जेब कट जाए, मारामारी, गाली-गलौच वगैरह। फिर अशुद्ध व्यवहार किसी-किसी का ही होता है। जो नर्क में ले जाए वैसा व्यवहार अशुद्ध व्यवहार कहलाता है।

जहाँ शुद्ध व्यवहार है वहीं पर शुद्ध निश्चय है। व्यवहार शुद्धि किसे कहेंगे? कषाय रहित व्यवहार ही व्यवहार शुद्धि है।

किसी इंसान को मारकर कोई उसका माँस खाए, वह अशुद्ध व्यवहार कहलाता है। या फिर शौक की खातिर हिरण मारे तो वह अशुद्ध व्यवहार है और बच्चों का पेट भरने के लिए हिरण मारकर खिलाए तो वह अशुभ व्यवहार है। और तीसरे ने बच्चों को खिलाने के लिए हिरण मारा और दिल से पश्चाताप किया तो वह शुभाशुभ व्यवहार कहा जाएगा। यथार्थ प्रतिक्रमण से अशुभ खत्म हो जाता है और (व्यवहार) शुभ हो सकता है!

शुद्ध व्यवहार के आधार पर शुद्ध निश्चय होना चाहिए। जहाँ पर शुद्ध व्यवहार नहीं है वहाँ पर शुद्ध निश्चय नहीं है।

निश्चय को निश्चय में रखना और व्यवहार को व्यवहार में रखना, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। अक्रम मार्ग में शुद्ध व्यवहार और शुद्ध निश्चय दोनों साथ में ही रखे जाते हैं। दोनों को एक सा ही महत्व दिया जाता है। फिर भी निश्चय ग्रहणीय है और व्यवहार *निकाली* है।

ज्ञान मिलने के बाद जितना व्यवहार ड्रामेटिक किया, वह सही शुद्ध व्यवहार है। चाय नहीं पीते हो और कोई बहुत दबाव डाले और ज़ोर दे तो कषाय करके नहीं पीने की बजाय शांति से थोड़ी पी लो न! व्यवहार एडजस्टेबल होना चाहिए, ड्रामेटिक होना चाहिए। कोई शिकायत न करे, वैसा होना चाहिए।

कोई गालियाँ दे तब भी वह शुद्धात्मा ही दिखाई दे, फूल-माला चढ़ाए, पैर छूए तब भी वह शुद्धात्मा ही दिखाई दे, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार।

शुद्ध व्यवहार, शुद्ध निश्चय का फाउन्डेशन है। शुद्ध व्यवहार किसी को भी परेशान नहीं करता।

निश्चय प्राप्त होने के बाद वाला व्यवहार शुद्ध व्यवहार होता है। तब तक व्यवहार को व्यवहार भी नहीं कहा जाता।

जहाँ निश्चय है वहाँ व्यवहार होना ही चाहिए और यदि व्यवहार नहीं है तो निश्चय प्राप्त नहीं हुआ है। लेकिन इसे लेकर व्यवहार के लिए पकड़ नहीं रहनी चाहिए। पकड़ना निश्चय को है, और व्यवहार *निकाली* है! अक्रम विज्ञान व्यवहार के इस बेस पर खड़ा है कि, 'समभाव से *निकाल* करो।' केवलज्ञान होने तक व्यवहार रहता है।

लाख जन्मों में भी कोटि उपाय से भी जो प्राप्त नहीं हो सकता, वह निश्चय-व्यवहार महात्माओं को अक्रम ज्ञान से चार-पाँच सालों में प्राप्त हो जाता है!

व्यवहार और निश्चय का कोई संबंध नहीं है। व्यवहार इफेक्ट है।

खुद के स्वरूप की अज्ञानता से शरीर है। जिसका अज्ञान छूट जाएगा उसका शरीर व व्यवहार भी छूट जाएगा!

निश्चय प्राप्त होने की निशानी क्या है? व्यवहार में वीतरागता आती रहती है। निश्चय तो शुद्ध ही है लेकिन जब व्यवहार शुद्ध हो जाएगा तब पूरा लाभ मिलेगा!

कोई व्यवहार को खत्म कर देगा तो उसका निश्चय खत्म हो जाएगा। सिर्फ निश्चय कहीं हो सकता है क्या? निश्चय को खत्म कर देंगे तो उसका व्यवहार खत्म हो जाएगा।

निश्चय की मुहर लगे बिना व्यवहार की कीमत कौड़ी भर की है!

शुद्ध वस्तु, अविनाशी वस्तु, वह निश्चय कहलाता है और अवस्थाओं को, विनाशी वस्तुओं को व्यवहार कहा गया है।

स्वरूप ज्ञान प्राप्ति के बाद का व्यवहार अस्त होता हुआ व्यवहार है और उससे पहले का व्यवहार उगता हुआ और अस्त होता हुआ, दोनों प्रकार का होता है।

जहाँ पर व्यवहार-निश्चय दोनों ही नहीं हैं, वहाँ पर आत्मधर्म नहीं है। निश्चय धर्म वाला कभी न कभी पार उतर जाएगा लेकिन व्यवहार वाले का तो किनारा ही नहीं आएगा। निश्चय धर्म वाला पुण्य बाँधता है, भौतिक सुख मिलते हैं और व्यवहार वाला 'मैं पापी हूँ' बोलता है तो पाप बंधते हैं।

अक्रम मार्ग में व्यवहार और निश्चय दोनों साथ में ही हैं।

पुद्गल, व्यवहार है और निश्चय, चेतन है। जो कोई एकांतिक रूप से आगे बढ़ने गया, वह पीछे रह जाता है और अगर कोई दोनों में उदासीन है तो उसका मोक्ष हो जाता है।

निश्चय अर्थात् स्वाभाविक और व्यवहार अर्थात् विभाविक, बदलता रहता है।

व्यवहार हो तो वह करने वाले के सहित होता है। 'खुद कर्ता है ही नहीं', दादाश्री ने इस एक ही वाक्य में कैसा अद्भुत ज्ञान निरावृत किया है! भोजन करना हो तो उसके लिए अपने आप उँगलियाँ काम करती ही रहती हैं क्योंकि सब मिकेनिकल है। अक्रम विज्ञान व्यवहार करने वाले को दिखाता है। अत: हम 'देखते' रहेंगे और व्यवहार करने वाला है ही, फिर हमें दखल करने को कहाँ रहा?

व्यवहार छोड़ा या काटा नहीं जा सकता। उसे भगौड़ा वृत्ति कहा

जाएगा। क्या उगते हुए नाखूनों को काटा जा सकता है? उगे हुए नाखूनों को काट सकते हैं।

व्यवहार *निकाली* है अक्रम मार्ग में। कन्स्ट्रक्शन में सेन्ट्रिंग, वह व्यवहार है और स्लैब डालते हैं, वह निश्चय है। सेन्ट्रिंग हमेशा के लिए नहीं रहती लेकिन उसके बिना स्लैब भी नहीं भरा जा सकता। क्या सेन्ट्रिंग सागवान की लकड़ी से या कार्विंग करके की जाती है? उसे तो स्लैब बन जाने के बाद तुरंत ही निकाल देनी होती है।

ज्ञान मिलने के बाद, आज्ञा में रहते-रहते धीरे-धीरे व्यवहार आदर्श होता जाता है। व्यवहार का जितना भाग आदर्श नहीं है वह खुद को खटकता रहता है, जो कि निकल जाएगा।

जिसका व्यवहार आदर्श हो गया, वह संपूर्ण शुद्धात्मा हो गया। उसके बाद आज्ञा पालन करने की ज़रूरत नहीं रहती!

आदर्श व्यवहार अर्थात् हर कोई खुश हो जाए। दादाश्री का व्यवहार तीर्थंकरों के व्यवहार के नजदीक था।

टकराने की जगह पर टकराए नहीं और अगर टकरा जाए तो आमने-सामने माफी माँग ले, या फिर मन में, यह है आदर्श व्यवहार।

आदर्श व्यवहार तो उसे कहते हैं कि अड़ोसी-पड़ोसी, सगे-संबंधी, घर में बीवी-बच्चे, बूढ़ी माता जी भी कहें कि, 'चंदूभाई तो बहुत अच्छे इंसान हैं। किसी को परेशान नहीं करते या दुःखदायी नहीं होते।'

आदर्श व्यवहार जीवन का ध्येय होना चाहिए। व्यवहार जितना आदर्श उतना ही निश्चय प्रकट हुआ, ऐसा कहा जाएगा।

ज्ञानियों का व्यवहार आदर्श होता है। भक्तों के व्यवहार में कमी रह जाती है इसीलिए वे भक्त कहलाते हैं। भक्त भक्ति में दीवाने रहते हैं इसीलिए व्यवहार भूल जाते हैं। पत्नी ने चीनी लाने का कहा हो या बेटे ने फीस माँगी हो तब, 'ला रहा हूँ' भक्त ऐसा कहकर जाता है लेकिन भजन मंडली देखकर वह सब भूल जाता है और वहीं पर बैठ जाता है। घर पर सभी ऐसे ही बैठे रहते हैं रात तक! जिसका व्यवहार बिगड़ा उसका निश्चय बिगड़ा।

दादाश्री का व्यवहार आदर्श था। घर पर हीरा बा के साथ पचास साल में एक भी मतभेद नहीं हुआ था!

महात्माओं को व्यवहार में डेकोरेशन करना नहीं आता। डेकोरेशन वाले तो पल भर में कहते हैं, 'मैं आपके लिए प्राण दे दूँगा।' फिर वही पल भर में झगड़ा करते हैं! महात्माओं को ऐसा सब नहीं आता। मक्खन भी नहीं लगाते और कुछ उल्टा-सुल्टा भी नहीं बोलते!

दादाश्री कहते हैं, 'हम विवाह समारोह में जाते हैं लेकिन तन्मयाकार नहीं होते। वीतराग रहते हैं। आप तन्मयाकार हो जाते हो।' दादाश्री कहते हैं कि, 'हमारे वाणी, वर्तन और विनय मनोहर होते हैं। विरोधियों को भी हमारे लिए मान (आदरभाव) रहता है!' यह अक्रम विज्ञान व्यवहार की उपेक्षा नहीं करता। पूरा सिद्धांत है। अविरोधाभासी है। वीतराग बनाता है। बहुत बड़ा आश्चर्य सर्जित हुआ है इस काल में!

जगत् के लिए सब से अधिक उपकारी कौन है? संपूर्ण वीतराग!

महात्माओं को व्यवहार किस तरह से संभालना चाहिए? व्यवहार को बहुत संभालने जाएँगे तो निश्चय रह जाएगा। व्यवहार में अंदर राग-द्वेष नहीं हों, बस इतना ही संभालना है। बाकी सब व्यवस्थित है। महात्माओं को तो बेटी की शादी हो तो वह भी व्यवहार और वह विधवा हो जाए तो वह भी व्यवहार। यह रिलेटिव में है, रियल में नहीं है। जहाँ कषायों पर संयम है, वह व्यवहार यथार्थ कहलाता है।

जिसको व्यवहार असर ही नहीं करता, वह व्यवहार, व्यवहार कहलाता है। संपूर्ण रूप से असर न करे तो हो गया केवलज्ञान!

समसरण मार्ग में सिर्फ यह व्यवहार उत्पन्न हो गया है। जिस प्रकार दर्पण के सामने चिड़िया का व्यवहार उत्पन्न हो गया न? दखलंदाज़ी रहित और संपूर्ण राग-द्वेष रहित व्यवहार, अगर व्यवहार के रूप में रहा तो उतना व्यवहार छूटता जाता है। सर्वांश रूप से व्यवहार छूट जाता है तब प्रकट होता है केवलज्ञान!

जय सच्चिदानंद

अनुक्रमणिका

[1] आज्ञा का महत्व

[2] रियल-रिलेटिव की भेदरेखा

[3] समभाव से निकाल, फाइलों का

[4.1] भरा हुआ माल

[4.2] चार्ज-डिस्चार्ज

[4.3] कॉज़ - इफेक्ट

[5] 'नहीं है मेरा'

[6] क्रोध - गुस्सा

[7] संयम

[8] मोक्ष का तप

[9.1] भुगतना - वेदन करना - जानना

[9.2] पुद्‌गल सुख-आत्मसुख

[10] समझ ध्येय स्वरूप की

[11] सत्संग का माहात्म्य

[12] निर्भयता, ज्ञान दशा में

[13] निश्चय - व्यवहार

❖❖❖❖❖

आप्तवाणी

श्रेणी - 12

(उत्तरार्ध)

[1]

आज्ञा का महत्व

पंचाज्ञा पालन करे, वह पाए महावीर दशा

प्रश्नकर्ता : हमें तो आपने आत्मज्ञान दिया है, पाँच आज्ञाओं में रहने को कहा है और चरणविधि करने को कहा है। उससे अधिक हमें कुछ और करना है?

दादाश्री : पाँच आज्ञाएँ हमने जो दी हैं न, उनमें से एक का भी यदि निरंतर पालन करोगे तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो हमें लिफ्ट में बैठा दोगे न? बाकी की ज़िम्मेदारी आपकी न?

दादाश्री : सारी ज़िम्मेदारी हमारी। पाँचों आज्ञा का पालन करेगा तो महावीर भगवान जैसी दशा रहेगी, यह मैं लिखकर देता हूँ। पाँच आज्ञा का पालन करेगा न तो मैं गारन्टी लिखकर देता हूँ कि महावीर भगवान जैसी समाधि रहेगी तुझे! लेकिन यदि पाँच के बजाय एक का पालन करोगे न, तो भी ज़िम्मेदारी हमारी है।

हम ज्ञान देते हैं, उसके बाद और कुछ भी नहीं करना होता। हमारी पाँच आज्ञाएँ हैं न, इन आज्ञाओं में ही रहना है। इन पाँच ही वाक्यों में पूरे वर्ल्ड का साइन्स आ जाता है। इनमें कहीं पर कुछ भी बाकी नहीं रहता और दिन भर वे पाँचों आज्ञाएँ उसे काम आती हैं।

आज्ञा में रहा न तो बस, हो गया। ये आज्ञाएँ इसी जन्म में संपूर्ण पद प्राप्त करवाएँ, ऐसी हैं। भले ही फिर इस जन्म में दस साल जीना हो या पाँच साल, लेकिन इतने समय में पूर्ण कर देंगी।

आज्ञा से ही जागृति और मोक्ष

प्रश्नकर्ता : यह स्वरूप की जागृति सतत रहे, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ये जो आज्ञाएँ दी हैं, वे जागृति देने वाली हैं। उन आज्ञाओं में रहेगा न, तो भी बहुत हो गया। पाँच आज्ञा, वही ज्ञान है, दूसरा कोई ज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसे 'कारण-मोक्ष हो गया', ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : 'कारण-मोक्ष' हो गया, लेकिन अपना ज्ञान कैसा है कि उसे यह ज्ञान आज्ञापूर्वक रहे तभी काम का। यदि आज्ञा में नहीं रहा तो ज्ञान चला जाएगा। क्योंकि आज्ञा ही मुख्य है। बाड़ नहीं हो तो खत्म हो जाता है सब (ज्ञान)। यानी कि यह ज्ञान लेने के बाद जब आप आज्ञा में आ जाओगे और तब मोक्ष भी मिल गया होगा।

आज्ञा ही धर्म और तप

अपने यहाँ हज़ारों लोग ऐसे होंगे कि यदि आप उनसे जाकर पूछो कि, 'आपको दादा याद आते हैं?' तब वे कहेंगे, ''चौबीस घंटों में से एक सेकन्ड भी 'दादा' को भूल नही पाते! कोई भी दिन ऐसा नहीं गया कि हम दादा को एक सेकन्ड के लिए भी भूले हों!'' और नहीं भूलते हैं, तब फिर वहाँ उन्हें दुःख होगा ही नहीं। जब दादा को भूलते ही नहीं तो फिर जगत् विस्मृत ही रहा करेगा न! एक की स्मृति तो दूसरे की विस्मृति। दादा की स्मृति यानी जगत् की विस्मृति। कुछ लोग दादा की भक्ति में लीन हो जाते हैं। दादा को निरंतर याद करके भक्ति में लीन हो जाते हैं। अन्य कुछ लोग ज्ञान में रहने वाले, और उनमें से भी फिर पूर्ण रूप से आज्ञा में रहने वाले कुछ ही लोग हैं।

फिर भी सभी का एक जन्म, दो जन्म, या फिर पाँच जन्म के बाद भी हल आ ही जाएगा। और वे जो भक्ति में लीन हैं उनका भी हल तो आएगा क्योंकि बाकी परेशानियाँ मिट गई न!

कीमत आज्ञा की ही

प्रश्नकर्ता : जिन्होंने ज्ञान लिया है, उनकी दो-पाँच जन्मों में मुक्ति तो हो जाएगी न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ज्ञान के साथ आज्ञा का पालन किया जाए तो। यदि आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो ज़्यादा जन्म हो जाएँगे। आज्ञा की ही कीमत है, ज्ञान की कीमत नहीं है। आज्ञा ही हम हैं और आज्ञा का पालन किया तो हम साथ ही हैं। दादा चौबीसों घंटे हाज़िर रहते हैं। आपको याद नहीं करना हो फिर भी याद रहा करते हैं, आते ही रहते हैं याद। कुछ लोगों को तो रोज़ सपने में आते हैं। अभी इन्डिया में कितनों को सपने में आते होंगे। मुझे चिट्ठी भी आती है कि स्वप्न आया था।

दादा विशेष या आज्ञा?

प्रश्नकर्ता : महात्माओं के लिए टॉपमोस्ट जागृति कौन सी?

दादाश्री : इन पाँच आज्ञाओं का जितना पालन करेंगे, वही जागृति। वर्ना यदि दादा ही निरंतर याद रहें, उसे भी जागृति ही कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आज्ञा में रहना, वह जागृति को बढ़ाता है या निरंतर दादा का ध्यान रहना, वह जागृति को बढ़ाता है? इनमें से क्या जागृति को बढ़ाता है?

दादाश्री : आज्ञा में ज़्यादा रहे, वह। दादा यदि याद रहते हैं, उसमें तो उसका पुरुषार्थ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उसमें उसका पुरुषार्थ नहीं है, तो वह भक्तिभाव बढ़ाता है?

दादाश्री : जो कहो सो, लेकिन वह उसका पुरुषार्थ नहीं है

और यह जो है वह पुरुषार्थ है पूरा। पाँच आज्ञा का पालन किया, वह। और पुरुषार्थ ही मुख्य चीज़ है। वह तो उसे प्राप्त हुई चीज़ है और जा भी सकती है।

आज्ञा पालन ज़रूरी

आज्ञा में रहे, उसी को जागृति कहते हैं। वर्ना वह सीधा रह गया और हम उल्टा करें तो उसे जागृति नहीं कहेंगे। उसे कहेंगे, 'खुली आँखों से सो रहा है।' तुझे आज्ञा पालन करना अच्छा लगता है?

प्रश्नकर्ता : आज्ञा पालन करेंगे, तो पालन करने वाला रहा न?

दादाश्री : हाँ, पालन करने वाला रहा। तो अब क्या करेगा तू?

प्रश्नकर्ता : पालन करने वाले को ही नहीं रखना है।

दादाश्री : ओहो! यानी अब आपको सूरत[1] से ही यह गाड़ी छोड़ देनी है, ताकि विरमगाम[1] पहुँच जाओ।

कुछ लोग जो आज्ञा में नहीं रहे, वे तो चले ही गए यहाँ से। आज्ञा में रहने से सॉलिड हो जाता है वर्ना यह बल्ब फ्यूज़ हो जाता है। यह जो ज्ञान दिया है, वह बिल्कुल ही व्यर्थ नहीं जाता। उसके पाप भस्मीभूत हो चुके होते हैं न, इसलिए फिर उसमें भावना अच्छी रहती है। पहले से ज़्यादा सयाना हो जाता है लेकिन मोक्षमार्गी नहीं रहता। मोक्षमार्गी कब रहता है? यदि आज्ञा में रहे, तो। ये सभी हमारी आज्ञा में रहते हैं निरंतर, चौबीसों घंटे। जितना पालन कर सको, उतना पालन करो। प्रयत्न करो, पालन नहीं कर सको तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन पालन नहीं कर सके उसके लिए खेद करते रहो। पछतावा होना चाहिए कि ऐसा नहीं होना चाहिए, बस। उसे हम पूर्णाहुति कहते हैं।

सागर भर दिया गागर में

हर प्रकार का मार्ग दिया है हमने, और फिर लंबा नहीं है।

1 गुजरात के शहर

प्रश्नकर्ता : लंबा नहीं है, यानी कि जब उस पर ध्यान अधिक केन्द्रित करते हैं तब ऐसा लगता है कि दादा ने कितने संक्षेप में दे दिया है।

दादाश्री : वर्ना इस काल में भूल जाएँगे बेचारे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब, हमारी कुछ प्रकृति ऐसी है कि सीधी मिली हुई चीज़ को भी हम यों लंबा करना चाहते हैं।

दादाश्री : लंबा ज्ञान दिया होता न, तो आराधना करने की चीज़ रह जाती और आराधना नहीं करने की चीज़ की आराधना करते, ऐसा हो जाता। लेकिन यह संक्षेप में है इसलिए एक है आराधना करने को और आराधना नहीं करने को एक, तो कहाँ जाओगे? इतना तीन ही फुट चौड़ा एक गड्ढा हो, इधर घूमो तब भी वह और उधर घूमो तब भी वह। जाएगा ही नहीं न बाहर! यानी अपना यह सब ज्ञान ऐसा दिया है। हम जानते थे कि इस काल के जीवों को यदि लंबा ज्ञान देते न, तो वे उलझन में पड़ जाते। किसी की आराधना करने के बजाय न जाने किसी और की आराधना करते? यानी विज्ञान बहुत हाई क्लास दिया है सब, और कुछ पढ़ना नहीं, मेहनत नहीं, कुछ भी नहीं। इससे उसे जागृति रहा रहती है और सांसारिक मुश्किलों में भी पाँच आज्ञाओं का अच्छी तरह पालन कर सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह एक बहुत महत्वपूर्ण वाक्य जो आपने हमें दिया है कि, 'अब शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) प्राप्त करवाने के बाद आपको इन पाँच आज्ञाओं में रहना है। बाकी, आपको अन्य कुछ भी नहीं करना है।'

दादाश्री : हाँ! कुछ भी नहीं करना है। इन पाँच उँगलियों जितना ही न! कुछ ज़्यादा बखेड़ा है? यदि बीस उँगलियों जितना होता तो परेशानी हो जाती। लेकिन ये तो पाँच उँगलियाँ ही! और पाँच में से एकाध उँगली भी पकड़े रखे तो भी बहुत हो गया।

समाधान करवाए, वह ज्ञान

यह हमारा शब्द ही ज्ञानरूपी है, इसलिए कुछ पढ़ना ही नहीं पड़ता। भूल ही नहीं पाते इसे। आपको कुछ पढ़ना पड़ा है क्या इसके बाद से?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा।

दादाश्री : लेकिन पूरा ज्ञान हाज़िर है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ। ज़्यादा समझ आता जा रहा है।

दादाश्री : सभी जगह हाज़िर हैं ही। पाँच वाक्य हाज़िर रहते हैं। हमारा वचनबल है न! इसलिए इन्हें भूल नहीं पाते। जब समय आता है न, तब ज्ञान हाज़िर हो ही जाता है उस क्षण।

यह सर्व समाधानी ज्ञान कहलाता है। किसी भी जगह पर, किसी भी दशा में, किसी भी अवस्था में समाधान दे, वही ज्ञान कहलाता है। यदि असमाधान रहे तो उसे ज्ञान कहेंगे ही कैसे? जहाँ उलझन रहे, उसे ज्ञान कहा ही कैसे जाएगा?

प्रश्नकर्ता : यह तो देखा है कि जिसने ज्ञान लिया है, उसमें धीरे-धीरे ज्ञानक्रिया काम करती है। यह सब से बड़ा आश्चर्य है!

दादाश्री : निरंतर काम करती ही रहती है भीतर। विज्ञान यानी चैतन्य समान। अपने आप ही काम करता रहता है। आपको पाँच आज्ञा का पालन करना नहीं पड़ता। भीतर से ही (प्रज्ञा) पाँच आज्ञा का पालन करवाती है।

यह तो अद्‌भुत विज्ञान है जो निरंतर भीतर सावधान करता है। अरे! आप उल्टे काम में पड़े हुए हों तब वह भीतर से सावधान करता है, एकदम से! अत: आपको कुछ नहीं करना पड़ता। यह ज्ञान ही इटसेल्फ कर लेता है। आपको तो डिसिज़न ही लेना है कि, 'हमें तो दादाजी की आज्ञा का पालन करना है।' ये आज्ञाएँ सभी प्रकार की परिस्थितियों

में से बचाने वाली हैं, प्रोटेक्शन हैं ये तो। आप सोए हुए हों तब भी वे सावधान करती हैं। अब इससे अधिक कुछ और चाहिए क्या?

आत्मा प्राप्ति की गारन्टी

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा प्राप्त हुआ है, उसकी तो दादा गारन्टी देते हैं।

दादाश्री : हाँ, उसकी गारन्टी देते हैं। हमने आपको दिया है शुद्धात्मा, आप में जो प्रकट हुआ है, वह वास्तविक शुद्धात्मा है। अब संभालना आपके हाथ में है।

प्रश्नकर्ता : फिर से आपने यह बदला! आप तो ऐसा भी कहते हैं, 'लिफ्ट में बैठा दिया है इसलिए मोक्ष में जाओगे ही।'

दादाश्री : ऐसा नहीं कहेंगे तो फिर गाड़ी ही नहीं चलेगी। यह बिल्कुल नई बात है न, इसलिए अगर ऐसा नहीं कहेंगे तो समझ में ही नहीं आएगा। बाकी की सारी ज़िम्मेदारी हमारे सिर पर। खाना-पीना, मज़े करना। तू हमारी पाँच आज्ञा का पालन करना, बस!

आज्ञा पालन करेगा उसका मोक्ष गारन्टेड

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष सभी को मोक्ष में ही पहुँचाते हैं या फिर कोई जैसी भावना लेकर आया है, उसे उस जगह पहुँचने पर छोड़ देते हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। हमारी आज्ञाओं का पालन करोगे तो वे मोक्ष में ही पहुँचाएँगी और जो पालन नहीं करेगा वह अपने आप ही दूर हो जाएगा। लेकिन उसके थोड़े पाप तो धुल जाएँगे। हल्का हो जाएगा लेकिन यदि आज्ञा पालन नहीं किया जाए तो फिर रहा क्या? कुछ और समय तक भटकना पड़ेगा। ज्ञानी पुरुष की पाँच आज्ञाओं का पालन करेगा तो वे उसे मोक्ष में ही पहुँचाएँगी, इसकी गारन्टी है पक्की!

प्रश्नकर्ता : हम सभी में से कौन-कौन मोक्ष में जाएगा? दादा तो जानते हैं न?

दादाश्री : सभी। मोक्ष में जाने के लिए मुझसे ज्ञान लिया है और मेरी आज्ञा का पालन करते हैं, उनके मोक्ष की गारन्टी मेरी है ही।

प्रश्नकर्ता : जय सच्चिदानंद। (आत्मोल्लास से)

दादाश्री : और आज्ञा, वे भी पूरी नहीं, जो सत्तर प्रतिशत पालन करे उसके मोक्ष की गारन्टी। पूरी तरह पालन करेगा तो मेरे जैसा बन जाएगा। पूरी तरह पालन नहीं हो सके तो हर्ज नहीं है, सत्तर प्रतिशत पालन कर!

प्रश्नकर्ता : हमें दादा जैसा बनना है।

दादाश्री : तो फिर सौ प्रतिशत पालन करना चाहिए और उसमें भी पाँच प्रतिशत छूट देता हूँ, पचानवे प्रतिशत!

प्रश्नकर्ता : तीन साल पहले ज्ञान लिया है, तब से मुझे खुद को ऐसा लगता है, बाह्य रूप से लगता है कि मैं आज्ञा पालन कर रहा हूँ। अब, क्या मुझे देखकर आपको लगता है कि मैं आज्ञा पालन कर रहा हूँ या नहीं?

दादाश्री : हाँ, ऐसा समझ में आ जाता है। समझ में न आ सके, ऐसा नहीं है। लेकिन यह जो आज्ञा का पालन करते हो न, उसे मैं सौ प्रतिशत नहीं कहता। सौ प्रतिशत पालन तो कोई भी नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति पालन करे तो अस्सी प्रतिशत तक पालन कर सकता है, बहुत ज़ोर लगाए तो। लेकिन पैंसठ-सत्तर प्रतिशत पालन करे तब भी बहुत हो गया। तब भी वह मेरी फुल आज्ञा पालन करने के बराबर है। बाकी जो रह जाए उसके लिए आप ऐसा कह देना कि, 'निर्बलता को लेकर मैं पालन नहीं कर पाया, लेकिन माफी माँगता हूँ', तो गया सौ प्रतिशत। 'पैंसठ प्रतिशत तक मैंने पालन की और

बाकी पैंतीस के लिए माफी माँगता हूँ, क्योंकि मैं पालन नहीं कर पाया', तो सौ प्रतिशत हो गया। निर्बलता है न, वह तो? एक-दो जन्म ज़्यादा लगेंगे।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्मा जब जागते हैं तब से उनका व्यवहार तो चलता ही रहता है और सारी व्यवहारिक बातें करनी पड़ती हैं तो उन व्यवहारिक बातों को करते हुए यदि ऐसी दृष्टि नहीं रहे तो उसे, 'नींद में बीत गया', ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : हमारी आज्ञा का पालन कर रहा हो तो वह जाग रहा है। सत्तर प्रतिशत, हंड्रेड परसेन्ट नहीं। हंड्रेड परसेन्ट में तो सभी फेल हो जाएँगे। लोग ऐसा कहेंगे कि, 'भाई, इंसान हंड्रेड परसेन्ट तो कैसे पालन कर सकता है? इंसान की क्या बिसात?' तब मैंने कहा, 'नहीं भाई, मैं तो सत्तर प्रतिशत पर पास करता हूँ'। फिर हमारा कोई दोष है क्या? सत्तर प्रतिशत पर छूट देते हैं तो फिर। उसने यदि सत्तर प्रतिशत पालन की हों, तब भी मैं सौ प्रतिशत कर दूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी काल कठिन है, ऐसे में लोगों से पूरा नहीं हो पाएगा, इतना ही हो पाएगा इसलिए मार्क्स ज़्यादा देने पड़ते हैं न!

आज्ञा पालन करे उसकी ज़िम्मेदारी हमारी

प्रश्नकर्ता : आपकी ज्ञानगंगा प्राप्त करने के बाद अलौकिक शांति है। जिसकी रक्षा करने के लिए हम से जो हो सके, वह करेंगे लेकिन आप भी इस ज्ञानगंगा की रक्षा करते हैं या क्या?

दादाश्री : हम रक्षा करते हैं लेकिन यदि आप आज्ञा पालन करोगे तो हमारी रक्षा रहती ही है। यदि आज्ञा का पालन करते हो तो हमें हाज़िर होना पड़ता है। आप जब आज्ञा पालन करते हो उस समय हम हाज़िर ही होते हैं। क्या बात (आज्ञा) का पालन नहीं करना चाहिए? इन डॉक्टरों का कहा करना पड़ता है, नहीं? 'अभी शक्कर मत खाना, दही और रोटी, सिर्फ ये दो ही खाना' कहते हैं। तब यदि हम उनसे पूछें कि, 'आज ये सभी श्रीखंड खा रहे हैं, आप क्यों नहीं

खा रहे?' तब कहता है, 'डॉक्टर ने मना किया है न!' तो डॉक्टर के कहने पर, एक जन्म में मृत्यु से बचने के लिए इतनी सावधानी बरतता है, फिर यह तो अनंत जन्मों का मरण है, इसके लिए सावधान रह न! अभी तो अलौकिक शांति हो गई है न! ऐसी की ऐसी रहेगी, बल्कि इससे भी ज़्यादा बढ़ेगी!

ये सभी मार्ग यहाँ पर आकर मिलते हैं, दादा भगवान आपको वह बताते हैं और आपको मोक्षमार्ग पर ले आते हैं। हमारी आज्ञा का पालन करोगे तो ज़िम्मेदारी हमारी। इसलिए हम कहते हैं न, कि हमारी आज्ञा का पालन करो और यदि एक भी चिंता हो तो हम पर दो लाख का दावा करना। एक भी चिंता नहीं हो, ऐसा यह है ज्ञान! संभालना। अब, यदि आज्ञा का पालन नहीं करोगे तो क्या हो सकता है? आज्ञा पालन करने में कुछ परेशानी जैसा है क्या? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : हम से पूरी तरह से आज्ञा का पालन नहीं हो पाए, कुछ भाग रह जाए तो आपने कहा है न, 'हम कुछ ज़िम्मेदारी लेते हैं।'

दादाश्री : नहीं। यदि आपकी नीयत में खोट नहीं होगी तो हम ज़िम्मेदारी लेंगे। नीयत में खोट होगी तो नहीं लेंगे। हमें तुरंत पता चल जाता है कि इनकी नीयत में खोट है। दादा भगवान ने कहा है न, 'देख लिया जाएगा', वह हम तुरंत समझ जाते हैं। तुरंत हमें फोन आ जाता है कि नीयत में खोट है। अड़चन को लेकर आपसे ऐसा हो जाएगा, उसमें हर्ज नहीं है। उदयकर्म का धक्का हो और ऐसा हो जाए तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप वह ज़िम्मेदारी कैसे संभालते हैं?

दादाश्री : जो हमारे कहे अनुसार चले, उसकी सारी ज़िम्मेदारी हमारी। वह भी अन्य किसी बात में नहीं, पाँच आज्ञा में ही। बाकी, आपको जो आइस्क्रीम खानी हो, वह आइस्क्रीम खाना और जो करते हो, वह करना। यह जो हमारी पाँच आज्ञा का पालन करते हो, सत्तर प्रतिशत से ज़्यादा तो पालन होना ही चाहिए। अब, इतनी छूट देते हैं वर्ना आज्ञा पालन तो पूरी तरह से ही होना चाहिए।

आज्ञा, वही है प्रत्यक्ष हाज़िरी हमारी

प्रश्नकर्ता : पाँच आज्ञा में नहीं रह पाते। विचलित हो जाते हैं उसमें बहुत।

दादाश्री : ऐसा? आज्ञा नहीं रहने देती या आप नहीं रहते?

प्रश्नकर्ता : हम नहीं रहते न।

दादाश्री : तो फिर आज्ञा उसमें क्या करे? आज्ञा आसान व सरल है।

प्रश्नकर्ता : पाँच आज्ञा का पालन करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : करना कुछ भी नहीं होता न! उसके लिए भाव पक्का करना चाहिए कि मुझे पालन करना है।

प्रश्नकर्ता : अवरोध बहुत आते हैं।

दादाश्री : अवरोध तो रहेंगे ही न! दुनिया के लोगों को अवरोध नहीं हो, ऐसा तो हो ही नहीं सकता न! लेकिन उनके सामने वह अनंत शक्ति वाला है!

प्रश्नकर्ता : आपकी हाज़िरी में बहुत शांति रहती है लेकिन फिर बाहर जाने पर बहुत अवरोध आते हैं।

दादाश्री : पाँच आज्ञाएँ, वे मेरी हाज़िरी ही हैं। ये आज्ञाएँ मेरी हाज़िरी जितना ही फल देती हैं। जिसे इन आज्ञाओं में रहना है, उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता। जिसे इस संसार में गड़बड़ करनी है, उसे झंझट है।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन अभी भी व्यवहार में बहुत उलझन हो जाती है।

दादाश्री : वह तो कर्म के उदय आते हैं, लेकिन यदि उस

समय आप आज्ञा में रहोगे तो सारी उलझनें खत्म हो जाएँगी। आज्ञा तो बहुत बड़ी चीज़ है। क्या आज्ञा में थोड़ा-बहुत रह पाते हो?

प्रश्नकर्ता : रह पाते हैं दादा, थोड़ा-थोड़ा रह पाते हैं।

दादाश्री : नहीं तो किस में रहते हो? व्यवहार धक्का मारकर भुला देता है, आज्ञा।

बाकी, ये पाँच आज्ञाएँ किसी भी जगह और किसी भी समय पर सर्व समाधान दें, ऐसी हैं। इसलिए, ये रहेंगी तो समाधान रहेगा। मतलब यह सेफसाइड है आपकी, कम्प्लीट सेफसाइड!

बहुत आसान हो गया है यह, यदि बात को समझा जाए तो। यह ज्ञान देने के बाद बिल्कुल आसान। आपको शास्त्र पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। इन पाँच आज्ञाओं का यदि पालन किया जाए तो काफ़ी है। आप सभी से पुरुषार्थ हुआ है इसलिए अब समझ सकते हो, ऐसा है। इसमें अंतराय डालने वाले होते हैं, उसके लिए मैं मना नहीं करता। अभी भी पिछले रिज़ल्ट हैं, वे धक्के लगाते रहते हैं, लेकिन उसमें आपको जाग्रत रहना है। प्रतिक्रमण करते रहोगे तो जागृति रहेगी। जितनी जागृति, उतना ही फल मिलेगा और संपूर्ण जागृति को ही कहते हैं, केवलज्ञान!

पाँच आज्ञा का पालन किया जाए तो वह हमारी प्रत्यक्ष हाज़िरी है! प्रत्यक्ष रूप सूचित करता है यह। तो फिर, 'ये दादा अमरीका चले गए तो उससे हमें क्या? हमें पाँच आज्ञा देकर गए हैं, फिर हमें क्या? वे खुद ही हैं न!'

प्रश्नकर्ता : 'जब ये दादा चले जाएँगे, उसके बाद हम क्या करेंगे', उस बात का यह जवाब दे रहे हैं दादा!

दादाश्री : हं, आपको तो हमेशा वाले (शाश्वत) दादा ढूँढ निकालने हैं। ये दादा तो छिहत्तर साल के हैं। शरीर छूट जाएगा और लुढ़क जाएँगे, इनके लिए क्या कह सकते हैं? उसके बजाय यदि आपने

हमेशा वाले दादा ढूँढ निकाले होंगे तो फिर झंझट रहेगी क्या? फिर यदि रहते हैं तो चाहे सौ साल जीएँ, हमें हर्ज नहीं है। लेकिन आप अपना ढूँढकर बैठना।

प्रश्नकर्ता : आप तो दादा, आपके पास आने वाले को कितना निरालंब बना देते हैं!

दादाश्री : नहीं तो फिर क्या करें? हिम्मत तो रखनी चाहिए न! आपको स्थिर रहना चाहिए न! यानी आप बैठने के पाटले (छोटा स्टूल) पर बैठना। आज्ञा पालन की, कि बैठने का पाटला मिल गया, बस।

शक्ति प्राप्त करना ज्ञानी के पास से

प्रश्नकर्ता : आज्ञा पालन के लिए बहुत शक्ति चाहिए।

दादाश्री : हमारा ज्ञान रहे तो बहुत हो गया, बस। इतना ही देखना है। हमारा ज्ञान शुद्धात्मा के बहीखाते में अच्छी रकम जमा करवाता है। जितना ज़्यादा पाँच आज्ञा का पालन होगा, उतना ज़्यादा जमा होगा। आप कम जमा करवाते हो? ज़्यादा करवाओ तो क्या हर्ज है? आज्ञा कोई भारी या कठिन तो है नहीं।

प्रश्नकर्ता : आपके आशीर्वाद और शक्ति मिले तो कुछ भी कठिन नहीं है।

दादाश्री : हमारे आशीर्वाद और शक्ति निरंतर मिल ही रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : बाकी, आज्ञा इतनी आसान नहीं है। आपसे शक्ति मिले तभी हो पाए, ऐसा है।

दादाश्री : हमारी शक्ति मिलती रहे, ऐसी है। यदि वह खुद ही नल बंद करेगा तभी उसका बंद होगा। बाकी, जारी ही रखी है। वर्ना आज के इस मोह के तूफान में ये मनुष्य कैसे जी पाएँगे? कितना बड़ा तूफान है मोह का!

प्रश्नकर्ता : इसमें आगे बढ़ सकते हैं तो क्यों नहीं बढ़ें?

दादाश्री : बढ़ सकते हो, ऐसा है। मार्ग बना देता हूँ। पुरुष होने के बाद जितना पुरुषार्थ करोगे उतना आपका।

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ में कमी न रहे, साथ में आपको ऐसा बल भी देना चाहिए।

दादाश्री : हम तो इस विधि में हर बार देते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसे आशीर्वाद दे दीजिए कि हो जाए। यही चाहिए, यह दे दीजिए।

दादाश्री : वही दिया हुआ है लेकिन आप अन्य कुछ इधर-उधर करने जाते हो इसलिए वह इधर-उधर होता रहता है। सभी को वही दिया है शुद्ध। इसलिए अब ज़रा पाँच आज्ञा में एकदम ज़ोर लगाओगे तो उस ओर आ जाओगे वापस, कम्प्लीट! पाँच आज्ञा पालन करने में ज़रा ज़्यादा ज़ोर लगाओ। यह पूरा कर लेना है या नहीं? तेज़ी से। बाकी, शक्ति तो मैंने दे दी है। अब पाँच आज्ञा में रहोगे तो शक्तियाँ प्रकट होंगी।

सिर्फ हमारी आज्ञा ठीक से पालन नहीं कर पाते हो, इतनी ही कमी हो तो दूर कर लेना। क्योंकि पुरुष हुए हो, पुरुषार्थ सहित हो और आज्ञा के बाद कुछ भी बाकी नहीं रहता।

जिसे दादा की आज्ञा में रहना है, जिसने ऐसा तय किया है, उसे इस दुनिया में कोई भी परेशान नहीं कर सकता। फिर यदि ऐसा भाव हुआ कि, 'पालन हो तो ठीक और नहीं हो तो भी ठीक', तो बिगड़ा सब। ये आज्ञाएँ खुद ही आखिर में मोक्ष में ले जाएँ, ऐसी हैं। कोई आपको गाड़ी नहीं चलानी पड़ती, यह गाड़ी ही ऐसी है!

प्रश्नकर्ता : और दूसरा, वह तय करे कि अब इसमें उपयोग नहीं चूकना है, तो...

दादाश्री : हाँ, निश्चय किया जाए तो वह बहुत काम करता है। 'हुआ तो ठीक, नहीं तो कुछ नहीं', तो काम नहीं होगा और 'जो

होना हो सो हो जाए, करना ही है', ऐसा तय किया तो बारह आना ही सही, लेकिन होगा।

प्रश्नकर्ता : निश्चय होने के बाद क्या फिर सब अपने आप उस तरह से हो जाता है?

दादाश्री : निश्चय करने पर सारी शक्तियाँ उस ओर मुड़ जाती हैं। आपने निश्चय किया कि नीचे जाना है, तो फिर सीढ़ियाँ-वीढ़ियाँ, सभी जगह से संभाल-संभालकर ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : निश्चय तो है ही।

दादाश्री : निश्चय हो तो हर्ज नहीं है। सभी का निश्चय है फिर वह सत्तर प्रतिशत तक पालन करता हो या साठ प्रतिशत, तब भी हर्ज नहीं है। रोज़ पाँच बार निश्चय से बोलो कि, 'मुझे निश्चय से आज्ञा का पालन करना ही है, जो हो सो।' और फिर यदि पालन नहीं कर पाओ तो वह हम बोनस में दे देते हैं। लेकिन कोई ऐसा निश्चय ही नहीं करता।

ये कैसे ब्रिल्यिन्ट!

प्रश्नकर्ता : जो (पाँच) आज्ञाएँ दी हैं, उनका पालन नहीं कर पाते, तो जो अवज्ञा होती है, उसके लिए कोई दावा तो नहीं होगा!

दादाश्री : उसमें भी जिसे सौ प्रतिशत आज्ञा पालन करना है और पालन नहीं कर पाए, उसके लिए आप माफी माँग लोगे तब भी पालन करने के बराबर होगा।

प्रश्नकर्ता : यह फिर दूसरा फायदा।

दादाश्री : हाँ! यह दूसरा फायदा। सेकन्डरी तौर पर भी जिसे पालन करना है, उसके लिए। जिसे बेशर्मी करनी हो, झूठ बोलना हो, उल्टा करना हो, उसके लिए नहीं है यह। जिसे पालन करना है और पालन नहीं कर पाते, उसकी ज़िम्मेदारी हम लेते हैं। फिर और कितनी छूट देनी चाहिए? इतनी छूट देने के बावजूद भी यदि मोक्ष नहीं हो तो फिर इसका कोई और उपाय ही नहीं है न!

आज्ञाओं का थोड़ा कम पालन हो तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन यदि आज्ञाओं से बाहर रहते हो तो उसकी जोखिमदारी मेरी नहीं रहती। वह तो नियम है न? मैं कहाँ संभालने आऊँ आपको? ये आज्ञाएँ दी हैं और सारी छूट दी है। कुछ बाकी रखा है? सिनेमा देखने की छूट नहीं दी है?

प्रश्नकर्ता : सिनेमा देखने की छूट दी है लेकिन हमारी सारी रुचि चली गई है अंदर से!

दादाश्री : इसे कुछ भी कहो, वह सब आपको भोगने के लिए दिया है लेकिन चाबियाँ मेरे पास रखी हैं। यह सब से बड़ा आश्चर्य है इस अक्रम विज्ञान का।

हमारी आज्ञाओं में रहेगा तो काम हो जाएगा, ऐसा है और आज्ञाएँ आसान हैं, कठिन नहीं हैं। खाने-पीने की छूट, मुंबई शहर में, मोहमयी नगरी में मोह छूता नहीं। अब यदि फोर्ट एरिया में जाते हो तो कोई चीज़ लेने की इच्छा ही नहीं होती, आकर्षण ही नहीं होता। पहले तो इधर-उधर झाँकते रहते थे। अब वह आकर्षण खत्म हो गया!

संसार चलता रहे लेकिन छूए नहीं, बाधक नहीं हो और काम हो जाए, ऐसा है। सिर्फ हमारी आज्ञा का आराधन करना है।

आज्ञा देने वाले को जोखिम

हमारी आज्ञाओं में रहोगे तो आपको छूएगा नहीं कुछ भी। क्योंकि जोखिमदारी किसकी? तो कहते हैं, 'आज्ञा देने वाले की'। तब पूछें, 'आज्ञा देने वाले पर जोखिमदारी आती है?' तो कहते हैं, 'नहीं'। उनका यह पर-हेतु के लिए है। इसलिए उन पर खुद पर (जोखिमदारी) नहीं आती और काम हो जाता है और डिज़ॉल्व हो जाता है सबकुछ।

वर्ना कभी भी, लाखों जन्मों में भी यह सम्यक् दर्शन नहीं हो सकता। जबकि यह सम्यक् दर्शन सहज रूप से मुफ्त में मिल गया है! आनंद में रहते हो, जप-तप कुछ किए नहीं, त्याग नहीं किए, स्त्री

के साथ रहकर! यानी यह सुनहरा अवसर है तो पूरा कर लो अब। यह सुनहरा अवसर अक्रम का है।

स्वच्छंद रुके, ज्ञानी की शरण में

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब तो हमें ज्ञानी पुरुष मिल गए हैं न?

दादाश्री : तो अब हो गया आपका शुद्ध। यदि हमारी आज्ञा का पालन करोगे तो जोखिमदारी हमारी। ज्ञानी पुरुष मिले उसके बाद यदि आज्ञा के अनुसार चले न, तो फिर स्वच्छंद रहा ही नहीं न!

हमने आपको ये जो आज्ञाएँ दी हैं, इन आज्ञाओं में रह पाओ तो ऐसा ही कहा जाएगा कि आपका स्वच्छंद चला गया। 'खुद की अक्ल से चलना है', ऐसा चला गया। कम-ज़्यादा रहे, वह बात अलग है लेकिन आपकी दृष्टि क्या होनी चाहिए? आपका खुद का उसमें मत नहीं, आज्ञा में रहने का ही निश्चय होना चाहिए। आपकी वृत्ति कैसी रहती है? आज्ञाधीन रहती है अर्थात् स्वच्छंद नहीं। हमारी यह दशा स्वच्छंद निकल जाने के बाद की है, खुद की अक्ल लगाना रहा ही नहीं फिर। इसीलिए जो कोई मुझसे मिले हैं और जो आज्ञा में ही रहते हैं, उनके स्वच्छंद टूट गए हैं। स्वच्छंद नामक रोग निकल गया, पूरा ही।

यहाँ पर ये ज्ञान प्राप्त किए हुए महात्मा चौबीसों घंटे हमारी आज्ञा में रहते हैं। इसलिए उन्हें संसार बंधन नहीं है। वर्ना संसार बंधन स्वरूप ही है। आज्ञा पालन करते हैं इसलिए क्षण भर के लिए भी उनमें स्वच्छंद नहीं है। इसीलिए कहते हैं न, कि मोक्ष हाथ में आ गया। सौ प्रतिशत स्वच्छंद चला गया। यह तो मोक्ष ही है। आपका मोक्ष आपके पास ही है। आपका मोक्ष मेरे पास नहीं है और मोक्ष यहीं हो जाना चाहिए। आप मेरी आज्ञा का पालन करने लगते हो तभी से मोक्ष। बाकी, अभी तक ज्ञानी की आज्ञा का पालन नहीं किया। यदि पालन किया होता तो मोक्ष हुए बगैर रहता नहीं। जो आज्ञा में रहता है उसका स्वच्छंद रुक जाता है।

सहज ही बरते जागृति

प्रश्नकर्ता : ज्ञान की जागृति सतत रखने के लिए अन्य किसी अभ्यास की ज़रूरत है?

दादाश्री : ज्ञान की जागृति सतत ही रहती है। अन्य किसी अभ्यास की ज़रूरत ही नहीं है, सिर्फ आपके निश्चय में ऐसा होना चाहिए कि यह सतत रहनी ही चाहिए। सतत क्यों नहीं लगती? तो, अन्य सभी कारण क्या अंतराय कर रहे हैं, उन्हें देखना चाहिए। यानी कि ज्ञान की जागृति निरंतर रहती है, लेकिन आपका निश्चयबल होना चाहिए। 'जागृति नहीं रहती', ऐसा कहा तो फिर नहीं रहेगी। 'रहनी ही चाहिए, क्यों नहीं रहेगी', तो रहेगी और विघ्न आएँगे भी नहीं, आप सत्संग में रहना न!

ये आज्ञाएँ तो हैं फ्रेश

हम से जिन्होंने ज्ञान लिया है न, उन सभी के लिए तो यह बहुत अच्छा है कि पाँच आज्ञाएँ जो इतनी फ्रेश हैं, जैसे फ्रेश भोजन होता है न! सालों पहले की आज्ञाएँ, वे न जाने कितने समय से, वे तो कितनी पुरानी हो चुकी हैं। ये तो फ्रेश, ताज़ी और सुंदर, खाने में मज़ा आए, ऐसी! इन आज्ञाओं का पालन करने जैसा अन्य कोई मोक्ष नहीं है।

पाँच आज्ञाओं का पालन करता है तो उसे, ज्ञान पा लिया कहा जाएगा और जो पाँच आज्ञा का पालन नहीं करता, उसने कोई ज्ञान पाया ही नहीं। ज्ञान तो बेहिसाब है लेकिन यदि आज्ञा पालन नहीं किया जाए तो कुछ भी नहीं है।

होना चाहिए लक्ष, आज्ञा पालन का

आपने तो दादा से जितना ज्ञान जाना है न, उतना ही जानना है। यह तो, मन में ऐसा लगता है कि, 'अभी तो हमें बहुत कुछ जानना बाकी है।' नहीं, कुछ भी जानना बाकी नहीं है। यह जितना बताया

है, उतना ही जानो। ये तो कुछ और करने जाते हैं तो उस मूल चीज़ को भूल जाते हैं।

अपना तो पाँच आज्ञा का पालन किया कि मोक्ष। बाकी सब तो दखल कहलाएगा। फिर यदि आज्ञा का कम-ज़्यादा पालन होता हो तो उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन पाँच आज्ञा का *लक्ष* (जागृति) रहना चाहिए। जैसे यहाँ रोड पर जो ड्राइविंग करते हैं, उनके *लक्ष* में रहता ही है कि ट्रैफिक के नियम क्या हैं! ऐसा *लक्ष* में रहता ही है वर्ना टकरा जाएगा। यहाँ का टकराया हुआ दिखाई देता है लेकिन वहाँ टकराया हुआ दिखाई नहीं देता न! और तहस-नहस हो जाता है। लोगों को पता नहीं चलता।

निश्चय ही चाहिए आज्ञा के लिए

आज्ञा पालन नहीं हो पाए, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन मन में ऐसा नहीं होना चाहिए कि पालन नहीं करना है। बस, पालन करने का निश्चय, कि मुझे पालन करना ही है। फिर यदि पालन नहीं हो पाए तो उसका गुनाह आपको नहीं लगेगा। आपने ऐसा तय किया है कि पालन करना है, तो उसके लिए ज़िम्मेदार मैं! फिर यदि पालन नहीं हो पाए तो उसकी ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर आएगी। आपने तय किया और फिर पालन नहीं हो पाए तो उसके लिए कौन गुनहगार?

मैं ऐसा नहीं कहता कि पाँचों आज्ञाओं का पालन करो। पाँच नहीं, एक का भी पालन हो तो भी बहुत हो गया। और आपको सिर्फ ऐसा तय रखना है, 'पाँच आज्ञाओं का पालन करना है'। आपकी यह दृढ़ता एक दिन भी टूटनी नहीं चाहिए और 'इसके प्रतिपक्षी होना है', ऐसा नहीं होना चाहिए।

सतत स्व में रखती हैं पंचाज्ञा

प्रश्नकर्ता : स्व में सतत कैसे रह सकते हैं?

दादाश्री : पाँच आज्ञाएँ दी हैं। यदि उनमें रहेगा तो सतत स्व

में ही रहेगा न! यदि सतत उन पाँच आज्ञाओं में रहा, एक दिन रहा तो एक दिन के लिए मेरे जैसी स्थिति हो जाएगी उसकी। मैं भी पाँच आज्ञाओं में ही रहता हूँ और आप भी पाँच आज्ञाओं में रहते हो। यदि आप एक दिन आज्ञाओं में रहते हो तो आप एक दिन के लिए 'दादा' हो गए। दो दिन आज्ञाओं में रहते हो तो दो दिन के लिए 'दादा'। मैं निरंतर जिन आज्ञाओं में रहता हूँ, उन्हीं आज्ञाओं में आपको रखता हूँ। मुझे आज्ञा में रहना नहीं पड़ता। आज्ञाएँ तो मेरी हैं लेकिन मैं जिस रास्ते पर चला हूँ, उसी रास्ते पर आपको चलवाता हूँ, कोई और रास्ता नहीं। यानी कि शॉर्टकट है न, वर्ना दूसरा शॉर्टकट कहाँ हो सकता है?

विरला पाता है विशेष आज्ञा

आपके मन में ऐसा नहीं होना चाहिए कि रोज़ दिन भर सत्संग करवाते रहते हैं। मन में ऐसा सोचना कि, 'ओहोहो! मुझे आज्ञा मिली! वर्ना आज्ञा लाए ही कहाँ से! आज आज्ञा मिली है इन दादा से!'

आप तो प्रेम की खातिर करना है, अपने खुद के लिए करना है। आज्ञा ही धर्म है और उसी से मोक्ष होगा। आप दूर किसी शहर से यहाँ आओ और विधि करके फिर एक ही घंटे में मैं कहूँ कि 'वापस जाइए', तो मन में इतना आनंद हो जाना चाहिए कि, 'ओहो, मुझे आज्ञा मिली! तो पालन करूँगा ही', ऐसा तय हो जाना चाहिए। उस समय इतना आनंद होगा! आप ऐसे में क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : 'दादा ने कहा, वही करेक्ट', ऐसा करके चले जाते हैं।

दादाश्री : नहीं। लेकिन इसका कोई अर्थ ही नहीं, इससे लाभ नहीं होगा, उस समय।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसी समझ होनी चाहिए।

दादाश्री : 'मुझे आज्ञा मिली! ऐसी आज्ञा तो मुझे ज़िंदगी में नहीं मिलती कभी भी।' इतनी अधिक कीमत है आज्ञा की। 'कभी भी मुझे मना नहीं करते। इसलिए आज्ञा मिली है तो कितना बड़ा, उज्ज्वल पुण्य

होगा मेरा!' ऐसा खूब आनंद होना चाहिए भीतर। यही विचार आना चाहिए कि, 'ओहो! आज आज्ञा मिली।' उसका हेतु देखना चाहिए, ज्ञानी पुरुष की आज्ञा, वही धर्म और वही तप। खुद की इच्छा से करना, वही जोखिम है। उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया यानी खुद की इच्छा से करने गया। पालन करना हो तो करे लेकिन मुँह बिगाड़कर पालन करना, कितना बड़ा जोखिम है! उससे दादा के प्रति अभाव हो जाएगा कभी। आज्ञा तो सब से बड़ा उपहार कहलाता है। किसे मिलती है? 'कितनी मुसीबतें झेलकर बड़ौदा दर्शन करने आया, लेकिन दादा ऐसा कह रहे हैं, मेरा पुण्य कितना ज़बरदस्त है! ऐसा कभी कहते ही नहीं हैं न!' पागल हों फिर भी दादा ऐसा नहीं कहेंगे। क्या ये ऐसे हैं कि कुछ कहें? क्या दादा ऐसा कहेंगे? लेकिन कितना ज़बरदस्त पुण्य है कि, 'मुझे ऐसी आज्ञा मिली।' आज्ञा पालन करने से मोक्ष हो जाता है, भयंकर पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। इसलिए समझो आज्ञा को! भगवान ने कहा है, 'आज्ञा ही धर्म है और आज्ञा ही तप है।' खुद की समझ से नहीं चलना है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर खुद की रिस्पॉन्सिबिलिटी (ज़िम्मेदारी) नहीं रहती।

दादाश्री : रिस्पॉन्सिबिलिटी नहीं रहती। खुद की समझ से ही चलना है, खुद की समझ से करने गए तो नहीं चलेगा। 'दादा ने कहा है इसलिए जाना पड़ेगा', जाते हो लेकिन अगर मुँह बिगाड़कर जाते हो न, तो उससे बरकत नहीं रहेगी। जो खुद के विचार से, खुद की ही धारणा अनुसार करते हैं, वे स्वच्छंद करते हैं।

यदि ब्रह्मचर्य की आज्ञा दी हो न, तो ज़िंदगी भर, 'अहो! अहो!' उस आज्ञा की बहुत कीमत रहनी चाहिए! आज्ञा की कीमत तुझे समझ में आती है थोड़ी-बहुत? उस समय असल तप करना होता है, और वहाँ आनंद है, यदि कीमत समझे तो।

प्रश्नकर्ता : ऐसा रहता है कि हमें दादा की आज्ञा का पालन करना चाहिए और पालन नहीं हो पाता, उसका दुःख भी रहता है।

दादाश्री : तब तो आज्ञा की कीमत समझ में नहीं आई है।

प्रश्नकर्ता : कीमत समझ में आ जाए तो पालन होगा ही।

दादाश्री : प्रतिक्रमण होने लगे हैं क्या अब? सब होता है क्या? थोड़ी जागृति आई है अंदर?

प्रश्नकर्ता : हाँ, आई है थोड़ी। लेकिन जितनी रहनी चाहिए, उतनी जागृति नहीं है।

दादाश्री : निरी चंचलता ही थी। इसमें (संसार में) बहुत जागृति है इसलिए उसमें नहीं रह पाती न! जैसे-जैसे यहाँ चंचलता कम होगी, वैसे-वैसे रह पाएगी।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे दादा की आज्ञा का पालन होगा, फिर घर में सभी के साथ एडजस्टमेन्ट वगैरह होगा, उसके बाद जागृति बढ़ेगी न?

दादाश्री : फिर राह पर आ जाएगा। तब तक राह पर नहीं आएगा न! खुद के मतानुसार चलता रहता है। अब तक जो भूलें हुई हैं, उन्हें ढूँढ निकाल!

हम आपको ताश खेलने की आज्ञा दें तो आपको उसका भी पालन करना चाहिए। ताश खेलते हो, उसकी कीमत नहीं है, आज्ञा पालन करते हो, उसकी कीमत है। आपने मना किया तो (नुकसान) हो चुका। आज्ञा से हर चीज़ मिलती है। हमारी आज्ञा, वही धर्म और वही तप। अभी यदि आप दोनों को दादा अचानक कहें कि, 'जाओ, जाकर सो जाओ', तो आपको चले जाना चाहिए और जाते-जाते मन में क्या मानना चाहिए कि, 'आज्ञा मिली! मुझे आज्ञा मिली!! आज मुझे आज्ञा मिली!!!' जगत् का सार क्या है? तब कहते हैं, 'आज्ञा'। फिर यदि डबल खाने को कहें तो डबल खा लेना चाहिए। नहीं खाने को कहें तो नहीं खाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आज्ञा का पालन करना है।

दादाश्री : उस समय आज्ञा मिली, इस पर बहुत ही, रात भर

आनंद आए, ऐसा होना चाहिए। आज्ञा मिलना बहुत मुश्किल बात है। मिलती ही नहीं है!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष का एक भी शब्द निकले तो वह पूरा आज्ञा के रूप में ही स्वीकार हो जाना चाहिए।

दादाश्री : फिर भी, यदि वैसी आज्ञा दी हो तो उसकी बात ही अलग है! आज्ञा के लिए शास्त्रकारों ने स्पष्ट लिखा है, 'आज्ञा ही धर्म है और आज्ञा ही तप है।' उसमें सबकुछ आ जाता है। आज्ञा में रहने का भाव रहता है न, निरंतर? अगर अभी तुझसे कहें कि 'तू अहमदाबाद चला जा।' तो?

प्रश्नकर्ता : चला जाऊँगा।

दादाश्री : तुरंत? आज्ञा बहुत काम करती है। जितना हो सके, उतना आज्ञा में रहो तो अच्छा। यानी आज्ञा की ही कीमत है। आज आज्ञा मिले तो दिन भर आनंद रहना चाहिए। फिर भले ही यहाँ से निकाल दिया हो लेकिन, 'ऐसी आज्ञा मिली न!' उसकी बहुत खुमारी रहनी चाहिए। क्योंकि वही धर्म और तप है। यह बाकी का जो सब करते हो, वह धर्म और तप नहीं है। पाँच आज्ञा पालन करते हो, वह धर्म है और अन्य जो आपको अलग से मिलती रहती हैं, वह और भी बड़ा धर्म है!

प्रश्नकर्ता : आपने जो आज्ञा दी हो न, उसमें रहें तो सचमुच खूब आनंद आता है।

दादाश्री : ज़िम्मेदारी आपकी नहीं, हमारी ज़िम्मेदारी है और वही धर्म और वही आनंद और वही सुख।

प्रश्नकर्ता : और आपने कहा हो तो उसमें रहना बहुत ही आसान हो जाता है।

दादाश्री : जिसे रहना है उसके लिए तो आसान है।

प्रश्नकर्ता : दादा, जो आज्ञा अनुसार चलता है वह खुद आत्मा ही हो गया?

दादाश्री : आत्मा होने के कारणों का सेवन करने लगा। जितना सेवन हो सके, उतना। अस्सी प्रतिशत सेवन हो या साठ प्रतिशत।

प्रश्नकर्ता : तो फिर बाकी उतना आज्ञा में नहीं रहता, ऐसा हुआ न? क्योंकि वह तो खुद के तरीके से चलता है।

दादाश्री : खुद का तरीका आया कि सबकुछ बिगड़ा, वह स्वच्छंद है। खुद की अक्ल से चलना। अभी पता नहीं चलेगा, वह तो जब उगेगा, तब पता चलेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें कैसा है कि आप आज्ञा देते हैं तो अंदर विरोध नहीं होता लेकिन तप रहता है। लेकिन उसके लिए धन्यता महसूस नहीं होती।

दादाश्री : वह इसलिए, क्योंकि समझ नहीं है। मुझे एक आज्ञा मिले तो पूरे दिन नींद नहीं आएगी, 'मुझे आज्ञा मिली!' उसका आनंद रहेगा! हमें तो बल्कि आज्ञा नहीं मिलती और यदि आज्ञा मिले तो मैं अहोभाग्य मानूँगा। मिलती ही नहीं है। विधियाँ मिलती हैं, बाकी सब मिलता है लेकिन आज्ञा नहीं मिलती।

प्रश्नकर्ता : फिर उसका फल क्या आता है, दादा? उल्लासपूर्वक आज्ञा पालन किया जाए तो उसका क्या फल मिलता है?

दादाश्री : वही मोक्ष है न!

प्रश्नकर्ता : अगर उल्लासपूर्वक पालन नहीं करे और विवशतापूर्वक पालन करे तो उसका क्या फल मिलता है?

दादाश्री : विवशतापूर्वक पालन करने का मतलब ही नहीं है न! वह तो, जैसे भैंस को बाँधकर अस्पताल ले जाते हैं और पीछे से मारते हैं, वैसा है। ज्ञानी पुरुष की आज्ञा तो कहाँ से मिले! आज्ञा के लिए तो लोग मेरे पास बैठे रहते हैं, 'कुछ आज्ञा दीजिए।'

दादा की सेवा करना अर्थात् आज्ञा की सेवा करना! आज्ञा की सेवा करना और दादा की सेवा करना, एक ही हैं।

प्रश्नकर्ता : आज्ञा सेवा से बढ़कर है?

दादाश्री : आज्ञा बढ़कर है। आज्ञा ही सेवा है। वही इन दादा की सेवा। बाकी सब तो व्यर्थ प्रयत्न हैं। तू अच्छा समझ गया! मैंने कहा, 'जा, दादा तेरे साथ बातचीत करेंगे। हेल्प फुल, अच्छी बातें करेंगे!'

प्रश्नकर्ता : महावीर भगवान ने, 'आज्ञा ही धर्म है', ऐसा कहा है न!

दादाश्री : सभी भगवानों ने कहा है ऐसा। और आज्ञा में तो बहुत बल होता है, ज़बरदस्त बल होता है। भयंकर रोग निकाल देती है। एक ही आज्ञा का यदि राज़ी खुशी से पालन करे तो कितना ज़्यादा फायदा होगा!

ये सभी ब्रह्मचर्य जो पालन करते हैं, वे आज्ञा की वजह से कर पाते हैं वर्ना पालन नहीं कर पाते। आज्ञा में तो ज़बरदस्त बल होता है। खुद की अक्ल लड़ाने गया कि मर गया। आज्ञा यानी खुद की अक्ल से नहीं। यदि अक्ल होती तो ऐसी पागलों जैसी स्थिति ही नहीं रहती न! यह तो, पुरुष भी पागल और स्त्रियाँ भी पागल, इसीलिए दु:खी हैं न बेचारे! आज्ञा आती है तो सभी दु:खों को खत्म कर देती है। आज्ञा तो चेतन है। वर्ना ये जवान लड़के ब्रह्मचर्य का पालन कैसे कर पाते? कहीं भी, आज्ञा हाज़िर हो ही जाती है और रक्षा करती है। यों ही नहीं मिलती किसी को आज्ञा। ये पाँच मिली हैं, वही। स्पेशल आज्ञा नहीं मिलती।

प्रश्नकर्ता : दादा, ये जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं न, उनका ध्यान नहीं रहता इसलिए इसमें बहुत कमी रह जाती है।

दादाश्री : ऐसा धीरे-धीरे होगा। पहले निदिध्यासन ही कहाँ होता था? उसके अंतराय टूट जाएँगे तब फिर हो पाएगा। वे सभी चीज़ें आएँगी।

प्रश्नकर्ता : टाइम व्यर्थ चला जाता है अभी।

दादाश्री : नहीं-नहीं। टाइम व्यर्थ नहीं जाता। कढ़ी बनाने रखी तो क्या टाइम व्यर्थ गया? कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसा निश्चित मानना। जिसे टाइम नहीं बिगाड़ना है, उसका नहीं बिगड़ता। निदिध्यासन अच्छा रहता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा। जैसा चाहूँ वैसा रहता है।

दादाश्री : और आज्ञा मिल जाए तो बहुत हो गया। आज्ञा मिले तब समझना कि, 'आज अब मेरा धन्य दिवस है।' बुद्धि ऐसा सब बताती है कि व्यर्थ जा रहा है, उसे एक ओर बैठा देना। सच्चे दिल से किया हुआ कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। इन पाँच आज्ञाओं का पालन करने में ज़रा मज़बूती रखने की ज़रूरत है। बाकी कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा ने सबकुछ दे दिया है या अभी भी कुछ बाकी रखा है?

दादाश्री : सबकुछ दे दिया है। कुछ बाकी नहीं रखा। आपको कुछ लगता है बाकी? रास्ते में कुछ कम पड़ रहा है? नाश्ता-वाश्ता कुछ कम पड़ रहा है? कम पड़े ऐसा नहीं दिया है, अंत में मोक्ष पहुँचने तक कुछ कम पड़े, ऐसा नहीं है! लेकिन कहे अनुसार गठरी खोलकर फिर खाना चाहिए। जो आज्ञाएँ दी हैं न, पाँच, उस गठरी को खोलकर खाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : और फिर नया-नया मिलता रहता है हर रोज़।

दादाश्री : नया-नया लेकिन वह चीज़ उसी में मदद करती है। जो दिया है न, उसी में मदद करती है। यह सब नया-नया, तरह-तरह का नया होता है न!

आज्ञा से हट जाता है कुसंग

यह जो ज्ञान देते हैं न, तब ये जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं वे अभ्यास के लिए दी हैं। यह संसार, अभ्यास का परिणाम है। इस संसार का अभ्यास किया, इसलिए अध्यास हो गया। अध्यास क्यों हो

गया? वह अभ्यास किया इसलिए, और इस अभ्यास के कारण फिर छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी अपने आप ही पूर्णता होती रहेगी। हमारी परिणती किस पॉइन्ट पर होनी चाहिए, तो वहाँ से पूर्णता होगी?

दादाश्री : आज्ञा पालन पर, अन्य किसी पर नहीं। परिणती आज्ञा पालन करने पर रहेगी तो वहाँ अंत तक पहुँचेगा। बस, और कुछ भी ज़रूरी नहीं है। आज्ञा पालन का उसका ध्येय होगा तो उसे अंतिम पूर्णत्व अपने आप होता ही रहेगा। उसे कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। अन्य कोई दर्शन नहीं करना है। पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। यदि आज्ञा पालन करे तो दादा से मिलने की भी ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मिलना तो पड़ेगा, यह भी आज्ञा में आ गया।

दादाश्री : ये तो, दादा से मिलने का कारण इतना ही है कि स्पीडी हल आ जाए, जल्दी से। और यदि छः महीने मेरे साथ घूमे तो पूरा हो जाएगा न! स्पीडी उसका हल आ जाएगा।

आप यदि आज्ञा पालन करते हो न, तो वही दादा हैं, और रूबरू आएँ तो बात ही अलग है। वर्ना आज्ञा पालन किया जाए तो दादा नहीं हों फिर भी चलेगा। कीमत आज्ञा की है। रूबरू तो सिर्फ डायरेक्ट शक्तियाँ प्राप्त हो सके, उसके लिए है। आज्ञा से इन्डायरेक्ट शक्तियाँ मिलती हैं और रूबरू, डायरेक्ट शक्ति।

प्रश्नकर्ता : यह जो सत्संग करना है, क्या वह आज्ञा पालन करने के लिए ही करना है?

दादाश्री : सबकुछ आज्ञा पालन के लिए ही है। सत्संग से सभी कर्म ढीले हो जाते हैं। ढीले हो जाते हैं जिससे आज्ञा पालन में सरलता रहती है। नहाने के बाद इंसान कैसा लगता है? आलस-वालस उसका चला जाता है न! उसी तरह सत्संग से सारा आलस छूट जाता है। संसार यानी निरे कुसंग की टोली! पसंद नहीं हो, फिर भी उसमें पड़े रहना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : ये पाँच आज्ञाएँ एक-दूसरे से जुड़कर शुद्धात्मा के फेवर (तरफदारी) में किस तरह कार्य करती हैं, वह समझाइए?

दादाश्री : पाँच आज्ञाएँ तो प्रोटेक्शन हैं। वर्ना इस कुसंग के वातावरण में (दूसरे) सबकुछ खा जाएँगे। ये आज्ञा प्रोटेक्शन हैं। ये आज्ञाएँ आत्मा में कोई हस्तक्षेप नहीं करतीं। बाकी, घर में, ऑफिस में, सर्वत्र इस कलियुग में कुसंग ही है। इन आज्ञाओं का पालन किया जाए तो कुछ भी स्पर्श नहीं करेगा और निरंतर समाधि रहेगी।

नहीं है ज़रूरत आज्ञा के रटन की

प्रश्नकर्ता : पाँच आज्ञाएँ, जिस भी तरीके से स्वाभाविक रूप से याद रहें, उसी तरह से रखनी हैं? उनका मनन या रटन करने की ट्राई (कोशिश) नहीं करनी है?

दादाश्री : मनन कर ही नहीं सकते उनका। उनके गुण का मनन कैसे होगा? मन तो फिज़िकल है। चेतन मन तो आपके पास रहा नहीं। वापस कहाँ यह सारी अक्ल लड़ाने जाओगे? आपका यह जो मन बचा है न, वह फिज़िकल माइन्ड है। अब, क्या फिज़िकल और चेतन, दोनों का मेल हो सकता है? रह सकता है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : चेतन माइन्ड जो कि वास्तव में चेतन नहीं था, वह पावर चेतन था, वह भी खत्म हो गया है, पूरा ही। जो चीज़ दुनिया में कभी भी न मिले, वह चीज़ मिली है, अब हमारी आज्ञानुसार रहो, बस। और ये आज्ञाएँ आसान हैं या कठिन?

ज्ञानी का सानिध्य, वही मोक्ष है

अभी आपका और मेरा परिचय कितने घंटों से है, बताओ? मूलतः तो सारा लोक-परिचय ही, उसके लिए पूरी ज़िंदगी बिता रहे थे। मोक्षमार्ग पाने के लिए बिता रहे थे। लेकिन यह तो, नकद मोक्ष मिलता है, उसके लिए है। उस क्रमिक मोक्षमार्ग में तो आगे जाकर

वापस भटक भी सकता है, फिर भी उसी में पूरी ज़िंदगी बिता रहे थे। तो क्या इसके लिए परिचय नहीं चाहिए?

ज्ञान मिला, इसका मतलब ऐसा है कि आप लोक-परिचय से मुक्त हो गए। इसके बावजूद भी आपको ऐसी स्ट्रोंग भावना रखनी चाहिए कि ज्ञानी का परिचय मिलना चाहिए। निरंतर, आते-जाते, कभी भी, जितना यह परिचय उतना लाभ।

प्रश्नकर्ता : दूसरा क्या होता है कि मेरी तबीयत ज़रा ठीक नहीं रहती इसलिए दादा का लाभ नहीं ले सकता। वह ज़रा अंतराय है।

दादाश्री : ऐसा है न, इन दादा का लाभ तो जितने दिन मिला उतने दिन सही। अत: जितना लिया जा सके, उतना लेना। अब, जैसे ही यहाँ आएँ, तुरंत ही लेना। जब तक नहीं आते हैं तब तक निदिध्यासन में रहना। दादा यानी कौन? निदिध्यासन से दादा हाज़िर हो जाते हैं, लेकिन मुख्य रूप से आज्ञा ही दादा हैं! सब से बड़ा ध्येय उनकी आज्ञा पालन का ही रखना है और कुछ करने जैसा नहीं है। ये जो दिखाई देते हैं, वे दादा नहीं हैं। 'हम' इन दादा से तो अलग हो गए हैं। आप जब याद करोगे तब 'दादा' आपके साथ ही होंगे।

प्रश्नकर्ता : इन दादा से भी आप अलग हो गए हैं?

दादाश्री : अलग रहते हैं। इसीलिए तो आप सभी को लाभ होता है न! इन्हें जो भी याद करेगा इन्हें (दादा भगवान को) पहुँच जाएगा। हम कहते हैं न, कि 'भाई, हम अलग हैं।' ये दादा, वे दादा नहीं हैं। ये तो पब्लिक ट्रस्ट हैं! जिसके हाथ लगा उसके बाप का। हमारे हाथ में भी नहीं है।

अक्रम का फ्लाईव्हील

आज्ञा का फ्लाईव्हील एक सौ इक्यासी तक घूमा कि गाड़ी (अपना पुरुषार्थ) चली। एक सौ अस्सी तक रकम जमा करवानी है। एक सौ इक्यासी हुआ कि वह अपने खुद के ज़ोर से चलेगा। ये बड़े

फ्लाईव्हील होते हैं न, वे यहाँ से यहाँ तक, उसे यहाँ आधे तक ऊपर उठाया जाए फिर बाकी का आधा वह अपने आप, अपने खुद के ज़ोर से घूमता है। उसी तरह यह भी बाकी का आधा अपने आप ही घूमेगा। हमें वहीं तक ज़ोर लगाना है, बस। बाद में तो अपने आप सहज हो जाएगा, पूरा व्हील घूमने का।

यानी कि जब आपका एक सौ इक्यासी तक पहुँच जाएगा न, उसके बाद डरने का कोई कारण नहीं रहेगा। बाद में अपने आप घूमेगा फिर। हमने कम उम्र में ही यह खोज की थी कि यह पूरा तीन सौ साठ है तो कहाँ तक घुमाना चाहिए हमें? फिर खोज की कि एक सौ इक्यासी तक पहुँचने के बाद फिर अपने आप घूमता है।

वह तो, अपने यहाँ मिल में फ्लाईव्हील होते हैं न, वैसा। यह वैसा ही फ्लाईव्हील है अक्रम का। अक्रम का फ्लाईव्हील ऊपर नहीं जाता लेकिन यदि एक सौ इक्यासी तक ले जाए तो हल आ जाएगा।

फिर भी लोग कहते हैं कि, 'दादा, पूरी सौ प्रतिशत आज्ञा पालन कैसे हो सकता है?' मैंने कहा, 'सौ प्रतिशत नहीं, अस्सी प्रतिशत पालन कर न, तू!' अस्सी प्रतिशत वाला कहता है, 'अस्सी प्रतिशत कैसे पालन होगा?' तब मैंने कहा, 'साठ प्रतिशत पालन कर तू। इक्यावन प्रतिशत तक पालन करना, शेष उनचास हम जोड़ देंगे।' क्योंकि मैंने देखा है, एक मिल में एक बड़ा फ्लाईव्हील था, उसमें उसे आधे तक उठाकर ले जाते हैं, स्ट्रेट वे से। बाद में अपने आप ही घूमता है, उसके अपने फोर्स से। यदि इक्यावन पर जाए तो! पचास पर नहीं। और उनचास तक पहुँचे तो 'वापस घूम जाता है'। ऐसी दुनिया में कुछ हेल्पिंग तो होगा न, किसी भी कार्य के पीछे हेल्पिंग होता ही है। यदि हेल्पिंग का ध्यान नहीं रहेगा, तो आप साइन्टिस्ट नहीं कहे जाओगे। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि बार-बार ऐसे दादा नहीं मिलने वाले और दादा का ज्ञान भी नहीं मिलने वाला। यह अक्रम विज्ञान बार-बार देखने को नहीं मिलेगा। इसलिए इक्यावन प्रतिशत पर इससे काम निकाल लेना। वर्ना इस दुनिया का कोई किनारा नहीं है।

अभी तो इतना ही है कि मोक्ष का, दूज का चंद्रमा हुआ है, अब उसमें से तीज-चौथ होनी चाहिए। इसलिए अब काम निकाल लो।

ज़रूरत जागृति की ही

प्रश्नकर्ता : आज्ञा के लिए ऐसा सहज क्यों नहीं हो जाता?

दादाश्री : वह तो खुद की कमी है।

प्रश्नकर्ता : क्या कमी है?

दादाश्री : जागृति की कमी, उपयोग रखना पड़ता है न थोड़ा-बहुत।

एक व्यक्ति लेटे-लेटे विधि कर रहा था। अब जागते हुए, पच्चीस मिनट लगते हैं, बैठे-बैठे। और लेटे-लेटे करने में उसे ढाई घंटे लग गए। ऐसा क्यों?

प्रश्नकर्ता : बीच में झपकी ले लेता है।

दादाश्री : नहीं, प्रमाद उत्पन्न हो जाता है इसलिए फिर यह भूल जाता है कि कहाँ तक बोला था। फिर से दोहराता है। अपना विज्ञान कितना अच्छा है। कुछ दखल हो जाए, ऐसा नहीं है। थोड़ा-बहुत रहता है?

प्रश्नकर्ता : एट ए टाइम पाँचों आज्ञाओं का पालन करना इतना आसान नहीं है न! वह खींच ले जाता है मन को!

दादाश्री : रास्ते पर चलते-चलते शुद्धात्मा देखते जाने में क्या कठिनाई है? कैसी कठिनाई? डॉक्टर ने कहा हो कि, 'आज से आठ-दस दिन तक दाहिने हाथ से मत खाना।' वह याद रखना है, बस इतना ही काम है न? यानी कि थोड़ी जागृति रखनी है, इतना ही काम है न! जागृति नहीं रहती इसलिए दाहिना हाथ चला जाता है उस ओर। अनादि से उल्टा अभ्यास है।

ये पाँच वाक्य तो बहुत भारी वाक्य हैं। ये वाक्य समझने के लिए... ये बेसिक (आधारभूत) हैं। लेकिन बेसिक बहुत भारी हैं।

धीरे-धीरे समझ में आते जाएँगे। यों दिखते हैं हल्के, हैं भी आसान, लेकिन दूसरे अंतराय बहुत हैं न! मन में विचार चल रहे हों, अंदर धूल उड़ रही हो, धुआँ उठ रहा हो, तब वह रिलेटिव और रियल कैसे देख पाएगा?

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी जो पाँच आज्ञाएँ हैं, उनका पालन करना ज़रा कठिन है या नहीं?

दादाश्री : कठिन इसीलिए है कि आपको पिछले कर्म धक्के लगाते रहते हैं। पिछले कर्मों की वजह से आज खीर खाने को मिली और ज़्यादा खीर माँगता है, उससे डोज़िंग हो गई इसलिए आज्ञा पालन नहीं हो सका। अब यह अक्रम है। क्रमिक मार्ग में क्या करते हैं कि खुद सारे कर्मों को खपाते-खपाते आगे बढ़ता है। खुद कर्मों को खपाकर, अनुभव करके और भुगतकर फिर आगे बढ़ता है और यह बात कर्म खपाए बगैर की है। इसलिए हमें ऐसा कहना है कि, 'भाई, इन आज्ञाओं में रहना और नहीं रह पाओगे तो चार जन्मों की देरी होगी। उससे क्या नुकसान होने वाला है?'

आत्मा की रक्षा करती हैं आज्ञाएँ

आज्ञा (की बाड़) में कमी (फासला) रह जाए तो गायें-भैंसे सब खा जाएँगी इसलिए सब से पहले प्रोटेक्शन तो चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : आज्ञा, वही प्रोटेक्शन है!

दादाश्री : सब से बड़ा प्रोटेक्शन वही है। ज्ञान तो प्रकट हो गया है और बाहर प्रोटेक्शन के लिए पाँच आज्ञाएँ दीं। यदि और दो-चार साल 'फुल' ऐसा रखेंगे तो फिर चल पड़ेगा। बाद में यदि कुछ रह गया होगा तब भी सहज हो जाएगा। बाद में जतन करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। जैसे कि एक पौधे के बड़ा होने तक ही, बाद में जतन की ज़रूरत नहीं रहती, वैसे।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो पाँच आज्ञाओं का निश्चय है, तो वह किसमें आता है?

दादाश्री : वह सब आत्मा में नहीं आता, आत्मा की रक्षा के लिए है। *पुद्गल* माना जाएगा उसे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि *पुद्गल* उसमें एकाकार न हो जाए, इसलिए है?

दादाश्री : एकाकार न हो जाए और बाहर का वातावरण छूए नहीं आत्मा को, बीच में ऐसी रक्षण-बाड़ है। बस बाड़, प्रोटेक्शन!

प्रश्नकर्ता : यानी कर्म के उदय से हम शायद एकाकार हो जाएँ, लेकिन यदि ऐसा निश्चय किया होगा तो वह हमारी हेल्प करेगा।

दादाश्री : हाँ, उदय के समय रक्षण करता है। आप आज्ञा पालन करोगे तो कर्म के उदय आपको छूएँगे ही नहीं। जिसे आज्ञा का पालन करना है, उसे कुछ भी नहीं छू सकता।

प्रश्नकर्ता : दादा, हंड्रेड परसेन्ट आज्ञा यानी कि सौ प्रतिशत उपयोग हो गया न?

दादाश्री : सौ प्रतिशत रह ही नहीं सकता इंसान को। मैंने कहा है न, 'सत्तर प्रतिशत पालन करे तो बहुत हो गया न।' सौ प्रतिशत पालन करे तो कहा जाएगा, 'भगवान हो गया'।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो जहाँ-जहाँ हम आज्ञा चूक जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपयोग चूक जाते हैं?

दादाश्री : चूक ही गए न, वह तो। उसके लिए बहुत चिंता नहीं करनी है। आपको अब, प्रगति कैसे हो, यही देखना है। चूक गए, वह तो... चूकना तो है ही, गलतियाँ तो होनी ही हैं। गलतियाँ तो, जितनी 'देखीं' उतनी चली जाती हैं और जितनी चली गईं उतनी शक्ति देकर जाती हैं। गलतियों की वजह से जो कमज़ोरी आ गई थी, उन गलतियों के निकल जाने से शक्ति उत्पन्न होती है। गलतियाँ *ऊपरी* (बॉस, मालिक) हैं, और कोई *ऊपरी* नहीं है। ब्लंडर्स तो चले गए।

अपना ज्ञान ऐसा है कि अपने आप निरंतर सहज होता ही जाता

है। जैसे-जैसे समय गुज़रता है न, वैसे सहजता आती जाती है। आपको तो हमारी आज्ञा की आराधना करनी है, सिर्फ ऐसा निश्चय रखना है। आराधना नहीं हो सके या आराधना हो, उससे परेशानी नहीं है मुझे। आपको निश्चय रखना है कि, 'मुझे आज्ञाएँ चूकनी नहीं हैं।' उसके बाद यदि चूक जाओ तो उसके लिए आप जोखिमदार नहीं हो। इस दूषमकाल में यदि इतनी छूट नहीं देंगे तो कौन मोक्ष पा सकेगा?

प्रश्नकर्ता : कभी कभार आज्ञा भूल जाते हैं, लेकिन अंतर में तो रहता है कि पालन करना ही है।

दादाश्री : भूल जाते हो, उसके लिए प्रतिक्रमण करना। इंसान जितना भूल जाता है, उसमें कभी भी उसका गुनाह नहीं है। उसके लिए मैंने उपाय बताया है न, कि जब ऐसा याद आए कि, 'भूल गए', तब आप प्रतिक्रमण करना कि, 'दादा, मुझसे तो आज्ञा का पालन नहीं हो सका। दो घंटे तो पूरे यों ही बेकार चले गए। मुझे क्षमा करना। फिर से ऐसी गलती नहीं करूँगा।' इतना ही यदि बोलोगे न, तो भी पूरी तरह पास हो जाओगे। हंड्रेड परसेन्ट मार्क्स दे देंगे, निन्यानवे नहीं करेंगे। फिर अब इससे ज़्यादा क्या चाहिए?

आज्ञा में रहने से आपके काम सहज भाव से होते ही रहेंगे। उस पर लोग कहते हैं, 'दादा, आपकी कृपा से हो गया।' अरे! इसमें कृपा नहीं है। कृपा तो कभी किसी दिन परेशानी हो तब होती है। यह तो, आज्ञा में रहता इसलिए सहज भाव से हो जाता है। यह तो विज्ञान है।

कोरी स्लेट पर साफ अंक

आप ज़रा ठीक से पद्धतिपूर्वक समझ लेना। बहुत उलझन वाला सवाल लेकर आए हुए हों और खुद ही हल करने लगें तो क्या होगा? यदि ज्ञानी पुरुष की आज्ञा में रहेंगे न, तो समाधि रहेगी। लेकिन आज्ञा में रह नहीं पाते न! कैसे रह पाएँगे आज्ञा में? पिछला ज्ञान उन्हें उलझा देता है न? यदि पिछला ज्ञान सारा ही फ्रेक्चर कर दिया हो तो कोई दखल नहीं होगा।

हमने जो आज्ञाएँ दी हैं न, यदि उन आज्ञाओं में रहे न, तो निरंतर समाधि में रह सकते हैं। ये आज्ञाएँ कठिन भी नहीं हैं। इनमें क्या कोई विरोधाभास लगता है? अपने यहाँ तो जिसका कागज़ कोरा हो उसका जल्दी हल आता है। और फिर पुस्तकें पढ़ते रहते थे, यदि पुस्तकें नहीं पढ़ी होतीं न, तो बहुत उच्च दशा होती। ये पुस्तकें तो फिर मार खिलाती रहती हैं।

हमने तो यहाँ कितने ही लोगों को ज्ञान दिया है, वे निरंतर समाधि में ही रहते हैं। क्योंकि दखल नहीं है न! उसने तय कर लिया कि, 'जो बातें हम मानते थे, वे सारी बातें दादाजी के कहे अनुसार झूठी निकलीं।' इसलिए वह बात एक ओर रख दो। जो कुछ भी नहीं समझता, यहाँ उसका जल्दी हल आ जाता है।

ज्ञानी पुरुष की पाँच आज्ञाओं में रहना होगा। पाँच आज्ञा का पालन किया जाए तो निरंतर समाधि। हम गारन्टी बॉन्ड लिखकर देते हैं। निरंतर समाधि रहे, ऐसा है! आज्ञा पालन होता है, थोड़ा-बहुत?

प्रश्नकर्ता : पालन होता है, होता है।

दादाश्री : सभी आज्ञाओं का पालन करे तब कल्याण होगा। कितनी पालन की तूने?

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे याद आती हैं वैसे-वैसे पालन करता हूँ, दादा।

दादाश्री : याद आती हैं तब? पाँच आज्ञाओं का ज़ोर-शोर से पालन करो। अभी कुछ और समय तक जीओगे, करो न कुछ, बाद में जब जिंदा नहीं रहोगे तब क्या करोगे? देह का क्या भरोसा? कौन बचाएगा? यह ज्ञान भी चला जाएगा और मोक्ष भी चला जाएगा, यदि इस धाँधली में और धमाल में पाँच आज्ञा का पालन नहीं हो पाए तो। आज्ञा पालन किए बिना कुछ भी नहीं हो पाएगा। यह क्या कोई गप्प है? यह तो विज्ञान है।

ज्ञान के बाद आज्ञा पालन नहीं करे, तब...

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का ज्ञान देकर आप उस समय *'लक्ष'* (जागृति) देते हैं, उसके बाद आप पाँच आज्ञाएँ देते हैं। अब, यदि उन पाँच आज्ञाओं का हम बिल्कुल भी पालन नहीं करें, और आपने जो *लक्ष* दिया है वह *लक्ष* हो चुका है, ऐसा मानकर चलें तो?

दादाश्री : वह *लक्ष* चला जाएगा। अभी तो रहेगा लेकिन धीरे-धीरे, ग्रैजुअली चला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी वापस जहाँ से हमें उठाया था, वहीं रहेंगे?

दादाश्री : नहीं, उस जगह पर नहीं। वह उल्टी जगह पर जाएगा। हाँ! क्योंकि जिस जगह पर था, वहीं अच्छा था। यह तो, एक तो ज्ञान लिया और फिर आज्ञा पालन नहीं किया। आज्ञा पालन नहीं किया तो जोखिम है। वह उल्टी जगह पर जाएगा। इसमें कुछ स्त्रियाँ अपवाद हैं। स्त्रियों को तो भक्ति ही रहती है। उन तक यह ज्ञान पहुँचता ही नहीं, उन्हें सिर्फ दादा की भक्ति ही रहती है। दादा पूरा दिन याद रहा करते हैं। तभी तो कृपालुदेव ने कहा है कि, 'ज्ञानी पुरुष, वे अपना आत्मा ही हैं।' यानी स्त्रियों को यह जो रहता है न, वह ठीक है। उन्हें आज्ञा ठीक से समझ में नहीं आती।

प्रश्नकर्ता : तो उन्हें भक्ति ही रहती है?

दादाश्री : हाँ, उन्हें भक्ति रहती है। ये पुरुष यदि आज्ञा पालन नहीं करें तो जोखिम है। आज्ञा से ही सारा रक्षण है। इन अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति का रक्षण किससे है? तब कहते हैं, 'आज्ञा से'।

प्रश्नकर्ता : यानी दादा, महत्वपूर्ण तो आज्ञाएँ हुई न?

दादाश्री : आज्ञाएँ ही महत्वपूर्ण हैं। आज्ञा पालन करने से बाहर धर्मध्यान उत्पन्न होता है और अंदर शुद्धात्मा से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। यानी अंदर शुक्लध्यान और बाहर धर्मध्यान, इस तरह बरतता है वह। आज्ञा पालन कम या ज़्यादा हो, वह अलग बात है लेकिन जो

पालन करता ही नहीं, जिसे जागृति ही नहीं है, वह तो न जाने कहाँ फिंक जाएगा, उसका ठिकाना ही नहीं है न! क्योंकि शुद्धात्मा का *लक्ष* चला जाएगा, धीरे-धीरे।

रक्षण, बिना टिकट वाले दादा का

ऐसा है न, स्त्रियों को नाम स्मरण करने से चलता है। इन पुरुषों को पाँच आज्ञा में रहना चाहिए, क्योंकि उन्हें जागृति है और स्त्रियों में जागृति कम होती है। पुरुषों को ऐसा आयोजन करना चाहिए कि पाँच आज्ञा में रह सकें।

प्रश्नकर्ता : लगभग पूरे दिन दादा याद रहते हैं। दादा को भूल ही नहीं पाते!

दादाश्री : जिन्हें भूलने की ज़रूरत न पड़े, ऐसे हैं ये। यदि इन्हें भूलने का प्रयत्न किया जाए तो और भी ज़्यादा याद आते हैं, और तब तक इनका रक्षण है। इसमें यह सारा ज्ञान काम नहीं करता, दादा का रक्षण ही इतना है। अभी वहाँ अमरीका तक सभी को रक्षण है दादा का, निरंतर हाज़िर। हाज़िर रहते हैं इसलिए रक्षण करते हैं। हाज़िर रहने की क्या ज़रूरत है? वर्ना, कुछ और घुस जाएगा, वे हाज़िर नहीं रहेंगे तो।

प्रश्नकर्ता : वह तो, आप एयरपोर्ट पर जो कह गए थे, वह सब को बहुत अच्छा लगा कि, 'टिकट वाले दादा जा रहे हैं और बिना टिकट वाले दादा तो आपके पास ही हैं।'

दादाश्री : बिना टिकट वाले दादा आपके पास ही हैं, ठीक!

आज्ञाओं को समझा वह समझ गया सर्व

प्रश्नकर्ता : इन पाँच आज्ञाओं में रहना है, ऐसा जो भाव करे और आज्ञाओं को ठीक से समझ ले, तो इन दोनों में से किसका फल जल्दी मिलता है?

दादाश्री : आज्ञा समझ ले न, उस जैसा तो और कुछ भी नहीं

है!! समझने के बाद अपने आप सहज रूप से पालन होगा। और बिना समझे आज्ञा पालन करने जाएगा तो कुछ बरकत नहीं आएगी। फिर भी महात्मा कुछ न कुछ तो करेंगे, इसके पीछे पड़े हैं न!

प्रश्नकर्ता : यानी अब सिर्फ आज्ञा को एक्ज़ेक्ट समझना है और जो आत्मा पूर्ण स्वरूप से है उसे भी एक्ज़ेक्ट समझना है।

दादाश्री : आत्मा तो मैंने दे ही दिया है। इन आज्ञाओं को समझ जाए तो उसने पूरा आत्मा समझा हुआ ही है। इसलिए अब, आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप। लेकिन वह तो, आपको फुरसत मिलती ही नहीं न, कभी भी?

प्रश्नकर्ता : आज्ञा ऐसी चीज़ है कि उसमें टाइम फैक्टर की ज़रूरत ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, उसमें टाइम फैक्टर है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : जहाँ से संधान टूटा हो तो वापस वहीं से जोड़कर आज्ञा पालन जारी रख सकते हैं।

दादाश्री : हाँ, जोड़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा का जो साइन्स है, पहले उसे समझ लेंगे तो पाँच आज्ञाओं में रह पाएँगे या पाँच आज्ञा समझने पर दादा के विज्ञान की शुरुआत होती है?

दादाश्री : पहले विज्ञान को सुने और समझ ले, उसके बाद उसका रक्षण करने के लिए पाँच आज्ञाएँ हैं। यह विज्ञान खो न जाए, उसके लिए पाँच आज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : अब, ये जो मन-बुद्धि-चित्त हैं, उन्हें हम कब समझ सकेंगे? जब संपूर्ण रूप से पाँच आज्ञाओं में रहता हो तब फिर उन पर उपयोग रह सकेगा न?

दादाश्री : ऐसा उपयोग नहीं रहे तो कोई हर्ज नहीं। मन व

बुद्धि की हमें ज़रूरत नहीं है। पाँच आज्ञा में रहेगा न, तो फायदे में रहेगा। पाँच आज्ञा का पालन करे तो बहुत हो गया। मन-बुद्धि की कोई ज़रूरत ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा लगता है कि पहले दादा का विज्ञान समझ लें, फिर आज्ञा का ऑटोमैटिक पालन हो सकेगा, ऐसा है!

दादाश्री : पालन करना चाहे तो पालन हो सकेगा। वह खुद माने, यदि निश्चय होगा तो पालन हो सकेगा। विज्ञान को पूरा समझ लेगा तो आज्ञा पालन करने की शक्ति उत्पन्न होगी।

बाधक पिछले करार

प्रश्नकर्ता : आज्ञाएँ कठिन नहीं हैं। पालन करने का प्रयत्न तो करते हैं लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि आज्ञाओं में नहीं रह पाते।

दादाश्री : यदि नहीं रह पाते हो तो वह आपकी इच्छा तो है ही नहीं। नहीं रहा जाता यानी कि किसी का दखल है। अब, एक ओर मैं क्या कहता हूँ कि इस जगत् में कोई आप में दखल देने वाला है ही नहीं, लेकिन आपने पहले ये जो हस्ताक्षर कर दिए हैं, वे शोर मचाते हैं, उनका दखल है। हस्ताक्षर किए थे या नहीं किए थे, ज्ञान होने से पहले?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ये आपके, खुद के ही खड़े किए हुए दखल हैं और वही दखल देते हैं। उन दखलों का तो अंत आना ही चाहिए।

आप सब भी पुरुषार्थ के लिए तैयार हो ही। मैं जानता हूँ कि आप पुरुषार्थ कर सको, ऐसे हो। फिर भी पुरुषार्थ नहीं हो पाता, उसका क्या कारण है? पहले जो हस्ताक्षर किए थे, करार किए थे, वे करार परिपक्व हो जाते हैं और सुबह आ खड़े होते हैं। 'अरे! तू क्यों आया? अब मैं सुख में पड़ा हूँ'। तब कहता है, 'नहीं, पहले हमारा हिसाब चुका दीजिए, उसके बाद सुख में पड़े रहना।'

प्रश्नकर्ता : ऐसे तो कई हिसाब चुकाने हैं, तो लंबा चलेगा।

दादाश्री : नहीं! लंबा चलेगा, ऐसा नहीं। उसका नियम है ऐसा, आम के पेड़ पर जितने भी आम लगते हैं न, कितने? गिनने जाएँ तो अंत नहीं आएगा लेकिन आषाढ़ महीना आया तो पेड़ पर आम नहीं रहते। इसलिए घबराना मत। इन आमों को देखकर घबराना मत कि इन्हें कब तोड़ेंगे, कैसे गिनेंगे और कब खत्म होंगे? कुछ भी मत गिनना। उनका टाइमिंग होता है इसलिए इन बातों में घबराना मत।

सिर्फ उसी क्षण, जब वह करार वाला आए तब कहना, 'पधारिए, अब दादा मिल गए हैं, अब मुझे सभी करार पूरे करने हैं। आपका पेमेन्ट ले जाओ। और भी ले जाओ। अभी चार लोग ही क्यों आए हो? रात को बारह बजे तक पेमेन्ट करूँगा, लेकिन ले जाओ अब।' पेमेन्ट किए बगैर चारा ही नहीं है। जिन कार्यों को किए बिना चारा नहीं है, और वे दखल देते हैं तो पहले उन दखल देने वालों का *निकाल* करना चाहिए।

आपसे कहें कि, 'खाना खाने चलो, भूख लगी है न' तब कहना, 'भैया, इन दखल वालों का *निकाल* करने दो न, फिर आराम से खाना खाने बैठता हूँ।' तो इस दखल के निकल जाने के बाद वास्तविक पुरुषार्थ हो सकेगा।

जिस तरीके से हमारा दखल निकल गया है न, यह वही रास्ता मैं आपको बता रहा हूँ। हमारे सभी दखल निकल गए हैं, उन सभी को देखा है मैंने। मैंने आपको वही रास्ता बताया है। आषाढ़ महीने में आम नहीं दिखते न, आम के पेड़ पर?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : क्यों, इतने सारे थे न? अरे! अभी बैसाख महीने तक दिखाई दे रहे थे, बाद में ऊपर नहीं रहेंगे, वे तो काल परिपक्व होने के बाद नहीं रहेंगे। उन्हें (आम को) वेदना नहीं होती कि नीचे गिर जाएँगे, लेकिन एक भी (पेड़ पर) नहीं रहता। कोई खाने वाला नहीं होगा तो चिड़ियाँ खा जाएँगी, लेकिन उनका हल आ जाएगा पूरा। अतः दखल

को लेकर घबराना मत। पेमेन्ट चुकाना हो तब बल्कि ऐसा कहना, 'आओ, जल्दी पेमेन्ट ले लो। आ जाओ।' आपने जो करार किए, वे पूरे करने पड़ेंगे न? आप कहो कि, 'मेरा ऐसा हुआ है। अब मेरी सास परेशान करती है।' अरे! सास के साथ ऐसा करार है, अब उसे पूरा करो न? यह क्या, सास परेशान करती है? यह तो करार ही किया हुआ है। जैसा करार किया है, वह करार तो आपको पूरा करना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी करार किया हुआ माल है। उससे आपका शुद्ध उपयोग चला नहीं जाएगा। जैसे-जैसे समभाव से *निकाल* होगा, वैसे-वैसे संयम बढ़ता जाएगा। संयम को ही पुरुषार्थ कहा है। और जैसे-जैसे संयम बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे *निकाल* जल्दी होता जाएगा। जैसे-जैसे *निकाल* जल्दी होता जाएगा, वैसे-वैसे संयम बढ़ता जाएगा। ऑटोमैटिक सब होते-होते केवलज्ञान पर आ जाएगा।

आपको कुछ नहीं करना है। दादा की आज्ञा का पालन करना है और यदि आज्ञा का पालन नहीं हुआ तो उसकी भी चिंता नहीं करनी है। आज्ञा का पालन करना है ऐसा दृढ़ निश्चय। आपको आज्ञा का पालन करना है। आप कहो कि, 'दादा, मेरी सास झगड़ती है।' तो सास दिखाई दे उससे पहले आप मन में तय करना, 'फाइल आई, तो दादा की आज्ञा से इसका समभाव से *निकाल* करना है'। तय करने के बाद समभाव से *निकाल* नहीं हुआ तो उसके लिए जोखिमदार आप नहीं हो। आप आज्ञा पालन के अधिकारी हो।

आप अपने निश्चय के अधिकारी हो, उस कार्य के अधिकारी नहीं हो। किसके अधिकारी हो? आपका निश्चय होना चाहिए कि, 'मुझे आज्ञा का पालन करना ही है'। बाद में पालन नहीं हो सका और एक थप्पड़ मार दी तो उसके लिए आपको खेद नहीं करना है। यदि थप्पड़ मार दी तो दूसरे दिन मुझसे पूछ लेना कि, 'क्या करूँ अब?' तब मैं आपसे कहूँगा कि, 'प्रतिक्रमण करना। अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करना।' इतना सरल, सीधा, सुगम मार्ग ही समझ लेना है।

टिकट आखिर तक का

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर ये जो सभी महात्मा बैठे हैं, उनका क्या होना है?

दादाश्री : उनका जो होना होगा वह होगा। दादा का रक्षण है और दादा से वीज़ा लिया है, अतः उसे जिस स्टेशन पर जाना है, उस स्टेशन पर पहुँच ही जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम दादा के पास आए, दादा ने कहा कि, 'हमारे पास आए हो तो एक जन्म में, दो जन्म में मोक्ष में जाने वाले हो ही'। तब फिर अन्यत्र जाने की बात ही कहाँ है?

दादाश्री : हमने पालघर स्टेशन पर सब को (बॉम्बे) सेन्ट्रल का टिकट दिया है। अतः आपका सेन्ट्रल तक जाना पक्का हो गया। अब आपको जहाँ जाना हो, वहाँ जा सकोगे। बीच में जो भी स्टेशन आए, उनमें से आपको जहाँ उतरना हो वहाँ उतर सकते हो।

मन तो ऐसा कहेगा, 'हो जाएगा, अब हम यहाँ से कहीं आगे तो जा सकेंगे!' तो वह बोरीवली उतर जाता है। यदि मेरी आज्ञा का पूरा पालन करे, तो आखिर तक पहुँच सकेगा। जैसा पालन करेगा, वैसा खुद का मन ही बता देगा कि, 'हम से पूरा नहीं हो रहा है', अब वहाँ उतर जाता है। इस तरह कोई अंधेरी उतर जाता है, कोई दादर उतर जाता है। मुझे उतारना नहीं पड़ता, अपने आप उतर जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो बीच में उतर चुके हों, वे वापस आगे जाएँगे तो सही न?

दादाश्री : उनकी भावना होगी तो जाएँगे। बाकी, हमने तो आखिर तक जा सके, ऐसी यह टिकट दी है। हाँ, वह टिकट कुछ टाइम के लिए है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कितने टाइम के लिए है यह टिकट?

दादाश्री : वह कौन से स्टेशन पर उतरता है, इस पर निर्भर

करता है न! जो सत्तर प्रतिशत आज्ञा का पालन करेगा उसके लिए आखिर तक की टिकट है।

कभी आईने में देखकर *ठपका* (उलाहना) देना कि, 'अब तो सीधे रहो, ऐसा अंतिम स्टेशन फिर से नहीं मिलेगा।' क्रमिक मार्ग में हर व्यक्ति अपने-अपने स्टेशन पर तो उतरता है, लेकिन आगे की टिकट लेनी पड़ती है। जबकि यह तो लास्ट स्टेशन है और यहाँ कैसी शांति है! बीच वाले सभी स्टेशनों पर बेचैनी है। यानी अब गाड़ी यहाँ से आगे नहीं जाएगी। तो खाओ-पीओ और दादा की आज्ञा में रहो न!

ज्ञान के बिना आज्ञा

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरा प्रश्न है कि ज्ञान लिए बिना कोई पाँच आज्ञा का पालन करे और ज्ञान लेने के बाद पालन करे, तो उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : ज्ञान लिए बिना कोई पाँच आज्ञा पालन कर ही नहीं सकता न! रियल को कैसे देख सकेगा? रियल दिखाई कैसे देगा? जब तक रियल नहीं दिखाई देगा तब तक व्यवस्थित समझ में नहीं आएगा, समभाव से *निकाल* नहीं होगा।

आज्ञा के बिना ज्ञान

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद आज्ञा में नहीं रहे तो क्या होगा?

दादाश्री : यहाँ बारिश होने के बाद उसने बोया नहीं तो क्या हो जाएगा? क्या कोई जमीन ले जाएगा? अपनी जमीन तो रही न, वैसी की वैसी। लेकिन यदि आज्ञा में रहेगा तो मोक्ष का सुख भोगेगा।

प्रश्नकर्ता : यदि आज्ञा का पालन नहीं करेगा तो क्या उसे अन्य दोष लगेंगे?

दादाश्री : कुछ नहीं होगा। यह जमीन है, बारिश होने के बाद इस बारिश में बीज नहीं डाले आपने, तो जमीन कहीं चली नहीं जाएगी। बीज गए आपके!

यह तो ऐसा है न, कि जितना आप आज्ञाओं का आराधन पूर्ण करोगे वे उतना ही फल देंगी। आत्मा तो प्राप्त हो गया। अब, आज्ञा ही उसका प्रोटेक्शन है। आत्मा का संपूर्ण प्रोटेक्शन है। जितना उसका प्रोटेक्शन रखा, उतना आपका। वर्ना थोड़ा लीकेज हो जाएगा, उससे आत्मा का कुछ चला नहीं जाएगा लेकिन लीकेज हो जाएगा। इसलिए आपको जो सुख आ रहा होगा, वह नहीं आएगा और फिर सांसारिक जंजाल उलझन में डाल देंगे। सफोकेशन होता रहेगा और यदि आज्ञा पालन करोगे तो सफोकेशन नहीं होगा और उससे खुद को स्वतंत्रता महसूस होगी।

जहाँ आज्ञा वहाँ सर्व दुःखों से मुक्ति

यदि इन पाँच आज्ञाओं का पालन किया जाए न, फिर यदि आपकी संसार से लड़ाई चल रही हो, लड़ाई में लाखों लोग मर जाएँ, फिर भी कोई हर्ज नहीं है। जो आज्ञा में रहता है न, उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

जो पाँच आज्ञा का पालन करता है, उसे संसारी दुःख स्पर्श नहीं करते। यह विज्ञान ऐसा है कि संसारी दुःख स्पर्श ही नहीं करते। यह पहली मुक्ति है, और बाद में जब निर्वाण होगा तब दूसरी मुक्ति। मुक्ति के दो प्रकार हैं। पहली मुक्ति हो गई, सर्व दुःखों से मुक्त हो गए। यदि हमारी आज्ञा का पालन करोगे तो दुःख स्पर्श नहीं करेंगे। दुःख होने के बावजूद स्पर्श नहीं करेंगे। हाँ, *उपाधि* में समाधि रहेगी। आधि-व्याधि-*उपाधि* में भीतर, ज़बरदस्त *उपाधि* हो फिर भी समाधि रहेगी। ऐसा है यह चौबीस तीर्थंकरों का विज्ञान, अत्यंत कल्याणकारी!

पाँच आज्ञाओं में सभी धर्मों का दोहन

अब, वह शुद्ध उपयोग तो हमारी आज्ञाओं में आ जाता है या नहीं आता?

प्रश्नकर्ता : आ जाता है न!

दादाश्री : यानी आज्ञा, वही शुद्ध उपयोग है न! आपको क्या लगता है? या आज्ञाएँ फिर से सुधारनी पड़ेंगी? रिमोल्ड करनी पड़ेंगी?

प्रश्नकर्ता : कुछ बाकी ही नहीं है न इनमें!

दादाश्री : हाँ। दीज़ आर द फन्डामेन्टल सेन्टेन्सेस। ये क्या हैं? पूरे वर्ल्ड को तार दें, ऐसे हैं ये सेन्टेन्स। व्यवहार व निश्चय के भेद सहित हैं। वर्ना दूसरे तो, या तो इस गड्ढे में होते हैं या उस गड्ढे में।

बस, इन पाँच वाक्यों में पूरे वर्ल्ड का साइन्स आ जाता है। कहीं भी इसमें कुछ भी शेष नहीं रहता। इन पाँच आज्ञाओं में सारे शास्त्र समा जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह सभी का दोहन तत्त्व है, ऐसा कहें तो चलेगा।

दादाश्री : पूरे वर्ल्ड का दोहन ही है यह! महावीर के पैंतालीस आगमों का दोहन! पाँच आज्ञा में सब आ ही जाता है, यह सब तो अभी स्पष्टता के लिए, समझने के लिए बता रहा हूँ। यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो सभी चीजें आ जाती हैं। कुछ बाकी नहीं रहता।

आज्ञा को समझते जाओ

मूल चीज़ आप समझ गए न, पाँच आज्ञा? बस, संक्षेप में समझकर उस तरफ चलने लगो।

ये तो, इतने सारे साधन हैं कि पूछो मत। एक मशीन होती है तो उसमें भी इतने पुर्ज़े होते हैं। अगर मशीन खोलकर फिर से फिट करना हो तो भारी पड़ जाता है। तो फिर अगर इसे फिट करने जाओगे तो क्या होगा? आप काम से काम रखो न! इन पाँच वाक्यों को लेकर चलोगे तो गाड़ी चल पड़ेगी आपकी। जितना समझना है उतना समझ लिया। यह सब पूर्ण रूप से समझ लिया है आप सब ने। फिर अब आगे और गहरे मत उतरना, बस। गहराई में फिर सूक्ष्म-सूक्ष्म मशीनें आती हैं।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं समझते रहना है। तो फिर हमें क्या समझना है?

दादाश्री : यही, मोटा-मोटा समझ लेना ताकि आपका काम

होता रहे। आपके काम में परेशानी न आए, उतना समझ लेना। ज़्यादा समझने गए तो उलझ जाओगे।

प्रश्नकर्ता : कभी न कभी समझना तो पड़ेगा ही न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वही समझना है, अन्य कुछ नहीं समझना है। जो इतना समझ लेगा न उसे, वह निरावृत होगा और तुरंत ही सब दिखाई देगा। अंत में संपूर्ण निरावृत हो जाएगा। इस तरह से टुकड़े-टुकड़े करके पूर्ण होगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कब होगा?

दादाश्री : ये पाँच आज्ञाएँ पूर्ण होने पर। पाँच आज्ञाएँ पूर्ण हो जाएँगी तो उघाड़ हो जाएगा।

बाकी, लोक फँसाव में से तो छूट गए हैं हम सब! ये पाँच वाक्य दे दिए, ज़्यादा कुछ नहीं। इसलिए उलझने का कारण ही नहीं रहा!

एक में समाए पाँचों

प्रश्नकर्ता : ये जो पाँच आज्ञाएँ हैं उन पाँच आज्ञाओं में यों तो एक, दो, तीन, चार और पाँच ऐसे नंबर दिए हैं, लेकिन यदि पूर्ण रूप से एक ही आज्ञा पर विचार किया जाए तो पाँचों की पाँचों उसमें आ जाती हैं।

दादाश्री : पाँचों ही अंदर आ जाती हैं। लेकिन इनमें से प्रत्येक आज्ञा में क्या है कि जो आज्ञा मुख्य है न, उसमें पचास प्रतिशत उस आज्ञा का है और पचास प्रतिशत अन्य चार आज्ञाओं का है। ऐसा प्रत्येक में है। इसलिए तू जहाँ से बोलेगा, वहाँ से परिणाम मिलेगा। यानी कि पचास प्रतिशत तो, जो एक आज्ञा तू पकड़ेगा, उसके मिलेंगे लेकिन अन्य सभी में से भी कुछ प्रतिशत मिलेंगे तो सही। यानी सब (आज्ञाओं) से हेल्प मिलती है। यह तो वैज्ञानिक तरीका है और यह तो विज्ञान है न!

निश्चय-व्यवहार समाए पाँचों में

प्रश्नकर्ता : कल सत्संग में ऐसा आया था कि पाँच आज्ञाओं में से तीन व्यवहार की हैं और दो निश्चय की हैं, वह ज़रा समझना है। वह कैसे?

दादाश्री : यानी शुद्धात्मा देखना और रिलेटिव में उसकी पैकिंग देखना, ये दोनों निश्चय स्वरूप हैं। और अन्य तीन सिर्फ व्यवहारिक हैं। वे तीन व्यवहारिक और ये दो निश्चय। व्यवहार-निश्चय सहित है अपना यह पूरा मार्ग। निश्चय से शुद्धात्मा है और व्यवहार दृष्टि से सिर्फ बकरी ही दिखाई देगी। इसलिए ये दोनों निश्चय में ही जाती हैं और अन्य तीन व्यवहार की हैं और व्यवहार-निश्चय दोनों में संतुलन रखती हैं। ये पाँच आज्ञाएँ ठेठ मोक्ष में ले जाने तक काम करती रहेंगी और सरल व सीधी हैं। टेढ़ी नहीं, मेढ़ी नहीं। कुछ भी छोड़ने-करने को नहीं कहा है।

आज्ञा के आधार पर और एक अवतार

आपको कर्म बंधन होगा ही नहीं। सिर्फ हमारी आज्ञा पालन करने जितना ही कर्म बंधन होगा। उससे एक अवतार होगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की उपस्थिति हो तभी तक पाँच आज्ञा पालन करना है या बाद में भी?

दादाश्री : बाद में भी। इनका तो हमेशा पालन करना है।

प्रश्नकर्ता : अगले दो या तीन जन्मों में इसकी लिंक रहेगी या नहीं?

दादाश्री : पिछले जन्म में जो बाकी रही थी, वह लिंक इस जन्म में पूरी होती है और जो इस जन्म की बाकी रहेगी, वह अगले जन्म में पूरी होगी।

अब तो आपको सिर्फ एक जन्म इसमें निकाल देना है। अगला जन्म तो अपने आप ही, आज्ञा पालन के आधार पर मिलेगा। अगला जन्म आज्ञा के आधार पर है और आज्ञा के आधार वाला जन्म तो

ऐसा ग़ज़ब का जन्म होगा! भव बीज का आधार क्या है? आज्ञा। प्रत्यक्ष ज्ञानी के आज्ञारूपी बीज का आधार है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि मुझे अब नया कर्म चार्ज होना बंद हो गया है। अब सिर्फ डिस्चार्ज ही बचा है। लेकिन आपने जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं, उनका पालन करते-करते भी चार्ज तो होता है, ऐसा भी आपने कहा है। ऐसा क्यों?

दादाश्री : ये पाँच आज्ञाएँ, यही चार्ज है। क्योंकि ऐसा हमारी आज्ञापूर्वक करते हो। इन आज्ञाओं का पालन करते हो इसलिए उतना चार्ज है लेकिन कुछ ही प्रकार का चार्ज है। अन्य सारा चार्ज बंद हो जाता है। और इसी को लेकर एक जन्म, दो जन्म या तीन जन्म होते हैं।

आज्ञा द्वारा तेज़ी से प्रगति

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् हमारी, महात्माओं की जो प्रगति होती है, उस प्रगति की स्पीड किस पर आधारित है? क्या करने से तेज़ी से प्रगति होगी?

दादाश्री : पाँच आज्ञाओं का पालन किया तो सबकुछ तेज़ी से... और पाँच आज्ञा ही उसका कारण है। पाँच आज्ञा पालन करने से आवरण टूटते जाते हैं। शक्तियाँ प्रकट होती जाती हैं। जो अव्यक्त शक्तियाँ हैं, वे व्यक्त होती जाती हैं। पाँच आज्ञा के पालन से ऐश्वर्य व्यक्त होता है। तरह-तरह की कई शक्तियाँ प्रकट होती हैं। आज्ञा पालन पर आधारित है।

हमारी आज्ञा के प्रति सिन्सियर रहना तो बहुत बड़ा मुख्य गुण कहलाता है। हमारी आज्ञा से जो अबुध हुआ, वह हमारे जैसा ही हो जाएगा न! लेकिन जब तक आज्ञा का सेवन करता है, तब तक आज्ञा में बदलाव नहीं होना चाहिए। तो परेशानी नहीं आएगी।

ज्ञान से आज्ञा पालन करे तो सर्व परिणमन होता ही है और बुद्धि से आज्ञा पालन करे तो कुछ भी परिणमन नहीं होता।

ज्ञानी का राजीपा मिलता है, आज्ञा पालन से

हमारी आज्ञा का जितना पालन करता है, उतना उसे हमारा *राजीपा* अवश्य ही मिलता है। आपकी दृढ़ इच्छा है कि ज्ञानी की आज्ञा में ही रहना है तो उनकी कृपा से आज्ञा में रह ही पाओगे। आज्ञा पालन करने से आज्ञा की मस्ती रहती है।

प्रश्नकर्ता : आपकी कृपा हो तो आज्ञा में रह सकते हैं और आज्ञा में रहने से कृपा मिलती है। तो इनमें से सही क्या है?

दादाश्री : कृपा हो, तब आज्ञा पालन कर सकता है और आज्ञा पालन करे तो कृपा बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : पहले क्या आता है?

दादाश्री : राज़ी (प्रसन्न) करना।

प्रश्नकर्ता : *राजीपा* पाँच आज्ञा से होता है?

दादाश्री : पाँच आज्ञा से तो होता ही है। वर्ना उनके पास रहने से, उनकी सेवा करने से, हमारा *राजीपा* मिलता है।

आप हमारी पाँच आज्ञा में रहते हो इसलिए मैं बहुत खुश हूँ। आज्ञा में नहीं रहता तो दखल कर देता है। ज्ञानी पुरुष को राज़ी (प्रसन्न) रखने से उत्तम दुनिया में अन्य कोई धर्म नहीं है और हमारा *राजीपा* उत्पन्न करना आपके ही हाथों में है। आप जैसे-जैसे हमारी आज्ञा में रहकर आगे बढ़ते जाओगे, वैसे-वैसे आप पर हमारा *राजीपा* बढ़ता जाएगा।

अब, ज्ञानी की कृपा में क्यों भेद रहता होगा? जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए, हर एक पर उनकी कृपा में भेद क्यों? तब कहते हैं, ''जो ज्ञानी पुरुष के प्रति परम विनय कभी भी नहीं चूकता, वह ज्ञानी पुरुष के ध्यान में ही रहता है कि, 'यह कभी भी परम विनय में से विनय में नहीं आया है।' तब वहाँ विशेष कृपा होती है।'' क्योंकि परम विनय में से विनय में आया हुआ व्यक्ति कब अविनयी हो जाएगा, वह कहा नहीं जा सकता।

'पाँच आज्ञा में निरंतर रहना है' ऐसा भाव, उतना ही अंदर रहना चाहिए। अन्य कोई कृपा कहीं से देनी करनी है नहीं। तो कहीं पैर दबाने वाले पर ज़्यादा कृपा होगी और नहीं दबाने वाले पर कम होगी, ऐसा कुछ नहीं है। 'भाव' और 'परम विनय', इतना ही हमें समझना है और दादा ने जैसा बताया है, उसी तरह से आज्ञा पालन करने की स्वयं की मज़बूत इच्छा। हमें पता चल जाता है कि इसकी इच्छा मज़बूत है या कमज़ोर है। पता चलेगा या नहीं? स्कूल में जो मास्टर होते हैं, उनके स्कूल के 25-30 बच्चे हों तो उनमें से दो-चार बच्चों पर उनकी कृपा ज़्यादा रहती है। जो उनके कहे अनुसार होमवर्क आदि सब करके लाते हैं। उन पर प्रसन्न रहते हैं न? और जिन पर नाराज़ होते हैं, उन्हें मुर्गा बनाकर उनके ऊपर कंकड़ रख देते हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार कहते हैं कि, 'पाँच आज्ञा में रहने पर हमारी विशेष कृपा होगी।'

दादाश्री : जितना हमारी आज्ञा में रहता है, उतनी ही कृपा मिलती है।

प्रश्नकर्ता : यह विशेष कृपा यानी क्या?

दादाश्री : विशेष यानी संपूर्ण, काम निकल जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो विशेष कृपा होती है, वह दादा भगवान की है, या हमारे भीतर जो दादा भगवान हैं, उनकी होती है?

दादाश्री : मेरी नहीं, दादा भगवान की। मैं तो कहता हूँ कि, 'इतनी अच्छी तरह आज्ञा पालन करते हैं, कृपा कीजिए।'

'दादा! हमारे संसार का बोझ आप पर और आपकी आज्ञा हमारे सिर पर!' आपको तो ऐसा बोलना है।

प्रश्नकर्ता : आपकी पाँच आज्ञाओं में, मैं ठीक से रहता हूँ या नहीं, ज़रा यह बताइए न।

दादाश्री : रहते हो न ठीक से, अच्छी तरह से रहते हो। डाँटने

जैसे नहीं हो, डाँटना नहीं पड़ता। अच्छी तरह से आज्ञा में रहते हो तो बहुत हो गया। अब वे कहते हैं कि, 'पूर्ण रूप से आज्ञा पालन करता हूँ!' तब मैं कहता हूँ, डाँटने जैसे नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह तो हमें पता है कि पूर्ण रूप से आज्ञा पालन करना क्या कुछ आसान है!

दादाश्री : अरे! वह क्या कोई लड्डू खाने के खेल हैं! वर्ना खुद ही भगवान महावीर बन जाता न। वे आज्ञाएँ मैंने दी हैं और मेरी ही हैं और मैं निरंतर आज्ञाओं में ही रहता हूँ न! मैंने दी हैं, लेकिन फिर भी मैं महावीर नहीं बन सकता। लेकिन वह महावीर बन सकता है, क्योंकि आश्रय मेरा है न! यानी कि आश्रयदाता खुद उस पद तक नहीं पहुँच सकते लेकिन आश्रित (महात्मा) उस पद तक पहुँच सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह से दादा?

दादाश्री : हाँ, यदि पूरी तरह से आज्ञा पालन करे तो उनकी महावीर जैसी दशा हो जाएगी। उनकी मुझसे भी ज़्यादा उच्च दशा हो जाएगी। हमारे पाँच वाक्यों में रहें, वे भगवान महावीर जैसे रह सकते हैं!

आज्ञाएँ हैं रिलेटिव-रियल

प्रश्नकर्ता : पाँच आज्ञाएँ तो पौद्गलिक नहीं हैं न?

दादाश्री : यह *पुद्गल* कैसा है? है तो *पुद्गल,* लेकिन यह रिलेटिव-रियल है! यह रियल है लेकिन रिलेटिव-रियल! क्योंकि पूरा रियल नहीं है। पूरा रियल तो सिर्फ आत्मा ही है। आत्मा के सारे सोपान रिलेटिव-रियल हैं!

ध्येय के अनुसार, मन के अनुसार नहीं

प्रश्नकर्ता : निश्चय किया हो कि दादा के पास रहकर काम *निकाल* लेना है। पाँच आज्ञाओं में रहना है, फिर भी उसमें कमज़ोर पड़ जाएँ, तो उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ले! क्या करना चाहिए, मतलब? मन कहे कि 'ऐसा करो' तो समझ लो कि यह तो उल्टा हमारे ध्येय से बाहर है। दादाजी की कृपा कम हो जाएगी। इसलिए मन से कहना कि, 'नहीं, यह ऐसे करना है, ध्येय के अनुसार।' दादाजी की कृपा कैसे मिलती है, ऐसा जान लेने के बाद आपको अपना आयोजन करना चाहिए।

यानी मन के कहे अनुसार चलने से, ऐसी सारी झंझट होती है। कितने समय से कहा हुआ है इसे। यही समझाता रहता हूँ कि मन के कहे अनुसार नहीं चलना चाहिए। अपने ध्येय के अनुसार ही चलना चाहिए। वर्ना वह तो, जिस गाँव जाना हो, उसके बजाय न जाने किस गाँव ले जाएगा! ध्येय अनुसार चलने को ही पुरुषार्थ कहते हैं न! मन के कहे अनुसार तो ये अंग्रेज-वंग्रेज सभी चलते ही हैं न! इन सब फॉरेनर्स का मन कैसा होता है? लाइन में होता है और अपना मन दखल वाला। कुछ न कुछ उल्टा रहता है। अतः हमें तो खुद ही अपने मन का स्वामी बनना पड़ेगा। अपना मन अपने कहे अनुसार चले, ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ऐसी बात निकलती है न, तो पंद्रह-बीस दिन इस अनुसार चलता है। फिर कुछ ऐसा हो जाता है न, तो फिर से पलट जाता है।

दादाश्री : पलट जाता है लेकिन वह तो मन पलट जाता है। आप क्यों पलट जाते हो? आप तो वही के वही हो न!

प्रश्नकर्ता : ये आज्ञाएँ भी कई बार सहज हो जाती हैं।

दादाश्री : धीरे-धीरे सभी सहज हो जाती हैं। जिन्हें पालन करना है, उनके लिए सहज हो जाती हैं। यानी कि खुद का मन ही उस तरह से ढल जाता है। जिन्हें पालन करना है और निश्चय है, उन्हें कोई मुश्किल है ही नहीं। यह तो उच्चतम.. बहुत अच्छा विज्ञान है, और निरंतर समाधि रहती है। गालियाँ दी जाएँ, तब भी समाधि नहीं जाती, घाटा होने पर भी समाधि नहीं जाती, घर जलता दिखाई दे तब भी समाधि नहीं जाती।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति का इतना विकास हो जाता है कि सभी आज्ञाएँ अंदर समा जाती हैं?

दादाश्री : समा जाती हैं। प्रज्ञाशक्ति पकड़ ही लेती है। ये पाँच आज्ञा, ये जो पाँच फन्डामेन्टल सेन्टेन्स हैं न, ये पूरे वर्ल्ड के सभी शास्त्रों का अर्क ही है पूरा!

आज्ञा से जाए चारित्रमोह

जिसे मोक्ष में जाना हो उसे क्रियाओं की ज़रूरत नहीं है। जिसे देवगति में जाना हो, भौतिक सुख चाहिए, उसे क्रियाओं की ज़रूरत है। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे तो सिर्फ ज्ञान और ज्ञानी की आज्ञा, इन दो की ही ज़रूरत है।

दर्शनमोह ज्ञानी पुरुष के ज्ञान से जाता है और चारित्रमोह ज्ञानी की आज्ञा से जाता है। इसलिए हम ज्ञान और आज्ञा दोनों देते हैं। ज्ञानी की आज्ञा मन का शुद्धिकरण करती है। स्वरूपज्ञान, मन को कैसे भी संयोगों में समाधान देगा।

किंचित्मात्र भी बुद्धि नहीं हो, वे ज्ञानी

हमारे पाँच वाक्यों में सब आ जाता है। पूरे वर्ल्ड का साइन्स आ जाता है। इन पाँच आज्ञाओं में इतना अधिक बल है कि भगवान के, तीर्थंकरों के पैंतालीस आगम, इन आज्ञाओं में आ गए हैं।

पैंतालीस आगम समा जाएँ, ऐसी आज्ञाएँ दी हैं। इनकी निरंतर आराधना करते हैं। फिर ये आज्ञाएँ निरंतर रखनी चाहिए। एक क्षण भर के लिए भी चूकनी नहीं चाहिए। आज्ञा का आराधन ही मोक्ष है! क्योंकि आज्ञाएँ किसकी हैं? तीर्थंकरों का जो ज्ञान है वह ज्ञानी के माध्यम से निकला है और ज्ञानी की आज्ञा, उसी को मोक्ष कहा जाता है। ज्ञानी तो, हिन्दुस्तान में जितने चाहिए, उतने हैं। लेकिन वे ज्ञानी नहीं कहे जाएँगे। जिसमें थोड़ी सी भी बुद्धि हो, उसे ज्ञानी नहीं कहा जाता। जिनमें बिल्कुल भी बुद्धि न हो वे ज्ञानी कहलाते हैं। ज्ञानी किसे कहेंगे? जिनमें बुद्धि नहीं हो, उन्हें।

दादा की आज्ञा, वही सर्वस्व

प्रश्नकर्ता : मेरी बुद्धि या देह शक्ति उतनी नहीं है कि मैं प्रश्न खड़े कर सकूँ। मुझे तो दादा की शरण मिल जाए तो उतना काफी है।

दादाश्री : हाँ, ये सारी बातें तो ऐसी हैं न, कि अब यदि ये बातें बाहर करेंगे तो ज़रा सा भी समझ में नहीं आएगा। ये बातें बहुत अलग तरह की हैं। ऐसी बातें होती नहीं हैं, दुनिया में। अपने यहाँ जो सारी बातें होती हैं, वे आत्मा और परमात्मा की बातें होती हैं। जबकि बाहर जगत् में आत्मा और *पुद्गल* की बातें चलती हैं। अत: यहाँ की बातें, वहाँ बाहर की ही नहीं जा सकतीं न? आपको बात समझ में नहीं आए और व्यर्थ ही बोलते रहें तो उसका क्या मतलब है? सुनते रहना चाहिए और शरण लेनी चाहिए।

समझ में नहीं आए तो सब से अच्छी शरण यह है कि, 'जो दादा का हो, वह मेरा हो।' दादा के कहे अनुसार रहना। वे कहें कि, 'खड़ा हो जा', तो खड़े हो जाना। वे कहें कि, 'शादी मत करना' तब कहना, 'शादी नहीं करूँगा'। वे कहें कि, 'दो शादियाँ कर' तब कहना, 'दो शादियाँ करूँगा'। वहाँ ऐसा दखल नहीं करना कि, 'साहब, शास्त्र मना करते हैं और आप दो से शादी करने के लिए कह रहे हैं?' तो मोक्ष के लिए तू अनफिट हो गया।

ज्ञानी की आज्ञा की शास्त्रों से तुलना नहीं करनी चाहिए। ज्ञानी तो शास्त्र के *ऊपरी* हैं। ज्ञान के भी *ऊपरी* हैं ज्ञानी। वे जो आज्ञा दें, उस आज्ञानुसार चलना। इसीलिए हम पाँच आज्ञाएँ देते हैं न! बहुत कठिन नहीं हैं न पाँच आज्ञाएँ?

प्रश्नकर्ता : मानें तो कठिन भी हैं और पालन की जा सकें, ऐसी भी हैं। आप पर ठीक से निष्ठा रखी जाए और मन में ऐसा रखा जाए, दृढ़ हो जाए कि, 'मुझे पालन करना ही है', तो उसके बाद और कुछ करना नहीं रहता। फिर पालन हो पाएगा।

दादाश्री : और यदि सिर्फ शक्कर खाने को मना किया हो तो?

आज्ञा दी हो कि 'शक्कर मत खाना', तो क्या करेंगे सब? नहीं, लेकिन वह कठिन लगेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं लगेगा।

दादाश्री : 'शक्कर मत खाना' ऐसा कहा हो तो? एक संतपुरुष ने आज्ञा दी थी, इस जैसे को कि, 'आप शक्कर मत खाना।' संतपुरुष ने ज़बरदस्ती नहीं की थी। उसने राज़ी खुशी से माँगी थी कि, 'मुझे कोई आज्ञा दीजिए'। तब संत ने कहा, 'क्या तुझसे हो पाएगा? यह तुझसे हो पाएगा? यह हो पाएगा? शक्कर नहीं खाना, हो पाएगा तुझसे?' तब उसने कहा, 'शक्कर नहीं खाना, मुझसे हो पाएगा।' फिर आज्ञा लेने के चालीस साल बाद मुझे मिले थे। हम साथ में भोजन लेने बैठे, तब भोजन में श्रीखंड बनाया था। तब मुझे कहा, 'मेरी शक्कर नहीं खाने की बाधा (प्रतिज्ञा) है'। तब मैं समझा, अब यह श्रीखंड नहीं खाएगा। लेकिन श्रीखंड तो आया उनके लिए इतना सारा, और साथ में मँगवाया गुड़ और मिलाकर खाया! उसमें भी हर्ज नहीं था! ऊपर से दो-तीन लोगों से ऐसा कहा कि 'भई, कोई शक्कर के लिए बाधा मत लेना। मैंने तो ली सो ली, लेकिन शक्कर के लिए कभी भी बाधा मत लेना'। यदि ऐसी बाधा इन्हें दी हो तो ये लोग क्या करेंगे? मैंने तो सरल दी हैं, ज़रा भी कठिन नहीं है, बल्कि पान खाने की छूट दी है।

ज्ञानी से आज्ञा मत लेना और यदि लो तो पूर्ण रूप से पालन करना। ज्ञानी की आज्ञा तो सटीक चीज़ कहलाती है। मिलावट रहित। शुद्ध चीज़ कहलाती है। पालन किया जाए तो काम हो जाएगा और यदि उसका बिगाड़ किया तो काम बिगड़ भी सकता है।

आप गुड़ खाते हो क्या? श्रीखंड में गुड़? अब, ऐसे में यदि श्रीखंड नहीं खाए, दाल-चावल, सब्ज़ी आदि खा लेता तो क्या हर्ज था? और फिर दो-चार लोगों से कहा कि, 'कोई ऐसा मत करना, कोई शक्कर की बाधा मत लेना। मैं तो बहुत परेशान-परेशान हो गया।' ऐसा नहीं बोलना चाहिए। आज्ञा ली हो न, तो ऐसा कुछ नहीं बोलना चाहिए।

इस तरह मन बिगाड़ने के बजाय आज्ञा नहीं लेना अच्छा। और यदि ले तो शुद्धता रखनी चाहिए, करेक्ट, सही होनी चाहिए।

ज्ञानी पुरुष खुद करेक्ट कहे जाते हैं। करेक्ट यानी तीर्थंकर जैसे करेक्ट कहे जाते हैं। सिर्फ एक-दो-चार मार्क्स से फेल हुए, तो कोई गुनाह नहीं है। अन्य सभी प्रकार से तीर्थंकर जैसे करेक्ट। फेल हो गए तो क्या कोई गुनाह है? आप सभी के काम आए। फेल नहीं हुए होते तो यहाँ आपको कैसे मिलते?

ये आज्ञाएँ हैं दादा भगवान की

और दादा की आज्ञा का पालन यानी इन 'ए.एम.पटेल' की आज्ञा नहीं है। खुद दादा भगवान की, जो चौदह लोक के नाथ हैं, उनकी आज्ञा है, इसकी गारन्टी देता हूँ। यह तो मेरे माध्यम से ये सारी बातें निकल रही हैं। इसलिए आपको इन आज्ञाओं का पालन करना है। ये पाँच वाक्य महावीर के भी नहीं हैं, दादा के भी नहीं हैं, ये तो वीतरागों के समय से चले आ रहे हैं। दादा तो निमित्त हैं।

हमारी हाज़िरी में, हमारी इन पाँच आज्ञाओं का पालन करे न, या फिर हमारा अन्य कोई शब्द, एकाध शब्द ले जाएगा न, तो मोक्ष हो जाएगा। एक ही शब्द, इस अक्रम विज्ञान के किसी एक भी शब्द को पकड़ ले और उसकी विचारणा में डूब जाए, आराधना में लग जाए तो वह मोक्ष में ले जाएगा। क्योंकि अक्रम विज्ञान, वह सजीवन ज्ञान है, स्वयं क्रियाकारी विज्ञान है और यह तो पूरा सिद्धांत है। इसमें किसी पुस्तक का वाक्य है ही नहीं। अत: यदि कोई इस बात के एक भी अक्षर को समझ ले न, तो वह सारे अक्षर समझ गया!

आज्ञा पालन कौन करता है?

प्रश्नकर्ता : पुरुष को क्या पुरुषार्थ करना होता है?

दादाश्री : यह आज्ञारूपी। और कौन सा? आपके लिए आज्ञारूपी, मेरे लिए आज्ञा के बगैर। वही की वही चीज़। मेरा (पुरुषार्थ) आज्ञा

के बगैर होता है। आपका (पुरुषार्थ) आज्ञा से होता है। आखिर में फिर आज्ञा चली जाएँगी धीरे-धीरे और उनका मूल रह जाएगा। जैसे-जैसे प्रैक्टिस होगी, वैसे-वैसे!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने अज्ञान दूर करके पुरुष बनाया तो कौन सा भाग पुरुष कहा जाता है?

दादाश्री : जो ज्ञान है वही पुरुष और जो अज्ञान है वह प्रकृति। ज्ञान-अज्ञान का संयुक्त स्वरूप, वह है प्रकृति और ज्ञान वही परमात्मा है, वही पुरुष है।

प्रश्नकर्ता : परमात्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है क्या?

दादाश्री : मूलत: उसका स्वभाव ही ज्ञाता-द्रष्टा है। और पुरुष अर्थात् क्या? अभी पुरुषोत्तम नहीं हुआ है। जो पुरुषोत्तम हो जाते हैं वे परमात्मा कहे जाते हैं। पुरुष होने के बाद वे पुरुषोत्तम हो रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो शुद्ध ही है, फिर उसे पुरुषोत्तम होना रहा कहाँ?

दादाश्री : 'आत्मा शुद्ध है', वह तो आपकी प्रतीति में है न, कि आप हो गए हो। आपको होना है, वैसा। कैसे होना है? तब कहते हैं, 'आज्ञा पालन करके।'

प्रश्नकर्ता : आज्ञा कौन पालन करता है? प्रतिष्ठित आत्मा पालन करता है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा को पालन करने का सवाल ही कहाँ है इसमें! यह तो, आपको आज्ञा का जो पालन करना है न, वह आपकी जो प्रज्ञा है, वह आपसे सब करवाती है। आत्मा की प्रज्ञा नामक शक्ति है वह। तो फिर और क्या रहा! बीच में दखल ही नहीं है न किसी का! इन आज्ञाओं का पालन करना है। अज्ञा शक्ति नहीं करने दे रही थी और प्रज्ञाशक्ति करने देती है। आज्ञा पालन करना यानी कि आपकी प्रतीति में है वह कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और *लक्ष* में है लेकिन अनुभव

में कम है, और उस रूप हुए नहीं हो अभी। वैसा होने के लिए.. यदि पाँच आज्ञाओं का पालन करेगा तब उस रूप होगा।

प्रश्नकर्ता : निश्चय कौन करता है?

दादाश्री : वह सारा काम प्रज्ञाशक्ति का ही है और सब प्रज्ञाशक्ति के ताबे में हैं। उसके ताबे में रहकर सब होता है।

आज्ञा का थर्मामीटर

प्रश्नकर्ता : सुबह से शाम तक यह जो सारा व्यवहार चलता है, बोलने-चालने का, बातचीत करना, उसमें खुद को यह कैसे पता चलेगा कि सत्तर प्रतिशत पाँच आज्ञा में रहे?

दादाश्री : ले! खुद पास होने वाले हैं या नहीं, ऐसा जानते हैं कुछ लोग! कुछ तो ऐसा कहते हैं, 'गारन्टी से हंड्रेड परसेन्ट पास होने ही वाला हूँ।' खुद को सब पता रहता है कि कितने प्रतिशत रहा! प्रतिशत भी जानता है। आत्मा थर्मामीटर है। सभी कुछ जानता है!

प्रश्नकर्ता : आज्ञा में रहते हैं या नहीं, ऐसा कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : वह तो सब पता चलता है कि यह आज्ञा में ही रहता है इसलिए समाधि रहती है, निरंतर। कोई गाली दे या कुछ और सुनाए, उसका भी कोई असर ही नहीं होता न! आज्ञा में रहने की तो बात ही अलग है न! वह तो उसकी बात पर से पता चल जाता है, उसकी बातों में कषाय नहीं रहते। बहुत ही जागृति रहती है।

जो आज्ञा में रहा न, वह शुद्ध उपयोग में रहा, ऐसा कहा जाता है। हमें शुद्धात्मा और पाँच आज्ञा में ही उपयोग रखना है। इसमें उपयोग कब नहीं रहता? दाढ़ बहुत ही दुःखती हो, तब। तो हम चला लेते हैं। हमारी आज्ञा का दुरुपयोग करे तो वह गलत है। कम पालन हो तो उसमें हर्ज नहीं है। हमारी आज्ञा आपको शुद्ध व्यवहार में रखती है।

आज्ञा चूके कि प्रकृति सवार

प्रश्नकर्ता : जो आपके पास आया, ज्ञान लिया, उसे निराकुलता तो उत्पन्न हो ही जाती है। फिर यदि वह आज्ञा में रहे तब भी और न रहे फिर भी उसकी इतनी अधिक मस्ती रहती है!

दादाश्री : लेकिन, जो आज्ञा में नहीं रहता न, उस पर फिर धीरे-धीरे प्रकृति सवार हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बस, यही पॉइन्ट चाहिए।

दादाश्री : प्रकृति सवार हो जाती है। आज्ञा में रहे तो फिर कोई उसका नाम नहीं लेगा। उसमें (आज्ञा में नहीं रहा) तो प्रकृति खा जाएगी। दादा की कृपा से उस घड़ी शांति रहती है, बाकी सब रहता है, दो-दो साल, पाँच-पाँच साल तक रहता है। लेकिन उसका कोई अर्थ नहीं है। प्रकृति खा जाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति खा जाती है यानी? प्रकृति सवार हो जाती है यानी?

दादाश्री : प्रकृति अपने जैसा बना देती है, फिर वह भी मार-पीटकर। आज्ञाएँ बहुत आसान हैं, कोई कठिन नहीं हैं। फिर हमने सारी छूट दे रखी है। आज्ञा पालन करके फिर आराम से जलेबी और पकोड़े दोनों खाना। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए? जो भाए सो खाने की छूट दी है। यदि वहाँ बंधन रखा होता तो, हर बात में हमें ज्ञानी का यह बंधन कैसे पुसाएगा? लेकिन आज्ञाएँ सीधी-सरल हैं। जैसा है वैसा देखना है, क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : देखने में हर्ज नहीं है लेकिन देख नहीं पाते न!

दादाश्री : पाँच इन्द्रियों के सभी घोड़े यदि खुद चलाता है तो खुद को लगाम खींचनी पड़ेगी। ज़रा ऐसे खींचनी और ढील देनी पड़ेगी। उसके बजाय मैंने कहा, 'छोड़ दे न, भाई। घोड़े इतने समझदार हैं कि वे घर ले जाएँगे और भाई, तू उल्टा उन घोड़ों का खून निकाल रहा है।'

जहाँ आज्ञा, वहाँ संयम और समाधि

प्रश्नकर्ता : आज्ञा चूक गए हैं, उसका कोई मापदंड है?

दादाश्री : भीतर सफोकेशन और बेचैनी आदि सब होता है। वह आज्ञा चूकने का ही परिणाम है। आज्ञा वालों को तो समाधि ही रहती है, निरंतर। जब तक आज्ञाएँ हैं, तब तक समाधि। अपने मार्ग में कई ऐसे लोग हैं जो अच्छी तरह से आज्ञा पालन करते हैं और समाधि में रहते हैं। क्योंकि ऐसा सरल और समभावी मार्ग, सहज जैसा! और यदि यह अनुकूल नहीं आया तो फिर वह (क्रमिक) तो अनुकूल आएगा ही कैसे? यानी सभी झंझटों को दूर रखकर, मन की झंझटों पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। सिर्फ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध ही रखो। मन अपने धर्म में है, उसमें दखल देने की क्या ज़रूरत है? निरंतर आज्ञा में रह पाएँ, समाधि में रह पाएँ ऐसा मार्ग है। ज़रा भी कठिन नहीं है। आम वगैरह खाने की छूट।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के आश्रय में आने के बाद जो भी कोई कमी पता चले तो वह खुद की समझनी चाहिए या सामने वाले की समझनी चाहिए? हमें तो ऐसा लगता है कि हम आज्ञानुसार रहते हैं, लेकिन उसमें किस तरह से फर्क रह जाता है?

दादाश्री : फर्क रह जाता है न, इसलिए फिर आप पर सारी *उपाधियाँ* (मुसीबतें) आती रहती हैं, आपको अरुचि होती है, ऊब जाते हो, ऐसा सब होता है। फर्क रह जाने पर ऐसा हो जाता है, वर्ना यदि हमारी आज्ञा में रहे न, तो फिर समाधि जाएगी नहीं। इस ज्ञान का प्रताप ऐसा है कि अखंड शांति रहती है और एक-दो जन्मों में मुक्ति मिल जाती है और अंदर निरंतर संयम रहता है, आंतरिक संयम। बाह्य संयम नहीं। बाह्य संयम तो, यह जो दिखाई देता है, वह बाह्य संयम कहा जाता है। लेकिन अंदर का संयम, किसी का अहित नहीं हो। खुद को गाली दे फिर भी उसका अहित न करे। क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हों, ऐसा आंतरिक संयम रहता है। यह है ज्ञान का प्रताप! और भूलचूक हो जाए तो सुधार लेता है।

प्रश्नकर्ता : सत्पुरुष की आज्ञा के अनुसार चलते हैं फिर भी कुछ बरतता नहीं है तो किसकी कमी मानें? सत्पुरुष की या खुद की?

दादाश्री : नहीं। आज्ञा में रहे और नहीं बरते, तो आज्ञा देने वाले की कमी है और यदि आज्ञा में नहीं रहे और नहीं बरते तो आपकी भूल।

काम निकाल लेना, वह कैसे?

प्रश्नकर्ता : दादा, जब आपके पास आते हैं तब कई बार आप ऐसा कहते हैं कि, 'अपना काम निकाल लो, अपना काम निकाल लो।' तो हमें अपना काम कैसे निकाल लेना है?

दादाश्री : काम निकाल लो अर्थात् क्या कहना चाहते हैं हम? हम ऐसा नहीं कहते कि आप आज्ञा का पूरा पालन करो। मैं रोज़ ऐसा नहीं गाता रहता। लेकिन काम निकाल लो यानी आापको समझ लेना है कि, 'हमें और ज़्यादा आज्ञा पालन करने को कह रहे हैं, आज्ञा में जाग्रत रहने को कह रहे हैं।' यानी जाग्रत रहो आज्ञा में, मैं ऐसा कहना चाहता हूँ। तो हमारा काम निकल गया। परीक्षा में प्रोफेसर क्या कहते हैं कि 'भाई, परीक्षा ऐसी दो कि मार्क्स जोड़ने नहीं पड़े, किसी की आजिज़ी नहीं करनी पड़े, इस तरह से परीक्षा दो।' अतः उसे समझ लेना चाहिए कि, 'ज़्यादा पढ़ना है।' सब पद्धतिनुसार होना चाहिए, ऐसा कहना चाहता हूँ मैं, काम निकाल लो, उस पर से!

यदि इन आज्ञाओं का पालन करेगा न, तो काम निकाल लेगा, ऐसा है। जब तक तीर्थंकर हाज़िर रहते हैं, तब तक शास्त्र-धर्म-तप के लिए मना करते हैं। वे जो आज्ञा दें उस आज्ञा में ही रहना। आज्ञा मोक्ष में ले जाएगी। उसी प्रकार हम अभी शास्त्र पढ़ने के लिए मना करते हैं। आज्ञा पालन करना न, काम हो जाएगा!

काम निकाल लेना अर्थात् हमारी आज्ञा में ठीक से रह पाते हो तो दो-चार महीनों में एकाध बार आकर दर्शन कर जाएगा तो चलेगा और यदि नहीं रह पाता तो बार-बार यहाँ आकर दर्शन कर जाना, रोज़।

[2]

रियल-रिलेटिव की भेदरेखा

ज्ञान लेने के बाद...

प्रश्नकर्ता : रियल और रिलेटिव, दोनों को अलग किया, तो अब अलग करने के बाद शुद्धात्मा की प्रगति करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह अलग हो ही गया है न! अर्थात् यह जो रियल है यह पुरुष है और रिलेटिव, प्रकृति है। पुरुष और प्रकृति दोनों अलग हो गए हैं। अत: यह पुरुष पुरुषोत्तम ही होता रहेगा। निरंतर होता ही रहेगा, स्वभाव से ही होता रहेगा। जब विभाव था न, तब तक आगे नहीं बढ़ पा रहा था। परंतु अब संपूर्ण पुरुषोत्तम होकर रहेगा। तब पूछते हैं, 'उसके लिए क्या करना चाहिए?' तो कहते हैं, 'ये पाँच आज्ञाएँ हैं, उनका पालन करना है।' स्वभाव में रहने के लिए ये पाँच आज्ञाएँ हैं। स्वभाव में रहने से फिर उसकी यह लाइट बढ़ती ही जाएगी और पूर्ण प्रकाश हो जाएगा।

प्राप्त किया महात्माओं ने भेदज्ञान

रात को जाग जाते हो तब, 'शुद्धात्मा हो', ऐसा *लक्ष* आ जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसे साक्षात्कार होना कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, हमें यह भेदज्ञान प्राप्त करवाया, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : कहा जाएगा न! पा ही गए, उसमें शंका नहीं!

शुद्धात्मा नहीं है, शब्द स्वरूप

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', क्या इसकी माला करने की ज़रूरत है?

दादाश्री : माला करने की कोई ज़रूरत नहीं है। आत्मा की मालाएँ मत करना। माला स्वरूप नहीं है वह। शब्द स्वरूप नहीं है वह। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह आपके ध्यान में रहना चाहिए, बस। 'शुद्धात्मा हूँ' ऐसा जो *लक्ष* रहा, उसे शुद्धात्मा का ध्यान कहा जाता है। यानी शुक्लध्यान बरतता है। कल्याण हो गया! अब इधर-उधर कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। वह किताब-विताब पढ़ते हो? चरणविधि।

प्रश्नकर्ता : हाँ, पूरी पढ़ता हूँ।

दादाश्री : पढ़ना। उतना ही करने की ज़रूरत है। दूसरा, शुद्धात्मा देखने हैं सभी लोगों में! बहुत अच्छा रहेगा। यह तो बेस्ट वे (उत्तम रास्ता) है।

प्रश्नकर्ता : अब रोज़ चरणविधि, नमस्कार विधि पढ़ता हूँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन यदि आज्ञा पालन करोगे न, तो बहुत अच्छा रहेगा। आज्ञा उसकी बाड़ है, वर्ना सड़ जाएगा यह सब तो!

शुरुआत में घुमाना पड़ेगा हैन्डल

प्रश्नकर्ता : आज्ञाएँ ध्यान में हैं, लेकिन जिस सहज भाव से रहनी चाहिए वैसे नहीं रहतीं। उसके लिए क्या?

दादाश्री : आपको उस पर ध्यान देने की ज़रूरत है। बाकी,

इतना कठिन नहीं है कि सहज भाव से न हो पाए। सब से आसान चीज़ है, लेकिन आदत पड़ जानी चाहिए। पहले उसका अभ्यास करना पड़ेगा। अन्अभ्यास है! अन्अभ्यास मतलब आपको रियल और रिलेटिव देखने का अभ्यास ही नहीं है न! इसलिए एक महीना आप अभ्यास करो फिर सहज हो जाएगा। यानी कि पहले हैन्डल घुमाना पड़ेगा कि यह रियल है और यह रिलेटिव। बहुत जागृति वाला नहीं घुमाएगा तो चलेगा। लेकिन इन लोगों में इतनी अधिक जागृति होती नहीं है न? बहुत जागृति वालों को तो कुछ भी नहीं करना पड़ता। हैन्डल घुमाने की भी ज़रूरत नहीं है। यह सब तो सहज ही रहता है।

आत्म दृष्टि का असर 'स्व' पर ही

भैंस को, गधे को, सभी को शुद्ध ही देखोगे तो आपको शुद्धता का लाभ मिलेगा। आप भैंस देखोगे तब भी वह चली जाएगी और उसे शुद्धात्मा देखोगे तब भी चली जाएगी। अभी, कोई मनुष्य हो, आप उसका शुद्धात्मा देखोगे तब भी वह चला जाएगा और 'नालायक है, बदमाश है' ऐसा कहोगे तब भी चला जाएगा। आपकी दृष्टि चाहे जैसी भी हो, उसकी तो सामने वाले को पड़ी ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमारे आत्मा के जो भाव होते हैं वे सामने वाले के आत्मा के भाव पर असर नहीं डालते?

दादाश्री : कोई असर नहीं डालते। सामने वाले का और आपका कोई लेना-देना ही नहीं है। यदि लेना-देना है तो सिर्फ आप जो प्रतिक्रमण करते हो, वह है। प्रतिक्रमण भी समझ में आना चाहिए। क्योंकि आत्मा वीतरागी स्वभाव का है इसलिए वह प्रतिक्रमण पहुँचता है। हमने खुद अनुभव करके दिया है यह। आपको भी थोड़े-बहुत अनुभव तो हुए होंगे?

आप शुद्धात्मा हो और वह भी शुद्धात्मा है। आपको कपड़ों से क्या लेना-देना? कपड़े तो रेशमी भी होते हैं और खुरदुरे भी होते हैं। ये शरीर, ये सब तो कपड़े हैं!

यह है पुनिया श्रावक की सामायिक

इन सभी में शुद्धात्मा देखते हो?

प्रश्नकर्ता : देखता हूँ लेकिन कभी-कभी विस्मृत हो जाता है।

दादाश्री : कभी-कभी विस्मृत हो जाता है ऐसा नहीं, लेकिन कभी-कभी देखते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, देखता हूँ।

दादाश्री : ऐसे देखने का अभ्यास करने से अंदर पुनिया श्रावक जैसी सामायिक होती है। पूरे दिन समाधि रहती है! एक घंटा यों बाहर निकलो, शुद्धात्मा देखते-देखते जाओ तो कोई डाँटेगा आपको कि, 'क्या देख रहे हो!' इन आँखों से रिलेटिव दिखेगा, अंदर की आँखों से शुद्धात्मा दिखेंगे। ये दिव्यचक्षु हैं। आप जहाँ देखोगे वहाँ दिखाई देंगे। लेकिन पहले उसका अभ्यास करना पड़ेगा। बाद में फिर सहज हो जाएगा। फिर यों ही सहज रूप से दिखता रहेगा। पहले अभ्यास करना पड़ेगा न? पहले का अभ्यास तो उल्टा था, अतः इसका अभ्यास करना पड़ेगा न? तो कुछ दिन हैन्डल घुमाना पड़ेगा।

पाँच वाक्यों में जितना रहा जा सके उतना अवश्य रहना ही चाहिए और अगर नहीं रहा जाए तो अंदर खेद रखना थोड़ा-बहुत, कि, 'ऐसे तो अंदर कैसे कर्म के उदय लाए हैं कि हमें आज चैन से नहीं बैठने देते!' दादा की आज्ञा में रहने के लिए फिर कर्म के उदय का भी सहयोग होना चाहिए न? नहीं होना चाहिए? नहीं तो एक घंटा ऐसे चलते-चलते, शुद्धात्मा देखते-देखते जाना। ऐसे एक घंटा गुज़ार देना। चलते-फिरते पुनिया श्रावक की सामायिक हो गई!

प्रश्नकर्ता : जिसकी सामायिक की भगवान महावीर ने प्रशंसा की है, उसमें क्या रहस्य है? समझाइए ज़रा।

दादाश्री : वह शुद्ध सामायिक थी। ऐसी सामायिक मनुष्य के बस में है ही नहीं न! शुद्ध सामायिक! मैंने आपको ये जो दिव्यचक्षु दिए हैं, वह सामायिक इन दिव्यचक्षुओं सहित थी।

वे (पुनिया श्रावक) घर में रहते, बाहर घूमते, फिर भी उनकी शुद्ध सामायिक थी, उनकी सामायिक दिव्यचक्षुओं के आधार पर थी। वे रूई लेकर आते, उसकी पूनी बनाकर फिर उसे बेचते थे, इसलिए वे पुनिया श्रावक कहलाते थे। पूनियाँ बनाते समय उनका मन कताई के तार में रहता था और चित्त भगवान में रहता था, इसके अलावा वे बाहर कुछ भी देखते-करते नहीं थे। दखल देते ही नहीं थे। व्यवहार में मन को रखते थे और निश्चय में चित्त को रखते थे। तो यह सब से उच्च सामायिक कहलाती है!

उस पुनिया ने श्रेणिक राजा से कहा कि, 'मैं सामायिक दूँगा।' तब श्रेणिक राजा ने कहा, 'कीमत क्या है? बता दे।' तब कहा, 'कीमत तो भगवान तय करेंगे, मुझसे कीमत तय नहीं हो सकती।' तब श्रेणिक राजा ने समझा कि भगवान दिलवा-दिलवाकर पाँच करोड़ दिलवाएँगे, दस करोड़ दिलवाएँगे। एक सामायिक के कितने रुपये दिलवा देंगे? यानी उसके मन में अंदाज़ ही नहीं था उस बात का। आकर भगवान से कहा कि, 'पुनिया श्रावक ने देने का कह दिया। साहब, अब मेरा कुछ कीजिए। अब नर्क में नहीं जाना पड़े, ऐसा।' तब पूछा, 'लेकिन पुनिया श्रावक ने बिना कुछ लिए देने को कहा? फ्री ऑफ कॉस्ट?' तब कहा, 'नहीं, भगवान जो कीमत तय करें, वह।' तब भगवान ने कहा, 'क्या कीमत है? जानते हो श्रेणिक राजा? आपका यह राज्य उस कीमत की दलाली में चला जाएगा!' तब राजा चौंक गए कि, 'मेरा राज्य दलाली में चला जाएगा तो मैं और कहाँ से लाऊँगा?' यानी इतनी अधिक कीमत थी!

उसी तरह मैंने आपको ये वाक्य, रिलेटिव और रियल दिए हैं। इनका यदि आप एक घंटा उपयोग करो, सच्चे मन से और सच्चे चित्त से, तो मन से आगे देखते जाना है, इस तरह कि ठोकर नहीं लगे और चित्त से यह देखा करना, रिलेटिव और रियल, तो आपकी भी उसके जैसी ही सामायिक हो सकेगी, ऐसा है। परंतु अब आप यदि वह करो तो आपका।

इतनी कीमत है इस सामायिक की! इसलिए लाभ उठा लेना।

सामायिक करते समय अंदर अच्छी समाधि रहती है न? अब इसमें आसान है, कठिन भी नहीं है। ऐसे बैठना भी नहीं है।

सामायिक यानी क्या करना है? ये दो व्यू पॉइन्ट दिए हैं न, तो सभी में शुद्धात्मा देखते-देखते जाना सब्ज़ी लेने, तब कोई गधा या कुछ हो, फिर बैल जा रहा हो, कुछ और जा रहा हो, जीवमात्र, गाय-बकरी देखते-देखते जाना, आज्ञापूर्वक और आज्ञापूर्वक वापस आ गए, तो एक तो, घर वालों ने कहा हो कि सब्ज़ी ले आना तो आप पैदल जाकर ले आए। पैसा खर्च हुआ नहीं और दूसरा फायदा क्या हुआ? तब कहते हैं, दादा की आज्ञा का पालन किया। तीसरा फायदा क्या हुआ कि सामायिक हुई। चौथा फायदा क्या हुआ? तब कहते हैं, सामायिक के फलस्वरूप समाधि रही। अतः इन सभी आज्ञाओं का पालन करना। ज़्यादा नहीं तो एक ही घंटा निकालना न! नहीं निकल पाएगा?

प्रैक्टिस से खिले दिव्य दृष्टि...

अब, बाहर जाओगे तब उपयोग करोगे न दिव्यचक्षु का? ऐसा है न, अनादि से अज्ञान का परिचय है, इसलिए थोड़ी प्रैक्टिस करने के लिए दो-चार बार अभ्यास करोगे न, तो फिर शुरू हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य में तो पता चल जाता है कि इसमें शुद्धात्मा है लेकिन हम से इन पेड़-पौधों में देखने की प्रैक्टिस नहीं हो पाती।

दादाश्री : वह प्रैक्टिस आपको करनी पड़ेगी। अनादि से उल्टा अभ्यास है, इसलिए उल्टा का उल्टा ही चलता रहता है। डॉक्टर ने कहा हो कि, 'आप दाहिने हाथ से मत खाना', तब भी आपका दाहिना हाथ आ जाएगा। खाना खाते समय चार दिन थोड़ी जागृति रखनी पड़ेगी। इसका अभी से उतना अभ्यास कर लेना। दिव्यचक्षु से देखते-देखते जाना न! धीरे-धीरे आप सेटिंग करते जाना तो फिट होता जाएगा। गायों-भैंसों में, सभी में है। शुद्धात्मा में चेन्ज नहीं हुआ है। यह पैकिंग चेन्ज हुई है। शुद्धात्मा तो वही है, सनातन है।

तू ही-तू ही नहीं, मैं ही-मैं ही...

बाकी, 'तू ही... तू ही... तू ही' गाते रहने के बजाय अब 'शुद्धात्मा हूँ' गाओगे या नहीं गाओगे? मैं तो अपने महात्माओं को कई बार दिखाता हूँ। बाहर ऐसे गाड़ी में घूम रहे हों न, तब 'मैं ही, मैं ही' बोलते-बोलते जाओ। 'मैं ही हूँ, मैं ही हूँ।' आप शुद्धात्मा हो और वे सब भी शुद्धात्मा हैं, ऐसे देखते-देखते जाओ। 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं रहा न फिर। जहाँ 'मैं' और 'तू' का भेद है, वहाँ पर अलग है और वह भेद, बुद्धि से होता है।

प्रश्नकर्ता : जितना देहाध्यास कम होता जाए उतना ही भेद कम होता है?

दादाश्री : हाँ, भेद कम होता जाता है। यह भेद ही मिटाना है न!

रहने चाहिए लक्ष में सामने वाले के शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई और आत्मा जुदा हैं, वह सहज रूप से पता चलना चाहिए या हमें प्रयत्न करना चाहिए प्रैक्टिकली?

दादाश्री : नहीं, वह तो जागृति ही कर देती है। जागृति रहा ही करती है वैसी। जैसे आपने एक डिब्बे में हीरा रखा हो तो जब डिब्बा खोला था, उस दिन हीरा देखा था, परंतु बाद में बंद करके रखा हो और पड़ा हुआ हो तब भी अंदर आपको हीरा दिखाई देगा या नहीं दिखाई देगा?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देगा।

दादाश्री : ऐसे 'दिखाई देता है' इसका अर्थ क्या है? उसके बाद आपको हमेशा ध्यान रहता है न, कि इस डिब्बी में हीरा है। यह डिब्बी ही है ऐसा कहोगे या फिर इस डिब्बी में हीरा है, ऐसा कहोगे?

प्रश्नकर्ता : कभी याद आ जाता है, दादा। ऐसा होता है कि रास्ते पर जाते हुए शुद्धात्मा देखते हुए जाते हैं लेकिन जैसे कि एक

चीज़ देखी हो कि इस डिब्बी में हीरा ही है, और तब जैसा दिखाई देता है न, वैसा स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

दादाश्री : स्पष्ट देखने की ज़रूरत भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह तो फिर मिकेनिकल जैसा लगता है।

दादाश्री : नहीं-नहीं। देखा हुआ है, वह आपके *लक्ष* में रहता ही है कि हीरा ही है। ऐसा तो आपको लगता है।

प्रश्नकर्ता : सुबह बाहर घूमने जाते हैं तब 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोलते हैं और फिर आसपास पेड़-पौधे वगैरह देखते हैं तब बोल देते हैं कि, 'शुद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ', तो उन दोनों में से कौन सा ज़्यादा अच्छा है?

दादाश्री : ऐसा जो बोलते हो, करते हो, वह सब सही है। फिर जब धीरे-धीरे ऐसे बोलना बंद हो जाएगा, तब वह उससे भी ज़्यादा अच्छा है। बोलना बंद हो जाए और अपने आप ही होता रहे।

प्रश्नकर्ता : तो इन दोनों में से कौन सा अच्छा है?

दादाश्री : दोनों ही, बोलना ज़रूरी नहीं है, लेकिन फिर भी बोलते हो तो अच्छा है। बाकी, धीरे-धीरे बोलना बंद हो जाए तो अच्छा। बोले बगैर यों ही नमस्कार नहीं कर पाते। लेकिन यदि अंदर बोलते हो तो उसमें भी हर्ज नहीं है। मन में ऐसा होता है, तो भी हर्ज नहीं है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा वाणी में या लक्ष में?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले हम, 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा नहीं बोलते थे। लेकिन जो समझते हैं, वह प्रतीति में ही रहता है। अब ज्ञान लेने के बाद आपने जो शुद्धात्मा का *लक्ष* दिया है, और फिर बार-बार, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जो आप बोलने को कहते हैं, उसके पीछे मर्म क्या है? उसके पीछे रहस्य क्या है?

दादाश्री : कर्ज़ चढ़ गया हो तो बोलने की ज़रूरत है। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा आप जिस जगह पर हो, उस जगह पर, मूल क्षेत्र में शुद्धात्मा बोलते हो। एक बार जो जान लिया, वह *लक्ष* में रहे तो बस, हो गया। लेकिन आप तो यहाँ से हज़ार मील उल्टे चले हो और वहाँ आपने जाना कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो वापस आना पड़ेगा न! वहाँ पर यदि आप ऐसा कहो 'मैं शुद्धात्मा हो गया साहब?' तब भाई, इतना उल्टा चला है इसलिए जब वापस उल्टा जाएगा तब मूल शुद्धात्मा बनेगा। उसके लिए 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' बोलना पड़ता है। उसके लिए यह सब करना पड़ता है। यह तो ज़रा-ज़रा सा बोलता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ', थोड़े देर दो-दो मिनट, पाँच मिनट, तो ठीक है और यहाँ पर विधि करते समय बोलता है, वह ठीक है। जैसे कि आप चंदूलाल हो और ऐसे छत पर चढ़कर 'मैं चंदूलाल हूँ', 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा गाते रहो तब लोग कहेंगे, 'वह तो आप हो ही, फिर उसका गाना क्यों गा रहे हो?' उसी प्रकार आप शुद्धात्मा हो ही, फिर भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इसलिए बोलना है कि ज़्यादा उल्टा चला गया था अत: उतना ही वापस लौटता है। बाकी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह *लक्ष* में रहा ही करता है। यह जो, 'मैं चंदूभाई हूँ', तो वह उल्टा चला गया था। इसलिए 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा बोलते थे, तो अब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते हो। यानी ऐसा करते-करते वह (मान्यता) बदलेगी। 'मैं चंदूभाई' बोलते थे तो चंदूभाई का असर हो जाता था और अब 'मैं शुद्धात्मा' बोलोगे तो शुद्धात्मा का असर होगा। फिर अभेद हो जाएगा। दोनों एक हो जाएँगे। अलग हो गया था यह खुद, अब एक हो जाएँगे।

चित्त जो अशुद्ध हो गया था। अब वह वापस लौटा, यानी कि चित्त शुद्ध हो जाएगा तो एक ही हो जाएगा। फिर ऐसा सुख बरतेगा! यानी कि किसी को यदि अंदर कच्चा रह जाता हो तो, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ', बोलना। हम जो हैं, वैसा बोलने में हर्ज क्या है?

जागने के बाद ही ऐसा बोल सकते हैं

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', बोलने से शुद्धात्मा हो जाते हैं?

दादाश्री : ऐसे ही नहीं हो जाते। ऐसा तो कुछ लोग बोलते हैं न, कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' लेकिन कुछ प्राप्ति नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति नींद में बोले कि, 'मैं आपको रुपये देता हूँ', तो क्या उसे सच मान लेंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं मानेंगे।

दादाश्री : जाग रहा हो और बोले तो काम का। इसी तरह मैं आपको जाग्रत करके 'शुद्धात्मा हूँ' बुलवाता हूँ, यों ही नहीं बुलवाता और एक घंटे में तो पूरा मोक्ष दे देता हूँ! मोक्ष यानी कभी भी चिंता नहीं हो, ऐसा मोक्ष दिया है। फिर भी, यह कारणमोक्ष है। वह अंतिम मोक्ष बाकी रहता है।

नहीं होता है महात्माओं का मिकेनिकल

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते रहने से मिकेनिकल नहीं हो जाएगा?

दादाश्री : अपने महात्माओं का मिकेनिकल नहीं हो सकता लेकिन बाहर दूसरों का हो जाता है। दूसरे खुद मिकेनिकल हैं, इसलिए वह मिकेनिकल ही हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : कोई अज्ञानता में मिकेनिकल रूप से 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोले तो?

दादाश्री : उससे कोई फायदा नहीं होगा और ज्ञान लिया हुआ व्यक्ति मिकेनिकल नहीं बोलता है। मिकेनिकल जैसा लगता ज़रूर है लेकिन मिकेनिकल बोलता नहीं है। जिसे यह ज्ञान नहीं दिया हो और वह रात भर, 'मैं शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' गाए तब भी कुछ फायदा नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : वह सीधा बोले तब भी मिकेनिकल हो जाता है?

दादाश्री : हं। वह यदि ऐसे सीधा बोले तब भी मिकेनिकल है। क्योंकि तू जो है, अभी तेरी वह मान्यता टूटी नहीं है और तू कहता है कि 'मैं नगीनदास हूँ', फिर ऐसा भी कहता है।

क्या वह सूक्ष्म अहंकार नहीं है?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा हम बोलते हैं, तो वह भी एक सूक्ष्म अहंकार रहा न?

दादाश्री : ना-ना। अहंकार कब कहा जाएगा कि खुद जो है वह नहीं जानते। जहाँ नहीं है वहाँ आरोप करें तब अहंकार कहा जाएगा। आप शुद्धात्मा हो, उसमें 'मैं शुद्धात्मा' बोलने में अहंकार है ही नहीं। लेकिन 'मैं शुद्धात्मा' होने के बावजूद आप 'मैं चंदूलाल हूँ' बोले तो वहाँ पर आपने यह गलत आरोपण किया। खुद का स्वरूप जानते नहीं हो, और लोगों ने चंदूभाई नाम दिया और आपने चंदूभाई मान लिया। फिर, 'इस स्त्री का पति लगता हूँ, इसका मामा लगता हूँ, इसका चाचा लगता हूँ', इस सारे जंजाल में फँस जाता है फिर वह अहंकार। जहाँ खुद नहीं है वहाँ आरोपण करना, उसे कहते हैं अहंकार। ये तो खुद के स्वरूप में बोलते हैं इसलिए इसे अहंकार नहीं कहा जाएगा।

यह ध्यान में रखना है

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', फुरसत मिलने पर ऐसा बोलें और जप करें तो चलेगा या नहीं?

दादाश्री : यह जप करने की चीज़ नहीं है, जप करने वाला कौन है इसमें? यानी कि यह जप करने की चीज़ नहीं है, ध्यान में रखना है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ध्यान में रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा बोलने से ज़्यादा ध्यान में नहीं रहेगा?

दादाश्री : थोड़ी देर बोलना है। मैंने 'ज्ञान' दिया, उसके बाद आप शुद्धात्मा हो गए। अब फिर क्या गाते रहना?

नहीं करना है रटन शुद्धात्मा का...

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान' लेने के बाद, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' का रटन और 'राम, राम', ऐसे नाम स्मरण के बीच क्या अंतर है?

दादाश्री : ओहोहोहो! रटन की तो बहुत ज़रूरत ही नहीं है। रटन तो रात को थोड़ी देर के लिए करना है, परंतु कहीं पूरा दिन ही, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा गाते रहने की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा करते नहीं हैं लेकिन, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह अपने आप आ जाता है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन रटन करने की ज़रूरत नहीं है। रटन करना और अपने आप आ जाना, इन दोनों में फर्क है। अपने आप आना और रटन करने में फर्क है या नहीं? क्या फर्क है?

प्रश्नकर्ता : वह सहज रूप से आता है।

दादाश्री : हाँ, सहज रूप से आता है। मतलब वह जो सहज रूप से आता है आपको, वह तो बहुत कीमती है। रटन करने की कीमत चार आने हो तो इसकी कीमत तो अरबों रुपये है। इतनी अधिक फर्क वाली बात है। और इन दोनों को आपने साथ में रख दिया। इस समय आपके ध्यान में 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा रहता है या 'सचमुच मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा रहता है?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

दादाश्री : तो उसे शुक्लध्यान कहा जाएगा। आपके ध्यान में शुद्धात्मा है, उसे शुक्लध्यान कहा है और शुक्लध्यान, वह प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। यानी आपके पास जो पूँजी है वह, इस समय हिन्दुस्तान में, इस वर्ल्ड में कहीं भी नहीं है, ऐसी है! इसलिए इस पूँजी को संभालकर इस्तेमाल करना और उसकी इससे तुलना मत करना। आपने किससे तुलना की?

प्रश्नकर्ता : 'राम' नाम।

दादाश्री : उसे तो जप कहा जाएगा और जप की तो एक प्रकार की शांति के लिए ज़रूरत है। जबकि यह तो सहज चीज़ है।

ज्ञान में नहीं करना होता जप या तप

प्रश्नकर्ता : दादा, क्रमिक मार्ग में मन की स्थिरता के लिए ऐसा कहा है कि, 'जप यज्ञ करो।' अब, 'शुद्धात्मा हैं, शुद्धात्मा हैं', हम ऐसा रटन करें तो इस तरह से हमें भी मन की स्थिरता मिलेगी न?

दादाश्री : नहीं! आपको ज़रूरत ही नहीं है न, मन की स्थिरता की।

प्रश्नकर्ता : परंतु, वह भी एक तरह का जप यज्ञ ही हुआ न?

दादाश्री : नहीं, अपने यहाँ तो जप यज्ञ है ही नहीं न! जप यज्ञ यानी क्या? छोटे बच्चों का खेल, बाल मंदिर का। यानी कि मन की शांति नहीं रहती तो 'राम, राम, राम', 'सोहम्, सोहम्, सोहम्' ऐसा कुछ एक शब्द बोलता है। फिर कहता है, ''मैं 'सोहम्' ही बोलता रहता हूँ।'' तब मैंने कहा, ''नहीं, 'खूँटी' बोलते रहना, तब भी वही फल मिलेगा। सोहम् बोलेगा तो भी वही फल मिलेगा।''

जप यज्ञ यानी क्या? कोई शब्द बोलते रहना ताकि मन में जो विचार उठते हैं, वे सुनाई न दें। वे विलय हो जाते हैं। उसे एकाग्र कहा जाता है। एकाग्र रहने से शांति रहती है, इसलिए फिर 'राम' के बजाय 'खूँटी, खूँटी' बोलोगे तब भी चलेगा। यह तो शब्द की एकाग्रता हुई। अपने यहाँ तो ऐसा होता ही नहीं है न! हमें मन को मारना नहीं है। हमें तो मन का विश्लेषण करना है और देखना है कि क्या माल भरकर लाया है वह। वह ज्ञेय है और हम ज्ञाता हैं। ज्ञेय है तभी ज्ञाता की कीमत है। हमें जप-तप, कुछ भी करना नहीं रहा। अंत में तो ज्ञाता-ज्ञेय में ही रहना है। उसमें जप नहीं करना होता।

मूल स्वभाव में आ जाओ

एक सिंह का बच्चा था, वह भेड़ों के साथ घूमता रहता था, साथ-साथ ही। भेड़ें चरने जातीं तो वह भी साथ में जाता था। इसलिए भेड़ जैसा ही हो गया। फिर, संस्कार और संयोग मिले न! भेड़ें उसका रूप देखती थीं लेकिन उन्हें उससे भय नहीं लगता था, भेड़ों को। क्योंकि

साथ में ही घूमता था और उसमें हिंसकता नहीं देखी थी, इसलिए फिर भय नहीं लगता था। और वह बच्चा भी उन्हें परेशान नहीं करता था। इसलिए फिर प्यारा लगने लगा, साथ रहने से प्रेम हो जाता है।

ऐसे में एक दिन नदी पर सब भेड़ें पानी पी रही थीं और वह बच्चा भी पानी पी रहा था और सामने वाले किनारे पर एक सिंह ने दहाड़ लगाई, गर्जना की। और इस बच्चे ने सुनी, उससे उसका स्वभाव जाग उठा। सिंह की गर्जना सुनकर उसका खुद का मूल स्वभाव जाग उठा। तो उसने भी गर्जना की। उससे वे सारी भेड़ें भाग गईं, तेज़ी से, सभी की सभी! बच्चे का हिंसक स्वभाव जाग्रत नहीं हुआ था, इसलिए उनके पीछे दौड़ा नहीं। लेकिन वे भेड़ें तो भाग गईं। फिर भेड़ें खड़ी नहीं रहीं, उसके पास। क्योंकि स्वभाव जाग्रत हो गया था। इसी तरह यह आपका स्वभाव जाग्रत हो गया है। ऐसी स्टेज पर बैठे हुए हो कि... अद्‌भुत स्टेज है। यह तो ऐसा है न, बच्चे की समझ में नहीं आता लेकिन क्या उससे स्टेज की कीमत खत्म हो जाएगी? नहीं होगी। नहीं? समझ में नहीं आए तब भी?

गुप्त तत्त्व की आराधना से मोक्ष

शास्त्रकारों ने कहा है कि एक समय के लिए भी यदि आत्मा प्राप्त कर ले, तो बहुत हो गया। एक समय के लिए भी 'आत्मा' होकर बोले तो काम हो जाएगा। आपको ज्ञान देने के बाद फिर आप 'शुद्धात्मा' बोलते हो, तो आप आत्मा होकर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते हो और ऐसा अपने आप आता है। यानी कि आप आत्मा हो गए।

महावीर भगवान ने कहा है, 'एक क्षण भी यदि आत्मा होकर आत्मा बोला तो मुक्त हो गया।' ऐसा तो आप (शुद्धात्मा) होकर कितने ही समय से बोल रहे हो। और ये दूसरे लोग 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा (शुद्धात्मा) होकर नहीं बोलते। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'आत्मा' होकर ऐसा एक ही बार बोल, तो बस हो गया। और समझ गया कि, 'यह मेरा और बाकी सबकुछ विनाशी है, नहीं है मेरा!' तो भी काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जो 'उस गुप्त तत्त्व की आराधना करता है, वह प्रत्यक्ष अमृत को पाकर अभय हो जाता है।' ऐसा कहा है न!

दादाश्री : हाँ, शुद्धात्मा की जो आराधना करता है, 'शुद्धात्मा' होकर 'शुद्धात्मा' बोलता है, वह प्रत्यक्ष अमृत को पाता है और निर्भय हो जाता है। क्योंकि यहाँ पर निरंतर, जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ हो शुद्धात्मा का, तब तक 'मैं चंदूभाई हूँ', तब तक भीतर विष की बूँदें टपकती रहती हैं निरंतर। यानी कि पूरी वाणी विषैली, वर्तन विषैला, मन व विचार विषैले, और हम जब ज्ञान देते हैं न, उससे फिर अंदर तुरंत ही अमृत की बूँदें टपकनी शुरू हो जाती हैं। अतः विचार, वाणी, वर्तन धीरे-धीरे अमृतमय होते जाते हैं।

कितने प्रतिशत आज्ञा पालन?

प्रश्नकर्ता : 'आप शुद्धात्मा हो ही, लेकिन उसका भान रहना चाहिए' समझाइए।

दादाश्री : आप शुद्धात्मा तो हो। मैंने आपको ज्ञान दिया, उसके बाद शुद्धात्मा हो, लेकिन भान रहना चाहिए। आज्ञा में रह पाओगे तो मैं समझूँगा कि भान है इनको। पचास प्रतिशत आज्ञा में, ज़्यादा नहीं। अरे, पच्चीस प्रतिशत आज्ञा में रहोगे न, तब भी मैं कहूँगा कि, 'इन्हें भान है।' और कितने प्रतिशत से पास करें, बताओ?

प्रश्नकर्ता : सही है। पच्चीस प्रतिशत तो रहना ही चाहिए।

दादाश्री : अब, चाय के कप में पच्चीस प्रतिशत शक्कर डालने से चलेगा क्या? तो वहाँ सौ प्रतिशत शक्कर चाहिए और 'यह' करते समय पच्चीस प्रतिशत!

भोजन से अजागृति आज्ञा की

प्रश्नकर्ता : दादा, आप कहते हैं कि आज्ञाएँ बहुत सीधी हैं, सरल हैं, वह बात सही है, लेकिन निरंतर पहली और दूसरी आज्ञा में रह पाना क्या कुछ आसान है?

दादाश्री : रहने में दिक्कत नहीं है। लेकिन ऐसा है न, उपवास करके देखना, रह पाते हो या नहीं रह पाते?

प्रश्नकर्ता : यह समझ में नहीं आया, दादा।

दादाश्री : पूरा दिन उपवास करके देखना, रह पाते हो या नहीं? क्योंकि यह तो, भोजन किया कि डोज़िंग होने लगती है।

हम आपसे इतना ही कहते हैं कि यह विज्ञान किसी भी जन्म में नहीं मिला है। मिला है तो संभाल लेना। अक्रम है यह, और घंटे भर में आत्मज्ञान प्राप्त कर ले, ऐसा है। कभी भी अशांति नहीं हो, ऐसा है। निरंतर समाधि में रहना हो तो रह सकता है। खाते-पीते, बैठते-उठते, स्त्री के साथ रहते हुए भी रह सके, ऐसा है। मुझसे पूछना। यदि नहीं रह पाते हो तो मुझसे पूछो कि, 'भाई, क्या चीज़ कहाँ बाधक है', तो मैं बता दूँगा कि, 'यह पॉइन्ट दबाना।' 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोलने की ज़रूरत नहीं है। रिलेटिव और रियल देखा करना।

उससे हल्का हो जाता है भोगवटा

प्रश्नकर्ता : कभी निकाचित कर्म का उदय हो, तब 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जप यज्ञ करने लगें, तो वह कर्म हल्का हो जाएगा?

दादाश्री : हाँ, हल्का हो जाता है न! फिर, शुद्धात्मा बोलता रहे तो खुद की स्थिरता नहीं डिगती, अतः हल्का हो जाता है। निकाचित का अर्थ यह है कि ऊपर से भगवान उसे दूर करने आएँ, तब भी दूर नहीं हो पाए, ऐसे होते हैं निकाचित कर्म। भुगतने ही पड़ते हैं। लेकिन आप शुद्धात्मा बोलते रहोगे, तो आप पर असर नहीं होगा। कर्म, कर्म की जगह पर, पौद्‌गलिक तरीके से उसका *निकाल* हो जाएगा। आप पर असर नहीं होगा।

शुद्धात्मा सदा शुद्ध ही

अब, यदि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जॉइन्ट हो गया तब फिर उसे कुछ स्पर्श नहीं होगा और बाधक नहीं होगा। वह निश्चय से शुद्ध ही

है। बाद में, अब वापस बदलेगा ही नहीं। यह प्रकृति निश्चय से ही उदयकर्म के अधीन है, वह अपने अधीन नहीं है।

यानी कि जो शुद्ध ही है, वह 'मैं हूँ' ऐसा तय किया होता है। और फिर निश्चय से शुद्ध ही है। वह शुद्धता नहीं बदलनी चाहिए कि, 'मुझसे ये ऐसे काम हो गए।' चंदूभाई से काम हुए हों और खुद अपने ऊपर ले लेता है कि, 'मुझसे ऐसा हुआ।' आप शुद्धात्मा हुए हो, वह निश्चय से, न कि अन्य किसी प्रकार से। निश्चय से शुद्धात्मा यानी कि अब से आप किन्हीं संयोगों में ऐसा नहीं कह सकते कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ या नहीं?' खराब से खराब काम हुआ हो, तब भी वह प्रकृति के अधीन है। आपको क्या लेना-देना? शुद्धात्मा होने के बावजूद लोग वह भी चूक जाते हैं न! 'अब मैं शुद्ध नहीं रहा', ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वे ऐसे चूक क्यों जाते हैं?

दादाश्री : हाँ! ऐसे चूकना नहीं चाहिए। वही उसका पुरुषार्थ!

प्रश्नकर्ता : 'हम शुद्धात्मा हैं', वहाँ द्वंद्व नहीं है, वह सही है परंतु शुद्ध शब्द क्यों इस्तेमाल करना पड़ता है?

दादाश्री : हाँ! यह बहुत ही आवश्यक है, यह तो बहुत वैज्ञानिक शब्द है। शुद्ध बोलना। आत्मा क्यों नहीं बोले? कोई और शब्द क्यों नहीं रखा? तब कहते हैं, ज्ञानी पुरुष ने तुझे शुद्धात्मा पद दिया। और उसके बाद यदि चंदूभाई से कोई ऐसा अघटित कार्य हो जाए कि पूरी दुनिया निंदा करे तब भी यह नहीं छोड़ना कि तू शुद्ध है। फिर कोई भी तेरा बाल बाँका नहीं कर सकेगा। तेरी श्रद्धा डगमगाई कि मार खाई। तू शुद्धता छोड़ना ही नहीं। वह कर्म चला जाएगा। कर्म अपना फल देकर चला जाएगा। वर्ना मन में रह जाएगा कि, 'यह खराब काम हो गया इसलिए मैं बिगड़ गया।' बिगड़ा मतलब गॉन। अत: चाहे कैसा भी खराब काम हो जाए, पूरा जगत् निंदा करे, फिर भी आपका शुद्धात्मा पद नहीं टूटता। ऐसा यह हमारा ज्ञान दिया है मैंने।

फिर भी मन में यदि कोई ऐसा कहे कि, 'मुझे अब कोई परेशानी

नहीं आएगी', तब भी वह लटका जाएगा। हाँ, डरते रहना। डरते तो रहना ही चाहिए। आप कहना, 'चंदूभाई डरकर चलो, महावीर भगवान भी डरकर चले थे।' क्या कहना है पड़ोसी से? 'डरो'। भय मत रखो लेकिन डरो।

प्रश्नकर्ता : वह खुद तो शुद्ध ही है, लेकिन मान्यता उल्टी थी।

दादाश्री : हाँ, शुद्ध ही है। मान्यता उल्टी थी, वह अब सीधी हो गई। फिर से उल्टी मान्यता नहीं घुसे इसलिए, तू शुद्ध है, यह छोड़ना मत। क्योंकि आत्मा का स्वभाव कैसा है? भगवान महावीर ने कहा कि, 'जो साधक साध्यपन प्राप्त करे उसे, शुद्धात्मा की समझ देना। साध्यपन में शुद्धात्मा ही है, ऐसा समझाना।' तब कोई पूछे, 'शुद्धात्मा कहने के बजाय कुछ और, सिर्फ आत्मा कहें तो नहीं चलेगा?' तब कहते हैं, 'नहीं चलेगा।' क्योंकि जब ऐसे किसी कर्म का उदय आएगा, उस समय उसे खुद को ऐसा लगेगा कि 'मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया', ऐसा कहते ही वह लटक जाएगा। क्योंकि कर्ता कौन है? व्यवस्थित। किसका किया? तो कहता है, 'रिलेटिव का। मैं रियल हूँ।' अब, आत्मा का गुण क्या है? तब कहते हैं, 'जैसा चिंतन करे, वैसा बन जाता है।' इसलिए यदि शुद्धात्मा का चिंतन हुआ तो शुद्धात्मा रहेगा, वर्ना हो जाएगा पहले जैसा।

जैसा चिंतन करे, आत्मा वैसा ही बन जाता है

सिर्फ आत्मा ही ऐसा है, क्योंकि खुद जैसी कल्पना करता है न, वैसा ही बन जाता है। 'मैं लेफ्टिनेन्ट हूँ', कहे तो वैसा बन जाएगा। 'मैं अज्ञानी हूँ' कहे तो वैसा बन जाएगा, 'मैं क्रोधी हूँ' कहे तो वैसा बन जाएगा। जैसी कल्पना करे न वैसा बन जाएगा। इसलिए हम उससे क्या करवाते हैं? 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो वैसा बन जाता है। हमने जो दिखाया है, वह वैसा होता जाता है। पाँच वाक्य दिए हैं। सारे पाप तो हैं इस चंदू के, तुझे क्या लेना-देना? यानी पराई चीज़ अपने सिर लेने से फिर हम उसी रूप हो जाते हैं। यह विज्ञान है। सिर्फ आत्मा का ही ऐसा स्वभाव है कि जैसा चिंतन करे, वैसा बन जाता है, तुरंत।

फिर देर ही नहीं लगती। अभी चंदूलाल कहे, 'साहब, मैं तो बहुत बीमार हो गया हूँ, मैं बहुत बीमार हूँ।' मैं कहूँ कि, 'नहीं, आप ऐसा बोलना मत। आपको तो ऐसा कहना है, चंदूलाल बीमार है।' आप 'मैं बीमार हूँ' कहोगे तो आप बीमार ही हो जाओगे, उस क्षण बोलते ही। हो जाते हो या नहीं हो जाते? और 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' बोलकर देखो, उस घड़ी क्या बन जाएगा? अनंत शक्ति वाला बन जाएगा।

उल्टा-सुल्टा, वह है मात्र प्रकृति

'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते ही निर्विकल्प होने लगता है और उसके सिवा दूसरा कुछ बोला, 'मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ' तो वे सब विकल्प हैं। उससे सारा संसार खड़ा होता है। जबकि वह ('शुद्धात्मा हूँ' बोलने वाला) निर्विकल्प पद में जाता है। अब, इसके बावजूद भी चंदूभाई के तो दोनों कार्य चलते रहेंगे। अच्छे और बुरे, दोनों चलते रहेंगे या नहीं? उल्टा-सुल्टा दोनों किए बगैर रहता नहीं। प्रकृति का स्वभाव है। कोई सिर्फ सुल्टा नहीं कर सकता। कोई थोड़ा उल्टा करता है, कोई ज़्यादा उल्टा करता है। नहीं करना हो फिर भी हो जाएगा। इसलिए वे क्या कहते हैं कि 'तू शुद्धात्मा है', ऐसा पक्का करके यह सारा उल्टा-सुल्टा 'देख'। क्योंकि उससे उल्टा हुआ तो तेरे मन में ऐसी कल्पना मत करना कि, 'मुझसे उल्टा हुआ। शुद्धात्मा मेरा बिगड़ गया।' शुद्धात्मा अर्थात् मूल तेरा ही स्वरूप है। यह जो उल्टा-सुल्टा होता है, वे तो परिणाम आए हैं। पहले भूल की थी, उसके परिणाम हैं। उन परिणामों को देखते रहो, समभाव से *निकाल* करो और उल्टा-सुल्टा तो यहाँ पर लोगों की भाषा में है। भगवान की भाषा में उल्टा-सुल्टा कुछ भी नहीं है।

फिर भी शुद्धात्मा शुद्ध ही

प्रश्नकर्ता : 'शुद्धात्मा हूँ', हमेशा ऐसा भान रहना चाहिए।

दादाश्री : 'शुद्ध ही हूँ' वह भाव छूटना नहीं चाहिए। और सामने वाला आपको गाली दे और मारे, तब भी, 'वह शुद्ध ही है', ऐसा भाव छोड़ना नहीं चाहिए।

खुद शुद्ध ही है। चंदूभाई के हाथों कोई जीव मर गया तब भी खुद की शुद्धता नहीं चूके, उसे ज्ञान कहा जाता है। खुद को भ्रांति उत्पन्न नहीं होनी चाहिए कि, 'इसे मैंने मारा'। क्योंकि मारने वाले आप हो ही नहीं। शुद्ध स्वरूप हो आप। कर्ता-भोक्ता आप हो ही नहीं। जो कर्ता-भोक्ता है, यह उसका गुनाह है। यानी आपको तो चंदूभाई क्या करते हैं उसे देखते रहना है। यदि उसके हाथ से जीव मर जाए तो आप ज़रा सलाह देना कि 'चंदूभाई, ज़रा संभलकर चलो तो अच्छा।' यदि साइन्टिफिक तरह से ज्ञान रहता हो तो मौन रहने में भी हर्ज नहीं है लेकिन लोगों को साइन्टिफिक तरीके से नहीं रहता। इसलिए आपको ऐसा कुछ बोलना चाहिए। क्योंकि ऐसा जो बोलता है वह शुद्धात्मा नहीं बोलता, वह तो प्रज्ञा नामक शक्ति बोलती है। यानी शुद्धात्मा तो बोलता ही नहीं है न! यानी कि प्रज्ञा नामक शक्ति बोलती है कि, 'ऐसा क्यों करते हो? ऐसा नहीं होना चाहिए?' इतना कहे तो बहुत हो गया। या अगर ऐसा वर्तन हो जाए कि किसी को खराब लगे तो प्रज्ञा नामक शक्ति चंदूभाई से कहेगी कि 'आप प्रतिक्रमण कर लो, प्रत्याख्यान करो।' बस, इतना ही। इसमें कहीं कुछ कठिन है?

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं। बिल्कुल आसान।

दादाश्री : और ऐसे समय यदि प्रत्याख्यान नहीं हुए हों तो दो जन्म ज़्यादा होंगे, आगे जाकर। लेकिन यहीं पर करना अच्छा है। इसमें कठिन नहीं है कुछ।

आत्मा में कैसे रहना है?

प्रश्नकर्ता : अब बाहर नहीं रहना है, आत्मा में ही रहना है तो ऐसे कैसे रहना है?

दादाश्री : पहले चंदूलाल में कैसे रहते थे? उसकी कोई कोठरी-वोठरी थी? पहले चंदूलाल थे न आप? क्या वास्तव में चंदूलाल थे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : चंदूलाल का नाम लेकर कोई बात करे और वह बात

सुनाई दे, बीच में दीवार हो तब भी सुनकर फिर मुँह बिगड़ जाता था। इसलिए, आप चंदूभाई थे, वह बात निर्विवाद हो गई। अब आप आत्मा हो तो चंदूलाल बिल्कुल भी नहीं हो, चंदूलाल की चाहे कितनी भी बातें हों। रूबरू बातें हों, लेकिन आप आत्मा हो! चंदूलाल से आपको क्या लेना-देना? यानी वहाँ कोई रूम-वूम, कुछ है नहीं। इस तरह आत्मा में रहने का यह उपयोग सेट करो। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह उपयोग चला गया और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह उपयोग रहा। इस उपयोग में वह पहले वाला उपयोग न घुस जाए, उसे जानना है, वहाँ जागृति में रहना है। है कुछ ऐसा कि दिक्कत आए? बस, इतना ही। जैसे कि जब चंदूलाल थे, तब आपको कोई रूम नहीं रखना पड़ता था। यों ही, अंदर हाथ-पैर सारा पूरा शरीर चंदूलाल ही था। और अब, सब आत्मा रूप हो जाना चाहिए। 'मैं आत्मा हूँ' यानी वह सारा वर्तन हो पाए या नहीं, उससे आपको लेना-देना नहीं है। लेकिन 'मैं आत्मा हूँ', ऐसा भान आपको निरंतर रहना चाहिए। क्योंकि जब शराब का असर था तब वह पूरे (शरीर) में फैल गया था। और क्या कहता था? 'मैं तो प्रेसिडेन्ट ऑफ इन्डिया हूँ।' अरे भाई, अभी दो घंटे पहले तो तू कहता था कि, 'हम तो चंदूलाल सेठ हैं' और ऐसा कैसे कह रहा है? तब कहता है, किसी का कोई असर है उस पर। उस असर से ऐसा बोल रहा है। वह असर चला जाएगा उसके बाद वह जो था वही, चंदूलाल कहेगा फिर। यानी कि आप पर इस जगत् का असर हुआ है, लोगों की तरह। इसी कारण आपने चंदूलाल कहा, लेकिन वास्तव में आप शुद्धात्मा ही हो।

लेकिन उसका असर तो उतर जाता है यों ही, दो घंटे बाद। यह नहीं उतरता, ऐसा है। क्योंकि रोज़ाना खुराक लेता है न! शराब तो, पीना बंद करने पर नशा उतर जाता है लेकिन इसे तो सुबह-शाम पीता ही रहता है, चढ़ता ही जाता है और फिर पाँच लोग ऐसा कहने वाले मिल जाते हैं कि, 'चंदूभाई की तो बात ही क्या करनी! दो लाख रुपये खर्च किए हैं।' तब चंदूभाई को फिर से उसका नशा चढ़ता है, ऐसा सुनते ही, तुरंत! ऐसी शराब पिलाते ही रहते हैं लोग। तब कुछ उतारने वाले भी मिल जाते हैं। 'कुछ अक्ल नहीं है आप में', तब

फिर नशा उतर भी जाता है, थोड़ी देर। वह जो उतर जाता है, वह उसे पसंद नहीं आता फिर। अरे भई, नशा उतरा, वह तो बल्कि अच्छा हुआ। तब कहता है, 'नहीं, इससे तो लेकिन मेरी आबरू गई न!' भले ही नशे में था, लेकिन आबरू थी न! अपमान करने पर उतर जाता है नशा, लेकिन साथ-साथ वह बैर बाँध लेता है। 'मेरी चपेट में आना चाहिए', कहेगा।

आप यह चंदूलाल नहीं हो, और शुद्धात्मा हो जाना है। और क्या ज़रूरत है? आपको सचमुच ऐसा विश्वास हो गया कि, 'वास्तव में मैं चंदूलाल नहीं हूँ और चंदूलाल की दौलत तो उसी की है, मुझे क्या लेना-देना? और वह सारी दौलत भी हमने देखी है। वह सारी विनाशी दौलत थी। खो जाने के बाद मिलती नहीं और अगर मिल जाए फिर भी वापस खो ही जानी है जबकि मेरी यह दौलत तो विनाशी नहीं है, अविनाशी है! मेरी यह दौलत अलग है।' पहले ऐसा भान होता है कि 'मैं शुद्धात्मा हो गया'। फिर उसका अनुभव होता जाता है और फिर उसी रूप होता जाता है। इसलिए शास्त्रकारों ने क्या लिखा कि एक सेकन्ड के लिए भी आत्मा बन और तू आत्मा होकर बोल कि, 'मैं आत्मा हूँ'। हुए बगैर मत बोलना। तो आत्मा बनेगा कब? जब ज्ञानी पुरुष उसे स्थित कर देंगे तब। ऐसा हो जाने के बाद वह कहता है कि, 'अब मैं आत्मा हो गया।' उसके बाद ऐसा बोल 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा', बोलता रह लेकिन अगर हुए बगैर गाता रहेगा तो उससे क्या बदलेगा? 'वैसे तो नगीन भाई हूँ', लेकिन रात भर ऐसे गाता रहता है 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। लेकिन नगीन भाई को गाली दी तो फिर से जैसे थे वैसे ही!

आज्ञा पालन करने का हेतु क्या है कि निरा खराब काल है सर्वत्र, जहाँ देखो वहाँ लूट, लूट और लूट। यानी कि कुसंग ही है सारा। संग ही कुसंग हो गया है। इसलिए आप इन आज्ञाओं के अनुसार रहना तो फिर कुसंग छूएगा नहीं और फिर ये आज्ञाएँ भी आसान हैं। ऐसी कोई खास... बहुत कठिन नहीं हैं।

बंद हुआ अंतरदाह...

प्रश्नकर्ता : जो प्राप्त हुआ है, उसमें आगे बढ़ने की जो अंदर इच्छा होती है, उसे अंतरदाह कहा जाएगा?

दादाश्री : आपको अंतरदाह तो होगा ही नहीं न! अंतरदाह तो फिर से खड़ा ही नहीं होगा। जहाँ स्वरूप स्थिति हो गई, वहाँ अंतरदाह बंद हो जाता है। अब एक दूसरे प्रकार का अंतरदाह होता है कि घर में जो साथ वाले होते हैं, उनका अगर सिर पर ले लोगे तो हो सकता है। वह निर्जीव अंहकार तो जलता रहता है, फिर उसका सिर पर ले लोगे तो आपके सिर आएगा। उसे आपको देखते ही रहना है कि, 'बाहर घमासान चल रहा है।' अब अंतरदाह नहीं होगा, स्वरूप स्थिति होने के बाद अंतरदाह नहीं होगा। वर्ना स्वरूप स्थिति होने से पहले तो पूरे जगत् को अंतरदाह रहता ही है। अब जो अंतरदाह दिखाई देता है वह तो बाहरी हिस्से में, आउटर फेस में होता है, उसे आप सिर पर ले लेते हो। आपको तो कुछ स्पर्श नहीं कर सके और बाधक नहीं हो सके, ऐसी बात है। एक बार आत्मा का आनंद होने के बाद, उस जीव को कभी भी अंतरदाह नहीं हो सकता!

अंतरदाह यानी क्या? अंदर जलन का पता चलता रहता है। एक परमाणु खुद जलता है और जलकर खत्म होने लगे तब दूसरे को सुलगाता है। जब दूसरा जलकर खत्म होने लगे तब तीसरे को सुलगाता है। निरंतर ऐसा क्रम चलता रहता है। इलेक्ट्रिसिटी की तरह जलता है। और आपको वह वेदना भुगतनी भी पड़ती है। उसे अंतरदाह कहा है और फिर जब विशेष परमाणु सुलगते हैं तब लोग कहते हैं कि, 'मेरा जी जल रहा है, मेरा जी जल रहा है।' इस तरह वे सारे परमाणु जलते रहते हैं। कैसे सहन होता होगा? हालांकि मैंने भी देखा है। कैसे सहन हो? अंतरदाह गया और *कढ़ापा-अजंपा* (क्लेश-कुढ़न) बंद हुआ इसलिए मुक्त हो गए हम।

प्रश्नकर्ता : दादा, अंतरदाह चला तो गया है, सही बात है। केवलज्ञान प्राप्ति करने का अंतरदाह जागता है, उसका क्या करें?

दादाश्री : वह व्यापार बंद हो गया। अब नया व्यापार शुरू हुआ। इस व्यापार में ज़्यादा मुनाफा कैसे हो? वैसी भावना तो होगी ही न! जितना आपका पुरुषार्थ, उतने केवलज्ञान के अंश जमा हो रहे हैं सारे।

पुरुषार्थ किसे कहते हैं? जितनी जागृति रहे और जितना हमारी आज्ञा का पालन करे, उसे। पुरुषार्थ हुआ यानी अंदर केवलज्ञान के अंश जुड़ते जाते हैं। केवलज्ञान के अंश बढ़ते-बढ़ते 360 डिग्री हो जाएँ तब केवलज्ञान पूरा होता है! तब तक उसे अंश केवलज्ञान कहा जाता है। अंश केवलज्ञान है, ऐसा खुद को पता चलता है कि मुझे अंश केवलज्ञान है। केवलज्ञान के अंश की शुरुआत होने वाली हो तभी अंतरदाह मिटता है, नहीं तो अंतरदाह नहीं मिटता। अंतरदाह ऐसा है कि कभी मिटता ही नहीं। दसवें गुणस्थानक तक अंतरदाह रहता है। सूक्ष्म मात्रा में, बहुत छोटी मात्रा में होता है वह। जितने उसके कषाय होते हैं न, उतनी मात्रा में अंतरदाह होता है, वे अल्प कषाय होते हैं। वहाँ पर सूक्ष्म कषाय होते हैं। दसवें गुणस्थानक में अंतिम प्रकार का लोभ, छोटे से छोटा लोभ होता है, उस दसवें में। तभी तक यह दखल है।

स्ट्रोंग रूम में सेफ्टी

अब आप जहाँ भी सोएँगे, वहाँ आनंद। ठंड में छत पर सोना पड़े तब वहाँ भी आनंद। आप अपनी तरह से अंदर शुद्धात्मा की गुफा में घुस जाओगे न, तो ठंड निकल जाएगी और सेठ को बंगले में भी ठंड लगती रहती है। क्योंकि वे बाहर ही व्यर्थ प्रयत्न में लगे रहते हैं। अरे, तेरे रूम में जा न, आराम से! लेकिन रूम ही नहीं देखा तो कहाँ जाए? और आप तो 'रूम' में सो जाते हो, तो बाहर भले ही बरसात हो या ठंड पड़े!

तेज़ आँधी आए तो डिगोगे नहीं न अब?!

प्रश्नकर्ता : ज़रा भी नहीं।

दादाश्री : आपके पास शुद्धात्मा का स्ट्रोंग रूम है, कोई नाम

ही नहीं ले सकता वहाँ, ऐसा स्ट्रोंग रूम है यह तो। अपने होम डिपार्टमेन्ट में घुस जाना, यह सारा तो फॉरेन है। तो फॉरेन में भले ही शोर शराबा हो, आप होम के स्ट्रोंग रूम में घुस गए तो फिर कोई नाम लेने वाला होगा ही नहीं। अब अनुभव होगा न! पहले होम में बैठेंगे, उसके बाद ही अनुभव की शुरुआत होगी न! तब तक, अभी फॉरेन में ही चला जाता है। अभी भी शुद्धात्मा होने के बाद भी अंदर नहीं जाते, बाहर चले जाते हो। क्योंकि अभ्यास नहीं है अंदर जाने का। अनअभ्यास है न? तो थोड़ा वह अभ्यास करना चाहिए न?

अभी तो अंदर तरह-तरह की आँधियाँ आती हैं तो वहाँ भी स्थिरतापूर्वक हल निकालना! आँधियाँ कैसी-कैसी आएँगी? पूर्व कर्म की। मतलब भरा हुआ माल है। *पूरण* हुआ था, उसका *गलन* होते समय आँधी आती है। उस समय आपको स्थिरता रखनी चाहिए कि आँधी आई है। आप शुद्धात्मा, आपको होम डिपार्टमेन्ट में बैठकर देखते रहना है।

क्योंकि आप में आत्मा अलग बरतता है, हंड्रेड परसेन्ट और *पुद्गल* अलग बरतता है और शुद्धात्मा दशा दी हुई है। अब इसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, कभी भी नहीं बिगड़ेगा। आप जान-बूझकर उखाड़ना चाहो तो उखड़ जाएगा, वर्ना उखड़ेगा नहीं। समझ में कम-ज़्यादा आए, उसमें हर्ज ही नहीं है। समझ की ज़रूरत ही नहीं है। ज्ञानी पुरुष की कृपा का ही फल है। यह अक्रम विज्ञान अर्थात् आपको कुछ भी नहीं करना है।

यहाँ पर बहुत लोगों को लाभ हुआ और फिर उनके खुद के अनुभव हैं कि, 'ज्ञान से पहले हमारी क्या दशा थी और अभी क्या दशा है!'

वैज्ञानिक तरीके से अक्रम विज्ञान

एक बार, ज्ञानी पुरुष द्वारा दिया गया शुद्धात्मा होना चाहिए। यानी कि यह साइन्टिफिक है, वैज्ञानिक तरीका है यह तो। वर्ना दो घंटों में ऐसा हुआ हो, ऐसा सुना है कभी भी? दो घंटों में आप

शुद्धात्मा हो गए, ऐसा सुना है? लेकिन वैज्ञानिक तरीका है यह और तीर्थंकरों का ज्ञान है यह। यह मेरा अपना नहीं है। यह जो तरीका है न, यह मेरा मौलिक तरीका है, अक्रम का तरीका!

यह विज्ञान है। यह तो... त्रिकाल विज्ञान है यह। भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है, भविष्यकाल में बदलेगा नहीं, ऐसा विज्ञान है यह तो। आपको नहीं लगता कि यह विज्ञान है, दादा का? मेल बैठाकर देखोगे तो पता चलेगा। अविरोधाभासी, सैद्धांतिक रूप से नहीं लगता ऐसा?

प्रश्नकर्ता : दादा, उसके जवाब में ऐसा है कि कषाय कम होकर न जाने कहाँ गायब होने लगे हैं। आज कोई कुछ बिगाड़ने आए, तो वह चंदूभाई का बिगड़ता है, ऐसा लगता है। अत: वही हमारे पास प्रमाण है।

दादाश्री : चाहे कैसे भी खराब परिणाम हों फिर भी 'देखा' करना, डिगना नहीं। क्योंकि तू कर्ता है नहीं। आज उसका कर्ता तू नहीं है।

टूटा आधार कषायों का

'मैं चंदूभाई हूँ' बोले, तो उससे आप क्रोध-मान-माया-लोभ सभी के आधार बन बैठे। अब, 'मैं शुद्धात्मा' कहने पर वे सभी निराधार हो गए। निराधार होने के बाद फिर कौन रहेगा? कोई भी चीज़ निराधार स्टेज में नहीं रहती है, कभी भी। गिर ही जाती है। पहले तो, 'मुझे गुस्सा आया, मुझे ऐसा हुआ, वैसा हुआ', करता था। अब वे निराधार हो गए और वह गुस्सा सारा निराश्रित जैसा दिखाई देता है। निराश्रित व्यक्ति हो और दूसरा एक व्यक्ति आश्रित हो, तो दोनों में अंतर होता है, इतना अधिक होता है कि गुस्सा मृतप्राय जैसा लगता है। सत्व नहीं होता उसमें। अब वे क्रोध-मान-माया-लोभ अन्य कुछ नुकसान नहीं करते, सुख को आवृत कर देते हैं। अंदर जो सुख, स्वयंसुख उत्पन्न होना चाहिए, वह नहीं आने देते।

प्रतिष्ठा अर्थात् क्या है कि बेटे की बहू का ससुर बनकर बैठे

रहते हैं। ससुर ही कहलाएगा न, बेटे की बहू आ जाए तो? लेकिन फिर जब दीक्षा लेता है तब यहाँ से ससुर की प्रतिष्ठा तोड़ी। दीक्षा लेता है और वापस, 'मैं साधु हूँ' की प्रतिष्ठा खड़ी की। इस प्रतिष्ठा को छोड़कर फिर दूसरी प्रतिष्ठा की। प्रतिष्ठा तो वही की वही की न? यदि 'शुद्धात्मा' हो गया होता तो कोई दिक्कत नहीं थी। इस एक प्रतिष्ठा को छोड़ा और दूसरी प्रतिष्ठा की। फिर आगे ज़रा शास्त्र पढ़ता है इसलिए फिर आगे जाकर उससे साधु की प्रतिष्ठा छुड़वाता है और उपाध्याय की देता है। उपाध्याय की छुड़वाकर आचार्य की देता है। आचार्य की छुड़वाकर सूरी की देता है। लेकिन प्रतिष्ठा में ही रहता है। तो जब तक ऐसी प्रतिष्ठा में है, तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ जाएँगे नहीं।

'मैं चंदूभाई हूँ' इस प्रतिष्ठा के कारण क्रोध-मान-माया-लोभ की सृष्टि रही हुई है। 'मैं चंदूलाल', ऐसा सब आपके ज्ञान में था, और जब तक 'इसका फादर हूँ', तब तक उसे प्रतिष्ठा कहा जाता है। लेकिन वह प्रतिष्ठा आपने छोड़ दी कि, 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ और चंदूलाल तो पूरा मेरे पहले के कर्मों का पुराना फोटो है, इसी को भुगतना है। यह दंड है मेरा, गुनहगारी है।' यह गुनहगारी भुगतनी है। बाकी, वह कुछ... 'मैं' वास्तव में चंदूलाल नहीं हूँ, ऐसी प्रतिष्ठा करे तभी वे खड़े रहेंगे। लेकिन 'मैं' शुद्धात्मा हो गया तो प्रतिष्ठा टूट जाएगी।

रियल अविनाशी, रिलेटिव विनाशी

एक विनाशी दृष्टि है और दूसरी अविनाशी दृष्टि है, दो तरह की दृष्टियाँ हैं। वास्तव में खुद की मूल दृष्टि तो अविनाशी है। लेकिन फिर इस विनाशी में दृष्टि डाली, उससे तो बल्कि विनाशी भाव उत्पन्न हुआ!

'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा भान, लोगों ने कहा और हम यह सब मानकर फँस गए और दृष्टि 'रिलेटिव' हो गई यानी कि 'विनाशी हूँ', ऐसा भान हो गया लेकिन फिर अंदर उसे खटकता रहता है। फिर ऐसा कहता भी है कि, 'पिछले जन्म में था।' यदि पिछले जन्म में था, तो अविनाशी है ही न! हम पिछले जन्म में थे, तो हम विनाशी नहीं हैं। यह तो, देह विनाशी है। हमारा अविनाशीपन तो है ही। क्योंकि हम

शुद्धात्मा हैं, वह 'रियल' वस्तु है और जितनी 'रियल' वस्तुएँ हैं, वे सभी अविनाशी हैं। जितनी 'रिलेटिव' वस्तुएँ हैं, वे विनाशी हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार हम संसार की कुछ बातों में, 'यह रिलेटिव है', इस तरह से नाटकीय रहते हैं, तो अंदर बहुत आनंद रहता है।

दादाश्री : रिलेटिव कहा, तभी से आनंद। रिलेटिव कहा तो खुद रियल है, उस बात का विश्वास हो गया। 'मैं शुद्धात्मा' नहीं कहा और 'यह सब रिलेटिव है', ऐसा कहा न, तो आप शुद्धात्मा हो, वह प्रूव (साबित) हो जाता है।

दोनों अविनाभावी

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा की जो स्थापना है तो क्या वह रियल वस्तु हुई?

दादाश्री : हाँ, रियल वस्तु।

प्रश्नकर्ता : तो उस पर तो उसे जागृति रखनी ही चाहिए। वह आज्ञा नंबर वन। बाकी का सब रिलेटिव है और खुद रियल है।

दादाश्री : और ऐसे तो पूरे जगत् को रिलेटिव में रख दिया, एकदम से। अब, आप एक भी आज्ञा का पालन करते हो क्या? कौन सी आज्ञा का पालन करते हो?

प्रश्नकर्ता : रियल देखना।

दादाश्री : ऐसा? सिर्फ रियल ही या रिलेटिव भी? रियल और रिलेटिव दोनों साथ में ही हो सकते हैं। कोई एक नहीं रहता। यानी कि यदि यह दिखेगा तो वह दिखेगा। वह दिखेगा तो यह दिखेगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि रियल दिखेगा तो रिलेटिव दिखेगा।

दादाश्री : रिलेटिव हो तभी रियल दिखाई देगा और रियल दिखाई देगा तो रिलेटिव दिखेगा ही। उनका अविनाभावी संबंध है, एक हो तो दूसरा होता ही है! रियल उसी को कहा जाएगा जो रिलेटिव को देखता हो।

प्रश्नकर्ता : रियल होकर रियल को भी देख सकता है न?

दादाश्री : देख सकता है, हाँ। रिलेटिव को देखने-जानने के सिवा अन्य कोई क्रिया नहीं हो, वह है रियल। सारा जगत् रिलेटिव में है, देखने व जानने के अलावा अन्य सारी क्रियाओं में पड़ा है।

प्रश्नकर्ता : यानी रिलेटिव मात्र को देखने-जानने की क्रिया सिर्फ रियल की ही है?

दादाश्री : हाँ, अन्य कोई तो देख ही नहीं सकता।

दोनों को अलग करे, वह प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : रियल-रिलेटिव बाहर देखते-देखते जाता हूँ, तो फिर वह कौन देखता है? शुद्धात्मा देखता है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा देखती है, आत्मा नहीं देखता। प्रज्ञा देखती है इसलिए आत्मा के खाते में ही गया। बुद्धि और प्रज्ञा, दोनों के देखने-जानने में फर्क है। वह इन्द्रियगम्य है और यह अतीन्द्रियगम्य है।

सारे विनाशी को तो पहचान सकते हैं न हम! मन-वचन-काया से, यह सब जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, वह सारा ही रिलेटिव है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। लेकिन इन रियल और रिलेटिव को अलग कौन करता है?

दादाश्री : अंदर वह प्रज्ञा है। वह दोनों को अलग करती है। रिलेटिव का अलग करती है और रियल का भी अलग करती है।

प्रश्नकर्ता : रियल, रिलेटिव और प्रज्ञा, ये तीन चीज़ें हैं, ऐसा हुआ न! तो प्रज्ञा रियल से अलग चीज़ है न?

दादाश्री : वह प्रज्ञा रियल की ही शक्ति है, लेकिन बाहर निकली हुई शक्ति है। जब बाहर रिलेटिव नहीं रहता, तब वह एकाकार हो जाती है।

रियल-रिलेटिव की डिमार्केशन लाइन

सिर्फ तीर्थंकरों ने ही रिलेटिव और रियल, दोनों के बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन डाली है। अन्य किसी ने नहीं डाली। कुंदकुंदाचार्य ने डाली थी, वह भी सीमंधर स्वामी के संधान से। हमारा रियल है, इसलिए, रिलेटिव और रियल दोनों के बीच डिमार्केशन लाइन डाली है! वहाँ से ही फिर वह नित्य हो गया। डिमार्केशन लाइन, बहुत अच्छी डल गई है! उसी की कीमत है न!

लोग रिलेटिव को रियल मानते हैं। कुछ बातों में रियल को रिलेटिव मानते हैं। वह भ्रामकता निकल गई न? इसीलिए यह ज्ञान प्राप्त करके दूसरे दिन जीवित हो जाता है। यही उसका कारण है न! वर्ना जीवित ही नहीं हो पाता न!

हमारा रिलेटिव और रियल का डिमार्केशन बहुत एक्यूरेट आ गया न! और सारा जगत् पूरी तरह से उसी में फँसा हुआ है। रिलेटिव और रियल के बीच जो लाइन ऑफ डिमार्केशन होनी चाहिए, उसका पता नहीं है इन लोगों को, इसलिए एक्यूरेट डिमार्केशन लाइन डलती ही नहीं है और फँस गए हैं। रिलेटिव-रियल के झगड़े बंद नहीं होते इसलिए आत्मा प्राप्त नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव को रिलेटिव की तरह तभी समझ सकेगा जब रियल को समझेगा।

दादाश्री : रियल समझेगा तब रिलेटिव समझेगा। या फिर पूरे रिलेटिव को समझ लेगा तो रियल समझेगा। जैसे कि यदि सिर्फ गेहूँ-गेहूँ समझ सके तो फिर रहा क्या? कंकड़। सिर्फ कंकड़ को समझ ले तो क्या रहा? गेहूँ। गेहूँ व कंकड़ दोनों साथ में हैं, ऐसा पता चल जाता है न?

प्रश्नकर्ता : आज लोगों ने रिलेटिव को रिलेटिव भी नहीं समझा है, ऐसा हुआ न, दादा?

दादाश्री : कुछ भी नहीं समझा है न! रिलेटिव को पूरा समझ ले तो बहुत अच्छा, रिलेटिव का एक अंश भी नहीं समझा है लोगों

ने। कुछ समझा ही नहीं है। इससे तो बल्कि नुकसान उठाया है। रिलेटिव का समझ लेगा तो रियल को समझ ही जाएगा। वर्ना लाइन ऑफ डिमार्केशन ठीक से नहीं डलेगी न! इतना यह हिस्सा रियल का और यह रिलेटिव का।

प्रश्नकर्ता : यह खुद... खुद से हो नहीं सकता।

दादाश्री : नहीं, खुद को भान ही नहीं है न! शास्त्रों में जो लिखा है वह पता नहीं है। शास्त्रों में पूरा शब्द नहीं आ सकता।

प्रश्नकर्ता : तो आखिर में जब ज्ञानी पुरुष मिलते हैं तभी काम होता है।

दादाश्री : वर्ना नहीं हो सकता। हुआ ही नहीं है। आज तक किसी को भी नहीं हुआ है। क्योंकि चारों वेद इटसेल्फ कहते हैं, 'दिस इज़ नॉट दैट, दिस इज़ नॉट दैट।' पुस्तकों में लाया जा सके, ऐसा नहीं है आत्मा!

सर्वात्मा, वही शुद्धात्मा

सभी आत्माओं में शुद्धात्मा दिखने लगेगा, तभी से खुद परमात्मा हो जाएगा। वर्ना, 'यह मेरा साला लगता है, यह मेरा मामा लगता है, यह मेरा नौकर है, यह मेरा सेक्रेटरी है, यह मेरा सेठ है', यह सब भ्रांति है। 'सभी में शुद्धात्मा है', जिसे ऐसा समझ में आ जाएगा, उसे परमात्मा पद प्राप्त हो जाएगा। लेकिन अभी उस श्रेणी की शुरुआत की है, परमात्मा की। वास्तव में सीढ़ियाँ अब चढ़नी हैं। अब ऐसा कहा जाएगा कि मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश किया, और श्रेणी की शुरुआत की है। सभी धर्म यहाँ पर मिलते (एक होते) हैं। इस मोक्ष के दरवाज़े में प्रवेश करते समय सभी को साथ में रहना होगा। श्रेणी की शुरुआत करते समय। तो इसे श्रेणी की शुरुआत करना कहा जाएगा। जब शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठा, तभी से श्रेणी की शुरुआत की, फिर आगे-आगे उसका अनुभव होता ही रहेगा, स्टेप बाइ स्टेप! अर्थात् 'सर्वात्मा, वही शुद्धात्मा है', ऐसा समझ में आया, तभी से हमारी परमात्मा की श्रेणी शुरुआत हो गई।

[3]
समभाव से निकाल, फाइलों का

विराम पाएगा विश्व समभाव से

विषमभाव से जगत् खड़ा हो गया, समभाव से खत्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : फाइलें बहुत होती हैं न, वे आती हैं तब...

दादाश्री : फाइलें आएँ तो उसमें हर्ज नहीं। लेकिन आपके ध्यान में यह रहता है या नहीं कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'? जैसे आप तय करते हो कि शाम को मुझे यहाँ से मुंबई जाना है तो आपके ध्यान में रहता है या नहीं, मुंबई जाना है, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : वह तो ध्यान रहता है, *लक्ष* रहता है।

दादाश्री : तो वही है *लक्ष*। वह *लक्ष* नहीं चूकना चाहिए। निरंतर जागृति रहनी ही चाहिए। फाइलें तो आएँगी और जाएँगी, आएँगी और जाएँगी। बाद में धीरे-धीरे हल्का हो जाएगा न! जैसे-जैसे आप यह सत्संग सुनते जाओगे न, वैसे-वैसे सारी परतें खत्म होती जाएँगी। अब आपको सत्संग सुनना रहा है।

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* करने में कभी दो-चार घंटे लग जाते हैं।

दादाश्री : समय लगता है लेकिन समभाव से *निकाल* तो करता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, करता तो है।

दादाश्री : नहीं हो पाए तब भी हर्ज नहीं। 'समभाव से *निकाल* करना है' इतना आपको भाव में रखना है। हुआ या नहीं हुआ, वह आपको नहीं देखना है। फिर किसी फाइल का समभाव से *निकाल* किया है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो हो ही गया।

दादाश्री : जितना वह करोगे न, वैसे–वैसे फिर शक्ति का मल्टीप्लिकेशन होगा।

खाने की फाइल का समभाव से निकाल

जो बार–बार याद आती रहे, याद ही आती रहे, उसे कहते हैं फाइल। याद नहीं आए, उसे फाइल नहीं कहते। चंदूलाल नाश्ते के लिए शोर मचाए, तो नाश्ता दे दो। वह हो जाएगा तो फिर उसकी ओर से कोई शिकायत नहीं रहेगी। उसकी शिकायत नहीं रहनी चाहिए यानी सुबह नाश्ता करवाकर फिर आप पूछना, 'चाय लोगे?' तब वह कहे, 'नहीं, चाय तो कहाँ पीता हूँ?' तब आप कहना, 'ठीक है फिर।' और चाय पीते हों तो आप दे देना। वर्ना उसकी शिकायत रहेगी बिना बात के। तब फिर यदि आप किसी के साथ बातें कर रहे होंगे तो वह अंदर चाय पीने की किच–किच करता रहेगा। इसलिए उसका हल ला देना पूरा, समभाव से *निकाल*!

'फाइल नंबर 1' खाएगी–पीएगी। इस फाइल ने क्या खाया–पीया, उसे 'खुद' 'देखता' रहे। बस, इतना ही। वह अपने धर्म में है। देखना–जानना हमारा धर्म है और खाना–पीना फाइल का धर्म है। क्रियाएँ सारी फाइल की हैं, अक्रियता 'हमारी' है। कोई भी क्रिया 'हमारी' नहीं है। हम ज्ञाता–द्रष्टा हैं, देखना व जानना। क्रिया हर तरह की होती हैं, वे सब फाइल नंबर वन की हैं।

सुबह चाय–नाश्ता आए, तो फाइल का *निकाल* करना है। चाय

में शक्कर ज़रा कम हो तो आपको समझ जाना है कि, 'इस फाइल का समभाव से *निकाल* करना है।' कुछ बोलना मत, पी जाना। समभाव से *निकाल* करना है। फिर जब बनाने वाली को पता चलेगा कि, 'ओहोहो! ये तो बोलते भी नहीं हैं।' वे पीएँगी तब पता तो चलेगा न? तो बल्कि उन्हें मन में ऐसा लगेगा कि, 'ये तो बोलते भी नहीं हैं, मेरी गलती है।' फिर वे खुद भूल सुधारेंगी। हमें किसी को सुधारने की ज़रूरत नहीं है। हमारे बताने पर किच-किच करेंगी। 'क्या आप भूल नहीं करते कभी?' ऐसा कहेंगी। ऐसे आबरू ले, उसके बजाय बिना आबरू के आबरूदार रहें तो वह क्या गलत है?

बहुत आसान रास्ता है। शास्त्र पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। सभी फाइलें ही हैं। यह भोजन आया, वह भी फाइल। यह चाय आई, वह भी फाइल। इनका समभाव से *निकाल* करना। 'मैं चाय नहीं पीता, और मुझे ऐसा नहीं है और वैसा नहीं है...' ऐसा नहीं। लेकिन यदि चाय नहीं पीते हो तो वह कप रख दो न, तो पता नहीं चलेगा किसी को! चीखता-चिल्लाता क्यों है फिर? 'मैं चाय नहीं पीता न' कहेगा। कितने सारे बखेड़े करता है। नहीं? दखलंदाज़ी करता है!

क्रमिक मार्ग में तो हल नहीं आता। अपना यह 'अक्रम मार्ग' तो ऐसा है कि जल्दी हल आ जाता है। शरीर... खुद अपने आप से लेकर सब को फाइल कहते हैं। बीवी-बच्चों का राग छोड़ा जा सकता है, बंगले का राग छोड़ा जा सकता है लेकिन क्या भूख का राग छोड़ सकता है?

फाइलें कहते किसे हैं?

नींद की फाइल का तो समभाव से *निकाल* कर दिया है न अब?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह कर लिया।

दादाश्री : वह भी फाइल ही है। यदि उसका भी *निकाल* नहीं करेगा तो बैठे-बैठे सो जाएगा। यानी कि उस फाइल का *निकाल* करने

से सब ठीक हो जाएगा। उसी तरह, भूख लगे तो वह भी फाइल। जो दु:ख देती हैं, वे सभी फाइलें हैं। संडास जाना हो और वहाँ लाइन लगी हो तो उसे फाइल कहा गया है। *उपाधि*! खाना खाने बैठते हो वह भी फाइल है। अरे, गर्म हवा आए तो वह भी फाइल है। समभाव से *निकाल* करना पड़ता है न? ठंडी हवा आए तो वह भी फाइल है। क्या है जो फाइल नहीं है?

प्रश्नकर्ता : ट्रेन में धक्का मुक्की हुई, उसे भी फाइल मानें?

दादाश्री : फाइल मानेंगे तभी *निकाल* होगा न! फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है, उससे फाइल खड़ी नहीं रहेगी। जब तक वह खाता पूरा नहीं होगा तब तक बहीखाते साफ नहीं होंगे और तब तक संपूर्ण *निकाल* नहीं होगा। यह ऋणानुबंध है। बहीखाते में नाम है, फलाना-फलाना। 'कैसे हो, चंदूभाई' ऐसा कहने वाले भी फाइल कहे जाते हैं। बाकी सब लोग कुछ कहते हैं क्या? लेना भी नहीं और देना भी नहीं। ये सब जो पाँच-पच्चीस हज़ार लोग हैं, वही। उनके साथ लेना-देना है। उतने खातों के लिए पूरी दुनिया के साथ हमें व्यवहार में आना पड़ता है। इसलिए, यदि खाते साफ कर लिए, समभाव से फाइलों का *निकाल* कर दिया तो खत्म। पापा भी फाइल कहलाते हैं। शादी के बाद दूसरे नंबर की फाइल आती है न? सभी फाइलें कहलाती हैं न?

प्रश्नकर्ता : हमें फाइल का समभाव से *निकाल* करने की ज़रूरत क्यों पड़ती है?

दादाश्री : पहले उल्टा किया है, इसलिए अब सुल्टा करने की ज़रूरत है। समभाव नहीं रखा और उल्टे तरीके से किया है, इसलिए अब समभाव रखना। पहले गुणा की गई संख्या हो, उसमें हम भाग लगाएँ तो जो थी वही की वही आ जाएगी न और जिसमें पहले भाग लगाया हो, उससे गुणा करेंगे तो फिर से वही की वही आ जाएगी न! यानी कि उन दोनों को नि:शेष कर देना। अर्थात् समभाव से *निकाल* करना है।

निश्चय ही करता है काम

प्रश्नकर्ता : 'समभाव से *निकाल* करना', उसमें कोई क्रिया है?

दादाश्री : क्रिया कुछ भी नहीं है। मन में निश्चय करना है कि 'मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना है। समभाव से *निकाल* करना है', बस यही। फिर क्रिया कोई भी नहीं करनी है। 'समभाव से *निकाल* करना है', यही आपका भाव। उसके बाद जो भी होता है, वह अलग बात है। लेकिन उससे साइन्टिफिक असर है। आप यदि अंदर इस तरह तय करते हो तो सामने वाले पर उसका असर पड़ता है और साइन्टिफिक प्रकार से हेल्प होती है और अगर आप भीतर से तय करोगे कि 'आज मुझे उसे सीधा कर देना है', तो उसका भी उस पर असर होगा। यानी कि यह बहुत ही सुंदर हथियार दिया है, 'समभाव से *निकाल* करो।'

पुरुष (आत्मा) होने के बाद पुरुषार्थ की ही ज़रूरत है। फाइलों का तो अपने आप *निकाल* हो ही जाएगा। आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। आपके मन में पहले जो ऐसा रहता था कि, 'यह आदमी क्या समझता है अपने आपको', उससे आपके भाव उल्टे हो रहे थे। अब वैसा नहीं होना चाहिए। वह चाहे आपको कुछ भी करे, सामने वाला व्यक्ति उछल-कूद कर रहा हो तो हर्ज नहीं है उसमें, आपको ऐसा तय करना है कि 'समभाव से *निकाल* करना है', फिर वैसा होता ही रहेगा।

समभाव में शस्त्र उठा सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : आज के ज़माने में... समभाव से *निकाल* करना, आपने जो ऐसा बताया है, यह कैसे संभव हो सकता है? रोज़ की ज़िंदगी में हम कैसे जान सकते हैं कि यहाँ शस्त्र उठाने जैसा है या नहीं?

दादाश्री : शस्त्र नहीं उठाने हैं। सामने वाला उठाए फिर भी हमें नहीं उठाने हैं, वह नहीं उठाए तब भी नहीं उठाने हैं! हमें तो *निकाल* ही कर देना है। हमें कुछ जानने-करने की ज़रूरत नहीं है।

'समभाव से *निकाल* करना है', इतना ही वाक्य आपके मन में रखना है। यह तो अक्रम विज्ञान है। आज्ञा में ही रहना है, तो फिर आपका कोई इतना भी नाम नहीं ले सकेगा।

'फाइल' शब्द में कितना वचनबल

आप हमारा शब्द बोलोगे न, कि, 'फाइल का समभाव से *निकाल* करना है', तो सामने वाला चाहे कितना भी नालायक इंसान हो, तब भी समभाव से *निकाल* हो ही जाएगा। ये शब्द ऐसे हैं, इस वाक्य में इतना अधिक वचनबल रखा है कि इंसान यदि इस वाक्य का उपयोग करे तो अन्य किसी भी तरह का दुःख स्पर्श नहीं करेगा, दूषमकाल भी स्पर्श नहीं करेगा, इतना अधिक साइन्स रखा है इसमें अंदर।

'फाइल' किसे माना जाता है? जिससे हमारा कुछ लेना-देना नहीं है, वह फाइल नहीं है। ये अमरीका वाले क्या हमारी फाइल हैं? अमरीकन लोग यहाँ से आते-जाते हों तो हमें राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता। जिनके प्रति हमें राग-द्वेष होते हैं, वे हमारी 'फाइल'। जहाँ आसक्ति है, वे सभी 'फाइलें'। तो हमें समझ जाना है कि यह हमारी फाइल आई। पहले तो ऐसा कहते थे, 'यह मेरी साली आई।' उससे बल्कि उस पर राग होता था। 'मेरी साली' कहते ही राग होता था लेकिन 'फाइल' कहते ही राग टूट जाता है। 'फाइल आई', कहते ही राग टूटा। 'रियली' तो अपना (महात्माओं का) राग भी छूट गया है और द्वेष भी छूट गया है, वीतराग हो गए हैं। लेकिन अब व्यवहार के सभी हिसाबों का *निकाल* करना है न! दुकान बड़ी हो तो थोड़ी देर लगती है।

सारी आधि, व्याधि और *उपाधि* फाइलों के साथ ही रहती हैं। यों 'मेरा, मेरा' कहोगे तो आपकी फाइलें आपसे चिपटेंगी, आधि-व्याधि-*उपाधि* चिपटेंगी और 'यह फाइल है' ऐसा कहा कि उसका अलग और आपका अलग। इससे समाधि रहेगी। जब आधि-व्याधि-*उपाधि* छूए नहीं, उसे समाधि कहा गया है!

समझ समभाव से निकाल की

प्रश्नकर्ता : इसमें मुख्य चीज़ हमें यह *लक्ष* में रखनी चाहिए कि जगत् में समभाव से बरतते रहो।

दादाश्री : बस, आपको समभाव से *निकाल* करना है। आपको तो सिर्फ आज्ञा का पालन करना है, उसी को कहते हैं, समभाव से *निकाल* हो गया। फिर, सामने वाला व्यक्ति नहीं करे तो वह बात डिफरेन्ट मैटर है। सामने वाला उल्टा चले तो उसमें हर्ज नहीं है। आप ज़िम्मेदार नहीं हो।

सामने से कोई व्यक्ति आ रहा हो, आपको लगे कि यह व्यक्ति अभी गुस्सा होगा। तो आप मन में पहले से निश्चित कर लेना कि समभाव से *निकाल* करना है। इसके बावजूद भी यदि वह व्यक्ति गुस्सा हो गया और उसके साथ चंदूभाई भी गुस्सा हो गए। आपने निश्चित किया था, फिर भी चंदूभाई गुस्सा हो गए तो उसी को समभाव से *निकाल* करना कहा जाएगा। आपका डिसिज़न क्या था? समभाव से *निकाल* करना था। फिर भी तीर छूट गया, उसके लिए आप रिस्पॉन्सिबल नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि हम सामने वाली फाइल के साथ एडजस्ट हो जाएँ तो उसे समभाव से *निकाल* करना कहा जाएगा न?

दादाश्री : आपको तो.. उस फाइल के आते ही मन में निश्चित हो जाना चाहिए कि, 'फाइल के साथ झंझट है, इसलिए अब समभाव से *निकाल* कर देना है।' आपके इस तरह से निश्चित करने के बाद जो भी होता है, वह करेक्ट है। वह सब तो कुदरती रचना है। उसमें हर्ज नहीं है मुझे। नहीं होता है तो, फिर से, '*निकाल* करना ही है', उसमें पुरुषार्थ भाव रहा हुआ है। आपसे कहा हो कि, 'यह जो स्लोप है न, वह चिकनी जगह है, गिर जाओगे। इसलिए इस फाइल का समभाव से *निकाल* करना।' फिर आप समभाव से *निकाल* करने का निश्चय करके अंदर जाते हो और फिसल जाते हो तो उसमें हर्ज नहीं

है। मेरी आज्ञा में रहा या नहीं? और जो आज्ञा में रहा उसे दूसरा गुनाह नहीं लगता।

नहीं तोड़ना चाहिए भाव, समभाव का

प्रश्नकर्ता : अब, यदि वह फाइल मोक्षमार्ग में रुकावट डाले और समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए तो उस फाइल को लाल कपड़े में लपेटकर दुछत्ती पर रख दूँ और फिर कहूँ, 'मैं जब सावधान हो जाऊँगा, तब देख लूँगा। लेकिन अभी तू जा।' तो चलेगा या नहीं?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं करना है। 'समभाव से *निकाल* करना है', आपको ऐसी भावना रखनी है, और कुछ भी नहीं। ताकि सामने वाले के लिए आपका भाव नहीं बिगड़े। हुआ या नहीं हुआ, उससे आपको क्या झंझट? आसान छोड़कर कठिन क्यों करते हो? यानी कि इतना सरल है, आसान है। सरल इसलिए कि आपको सिर्फ आज्ञा पालन ही करना है। आपको और कुछ नहीं देखना है। कुछ और तो मनुष्य से हो नहीं सकता। ऐसे जब समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए, तब क्या करोगे वहाँ? सिर फोड़ोगे? नारियल फोड़ते हैं, वैसे क्या सिर फोड़ सकते हैं? जो हुआ वह सही, करेक्ट। लेकिन आपका भाव एक्ज़ेक्ट होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कई बार हम आपसे ऐसा माँगते हैं कि, 'दादा, इन फाइलों का *निकाल* करने के लिए आप शक्ति दीजिए।'

दादाश्री : हाँ, ऐसा भी माँगना। लेकिन माँगकर वापस अपने काम में लगे रहना। माँगना मत छोड़ना। माँग तो, यदि फाइल ज़ोरदार हो तो आपको माँगना पड़ेगा। लेकिन माँगने के बाद राह मत देखना, राह देखना वह गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या ऐसा है कि जब सामने वाले के मन का समाधान नहीं होता, तब वह चिल्लाता है?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं है। वह कर्म के अधीन चिल्लाता है।

समाधान होने के बाद भी चिल्ला सकता है। हमें यह पक्का करना है कि हर एक फाइल का समाधान करना है। फिर सामने कुछ भी हो जाए, वह चाहे कोई भी हो, फिर भी ऐसा पक्का रहना चाहिए कि समाधान करना ही है। हुआ या नहीं हुआ, यह नहीं देखना है। यह तो, कौन से कर्म के उदय से क्या होता है, वह आपको समझ में नहीं आएगा। लेकिन जब से आपने किसी के भी प्रति गुनाह नहीं करने का निश्चय किया, तभी से आप बेकसूर साबित हो जाते हो। चाहे कैसी भी खराब फाइल हो, चाहे कितनी भी अच्छी हो, मुझे यह नहीं देखना है कि मेरा गुनाह है या उसका। फाइल का समभाव से *निकाल* करना ही मेरा धर्म है।

आपने निश्चित किया है तो फिर हर्ज ही नहीं है। आप कितने जवाबदार हो, आपने निश्चित नहीं किया उसके लिए ही जवाबदार हो। लोग तो उल्टे के साथ उल्टा, सुल्टे के साथ सुल्टा, उल्टा-सुल्टा करते रहते हैं, लेकिन हमें तो उल्टे के साथ भी सुल्टा रहना चाहिए और सुल्टे के साथ भी सुल्टे रहना है और सब के साथ सुल्टा रहना है। क्योंकि हम और ही गाँव के प्रवासी हैं, इस गाँव के प्रवासी नहीं हैं। हम मोक्षमार्ग के प्रवासी हैं, संसारमार्ग के प्रवासी नहीं हैं। यदि संसारमार्ग के प्रवासी होते तो फिर से गलत छोड़ना और अच्छा करना था।

प्रश्नकर्ता : दादा, फिर भी कभी (चंदूभाई) एकदम बम फोड़ देता है।

दादाश्री : वह तो फूट सकता है, हर्ज नहीं है। ऐसे घबराना नहीं है। फूट जाए तो उसे भी देखना कि, 'ओहोहो! चंदूभाई, आपका तो कहना ही क्या।' चंदूभाई से ज़रा माथापच्ची करना, लेकिन बहुत मत डाँटना।

आपका निश्चय नहीं टूटना चाहिए, 'यह ऐसा है और इसकी भूल है, तेरी भूल है इसमें मेरा क्या गुनाह', ऐसा सब नहीं होना चाहिए। भूल अपनी ही है। किसकी भूल है, प्रश्न यह नहीं है। समभाव से *निकाल* करना है।

निकाल को मत देखना

प्रश्नकर्ता : हमें ऐसा लगता है कि इस प्रकार से सामने वाले को समाधान हो तो हमारा समभाव से *निकाल* हो गया कहलाएगा। लेकिन उदय में ऐसा नहीं आता है।

दादाश्री : समाधान होता है या नहीं होता, वह हमें नहीं देखना है! मैंने आपसे ऐसा नहीं कहा है। मैंने तो आपको आज्ञा दी है कि समभाव से *निकाल* करना। आप मेरी आज्ञा का पालन करोगे, उसके बाद *निकाल* हुआ या नहीं हुआ, वह आइ डोन्ट वॉन्ट। वह तो सामने वाले की प्रकृति पर आधारित है। समभाव से *निकाल* करने जाओगे तो बल्कि वह बूट लेकर मारने दौड़ेगा। वह उसकी प्रकृति पर आधारित है। हमारी आज्ञा ऐसी नहीं है। हमारी आज्ञा तो, आप समभाव से *निकाल* करो, ऐसा आपका डिसिज़न होना चाहिए। डिसिज़न नहीं बदलना चाहिए।

समाधान हो या न हो, यह आपको नहीं देखना है। आपने दादा की आज्ञा का पालन किया या नहीं? फिर यदि आपको यह खोज निकालना हो कि किस तरह से समाधान करें तो उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन उस क्षण तो शायद समाधान न भी हो। वह तो सामने वाले की प्रकृति के अधीन है।

प्रश्नकर्ता : यदि सामने वाले को समाधान नहीं हो तो फिर सब को शंका होती है कि, 'हम समभाव में हैं या नहीं?'

दादाश्री : नहीं। समभाव में हैं या नहीं, ऐसा देखने की ज़रूरत नहीं है न! 'दादा की आज्ञा का पालन करना है', आपका ऐसा निश्चय है या नहीं? शंका रखने की क्या ज़रूरत है आपको? आपने दादा की आज्ञा का पालन किया है।

मैंने कहा कि, 'यहाँ से इस भाई के वहाँ जाओ, पीछे मत देखना', तो आपने तय किया हो कि पीछे नहीं देखना है फिर भी आँखों ने देख लिया तो उसमें हर्ज नहीं है। आपका निश्चय होना चाहिए

फिर दो बार देख लिया तो उसमें मुझे हर्ज नहीं है। आपका निश्चय नहीं छूटना चाहिए। देख लिया उस समय शंका नहीं होनी चाहिए कि, 'अरे! देख लिया, तो दादा क्या कहेंगे', ऐसा नहीं। मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना ही है। प्रकृति तो देख भी ले, सब देख लेती है। आपको तो, 'दादा की आज्ञा का पालन करना है', ऐसा तय करना है। वही सब से बड़ी चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : रोज़ सुबह उठकर निश्चय करता हूँ कि दादा की आज्ञा में ही रहना है। उसके बाद प्रकृति उस अनुसार होने देती है या नहीं भी होने देती।

दादाश्री : नहीं होने दे तो उसे लेकर आपको ऐसा नहीं मानना है कि प्रकृति यह नहीं होने दे रही। तो क्या आपको ढीला छोड़ना चाहिए? प्रकृति से कहना, 'तुझे जो करना हो वह कर।' आपको उतना ही स्ट्रोंग रहना है।

प्रश्नकर्ता : फिर मन में ऐसा भी होता है कि, 'हमने निश्चय किया है फिर भी आज्ञा में नहीं रह पाते', तो क्या ऐसे दादा की अवज्ञा तो नहीं करते हैं न?

दादाश्री : नहीं। अवज्ञा नहीं करते हो, लेकिन साथ-साथ यह देखना कि प्रकृति आपको फँसा तो नहीं रही। वह तो खुद उकसाएगी। प्रकृति तो क्या-क्या नहीं कर सकती? वह निश्चेतन चेतन है। ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। आपको तो ऐसा निश्चय रखना है कि आज्ञा का पालन करना है।

पकड़े रहो निश्चय को

प्रश्नकर्ता : कई बार समभाव से *निकाल* करना चूक जाते हैं।

दादाश्री : चूक न जाओ, तब सही कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे खेद रहा करता है कि दादा का ज्ञान मिलने के बाद समभाव से *निकाल* क्यों नहीं कर पाता?

दादाश्री : 'समभाव से *निकाल* करना है', तेरा ऐसा निश्चय होना चाहिए। नहीं रह पाते हो, उसे हम लेट गो करते हैं न! फाइल का *निकाल* करते समय उस निश्चय को भूल जाओ, ऐसी अजागृति नहीं रहनी चाहिए। वहाँ पुरुषार्थ धर्म की आवश्यकता है। भूल नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन मैं ऐसा कहना चाहता हूँ कि मैं निश्चय करूँ और सतत मेरे भाव में रखूँ कि, 'मुझे इस फाइल का समभाव से *निकाल* कर देना है', तो उसे ठीक कहा जाएगा?

दादाश्री : निश्चय ठीक है लेकिन धीरे-धीरे फिर आगे निश्चय के अनुसार बरतता है या नहीं, ऐसा भी 'देखना' पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : वह तो मैं देखूँगा, उसमें कोई प्रोब्लम नहीं है।

दादाश्री : तो हर्ज नहीं है, तो करेक्ट है।

निश्चय स्वाधीन है, व्यवहार पराधीन है और परिणाम तो पराधीन का भी पराधीन है। व्यवहार में हम सब हैं, यह सबकुछ है लेकिन परिणाम का क्या हो सकता है? यानी आपको सिर्फ निश्चय करना है। व्यवहार पराधीन है। व्यवहार के लिए कोई माथापच्ची मत करना। आपको निश्चय करना है कि, 'दादा की आज्ञा का पालन करना है।' फिर व्यवहार में पालन हो पाया या नहीं, वह व्यवहार के अधीन है। आपके मन में ज़रा सी भी ढील नहीं आनी चाहिए कि, 'हो जाएगा', इसमें ढील दे दो न! ढील देने की आपको ज़रूरत ही नहीं है।

आप निश्चय करो कि, 'पाँच आज्ञा का मुझे पालन करना ही है।' पालन न हो पाए तो उसके लिए बोझ मत रखना। क्या मैं नहीं समझता कुछ? मैं भी जानता हूँ न, कि व्यवहार पराधीन है। लेकिन जान-बूझकर दुरुपयोग मत करना। अंदर ऐसा मत रखना कि, 'पालन नहीं करूँगा तो क्या हो जाएगा? पालन हो पाए तो ठीक है।' ऐसा भी नहीं रखना है।

आज्ञा पालन किया, ऐसा हम किसे कहते हैं कि जितनी पालन

हो सके उतनी आसानी से पालन करो। पालन नहीं हो पाए, उसके लिए मन में जागृति रखो कि ऐसा नहीं होना चाहिए। बस! तो वह पालन करने के बराबर है!

राग नहीं, द्वेष नहीं, वह समभाव

प्रश्नकर्ता : दादा ने 'फाइलों का *निकाल* करो', ऐसा नहीं कहा, और कहा है, 'फाइलों का समभाव से *निकाल* करो', इसका क्या कारण है? समभाव में क्या आता है?

दादाश्री : समभाव यानी यदि आपको उस पर प्यार आए तो वह गलत कहा जाएगा। प्यार मत आने देना। कुछ नापसंदगी वाला करे तो उस पर द्वेष नहीं होने देना। राज़ी-नाराज़ नहीं होना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने जो समता भाव कहा है न, वह नहीं रहता।

दादाश्री : समता भाव नहीं रखना है। समभाव से फाइल का *निकाल* करना है। समभाव किसे कहते हैं कि यदि आपको कोई गालियाँ दे न, तो उस पर द्वेष न हो और कोई अच्छा बोले तो राग न हो। अच्छे पर राग नहीं और गलत पर द्वेष नहीं, उसे कहते हैं समभाव। इस तरह समभाव से *निकाल* करो। समभाव से *निकाल* का अर्थ तो समझना चाहिए न! वह ज्ञानी पुरुष से समझना चाहिए। इस ओर कोई गालियाँ दे रहा हो और इस ओर कोई फूल चढ़ा रहा हो, तो फूलों वाले पर राग नहीं और गालियाँ देने वाले पर द्वेष नहीं।

मन में राग-द्वेष रहित होकर *निकाल* करना है, और कुछ नहीं करना है। कोई आपको कोर्ट में ले जाए तो वहाँ भी राग-द्वेष नहीं करने हैं। सामने वाले व्यक्ति पर कभी भी, किसी भी क्रिया में राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। भगवान के घर सही-गलत है ही नहीं। इन डिस्चार्ज कर्मों का *निकाल* करना है।

डिस्चार्ज में राग-द्वेष नहीं होते। डिस्चार्ज, वह भरा हुआ माल

कहलाता है। उसमें यदि आप एकाकार नहीं होते हो तो उसे राग-द्वेष नहीं कहा जाएगा। जहाँ नया माल भरना हो, वहाँ राग-द्वेष होते हैं। ज्ञान दशा में, जब डिस्चार्ज हो न, तब समभाव से *निकाल* कर दो!

समभाव यानी मुनाफे और नुकसान को समान नहीं कहता लेकिन मुनाफे के बजाय नुकसान हो जाए तब भी हर्ज नहीं। मुनाफा आए तो भी हर्ज नहीं। मुनाफे से उत्तेजना नहीं होती और नुकसान से डिप्रेशन नहीं आता। यानी कि कुछ भी नहीं। द्वंद्वातीत हो चुके होते हैं। यह पूरा जगत् तो द्वंद्व में फँसा हुआ है।

पुद्गल की कुश्ती, देखो समभाव से

प्रश्नकर्ता : उसमें उतनी ही दिक्कत आती है। सामने वाला गाली दे तब वहाँ समभाव नहीं आता।

दादाश्री : वह दिक्कत अब नहीं आएगी। अब ऐसा मत कहना फिर से। पहले चंदूभाई था न, इसीलिए दिक्कत आती थी न? अब तू शुद्धात्मा हुआ, पूरा ही बदलाव हो गया तुझमें इसलिए अब दिक्कत नहीं आएगी। वह भी व्यवहार से, बाइ रिलेटिव व्यू पॉइन्ट से, वह नाम से है और रियल व्यू पॉइन्ट से शुद्धात्मा है। यदि वह शुद्धात्मा है तो जो गाली दे रहा है वह तो रिलेटिव दे रहा है। और फिर, वह आपको गाली नहीं दे रहा, इस रिलेटिव को दे रहा है। यानी कि *पुद्गल* की कुश्ती कर्म के अधीन होती है, उसे देखते रहो। दो *पुद्गल* कुश्ती करें, उसे आप देखते रहो कि, 'कौन जीता और कौन हारा और किसने तमाचा मारा', वह सब देखते रहो। नहीं देख सकते? कभी बाहर कुश्तियाँ देखने नहीं गया? तो अब यह देखना। यानी कि यह *पुद्गल* की कुश्ती है। उसके *पुद्गल* से आपका *पुद्गल* झगड़े तो, वह कर्म के उदय के अधीन है। क्या उसमें किसी का गुनाह है? वह शुद्ध ही दिखना चाहिए। ऐसा कुछ दिखाई देता है या नहीं दिखाई देता आपको?

प्रश्नकर्ता : उसी में दिक्कत आती है अभी, वहाँ समभाव नहीं रहता।

दादाश्री : क्यों नहीं रहता? किसे नहीं रहता? वह तो चंदूभाई को नहीं रहता, उससे आपको क्या लेना-देना? बिना बात के चंदूभाई का इतना पक्ष लेते हो!

प्रश्नकर्ता : वह अलग ही नहीं हो पाता न?

दादाश्री : हो गया है अलग। वह तुझे वर्तन में सेट करना पड़ेगा। इस ओर खिसक जाए तो हमें धक्का लगाकर, खिसकाकर फिर से ठीक करना पड़ेगा। अलग हो गया है तो क्या दो दिन हैंडल नहीं घुमाना पड़ेगा?

'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा रहे तो विषमता हुए बगैर रहेगी ही नहीं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो फिर समभाव से *निकाल* हो गया।

रहस्य - समभाव, सहज, समता और निकाल का...

प्रश्नकर्ता : फाइल का *निकाल* करना है लेकिन उसमें आपने एक ही भाव बताया, समभाव से।

दादाश्री : समभाव से, इस तरह मन में तय करते हो न तो उस व्यक्ति पर असर होता है, उसके मन पर।

प्रश्नकर्ता : फिर अन्य शब्दों के अर्थ मुझे समझाइए। दूसरा है, समता।

दादाश्री : वीतरागता रहे तो बाहर समता रहेगी। वीतरागता लाने के लिए अभी तो यह समभाव से *निकाल* करने को कहा है। समभाव से *निकाल* करने के परिणाम स्वरूप वीतरागता के अंश प्राप्त होते हैं, थोड़े-थोड़े। जैसे-जैसे समभाव से *निकाल* करता जाता है न, वैसे-वैसे वीतरागता के अंश प्राप्त होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन समता और समभाव में क्या अंतर है?

दादाश्री : अंतर है। समभाव से तो *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन समता रखकर भी *निकाल* हो सकता है न!

यदि यह व्यक्ति मुझे परेशान करे, लेकिन मैं ऐसा कहूँ कि 'नमस्कार', तो पूरी समता हो गई न!

दादाश्री : नहीं, उसे समता नहीं कहते। उसे समभाव से *निकाल* करना कहते हैं। समता में तो कैसा होता है कि वह थप्पड़ मार रहा हो और खुद उसे आशीर्वाद दे, तब वह समता है। भीतर बिल्कुल भी परिणाम नहीं बदलें, वह समता है और यह तो *निकाल,* यानी कुछ परिणाम बदल सकते हैं लेकिन *निकाल* कर देता है। फिर से आगे नहीं बढ़ाता। वह बढ़ेगा नहीं, वह कम हो जाएगा।

समभाव यानी क्या? यह तराजू इस तरफ झुक जाए तो दूसरी ओर थोड़ा कुछ रखकर समान करना। तो यह मेंढक की पाँचशेरी कितनी देर टिकती है? फिर भी समभाव को उत्तम भाव माना गया है। बैलेन्स रखने का प्रयत्न करता है न? और समता यानी यदि कोई फूल चढ़ाए तो उस पर राग नहीं और पत्थर मारे तो उस पर द्वेष नहीं, बल्कि उसे आशीर्वाद देता है!

प्रश्नकर्ता : अब तीसरा शब्द है, सहज भाव से *निकाल,* वह समझाइए।

दादाश्री : सहज भाव से *निकाल,* हमारा (दादाश्री) ऐसा होता है, कुछ बातों में। सहज भाव यानी जो बिना प्रयत्न के हो जाए।

प्रश्नकर्ता : तो क्या हम संसारियों का नहीं हो सकता?

दादाश्री : हो सकता है न! वह माल भी है! लेकिन हमारा तो ज़्यादातर सहज भाव वाला होता है।

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से *निकाल* करने के लिए, संसारियों का उदाहरण दीजिए।

दादाश्री : सहज भाव यानी क्या? प्रगमित हो चुका हो, ऐसा होना चाहिए। प्रगमित यानी पिछले जन्म में भाव किया हो तो अभी सहज रूप से हो जाता है। *निकाल* तो आपसे अभी भी हो सकता है।

आपने यदि कुछ पुराने भाव किए होंगे तो वे आज मदद करेंगे। लेकिन वे पुराने भाव हैं, वे सारे सहज भाव हैं। सहज भाव अर्थात् आज की क्रिया नहीं है उसमें।

प्रश्नकर्ता : सही है। आपसे वह बहुत ईज़िली हो जाता है।

दादाश्री : सहज रूप से।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अब चौथा बचा। चातुर्य, चतुराई, कौशल्य!

दादाश्री : हाँ, ये कौशल्य दो प्रकार के होते हैं। एक सांसारिक कौशल्य और दूसरा अध्यात्म कौशल्य! ज्ञानी का कौशल्य। ज्ञानी का कौशल्य कैसा होता है? किसी मनुष्य के बोलने से सात लोगों को दु:ख हो जाए, ऐसा होता है, जबकि ज्ञानी ऐसे कौशल्य का इस्तेमाल करते हैं और ऐसा शब्द बोलते हैं कि उससे उस बोलने वाले को भी दु:ख नहीं होता, और उन सातों का दु:ख भी गायब हो जाता है। उसे कौशल्यता कहा जाता है। उसे अपने यहाँ बुद्धिकला कहते हैं। ज्ञानकला और बुद्धिकला। कौशल्य बुद्धिकला में आता है। वह बुद्धि की, एक प्रकार की कला है। थोड़े शब्दों में सभी लोगों को संतोष हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : अब, यह जो फाइलों का *निकाल,* इन चारों में से आपने एक जो बताया, समभाव से। बाकी के जो शब्द हैं उन्हें छूने जैसा नहीं है।

दादाश्री : नहीं, समभाव रखना। समभाव से *निकाल* करोगे तो आपके पास वे सारी सीढ़ियाँ आएँगी। समभाव से *निकाल* समझ गए न आप? वही! हमें और कुछ भी नहीं है इसमें। वीतरागों ने जो किया था, हम सिर्फ वही करते हैं और वही आपको बताते हैं।

समाधान वृत्ति या समभाव से निकाल?

प्रश्नकर्ता : समाधान वृत्ति और समभाव से *निकाल,* इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : फर्क तो है। समभाव से *निकाल* और समाधान वृत्ति। सभी की वृत्ति कैसी होती है? समाधान वाली। इसलिए हर कहीं समाधान खोजती है। और यह समभाव से *निकाल* यानी कि आपको समाधान नहीं हो फिर भी *निकाल* करना है और समाधान हो जाए तब भी *निकाल* करना है। यानी कि उसका *निकाल* ही करना है, समभाव से। समाधान वृत्ति तो कब कहते हैं? रेग्युलर कोर्स में हो (सबकुछ ठीक चले) तभी आपको समाधान रहता है, न्याय-अन्याय दोनों देखता है। जबकि समभाव से *निकाल* में न्याय-अन्याय नहीं देखना है।

हमने एक बार एक जान-पहचान वाले को पाँच सौ रुपये दिए थे। यह तो ज्ञान होने से पहले की बात कर रहा हूँ। फिर हम तो कभी भी माँगते नहीं थे। फिर मुझे, हमारे मुनीम जी ने एक दिन कहा, 'इसे दो-एक साल हो गए, तो इस भाई को चिट्ठी लिखूँ?' तब मैंने कहा, 'नहीं, चिट्ठी मत लिखना। बुरा लगेगा उन्हें।' और वे भाई मुझे रास्ते में मिल गए। तब मैंने कहा, 'मुनीम जी चिट्ठी लिखने का कह रहे थे। वे पाँच सौ रुपये भेज देना।' तब उसने कहा, 'कौन से पाँच सौ की बात कर रहे हैं आप?' तब मैंने कहा, 'आप दो साल पहले नहीं ले गए थे? उस समय के बहीखाते में देख जाइए।' वह कहने लगा, 'वे तो मैंने आपको दिए थे, यह तो आपसे भूल हो गई है'। मैं समझ गया कि ऐसी डिज़ाइन ज़िंदगी में फिर से देखने-जानने को नहीं मिलेगी। यानी कि हमारे धन्यभाग्य हैं आज, बड़े से बड़ा उपदेश देने आया है यह व्यक्ति। तब मैंने उससे क्या कहा? 'शायद यह मेरी भूल हो गई हो, आज दोपहर को घर आइए आप।' फिर चाय-पानी पिलाकर, पाँच सौ देकर रसीद लिखवा ली। ऐसा इंसान पूरी ज़िंदगी में फिर से नहीं मिलेगा। अरे! पाँच सौ नहीं, पर हज़ार गए, लेकिन इतना उपदेश मिला न, कि ऐसे भी लोग होते हैं! तो ज़रा चेतकर चलने का भाव होगा न हमें! लेकिन यह कैसा इंसान मिल गया मुझे! सपने में भी कल्पना नहीं की होगी हमने। उपकार तो कहाँ गया!

अब ऐसे में यदि आप कहो कि, 'समाधान वृत्ति', तो वहाँ कैसे मेल बैठेगा? हम *निकाल* कर देते हैं, समभाव से *निकाल*। आपको

समझ में आया न, मैं क्या कहना चाहता हूँ? आफ्टर ऑल हमें इन झंझटों में नहीं पड़े रहना है और फिर वह जो पाँच सौ ले गया, वह किसी के हाथ की सत्ता नहीं है, व्यवस्थित की सत्ता के आधार पर वह निमित्त है। उसे ऐसा व्यापार करना है इसलिए व्यवस्थित उससे मिलवा देता है। इसलिए, क्योंकि उसकी नीयत ऐसी है और हमारे हिसाब में (पैसे) जाने हैं। इससे हमें बोध मिलता है। आपने ज़िंदगी में नहीं देखा होगा न ऐसा?

यानी कि उस घड़ी आप अपने मन में कितने डिस्करेज हो जाते हो, इन पाँच सौ के बारे में! यों तो आप होटल में पाँच सौ रुपये खर्च कर देते हैं। खर्च करते हो या नहीं करते? मुंबई गए हों और अच्छी होटल हो तो दो दिन रहकर भी पाँच सौ रुपये खर्च कर देते हो और ऐसे पाँच सौ रुपये गए तब आपकी छाती पर घाव लग जाता है। क्योंकि उसमें आप समाधान वृत्ति खोजते हो। कभी भी समाधान नहीं होगा, कैसे होगा? जो बिल्कुल ऐसा उल्टा ही बोले उसे! यानी समभाव से *निकाल* कर लो। सही हो या गलत लेकिन केस सुलझा लो। बैर नहीं बाँधेगा और कुछ भी नहीं। उल्टा लिपट जाए, तो उल्टा लिपट जा। सीधा, तो सीधा लिपट जा। जो लोभी होते हैं न, वहाँ हम ठगे जाते हैं और उसे खुश कर देते हैं! मानी व्यक्ति हो तो उसे मान देकर खुश कर देते हैं। जैसे-तैसे खुश करके आगे बढ़ जाते हैं! हम इन लोगों के साथ खड़े नहीं रहते। एडजस्ट एवरीव्हेर, ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ हम एडजस्ट नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : इस तरह जहाँ एडजस्ट होने जाएँगे, वहाँ व्यवहार शुद्धि रहेगी क्या?

दादाश्री : अवश्य रहेगी। व्यवहार शुद्धि यानी क्या? किसी को दु:ख न हो, उसे कहते हैं जीवन। न्याय तौलना, उसे कहीं व्यवहार शुद्धि नहीं कहते। न्याय-अन्याय करने गए तो एक को दु:ख होता है और एक को सुख होता है। 'समाधान वृत्ति और समभाव से *निकाल*', इससे मैं एक्ज़ेक्ट क्या कहना चाहता हूँ, वह समझ में आ गया न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : बस, बस। समाधान वृत्ति तो कभी भी नहीं हो पाएगी। यदि समाधान खोजते रहें न, तो दस जगह पर होता है और दो जगह पर नहीं होता। फिर वह फ्रेक्चर कर देता है अपने मन को।

हमारे मन पर एक भी दाग़ नहीं लगा है। अभी कोई कहे कि 'बदमाश आदमी हो।' तो मैं कहूँगा कि 'भाई, ठीक है। तुझे और कुछ कहना है?' 'तू किस आधार पर बदमाश कहता है, अब मुझे वह समझा।' तब वह कहे, 'आपके कोट के पीछे लिखा है, बदमाश है!' तब कहूँगा, 'ठीक है।'

...उसे सहन करना चाहिए या निगल जाना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* करना यानी निगल जाना? तो क्या ऐसा भाव रखना चाहिए या फिर वर्तन में आना चाहिए?

दादाश्री : निगल जाएगा तो उसे समभाव में रहना नहीं कहा जाएगा। आपको मन में भाव ही करना है कि 'समभाव से *निकाल* करना है।' आप ऐसा निश्चित करते हो कि किसी शहर में जाना है और नहीं जा पाओ तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन आपको निश्चित करना है। पहले आप ऐसा निश्चित नहीं करते थे कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है।' अर्थात् यह परंपरा हुई। अब आप निश्चित करते हो, फिर भी एक्सिडेन्ट हो जाए, तो वह अलग बात है लेकिन हर बार निश्चित करना है। निगल नहीं जाना है, उसे निगल गए या बाहर निकल गया, वह बात अलग है। दोनों ही उल्टी हैं। उल्टी हो रही हो तो उसे दबाना नहीं है। उल्टी को दबाने से रोग हो जाता है।

आप ऐसे समभाव से *निकाल* करते हो तो उसी को कहते हैं कि शुद्धात्मा हाज़िर है। भले ही दिखाई नहीं दे। फिर अगर चंदूभाई चिढ़ गए तो वह बात अलग है, और आप हो समभाव से *निकाल* करने वाले, वे दोनों अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, समभाव से *निकाल* कौन कर सकता है? ज्ञान लिया हो वह कर सकता है या कोई और भी कर सकता है?

दादाश्री : औरों के लिए 'समभाव से *निकाल*' शब्द है ही नहीं न! कोई और तो सहन करता है बेचारा। लेकिन सहन करना तो गुनाह है। सहन करना तो.. सहज रूप से थोड़ा-बहुत, छोटी-छोटी बातों में सहन कर लेना है। लेकिन यदि बड़ा सहन करे तो फिर स्प्रिंग उछल पड़ती है। उछलने पर तो सब को मार देती है, उड़ा देती है। इसलिए सहन नहीं करना है, निगल नहीं जाना है, समभाव से *निकाल* करना है। ये सभी समभाव से *निकाल* करते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा खुद निगल जाते हैं? ये सारे महात्मा चाहे कुछ भी करें, तो दादा आप निगल नहीं लेते?

दादाश्री : हमें निगलना नहीं होता। हमें तो कुछ भी निगलना नहीं होता। हमारा ज्ञान ही ऐसा है कि महात्मा चाहे कुछ भी करें तब भी हमें फिट हो जाता है। हमारा ज्ञान ही ऐसा है। ज्ञान यानी प्रकाश। महात्मा हरे रंग का हो तो वह हरे रंग का दिखाई देगा। यह लाल हो तो लाल रंग का दिखाई देगा। हमें प्रकाश ही दिखाई देता है और उसमें भी महात्मा तो शुद्ध प्रकाश वाला है। उसकी प्रकृति हम जानते हैं कि इसकी प्रकृति ऐसी है। हमें कुछ निगलना नहीं पड़ता। यदि हम निगल जाएँगे तो उसके बाद टेन्शन खड़े हो जाएँगे। हम तो मुक्त रहते हैं, यों रौब के साथ! पूरे ब्रह्मांड के राजा हों, उस तरह से रहते हैं।

धन्य दिवस, इनाम का

प्रश्नकर्ता : कोई थप्पड़ मारे तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह थप्पड़ मारे, उस दिन ऐसा लिख लेना कि इनाम मिला है। नोट कर लेना कि ऐसा दिन कभी आया नहीं था। अत: धन्य है यह! थप्पड़ मिले ऐसा दिन ही कहाँ होता है? अपने हिस्से में कहाँ से आए? अपने हिस्से में आता ही नहीं, अत: उस दिन को हमें धन्य दिवस कहना है, धन्य दिवस!

प्रश्नकर्ता : तब हमें व्यवहार कैसा करना है? समभाव से *निकाल* में हमें क्या करना है? वह जो थप्पड़ मार गया उसे 'देखना' है?

दादाश्री : वह कौन है? हम कौन हैं? कौन मार रहा है? किसे मार रहा है? यह सब 'देखना' है। आपको 'देखना' है कि इस चंदूभाई को यह फाइल मार रही है। ऐसा भी देखना है कि इस फाइल को वह फाइल मार रही है, 'देखने वाले' को लगती नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या पलट कर उसे मारना नहीं चाहिए?

दादाश्री : अब, यदि चंदूभाई पलट कर थप्पड़ मार दे तब भी आपको 'देखना' है, ऐसे में पलट कर मारने की या नहीं मारने की चिंता में नहीं पड़ना है।

1961-62 में एक बार मैंने कहा था कि 'जो एक थप्पड़ मारेगा, उसे पाँच सौ रुपये दूँगा।' लेकिन कोई थप्पड़ मारने आया ही नहीं। मैंने कहा, 'अरे, तंगी है तो मार न!' तब कहा, 'नहीं, मेरा क्या होगा?' कौन मारे! कौन करे ऐसा! यह तो मुफ्त में मिल रहा है, उस दिन बड़ा पुण्य मानना चाहिए कि यह इतना बड़ा इनाम दिया। यह तो बहुत बड़ा इनाम है! पहले हमने भी कभी देने में बाकी नहीं रखा था न, उसका वापस आया है यह सब।

तो हल आ जाएगा न

समभाव, हमें पूरे जगत् के साथ है ही। सिर्फ हमारे साथ जो दो सौ-पाँच सौ लोग हैं, जो हमारे ऋणानुबंध वाले हैं न, उन्हीं के साथ झंझट है। उन्हीं के साथ *निकाल* करना है। ये इतने के लिए अनंत जन्मों से भटक रहे हैं, और पूरी दुनिया की जोखिमदारी लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा ने सब से बड़ी खोज दी है कि पूरे जगत् के साथ आप वीतराग हो और आपकी दो सौ-पाँच सौ फाइलों के प्रति ही आपको राग-द्वेष हैं।

दादाश्री : बस! अन्य कोई झंझट है ही नहीं। बस, इतना ही है। इतनों के लिए बैठे हुए हो! यदि सब के साथ होता न, तो हम समझते कि, 'चलने दो न! देखा जाएगा, वह' लेकिन इतने से, दो सौ-पाँच सौ लोगों को लेकर रुका हुआ है। पाँच अरब की आबादी है, उनमें से सभी के साथ हमें कोई झंझट नहीं है। दो सौ-पाँच सौ के साथ ही है न? उतनों के लिए समभाव से *निकाल* करो न! मेरा अक्षर मानो न! तो हल आ जाएगा न!

पद गाना निकाली है या ग्रहणीय?

पहले कभी भी सुना नहीं हो, पढ़ा नही हो, क्या ऐसी चीज़ होती है कभी? उसे क्या कहा जाता है? अपूर्व। अक्रम तो अपूर्व चीज़ है। अहंकार और ममता का त्याग करना था, वह हो गया और ग्रहण करना था, निज स्वरूप, शुद्धात्मा का, वह ग्रहण हो गया। अब ग्रहण और त्याग दोनों काम पूरे हो गए। इसलिए अब ग्रहण-त्याग की झंझट नहीं रही। समभाव से *निकाल* करना रहा, अब। सभी बाबत *निकाली,* सभी का समभाव से *निकाल* कर देना है। दूसरा कुछ काम ही क्या है करने को? *निकाल* ही करना है।

प्रश्नकर्ता : वे भाई कोई पद गा रहे थे, फिर आपने पूछा कि, 'यह पद तो क्रमिक में भी सब गाते ही होंगे न?' तो पद तो वहाँ भी गाए जाते हैं और यहाँ भी गाए जाते हैं, दोनों जगह समान तरीके से गाया जाता है तो उसमें फर्क क्या है?

दादाश्री : वे जो हैं वे ग्रहण करते हैं और हम *निकाल* करते हैं, दोनों में फर्क इतना ही है। वे ग्रहण करते हैं तो भी फोटोग्राफी इस जैसी ही होती है, उन दोनों की फोटोग्राफी में फर्क नहीं है। लोग फोटोग्राफी में फर्क चाहते हैं। नहीं, फोटोग्राफी में अंतर हो तब तो *उपाधि* (परेशानी)।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे लोग गाते हैं तो ग्रहण करते हैं, और हम पद गाकर *निकाल* करते हैं, इसमें आप क्या बताना चाहते हैं?

दादाश्री : अपना *निकाली* है। यह जो पद गाते हैं न, वह *निकाल* ही करना है न! *निकाल* करने के लिए गाते हैं। यह सारा, जो कुछ करते हैं यह सबकुछ *निकाली* है।

प्रश्नकर्ता : आप तो कहते हैं कि पद गाना ज्ञान की क्लैरिटी (शुद्धता) के लिए है। ज्ञान को दृढ़ करने या क्लैरिटी के लिए है।

दादाश्री : नहीं, दृढ़ करने के लिए नहीं। इससे ज्ञान को दृढ़ नहीं करता। परंतु यह जो उदय आता है न, जो पद गाने को मिले तो उसका *निकाल* कर देता है, बस। दृढ़ करना रहा ही नहीं। ज्ञान तो, मैंने जो दिया है वही ज्ञान है, अन्य कोई ज्ञान नहीं है। और ये पाँच आज्ञाएँ उसकी बाड़ हैं और बाकी सब जो उदय में आता है, उसका *निकाल* ही कर देना है।

प्रश्नकर्ता : और *निकाली* है इसलिए उस बात का पता भी चलता है कि उसमें, क्रमिक में जो व्यक्ति पद गा रहा हो, उसे यदि कोई बीच में रोके या कोई बाधा डाले, तब उसका गुस्सा नहीं समाता, *उपाधि* हो जाती है।

दादाश्री : उसे तो बड़ी परेशानी हो जाती है और ये *निकाल* करने वाले तो *निकाल* रोक देते हैं। यानी यह तो पता चल जाता है कि यह अलग तरह का है, यह क्वॉलिटी अलग है।

क्रमिक मार्ग वाले भी ससुराल जाते हैं और अक्रम वाला भी ससुराल जाता है, लेकिन वह ससुराल में सब ग्रहण किया करता है जबकि यह तो *निकाल* करता रहता है। फर्क इतना ही है, और कुछ नहीं है।

एक *निकाली* बाबत है और यह एक ग्रहणीय बाबत। बस, दो ही रही न? डिपार्टमेन्ट कितने रहे? खाना-पीना, कमाना, संसार, ये सभी *निकाली* चीज़ें और सिर्फ 'यह' सत्संग ही ग्रहणीय बाबत। दो ही डिपार्टमेन्ट, तीसरा डिपार्टमेन्ट करके क्या करना है? बाकी सब तो उदय है। यह तो *निकाली* बाबत है, ग्रहणीय बाबत नहीं है। यह तो

डिस्चार्ज स्वरूप से होता है। कर्ताभाव से नहीं होता। कोई कहे, 'ऐसे'। तब कहेंगे, 'हाँ, ऐसे!' क्रम में भी खाते-पीते थे और साड़ियाँ पहनते थे, सोना पहनते थे और अक्रम में भी पहनना है। अक्रम का तरीका अलग है और वह तरीका अलग। वह कहेगी, 'मुझे इसके बगैर चलेगा ही नहीं', और चार दिन रूठ जाती है। इसमें भी रूठती है लेकिन फिर भी खुद समभाव से *निकाल* करती है। आत्मा अलग रहता है। समभाव से *निकाल* ही करना है। ग्रहण भी नहीं करना है और त्याग भी नहीं करना है न! खा-पीकर मज़े कर, लेकिन तू समभाव से *निकाल* करना भाई!

निकाल का मतलब नहीं है डिस्पोज़

प्रश्नकर्ता : *निकाल* करना यानी डिस्पोज़ कर देना है?

दादाश्री : नहीं, डिस्पोज़ नहीं करना है। डिस्पोज़ तो छोटे बच्चे भी बोलते हैं। *निकाल* करना तो बड़ा है!

डिस्पोज़ तो माल के लिए कहा जाता है। लेकिन इसमें कहीं डिस्पोज़ नहीं कह सकते न! डिस्पोज़ तो उसके मूल दाम को स्पर्श करता है और कम दाम को भी स्पर्श करता है, यानी वह माल के लिए है। इसमें फँसे हुए का *निकाल* करना है, लेकिन यह कर्मों का *निकाल* है।

जो पसंद हो, उसका भी *निकाल* करना है; नापसंद हो, उसका भी *निकाल* कर देना है। पसंद हो, उसे ग्रहण नहीं; नापसंद हो, उसका त्याग नहीं। नापसंद हो, उस पर द्वेष नहीं, पसंद हो उस पर राग नहीं। *निकाल* करके आगे चले जाना है, उसे कहते हैं *निकाल*।

चाबियाँ निकाल करने की

निकाल यानी नई चीज़ खरीदनी नहीं और बाकी सब को निकालते रहना और उगाही हो तो धीरे से समझा-बुझाकर काम निकाल लेना है और जिसका जमा हो वह लौटा दो। क्योंकि लेनदार तो रात को

दो बजे भी आएँगे। उन्हें तो जब चाहे तब आने की छूट है। और देनदार आपको नहीं दें तो आपको कषाय नहीं होंगे क्योंकि आपको अपने देश जाना है और देनदार को यहाँ रहना है। आपको अपने देश में जाना है। यदि आप कषाय करोगे तो वे देश में नहीं जाने देंगे। इसलिए आपको तो... आपका हिसाब होगा तो छोड़कर चले जाना आगे। और उधार दिया हो और नहीं लौटाए तब हो सके उतना प्रयत्न करना। आखिर में समझा-बुझाकर काम लेना, 'साहब, बहुत तकलीफ है।' सौ में से पाँच-दस निकले, वही सही। नहीं तो फिर जो बाकी रहा, उसका *निकाल* कर देना। यानी कि दुकान का *निकाल* ही करना है इस कलियुग में। और मैं वही कहता हूँ। यह अक्रम विज्ञान यानी क्या? संपूर्ण विज्ञान, *निकाल* कर देना, बस। और कुछ भी नहीं करना है।

अगर ज्ञानी नहीं हो, और कोई व्यक्ति यह बात समझ जाए कि, 'अपनी दुकान निकाल देनी है', तब भी हल ला देगा। अब दुकान खाली ही करनी है। दुकान भरनी हो, नई बनानी हो तो सारी झंझट होती है। दुकान खाली करनी है, तब अलमारी खाली होने पर बेचे, और तब वह कहे, 'ऐसा माल तीस में?' 'अरे, तीस नहीं पर अठाईस में दे दे न, यह। अब हमें जाना है हमारे देश में।' तब पूछते हैं, 'पैसे क्यों लेते हो?' तब कहते हैं, 'किसी के बाकी हों तो उसे लौटाने पड़ेंगे न!' जमा-उधार सब 'लेवल' करना है, कोई रास्ता निकालेंगे, तो मिलेगा।

संसार टिका है बैर की नींव पर

फाइलों का समभाव से *निकाल* किया था, या यों ही है सब? समभाव से *निकाल* कर लिया, तो किसी के साथ बैर नहीं बंधेगा। बैर नहीं बाँधना और पुराने बैर का *निकाल* करना। यदि आपको कुछ पुरुषार्थ करना नहीं आए तो आखिर में इतना करना; बैर का *निकाल* करना। किसी से बैर बंध गया हो, तो पता चलता है न, कि इसके प्रति बैर ही है। 'मैं उसे परेशान नहीं करता, फिर भी वह मुझे परेशान करता रहता है।' यानी कि उसके साथ बैर बंधा है, ऐसा पता चले तो

उसके साथ *निकाल* करना। और उस बैर का *निकाल* हो गया तो उसे सब से बड़ा पुरुषार्थ कहा जाएगा। यह जगत् बैर से ही खड़ा है। इसका 'बेसमेन्ट' अन्य कोई चीज़ नहीं है, जगत् का 'बेसमेन्ट' बैर ही है। यह जगत् राग से नहीं खड़ा है या प्रेम से नहीं खड़ा है, लेकिन बैर से ही खड़ा है। किसी को ज़रा सा भी छेड़ा तो वह खुद बदला लेने का *नियाणां* कर लेता है। ये लोग कैसे मनुष्य हैं, 'मेरा सारा तप उसमें लग जाए, लेकिन इसे तो खत्म कर दूँगा', ऐसा *नियाणां* करते हैं। इसलिए बैर मत बाँधना। आपसे भूल हो जाए तो माफी माँग लेना और उस भूल का हल ला देना। लेकिन केस सॉल्व कर लेना। यह जगत् बैर से खड़ा है इसलिए यदि कहीं पर बैर रहता हो तो आप उससे क्षमापना करके भी, माफी माँगकर भी, उसके पैर छूकर भी, उसके साथ बैर नहीं बाँधना। उसके साथ के बैर छुड़वा देना ताकि वह व्यक्ति खुश हो जाए कि, 'ना भाई, अब हर्ज नहीं है।' उसके साथ समाधान कर लेना ताकि आपको रोके नहीं।

ऐसा है, आपको यह ज्ञान मिलने के बाद जो बैर वसूल करता है, वह किस बात का बैर वसूल करता है? बैर का बैर वसूल करता है। इसके बाद आत्मा होकर बैर वसूल नहीं करता। आत्मा के तौर पर आप जानोगे कि यह बैर वसूल कर रहा है लेकिन फिर भी हल निकल आएगा। यह ज्ञान प्राप्त होने के बाद यदि सौ बैरी होंगे तब भी *निकाल* हो जाएगा। और ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ हो और यदि एक ही बैरी हो न तब भी फिर से कितने ही बैर के बीज डल जाते हैं। ज्ञान के बाद अब बैर के बीज नहीं डलते। कर्म 'चार्ज' नहीं होता, कर्म बंधता ही नहीं है। इसलिए फिर हर्ज ही नहीं है न!

भगवान ने कहा था कि इस जन्म में तू नया बैर मत बढ़ाना और पुराना बैर छोड़ देना। पुराना बैर छोड़ देने पर कैसी शांति हो जाती है न! वर्ना पहले तो लोग मूछें मरोड़ते जाते थे और बैर बढ़ाते जाते थे लेकिन अब बैर नहीं बढ़ाना है। दिनोंदिन बैर कम करना है। इन 'दादा' का कोई बैरी नहीं है। क्योंकि बैर का *निकाल* करके आए

हैं। सारे बैर का *निकाल* करके इस जन्म में आए हैं और आपको भी यही सिखाते हैं कि अब इस जन्म में बैर मत बढ़ाना।

कई पेशेन्ट ऐसे होते हैं कि वे पैसे नहीं देते और बल्कि आपको धमकाते हैं। हम कहें कि, 'भाई, पैसे नहीं दोगे तो भी चलेगा' तब भी वह क्या कहता है, 'डॉक्टर, मैं तुझे देख लूँगा।' 'अरे, हमें देखकर क्या करना है? हमें तो देख ही लिया है।' 'जैसे-तैसे करके केस सॉल्व कर देना।' कोर्ट में तारीखें पड़ती रहें, ऐसा नहीं रखना। हमें तो जिस दिन की तारीख आई हो न, उसी दिन *निकाल* कर देना है। वर्ना कोर्ट में तारीखें पड़ती रहेंगी और फिर केस लंबा होता रहेगा और बैर बढ़ता रहेगा। हमें ऐसा रखना ही नहीं है।

अब, बैर कब छूटता है? खुद को आनंद रहे तो। वह कैसा आनंद? आत्मा का आनंद, वह पौद्गलिक आनंद नहीं। *पुद्गल* के आनंद में भी बैर बढ़ता रहता है और आत्मा का आनंद अर्थात् ज्ञानी पुरुष के पास सत्संग में, या चाहे कहीं भी वह आनंद अंदर उत्पन्न हुआ कि फिर सारे बैर छूट जाते हैं।

पसंद-नापसंद फाइलों के साथ...

अब आपके लिए जो पसंदीदा हैं, वे भी 'फाइल' और जो नापसंद हैं, वे भी 'फाइल' हैं। नापसंद के साथ जल्दी *निकाल* करना पड़ेगा। पसंदीदा के साथ *निकाल* हो जाता है। नापसंद है, यानी पूर्वभव की ज़बरदस्त 'फाइल' है। आपको देखते ही पसंद नहीं आता। वह आकर बैठे, तब आपको क्या करना है? मन में तय कर लेना है कि 'फाइल का समभाव से *निकाल* करना है'। फिर कहना, 'आप आए, बहुत अच्छा किया। कई दिनों के बाद आए, हमें बहुत अच्छा लगा। ज़रा भाई के लिए चाय लाइए, नाश्ता ले आइए।' 'फाइल का *निकाल*' करने लगे तो *निकाल* होने लगेगा, लेकिन सब सुपरफ्लुअस करना है, ड्रामेटिक! वह समझेगा कि, 'ओहोहो, मुझ पर बहुत भाव दर्शा रहे हैं।' वह खुश हो जाएगा और बैर सारा भूल जाएगा। बैर छूट जाएगा

तो 'समभाव से *निकाल*' हो जाएगा। वह उठे तब आप कहना कि, 'देखना भाई, हम से कोई दोष हुआ हो तो...' तब वही कहेंगे कि, 'नहीं, नहीं, आप तो बड़े अच्छे इंसान हैं।' यानी कि चुक गया। इन लोगों को कुछ चाहिए नहीं। अहंकार को पोषण मिला तो बहुत हो गया।

कोई व्यक्ति मारने आए, खून करने आए, लेकिन आपके मन में ऐसे भाव उत्पन्न हों कि 'फाइल का *निकाल*' करना है तो तुरंत उसके भाव बदल जाएँगे और तलवार या छुरी होगी, वह नीचे रखकर चला जाएगा।

फाइल के प्रति प्रेजुडिस (पूर्वग्रह) छोड़ दो तब वह फाइल आपके कहे अनुसार करेगी, ऐसा है। कोई हमारे कहे शब्द में रहे न, तो संसार अच्छा चले, ऐसा है और मोक्ष में भी जा सकेगा। इतना सुंदर विज्ञान है यह! और प्रति क्षण विज्ञान का उपयोग हो सके ऐसा है, लेकिन विज्ञान का इस्तेमाल करना आना चाहिए।

मोक्ष का वीज़ा हाथ में लेकिन बाकी है क्लियरन्स सर्टिफिकेट

सुषमकाल तो अच्छा, लेकिन यह तो दूषमकाल है। यानी कि मुख्यतया दु:ख। निन्यानवे प्रतिशत दु:ख और एक प्रतिशत सुख। इतने के लिए कहाँ तक बैठे रहें? राज्य हो तब भी दिन भर मन किच-किच करता रहता है। उसमें कैसे जीएँ?

बाकी, चौरासी हज़ार साल बाद उजाला होगा, तब तक अँधेरे में कब तक भटकना है? उसके बजाय अपने-अपने स्थान पर बैठ जाओ। दादा मिले हैं और टिकट कटवा दिया है, वीज़ा बनवा लिया है तो जा पाएँगे, वर्ना कैसे जा पाएँगे? वर्ना आशा ही नहीं रख सकते न! उन सारी फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तब जा पाएँगे। साधु बन जाए फिर भी फाइलों का *निकाल* नहीं होता, वह साधु बनकर फाइलों का *निकाल* कैसे करेगा? और इसमें तो घर पर रहकर फाइलों का सारा *निकाल* होता है। क्या भाग जाने से *निकाल* होता होगा? अभी यदि वह भाग जाए, तो क्या सारा *निकाल* हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : फाइलें तो पीछे पड़ेंगी, दादा।

दादाश्री : फाइलें तो पीछे नहीं पड़ती, लेकिन अंदर से तो दावे दायर हो जाते हैं न! बाहर के दायर नहीं होते लेकिन अंदर के दावे छोड़ते नहीं हैं न! बाहर के दावे अच्छे, वे इस जन्म में छूट जाएँगे लेकिन अंदर के दावे अच्छे नहीं हैं।

बैर से खड़ा संसार

इसलिए बैर छोड़ो। प्रेम से नहीं खड़ा है यह जगत्। लोग समझते हैं कि प्रेम से खड़ा है। लेकिन नहीं, फाउन्डेशन ही बैर के हैं। इसीलिए तो हम, बैर का *निकाल* करने को कहते हैं। समभाव से *निकाल* करने का कारण ही यह है। प्रेम करोगे न, तो अपने आप बैर होगा ही। क्योंकि आसक्ति से क्या होता है? वह बैर लाती है! समभाव से *निकाल* इसीलिए करना है क्योंकि जगत् बैर से खड़ा है। राग तो... 'मैं चंदूभाई हूँ', वही राग है। 'मैं चंदूभाई हूँ' वह तो छूट गया, यानी कि राग गया। अब बैर कैसे छोड़ने हैं, इन लोगों के साथ के? तब कहते हैं, 'समभाव से *निकाल*।' हाँ, वह गालियाँ दे रहा हो न, तब भी बल्कि आपको ऐसा कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई, आपकी कोई भूल होगी, तभी बाहर वह गालियाँ देगा न?' हाँ, नहीं तो कोई मूर्ख आदमी भी फालतू नहीं है।

एक दिन आप अपने गाँव जाकर सब से कह देना कि 'भाई, मुझे जो गाली दे जाए, उसे सौ रुपये दूँगा।' लेकिन कोई गरीब से गरीब आदमी भी नहीं आएगा। कहेगा 'ना बाबा, उसके बजाय हम मज़दूरी करके पाँच रुपये लाएँगे' लेकिन ऐसा नहीं करेगा कोई। जो करता है, वह आपका पहले का हिसाब है, उतना ही लेन-देन है। यदि आपने पहले दो गालियाँ दी होंगी तो दो आपको वापस जमा करवा जाता है। तब आप मानते हो कि, 'इसने मुझे दो गालियाँ क्यों दीं?' 'अरे भाई, इस बहीखाते का नहीं है तो पिछले बहीखाते का हिसाब होगा, हिसाब बराबर कर दो न यहीं पर।' हिसाब बगैर का

तो कुछ है ही नहीं। इसलिए इन सभी फाइलों का *निकाल* करना है, हिसाब बराबर कर देना। इतना तो आता है न, हिसाब बराबर करना?

हिसाब चुकाकर निकाल कर देना

प्रश्नकर्ता : जो भी फाइलें हैं उनका जल्दी से *निकाल* हो जाए तो अच्छा, ऐसा भाव रहा करता है।

दादाश्री : वह तो रहेगा ही न। ऐसा है कि आपकी भावना है न जल्दी हो जाए, इसलिए जल्दी हल आ आएगा और कुछ लोग क्या कहते हैं कि 'साहब, अभी अड़चन नहीं आए तो अच्छा।' तब उनके पास वे देर से आएँगी। मरते समय आएँगी। मरते समय जब शरीर मज़बूत नहीं होगा न, तब अड़चनें आएँगी। अरे! इसलिए देर से मत बुलाना। सभी से कहना कि, 'आज तो, अभी मुझ में शक्ति है। शरीर मज़बूत है। सभी आ जाएँ तो मैं पेमेन्ट कर दूँगा। दादाई बैंक खुला है। ले जाओ सभी, अब मुझ में शक्ति है। अब मैं आपको धक्के नहीं खिलाऊँगा।' यह तो दादाई बैंक है, धक्का बैंक नहीं है। यह तो कैश पेमेन्ट। दिस इज़ द कैश बैंक इन द वर्ल्ड। इसलिए हमें अब हल ला देना है।

यह तो अपना ही हिसाब है, अपने ही बहीखाते हैं और अपने ही हस्ताक्षर हैं। तो ले जाओ। कोई आपके हस्ताक्षर वाला कागज़ दिखाए, तब उससे कहना होगा कि 'ले जा, भाई।' बारह सौ के हस्ताक्षर हों और दो सौ दोगे तो उतने कम हो जाएँगे, हज़ार बाकी रहें। फिर दो सौ दोगे, तो आठ सौ रहें। ऐसा करते-करते जब कुछ भी नहीं बचेगा, तब यदि आप उन लोगों से कहोगे कि, 'अब ले जाओ?' तब वे कहेंगे, 'अब क्यों ले जाएँ?' अब हमारा उधार है ही नहीं न! आप उसे कहो कि, 'तू दुःखिया है तो आ जा न, ज़्यादा माँग न।' तब वह कहेगा कि, 'नहीं, ऐसे तो कैसे आ सकता हूँ? कुछ आपका और मेरा हिसाब होगा, तभी मैं आ सकता हूँ न। अगर पाँच रुपये भी आपके बाकी होंगे तो मैं पाँच सौ के लिए पीछे पड़ूँगा न! लेकिन जहाँ कुछ लेना भी नहीं है और देना भी नहीं है, वहाँ कैसे

पीछे पड़ूँ?' यानी कि यदि हिसाब नहीं होगा तो पीछे पड़ने कोई आएगा ही नहीं, ऐसा नियम वाला है यह जगत्!

किस तरह निकाल करना है?

डिसिज़न ले लिया हो कि 'हमें समभाव से *निकाल* करना है।' पहले जो हँसते हुए आता था, उसके साथ हँसकर *निकाल* करते थे। चिढ़कर आता था, उसके साथ चिढ़कर *निकाल* करते थे। लेकिन अब तो वह हँसता आए तो भी समभाव से *निकाल,* वह चिढ़कर आए तो भी समभाव से। हमें समभाव से *निकाल* ही करना है। आपके यहाँ पुलिस वालों की लाइन लगी हो और वे चिल्ला रहे हों, चिढ़ रहे हों तो आप क्या करोगे? समभाव से *निकाल* करते-करते जाओगे न! समभाव से *निकाल* नहीं करोगे तो क्या होगा? पुलिस वाले डंडा मारेंगे। तो वहाँ पर आप सीधे हो जाते हो न। उसी तरह ऐसे समभाव से *निकाल* करना है और सीधे हो जाना है। अतः अब संपूर्ण रहे, वैसा करो।

खुश नहीं, लेकिन नाखुश मत करना

प्रश्नकर्ता : दूसरों को खुश करने में और समभाव में कुछ अंतर है?

दादाश्री : सामने वाले को खुश नहीं करना है। यदि नाखुश नहीं करोगे तो समभाव रहेगा। व्यवहार हमें इस तरह करना है कि सामने वाला नाखुश नहीं हो, तब समभाव रहेगा। नाखुश हो जाएगा तो समभाव नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले को खुश करते समय हमें अपना हित देखना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : सामने वाले को खुश नहीं करना है और नाखुश भी नहीं रखना है। हम (दादाश्री) इस तरह बरतते हैं कि कोई भी नाखुश नहीं हो। हम कहाँ सभी को खुश करनें जाएँ?

प्रश्नकर्ता : वह जितना खाए, उतना ही आप खाओ तो वह

खुश हो जाता है। लेकिन मुझे तो मेरे हित जितना ही खाना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : अपने हित जितना ही खाना चाहिए।

सामने वाले का समाधान यानी मुक्त हुए

फाइलों का समभाव से *निकाल* करना अर्थात् क्या? उसके मन का समाधान करके हल लाना। फिर ऐसा नहीं है कि सौ हैं, तो सौ नहीं दूँगा तो असत्य माना जाएगा। सत्य यानी सत्य ही होना चाहिए, ऐसा नहीं। वे सारी पूँछें हैं, भाई। आपके पास सौ की सुविधा नहीं हो और नब्बे की सुविधा हो तो आप कहना कि, 'भाई, देखो कुछ ठिकाना नहीं है अभी, ऐसा सब है। चलेगा या नहीं चलेगा?' 'अरे, चलेगा, चलेगा।' तो बस, हो गया। सत्य की पूँछ मत पकड़ना। क्योंकि इस जगत् का जो सत्य है वह यहाँ असत्य है। जगत् ने जिसे सत्य माना हुआ है, जो सामाजिक सत्य है वह भगवान का सत्य नहीं है, रिलेटिव सत्य है, और जब तक संसार में रहना है, उनके लिए वह काम का है। जिसे मोक्ष में जाना है, उसे तो जैसे-तैसे हल ले आना है। 'फाइलों का *निकाल*', ऐसा क्यों कहा है कि नियम-वियम बीच में मत लाना। जैसे-तैसे करके सॉल्व ही कर ले न यहीं पर। आखिर में कुछ और समझ में न आए तो ऐसे, उसे खुश करके भी सही कर दे न! अरे, आखिर में कुछ भी नहीं दे सको तो पैर छूकर कहना कि, 'छोड़ दो न मुझे।' वह छोड़ दे तो बस! उसे *निकाल* करना कहते हैं, कपट रहित। आपके पास हो तो सब दे देना और कहीं फँसे हुए हो तो आखिर इन लोगों के पैर छूकर भी... तो बस, हो गया। 'हाँ, आ गया, चलेगा। कागज़ फाड़ दूँगा', कहेगा। यदि लड़ने जाओगे, तो वे भैंस के भाई की तरह लड़ेंगे, ऐसे हैं। कहेंगे, 'आ जा'।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले पक्ष को फिर ऐसा लगता है कि हम सच नहीं बोलते और गलत करते हैं, तो वह कपट कहा जाएगा?

दादाश्री : जिस तरीके से भी मूँग पके, उस तरह पकाना। मीठे

पानी से नहीं पके तो खारे पानी में पकाना। खारे पानी से नहीं पकते तो किसी भी पानी से, आखिर में गटर के पानी से पकाना। मूँग पका लेना। काम से काम है। इस संसार के लोग ऐसा नहीं करते। वे कुछ आग्रह रखते हैं कि, 'ऐसे ही करना है', और अपना तो यह आत्मा के हेतु के लिए है। *पुद्गल* की झंझट में मत पड़े रहना।

निकाल नहीं हुआ तो क्या बंधन है?

प्रश्नकर्ता : जब तक फाइलों का *निकाल* नहीं हो पाए, तब तक हम बंधे हुए रहेंगे न?

दादाश्री : नहीं, आप ज़रा सा भी बंधे हुए नहीं हो। आपको तो ऐसा बोलना है कि 'फाइल का समभाव से *निकाल* करना है।' ऐसा निश्चय रखना है।

प्रश्नकर्ता : संबंध तोड़ने से टूटता नहीं है न?

दादाश्री : तोड़ने से तो बल्कि संबंध बढ़ते हैं, *निकाल* करने से हल आएगा। (घर की) पार्लियामेन्ट में रहकर संबंध का *निकाल* करना है, पार्लियामेन्ट से अलग होकर नहीं!

'फाइल का समभाव से *निकाल* करना है,' बस इतना ही काम करना है। यह तो 'व्यवस्थित' ही है, उसमें चिंता-*उपाधि* करने जैसा है ही नहीं। काम किए जाओ। हम क्या कहते हैं? जितना हो सके, उतना काम करते रहो। फिर व्यवस्थित है। आपको भय रखने का कोई कारण नहीं है। फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है, बस इतना ही करना है।

प्रश्नकर्ता : समभाव से फाइल का *निकाल* तो करते हैं, लेकिन फिर भी मन में उद्वेग होता है तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन में उद्वेग हो या अधोवेग हो, जो भी वेग हो, उसे 'देखते' रहना। आपको ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में रहना है। अन्य सभी चीज़ें जड़ हैं। चेतन जैसी दिखती हैं, लेकिन हैं जड़।

अक्रम में उदासीनता की ज़रूरत नहीं है

प्रश्नकर्ता : स्वरूपज्ञान होने के बाद, संसार में उदासीनता ही रहती है न? फिर तो कहीं भी रस नहीं आता न, अनुभव होने के बाद?

दादाश्री : उदासीनता की ज़रूरत ही नहीं है। उदासीनता का मार्ग ही नहीं है यह। इसमें तो *निकाल* करना है। कोई आम पेल कर रस ला रहा हो न, तब आप कहना, 'देखो, अंदर फलाँ मसाले-वसाले डालना, रस में, हं!' और फिर खाना। इसमें ऐसा नहीं है कि अच्छी थाली आए, तो लोगों को दे देनी है। इसमें तो भोगते-भोगते जाना है। ऐसी उदासीनता लाने की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उदासीनता लानी नहीं है। सहज रूप से उदासीनता हो जाती है।

दादाश्री : लेकिन सहज रूप से उदासीनता की ज़रूरत ही नहीं है इस लाइन में। इसमें तो, हमारी आज्ञा का पालन करके, समभाव से *निकाल* करो। आम आए तो आम खाओ, जो आए वह खाओ। विचार नहीं, थाली में जो आए वो खाओ। उदासीनता हो जाती है न, वैसा तो वैराग्यमार्ग में है। वैराग्य से उदासीनपन आता है। इसमें वीतरागपन आता है। अपने यहाँ उदासीनपन बिल्कुल भी नहीं होता, सीधी वीतरागता ही। यह पूरनपूरी, लड्डू सबकुछ खाने की छूट दे रखी है, इसका क्या कारण है? वर्ना मना कर देते कि, 'भाई, ऐसा सब मत खाना!' सबकुछ खाओ, जो आए वो। हमने इस ज्ञान से देखा है कि 'वॉट इज़ डिस्चार्ज ऐन्ड वॉट इज़ चार्ज।' यह हमने देखकर कहा है न। डिस्चार्ज को डिस्चार्ज कहा है। डिस्चार्ज में हम आपको ऐसा कुछ नहीं कहते कि इधर-उधर करो। पूरा जगत् डिस्चार्ज को ही चार्ज समझता है। अत: उदासीन होने की ज़रूरत है जगत् को।

फाइलें, होम की और फॉरेन की

ये सारी फॉरेन की फाइलें, होम के ऑफिस में नहीं ले जानी है। यानी फॉरेन की फाइलें बाहर रख देना और बाद में आपको होम

वाले ऑफिस में जाना है। वह भूल हो जाती है, इसीलिए यह दखल होता है। आपको आपके ऑफिस में कहा हो कि, 'भाई, ये कुछ फाइलें हमारे ऑफिस में मत लाना। ये फाइलें आपके यहाँ रखना।' तो अगली बार वैसा करोगे या नहीं? वैसा ही इसमें भी करना है। वर्ना और क्या करना है? फॉरेन की फाइलें बाहर रखना है। जब होम के ऑफिस में बैठे हुए होते हो, उस समय नहीं। फिर बाहर आने के बाद में आप देखते हो, पता लगाते हो। लेकिन जब होम के ऑफिस में बैठे हुए होते हो, उस घड़ी फाइल-वाइल अंदर नहीं। ऐसा ही यहाँ व्यवहार में करते हैं। आप ऑफिस में फाइल पर हस्ताक्षर नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : करते हैं।

दादाश्री : हाँ, वैसा हिसाब रखना चाहिए आपको। आप ऑफिस में ले जाते हो? उन्हें पता ही नहीं चलना चाहिए कि ये इन्हें फॉरेन के तौर पर बाहर रखते हैं। सिर्फ आप ही जानते हो कि ये फाइलें बाहर रखते हैं। वे तो ऐसा ही समझते हैं कि, 'इनके ऑफिस में ले जाते हैं।' ऐसा नाटक (अभिनय) करना है। हम ऐसा नाटक करते हैं! लोग ऐसा समझते हैं कि, 'ओहो! अपने हेड ऑफिस में ले गए वे फाइलों को।' हम बाहर रख देते हैं।

इस जगत् में कोई भी ऐसा कारण नहीं है जो किंचित्मात्र भी क्लेश करने योग्य हो। यानी अंदर दुःख परिणाम आए, ऐसा कोई कारण नहीं है। क्योंकि आत्मा खुद सुख परिणाम वाला है! खुद आत्मा है। कोई उसका सुख छीन सके, ऐसा भी नहीं है। अव्याबाध स्वरूप है। वैभव है खुद के पास, इन बाहरी चीज़ों में, 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट में' इतना ज़्यादा नहीं रखना चाहिए हमें। फॉरेन मतलब फॉरेन, वहाँ सुपरफ्लुअस रहना है।

बांग्लादेश में बाढ़ आ जाए तो हिन्दुस्तान की पार्लियामेन्ट में उन बांग्लादेश वालों को लिखते हैं कि, 'हमें यहाँ बहुत चिंता हो रही है', और अपने यहाँ पर चाय-नाश्ते चल रहे होते हैं टेबल पर। अपने

प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री चाय-नाश्ता करते जाते हैं और लिखते जाते हैं। इसे सुपरफ्लुअस कहा जाता है। ऐसा रखना है हमें। साथ में ले जाने वाले हैं क्या?

दादा ने ज्ञान दिया, कोई चीज़ खुद की नहीं रही अब! बल्कि ये मन-वचन-काया थे, वे दादा को सौंपकर आए, तीन-तीन पोटलियाँ सौंप दीं। अब दादा को सौंप दिया, उनसे पूछे बगैर हम इस्तेमाल नहीं कर सकते। यों देखने जाएँ तब भी हमने छूट दी है कि, 'भाई, फाइलों का *निकाल* करना।'

ज्ञानी करते हैं समभाव से निकाल

एक शब्द ऐसा कहना कि जिसमें सारी फाइलें समा जाएँ, कोई फाइल बाकी न रहे। यानी एक ही शब्द में कहना हो तो हमें जो-जो संयोग मिलते हैं, वे सभी फाइल हैं। संयोग शब्द में सारी फाइलें समा जाएँगी या नहीं, अगर गिनने जाएँ तो?

जितने संयोग उतनी ही फाइलें। वे फिर मनुष्य के रूप में हों, या अन्य रूप में या इस रूप में हों। जितने संयोग, उतनी फाइलें और वे वियोगी स्वभाव के हैं। इसलिए समभाव से *निकाल* करना। ये तीन लोग आए, समभाव से *निकाल* कर दिया। है कोई शोर शराबा! हमारी रोज़ दस-पंद्रह फाइलें आती होंगी या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बहुत सारी।

दादाश्री : उन सभी का निबेड़ा लाता हूँ, समभाव से *निकाल* करता हूँ। कोई उल्टे स्वभाव का होता है, कोई वैसे स्वभाव का। समभाव से *निकाल* तो करना पड़ेगा न?

ऐसा तो हमारे *लक्ष* में रहता ही है कि, 'यह शुद्धात्मा है और इस समय इस फाइल के रूप में है मेरे लिए। फाइल का मुझे क्या करना है, वह मुझे समझना है।' दो दृष्टियाँ रहती हैं हमारी, निश्चय से तो निर्दोष है, व्यवहार से भी निर्दोष है और फिर इस फाइल का

समभाव से *निकाल* करना है। अब मेरे नाम पर क्लेम दायर नहीं किया जाता कहीं भी। यानी कि कोई भी संयोग बाधा न डाले, ऐसा विज्ञान दिया है। इस हद तक का संयोग कि उसका खुद का बैग उठाकर ले जा रहा हो तब व्यवहार से चाहे किच-किच करेगा, लेकिन अंदर से बिल्कुल भी विचलित नहीं होना चाहिए। ये सब संयोग ही हैं न! और वह कहीं हमेशा के लिए नहीं है।

संयोग वियोगी स्वभाव वाले ही हैं। कोई भी संयोग जो तुझे मिलेगा, वह वियोगी स्वभाव का है इसलिए तुझे हटाना नहीं पड़ेगा उसे। वर्ना कोई वीतराग नहीं बन पाता।

संयोग हैं स्वभाव से ही वियोगी

प्रश्नकर्ता : फाइलों का ज़बरदस्त दबाव आए, तब उसमें से किस तरह छूटा जाए?

दादाश्री : फाइलों का दबाव आए, वह संयोग है और वे संयोग वियोगी स्वभाव वाले हैं। आप कहो कि, 'अब नहीं छूटे तो अच्छा', लेकिन फिर भी वे छूटकर चले जाएँगे। किस तरह छूटा जाए, वह नहीं पूछना है। आप कहो कि, 'अब ये फाइलें रुकी रहें', फिर भी वे भाग जाएँगी। क्योंकि वियोगी स्वभाव वाली हैं। क्या ऐसा नहीं कहा मैंने?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जो लाए हैं, उसे पूरा तो करना पड़ेगा न?

दादाश्री : फाइलों का *निकाल* तो करना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : हर एक क्षण का संयोग फाइल ही है न?

दादाश्री : सभी संयोग मात्र फाइल है। लेकिन कम समझ वालों को बड़े-बड़े लोग फाइल लगते हैं। ज़्यादा समझ वाले आकर्षण को फाइल समझते हैं और पूरी समझ वाले के लिए हर एक संयोग फाइल है।

शुद्धात्मा और संयोग, दो ही हैं। इसलिए सारी फाइलों का

समभाव से *निकाल* कर लो न। और संयोग, वियोगी स्वभाव वाले हैं। त्याग करने की ज़रूरत नहीं है। यदि त्याग करेगा तो फिर से आएगा। त्याग करेगा तो सामने आएगा। त्यागे सो आगे!

अक्रम ज्ञान स्वयं सक्रिय

अपना ज्ञान स्वयं ही कार्य करता रहता है। अपने स्वयं से होता भी नहीं है। ज्ञान खुद ही करता रहता है। यह सक्रिय ज्ञान कहलाता है। इस जगत् का जो ज्ञान है, वह अक्रिय ज्ञान है। आपको करना पड़ता है। 'झूठ मत बोलना', यह ज्ञान है, तो आप झूठ नहीं बोलोगे तो चलेगा, वर्ना यह ज्ञान व्यर्थ जाएगा। और इसमें तो जो ज्ञान है, वह ज्ञान ही अपने आप करता है, वह खुद ही करता रहता है। कोई उल्टा बोले, उस घड़ी भीतर ज्ञान खुद ही कहता है कि, 'आप समभाव से *निकाल* करो', जबकि उसमें (क्रमिक में) तो नहीं होता। और बिना संयोग के क्रिया हो नहीं सकती। संयोग ही क्रिया है और क्रिया ही संयोग है, और वही *पुद्गल* है। आत्मा और *पुद्गल* दो ही हैं, आत्मा और संयोग दो ही हैं और वे संयोग, वियोगी स्वभाव वाले हैं। यानी कि आपको उस संयोग को हटाना पड़े, और आप यदि हटाने जाते हो तो आत्मा के तौर पर नहीं रहते। आत्मा का पद खो देते हो। संयोग को हटाने जाएँ तो अहंकार खड़ा हो जाता है। यानी संयोग वियोगी स्वभाव वाले हैं, इसलिए 'देखते' रहना, तो अपने आप ही *निकाल* होगा।

जब पैर में फ्रेक्चर हुआ था, तब संयोग मिले थे न, नहीं चल पाते थे, वैसा। लेकिन वह अपने आप ही चला गया न? कोई भी संयोग हों लेकिन आकर चले जाते हैं न? वे कहीं रहने के लिए नहीं आते।

आनंद में नहीं होते तो तकलीफ डबल हो जाती। हम तो आनंद में ही हैं। तकलीफ आई है, फिर चली जाएगी धीरे-धीरे। क्योंकि जो तकलीफ आई है, वह संयोग है, वह वियोगी स्वभाव की है। हमें उसे निकाल नहीं देना है। वे आए हैं, चले जाएँगे। यानी कि हमें धीरज रखने की ज़रूरत है। निकाल देंगे तो गुनाह लगेगा, वे दावा दायर करेंगे!

प्रश्नकर्ता : बहुत समता रहती है।

दादाश्री : बस, बस। वे तो आएँगे। यह हवा नहीं चलती क्या बहुत? हवा चलती है या नहीं? फिर वह धड़ाधड़ उड़ाती है न! बाद में तो फिर वह भी बंद हो जाएगी और जैसे थे, वैसे के वैसे।

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी तो आँधी जैसा आया है।

दादाश्री : आँधियाँ आएँगी। फिर जब आँधी चली जाएगी, उसके बाद सेफसाइड। यानी आँधी सब के लिए आती है। ये तो, बीच में ज़रा आँधी आती है तो दरवाज़े बंद करके बैठे रहते हैं। लेकिन दो घंटे के बाद आँधी बंद होने पर, फिर दरवाज़े खोल देते हैं। उसी तरह आपके यहाँ आँधी आए, तब एक दिन-दो दिन तो आप को दरवाज़े बंद करके अंदर होम डिपार्टमेन्ट में बैठे रहना चाहिए और बाहर चंचलता होती रहेगी, उसे देखते रहना है। क्या ऐसा नहीं हो सकता?

प्रश्नकर्ता : यानी हमें धीरज रखना है, समता रखनी है।

दादाश्री : बस, और क्या? जो आँधी आई है, उसे हमें देखते रहना है और समभाव से *निकाल* करना है और उसे फाइल कहा जाता है। समभाव से *निकाल* करना तो फिर चला जाएगा। जितना हिसाब में है, उतना ही आएगा, दूसरा नहीं आएगा।

यह क्या कोई गप्प है यहाँ पर? यह तो वैज्ञानिक है। यहाँ तो किसी का दखल नहीं चलता। भगवान का भी दखल नहीं चलता इसमें। वैज्ञानिक थ्योरी में भगवान का दखल कैसे चल सकता है? तो फिर वे भगवान नहीं हैं! क्योंकि भगवान कभी भी दखल वाले नहीं होते।

पसंद-नापसंद का कर समभाव से निकाल

जिस-जिस प्रकार का संयोग आ मिले, वह सब फाइल। यहाँ से जा रहे हों और बांद्रा की खाड़ी आए, यानी कि संयोग आ मिला। उसे फाइल नहीं कहा जाएगा? तब आप कहो, 'यह सरकार को देखो न, गटर ठीक नहीं करवाती और यह सब...' तो वह बिगड़ा। फाइल

का समभाव से *निकाल* करना है। नहीं रास आया तो नाक दबाकर रखना कुछ देर। वर्ना आपको समभाव से *निकाल* करना हो न, तो बदबूदार होगा तब भी आपको एतराज़ नहीं होगा। यह दुनिया सारा बदबूदार ही चला लेती है न! सुगंधी वाला तो कहीं पर होता ही नहीं है न? खराब तकिया मिले, और वहाँ पूरी रात रहना हो तो हमें क्या करना चाहिए? क्लेश करना चाहिए? तो किस तरह उसका समभाव से *निकाल* करोगे?

प्रश्नकर्ता : उसमें एडजस्ट होकर।

दादाश्री : हाँ, एडजस्ट होकर। 'यह अच्छा नहीं है', वहाँ आपको कहना है कि 'बहुत अच्छा है, इस ओर अच्छा है, उस तरह पलट दो न। यों तो अच्छा है' ऐसा कहकर फिर सो जाना।

आत्मा के अलावा और क्या है? तो वे हैं, 'संयोग'। ये संयोग यानी क्या? वे फाइलें हैं। फाइल का समभाव से *निकाल* करो।

प्रश्नकर्ता : यानी मन के विचार भी फाइलें ही हो गई न?

दादाश्री : सभी फाइलें हैं। फाइल के अलावा बाकी कुछ भी नहीं है। यानी सभी संयोग फाइलें हैं। पसंदीदा चीज़ आए तो उसकी सेटिंग करो, और समभाव से किस प्रकार वह बाधक नहीं हो, नुकसान नहीं हो और आपके मन को तृप्ति हो जाए, ऐसा कोई रास्ता खोज निकालो। जो भाता है उसे ज़्यादा खाने में हर्ज नहीं है। लेकिन फिर उसके साथ दूसरा कम खाओ। ऐसा सब करके *निकाल* करो। ताकि वह नुकसान नहीं करे आपको। फिर आलू की सब्ज़ी आई, तो वह फाइल। नहीं भाए, ऐसी सब्ज़ी आई तो वह फाइल। यानी उसका समभाव से *निकाल* करना है। मनचाही सब्ज़ी आए, तो उसका भी *निकाल* करना है। पसंदीदा कमीज़ मिल जाए तो उसका भी *निकाल* करना है।

हाँ, यानी कि सारी फाइलों का *निकाल* करना है। आप कुछ ही फाइलों का *निकाल* करते हो न। 'मैं आलू नहीं खाता', आलू की बुराई

करता है। आलू का समभाव से *निकाल* करना है। आलू का किस तरह समभाव से *निकाल* करना है, अगर खाते ही नहीं हो तो? भगवान की आज्ञा में ही हैं न, जो नहीं खाते हैं वे? तब यदि वह आलू की सब्ज़ी परोस रहा हो तो 'थोड़ा ही रखिए', कहना। उसमें से एक टुकड़ा लेकर, आप खाना। इस तरह समभाव से *निकाल* हो गया। इससे कहीं भगवान को बुरा नहीं लगेगा। भगवान ने बिल्कुल छोड़ देने को भी नहीं कहा था, इकोनॉमी करना। छोड़ दोगे तो आपको कैफ चढ़ेगा कि, 'मैंने आलू छोड़ दिए हैं', और जहाँ आलू दिखेंगे, वहाँ चिढ़ जाएगा। प्याज़ छोड़ दिए हों तो जहाँ प्याज़ दिखेंगे, वहाँ क्या होगा? चिढ़ जाएगा। फिर वहाँ क्या कहता है वह? 'हर कहीं प्याज़ क्यों भरकर रखते हो?' मूर्ख, तेरा क्या गया? प्याज़ ने तेरा नाम नहीं लिया है। प्याज़ तेरा खा नहीं गई। फिर भाई! प्याज़ को क्यों गालियाँ देता है? प्याज़ से द्वेष किया तो क्या प्याज़ छोड़ देगी? यदि समभाव से *निकाल* कर दिया जाए तो? हल आ जाएगा न? आपको यह अक्रम विज्ञान कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : बहुत सटीक है।

दादाश्री : तब फिर कच्चा नहीं रहेगा कुछ भी।

प्रश्नकर्ता : इतने सारे विचार करके किया है, ऐसा लगता है कि इसमें बुद्धि से सब तय किया है। फिर भले ही बुद्धि को छोड़ दिया हो।

दादाश्री : हाँ, लेकिन अनुभव तो हुआ है न? वर्ना फिर ऐसा कहेगा, 'प्याज़ क्यों भर रखे हैं'? अरे भाई! भगवान ने इसलिए प्याज़ छोड़ने को नहीं कहा था। राग-द्वेष करने के लिए नहीं कहा था। तूने तो बल्कि द्वेष ही किया, और अगर दो टुकड़े खा लेगा तो उससे कहीं मर नहीं जाएगा या भगवान को बुरा नहीं लगेगा। समभाव से *निकाल* कर न! यह तो, 'मुझे भाता है', इसलिए इतना सारा खा जाता है। जो नहीं भाता उसे छूता भी नहीं है। हम क्या कहते हैं? समभाव से *निकाल* करो।

कोई व्यक्ति नापसंद हो, तो 'छी-छी, हट' करते हैं। 'अरे भाई, ऐसा करना बंद कर न!' इसके बजाय कहना, 'कब से आए हैं? बैठिए, चाय लेंगे?' नापसंदगी तो आपके अंदर है न? लेकिन उसे पता नहीं चले, इस तरह से रखा जा सकता है या नहीं? समभाव से *निकाल* करना हो तो रखा जा सकता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : रखा जा सकता है।

दादाश्री : उसे कपट नहीं माना जाएगा। कपट तो आपको उससे कुछ लेना हो या उससे लाभ उठाना हो, तब उसे कपट कहा जाएगा। उसका समभाव से *निकाल* किया जाए तो वह कपट नहीं है पर सब से बड़ी चीज़ है, थ्योरी है।

प्रश्नकर्ता : उसके अहंकार का हम तिरस्कार नहीं करते...

दादाश्री : वह उसका जो तिरस्कार करता है, वह अधर्म कर रहा है और आप धर्म करते हो। 'आइए भाई, बैठिए, बहुत अच्छा हुआ, आज मिलना हुआ कई दिनों बाद।' और आप भी क्या कहते हो? नाटकीय ही कहते हो न, नाटकीय बोलना।

कुछ नापसंद आए न, उसका समभाव से *निकाल* करना, वह सब से बड़ा तप कहा जाता है। समभाव से *निकाल* करना यानी क्या? सामने वाले के लिए अभाव नहीं हो, और ऐसा कुछ भी नहीं हो। नापसंद का प्रोटेक्शन करके चले जाने का भाव मत करना, चले जाना भी ठीक नहीं है। पलायन कर लेना भी गलत कहलाता है। इसका *निकाल* करना ही चाहिए। कुछ लोग कहेंगे, 'नहीं, पसंद नहीं है। चलिए, उठिए यहाँ से।' उसे बहुत भयंकर भूल कहा जाएगा। नापसंद आए तब भी वहाँ बैठे ही रहना पड़ेगा।

हमारे ही हिसाब हैं

सुलगते कोयले आपके ऊपर गिरें तब पूरा ज्ञान आपको तुरंत हाज़िर हो जाना चाहिए न, कि डालने वाला व्यक्ति, वह तो शुद्धात्मा

ही है न? आपका हिसाब है यह। आप शुद्धात्मा हो, आप पर नहीं डाला, चंदूभाई पर डाला है। यह चंदूभाई का हिसाब था इसलिए उसने यह हिसाब चुका दिया। चंदूलाल के कर्म का उदय है, वह व्यक्ति तो निमित्त है। आपको समभाव से *निकाल* करना है। बल्कि आशीर्वाद दो कि, 'तूने मुझे इस कर्म में से मुक्त किया।'

सामने वाला व्यक्ति तो कर्म से मुक्ति दिलाने आया है। यह पूरा जगत् आपको कर्म से मुक्ति दिलवा रहा है। जबकि आपको ऐसा लगता है कि, 'यह मेरा बैरी है और यह मेरा प्रेमी है।' पूरा जगत् कर्म से मुक्त करवाना चाहता है। लोग फिर ज़्यादा से ज़्यादा फँस कर इसे निकाचित (अत्यंत गाढ़ कर्म) कर देते हैं।

उल्टे व्यवहार से खिलती हैं आत्मशक्तियाँ

कोई रोंग व्यवहार नहीं आएगा तो अपनी शक्तियाँ खिलेंगी ही नहीं। इसलिए उसका उपकार मानना कि 'भाई, तेरा उपकार। तूने मेरी कुछ शक्ति डेवेलप कर दी।'

प्रश्नकर्ता : ठीक है, हाँ। यह परम सत्य है।

दादाश्री : समझेंगे तो हल आएगा, वर्ना हल आए ऐसा नहीं है। धर्म पुस्तकों में नहीं होता, धर्म तो व्यवहार में ही होता है। धर्म कहीं पुस्तक में होता होगा? आपको सिर्फ इस तरह से रहना है कि, 'मुझे व्यवहार में आदर्श रहना है।' ऐसी भावना रखनी है। व्यवहार नहीं बिगड़ना चाहिए। और यदि बिगड़ गया तो उसका समभाव से *निकाल* कर देना चाहिए।

अपने यहाँ थोड़ा सा भी बखेड़ा या दखल कुछ होता है? थोड़ा मतभेद होता है, झंझट होती है, सब होता है, लेकिन वह *निकाली* भाव है, उनमें तांता नहीं रहता। और फिर सुबह में चाय फर्स्ट क्लास बनती है। शाम को झगड़ा किया हो न, दूध में नमक डाल दिया हो न फिर भी सुबह चाय बनती है उस दूध की! दूध फट नहीं जाता, बारह घंटों में भी।

प्रश्नकर्ता : हमें अपना मोक्ष का काम कर लेना है। फाइलें तो हमें छोड़ेंगी नहीं।

दादाश्री : कोई अपना नहीं बनता। यह आत्मा अपना बनेगा, अन्य कोई भी नहीं। मोक्ष में जाने का ही भाव है न अपना! वहाँ पराया काम आएगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं आएगा।

दादाश्री : फिर भी व्यवहार को छोड़ा नहीं जा सकता न? *निकाल* कर देना है। लोगों में गलत नहीं दिखे, इस प्रकार से। हम भी नापसंद के साथ *निकाल* करते हैं न, नहीं करते?

ड्रामेटिक रहकर करो निकाल

कोई कहे कि, 'आप तो नालायक हो।' तब कहना, 'भाई, तूने तो आज जाना, हम तो पहले से जानते हैं यह।' तो *निकाल* हो गया। क्या ऐसा आप पहले से नहीं जानते?

प्रश्नकर्ता : हम यदि ऐसा कहें न कि, 'हम तो पहले से ही नालायक थे, तूने आज जाना', तो कहेगा कि, 'नालायक तो हो, पर बेशर्म भी हो।' ऐसा कहेगा फिर।

दादाश्री : तो कहना, 'भाई, बाकी हमें तो ऐसा समझ में आया।' वर्ना हो सके, तब तक बोलना नहीं। मौन से निपट सकता हो तो निपटा देना। लेकिन ऐसा तो आप अपने मन से कहना। मन समाधान माँगता है या नहीं माँगता?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी ड्रामेटिक उसे कहा जाता है कि जो हार्टिली ही हो। पूरा हार्ट ही ड्रामा में जाता है। आप ड्रामा से बाहर हो। हार्टिली ड्रामा!

प्रश्नकर्ता : तो जब हार्टिली ड्रामेटिक बातचीत करें, तब वह जागृति भी रहनी चाहिए न, कि दूसरों को किंचित्‌मात्र दुःख न हो?

दादाश्री : वह जागृति अपने आप रहती ही है। हार्टिली वाणी निकलती है न! आप ड्रामेटिक बोलोगे न तब आपका हार्टिली रहता ही है। यदि जागृति कम हो, तो ड्रामेटिक नहीं कहलाएगा न! फुल जागृति को ही कहते हैं ड्रामेटिक। मैं भर्तुहरि राजा, अंदर मैं लक्ष्मीचंद तरगाड़ा, ऐसी सारी जागृति होनी चाहिए।

ड्रामेटिक बोलोगे तो किसी फाइल के साथ बिगड़ेगा नहीं और ये फाइलें साथ में आने वाली हैं। ये फाइलें एकदम से डिसमिस नहीं हो जाएँगी। वे साथ में आएँगी। हाँ, क्योंकि वे रिएक्ट हुई हैं न। इसलिए फाइलों को बिगाड़ना मत। वे छूट नहीं जाएँगी।

इन फाइलों का *निकाल* करने के लिए आरोपित भाव से (ऐसा जो कहते हो) 'मैं हूँ', उसमें ड्रामेटिक भाव रखना। ड्रामा का *निकाल* तो करना पड़े न?

'ठपका' लेकिन उपयोगपूर्वक

प्रश्नकर्ता : फर्ज़ निभाते समय कुछ गलत हो गया हो, उसे गलती बताने में ज़रा दण्डनीय कदम उठा लिया हो, तब उस गलत करने वाले को दु:ख होता है। शायद हमारे लिए मन में घृणा भी पैदा होती होगी, तो ऐसे में क्या करना चाहिए? कैसी भावना करनी चाहिए?

दादाश्री : आपने तो ज्ञान लिया है। ऐसे में उसके शुद्धात्मा को बाहर बैठाकर, आप कहना कि, 'देहधारी व्यक्ति के मन-वचन-काया के योग, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से भिन्न, ऐसे हे शुद्धात्मा!' जो भी व्यक्ति हो, उसे इस तरह.. उसके शुद्धात्मा से कहना 'बाहर बैठिए। यह *पुद्गल* गुनाह कर रहा है, इसलिए मुझे *पुद्गल* को ज़रा सीख देनी है।' तब फिर हर्ज नहीं है। और सीख तो देनी ही पड़ेगी न! सीख दिए बगैर चलेगा नहीं और फर्ज़ से बंधे हुए हो न? बैंक का ध्यान रखने वाले चौकीदार यदि सभी को जाने देंगे तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : ज़्यादा चोरियाँ होंगी।

दादाश्री : हाँ, ड्यूटी वाली जॉब। फर्ज़ तो निभाना ही चाहिए। इसलिए हर्ज नहीं है, लेकिन भगवान को बाहर बैठा देना है!

प्रश्नकर्ता : वह सामने वाला व्यक्ति फिर हमारे प्रति घृणा रखे, तो उससे हमें कुछ भी नहीं होगा न?

दादाश्री : आपको कुछ भी नहीं। उसके आत्मा को बाहर बैठा दिया फिर आपको कोई लेना-देना नहीं है और बाद में यदि घृणा करे न, तो वह आत्मा के बगैर करेगा, उसमें दम नहीं होगा न! आत्मा बाहर बैठा है! आत्मा होकर करेगा तब जवाबदारी आएगी।

स्पेशल तरीका निकाल का

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि हमारे अन्डर में काम करने वाला ऑफिस का कोई व्यक्ति हो, वह टाइम पर ऑफिस नहीं आता हो या फिर ऑफिस का काम ठीक से नहीं करता हो तो अब उस फाइल का हम समभाव से *निकाल* करने जाएँगे तो फर्ज़ निभाते हुए उसे *ठपका* (डाँटना) भी देना पड़ेगा। तो सामने वापस उसका प्रत्याघात हमें मिलना ही है, तो क्या उससे हमें भी कर्म बंधन होगा?

दादाश्री : ज्ञान लिया हो न, तो कर्म बंधन नहीं होगा। लेकिन प्रत्याघाती इफेक्ट नहीं पड़े, उतना आपको संभालना पड़ेगा। क्योंकि वह मूर्ख है, इसलिए वह प्रत्याघाती इफेक्ट ले लेगा। इसलिए आप एक कागज़ पर लिखकर कहना, 'भाई, इसे पढ़कर मुझे वापस कर देना।' आप टेबल के पास जाकर कहना कि 'पढ़, दो बार पढ़ फिर मुझे वापस कर देना।' इसका भावार्थ क्या है, वह समझे आप?

ये सभी सेन्सिटिव माइन्ड के हैं। इसलिए उत्तेजित हो जाएँगे तो उल्टे चलेंगे। यदि हम तुझे मारें तो तू क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं होगा। अंदर भाव नहीं बिगड़ेगा।

दादाश्री : फिर से मारें तो?

प्रश्नकर्ता : तब भी नहीं बिगड़ेगा।

दादाश्री : यदि हम कहें कि हम यह जो मार रहे हैं वह गलत कर रहे हैं, तब क्या कहेगा तू?

प्रश्नकर्ता : तो और ज़्यादा मार खाने की इच्छा होगी।

दादाश्री : हमारा स्यादवाद होता है। हम इसे कह-कहकर मारते हैं कि, 'भाई, अब तुझे अनुकूल आती है यह बात?' और कह-कहकर उसे क्रम से आगे ले जाते हैं। हमारा इसमें सेन्सिटिव नहीं होता। जहाँ बुद्धि होती है, वहाँ सेन्सिटिवनेस होती है और सेन्सिटिव मतलब उत्तेजना। और उत्तेजना होने पर सामने वाला व्यक्ति बैर बाँधता है। मतलब जहाँ उत्तेजना है, उन लोगों को एज़ फॉर एज़ पॉसिबल, यदि अन्य तरीके से बताना नहीं आए, तो लिखकर देना, लिखने से उत्तेजित नहीं होगा। लिखकर आप कहना, 'ले पढ़ ले, तुझे दंड दूँगा, तुझे सस्पेन्ड करूँगा।' आपको उसे ऐसा कुछ कहना चाहिए। उसमें हर्ज नहीं है और अंदर से भाव ऐसा रखना कि 'उसका बिगड़े नहीं।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ठीक है।

दादाश्री : अंदर से, एक ओर ऐसा रखना चाहिए कि उसका बिगड़े नहीं, और दूसरी ओर कहना ही चाहिए, वर्ना उल्टे रास्ते चला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझे अभी भी ज़रा ज़्यादा क्लेरिफिकेशन (स्पष्टीकरण) चाहिए कि आपने कहा कि उसे लिखकर देना, तुझे सस्पेन्ड करूँगा। मान लीजिए कि एक-दो बार बोलकर कहा। हम जानते हैं कि वह शुद्धात्मा है, हम समभाव से *निकाल* करने के प्रयत्न करते हैं। उसे लिखकर दिया, कुछ जवाब नहीं दिया, उसने रख लिया और उसका हर रोज़ का जो तरीका है, उसने वही जारी रखा। फिर से लिखकर दिया तब भी वैसा ही करता रहा। फिर से एक्शन लेने को कहा। अब जब एक्शन लेते हैं, तब तुरंत वह ऐसा ग्रुप बना दे या वह खुद ऐसा कहे कि, 'देखो यह ज्ञान लिया है लेकिन ज्ञान का छींटा भी नहीं दिखता।' इस प्रकार की बातें करे और फिर से एक्शन

लिया जाए तब हमारा विरोधी बन बैठता है। फर्ज़ के तौर पर यह सब किया है। अंदर भाव हमारे शुद्ध है तो ऐसे संयोगों में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आप उसे बता देना कि 'मैं एक्शन लेने वाला हूँ, अगली बार' और एक्शन ऐसा लेना कि एक्शन लेने के बाद फिर बदला जा सके, ऐसी स्थिति तो रखना। आप सभी प्रयत्न करना और जब तक आप मोड़ लेने की स्थिति रखते हो, तब तक आपका गुनाह नहीं माना जाएगा। आपकी नीयत उसका बुरा करने की नहीं है, उसका अच्छा करना है, उतना ही देखा जाता है। फिर आपके हाथों वह केस बिगड़ जाए फिर भी उसकी कीमत नहीं है। बल्ब फ्यूज़ हो जाए न, फिर भी कीमत नहीं है।

रखो शुद्ध भावना ही

प्रश्नकर्ता : दादा, आप कहते हैं कि हमें समभाव से *निकाल* करना है। उदाहरण दे रहा हूँ, ऐसा मान लीजिए कि कोई एक जगह है, उस पर एक ही व्यक्ति को लेना है। एक पोज़िशन खाली है और चार लोग उसके लिए ट्राइ कर रहे हैं, मान लीजिए कि उन चारों में से एक मैं ही हूँ। अब मैं मेहनत करता हूँ, ठीक से काम करता हूँ, ऐसा सब है। मान लीजिए मैं सिलेक्ट हो गया और वे तीनों दुःखी हो गए और बिना कुछ लिए-दिए मैं उन तीनों का दुश्मन बन गया। अब इसका इलाज कैसे करें?

दादाश्री : हमारा यह विज्ञान ऐसा है कि आपको अनिवार्य रूप से ऐसा नहीं कहता कि आप ऐसा कर ही लो। आपको तो सिर्फ मन में तय रखना है कि, 'मुझे इसका समभाव से *निकाल* करना है।' आपको तो सिर्फ इतनी भावना ही करनी है। होता है या नहीं होता, वह आपको नहीं देखना है। वह मुझे देखना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपना तो उन लोगों से लेना-देना नहीं है।

दादाश्री : वह आपको नहीं देखना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर भी मैंने तो उन लोगों को दु:खी किया।

दादाश्री : उनका चाहे जो भी हो या आपका नहीं हो, सवाल उसका नहीं है, उस समय आपकी भावना क्या थी कि 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है', बस यही। आप हमारी आज्ञा का पालन करोगे न, तो जवाबदारी हमारी हो गई और फिर 'यू आर नॉट बाउन्ड।' जो हमारी पाँच आज्ञा का पालन करे न, उसे वर्ल्ड में कोई अड़चन आए तो उसकी जोखिमदारी हमारी और एक भी चिंता हो तो दो लाख का यदि दावा दायर करोगे तो मिलेंगे ऐसा कहा है, सभी को। गारन्टी देता हूँ।

सड़े हुए को काटना, वही है समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : अपने मातहत व्यक्ति को निकाल दिया, तो वहाँ समभाव से *निकाल* कैसे करें? किसी को फायर करें तो उसे तो दु:ख होगा न?

दादाश्री : नहीं। उसका तो आपको समभाव से *निकाल* करना है। दु:ख होता होगा, ऐसा आपको लगता है, शंका होती है कि इसे दु:ख होगा तो? तो आप उसका नाम याद करके उसका प्रतिक्रमण करना कि, 'भाई, मुझे तो लाचार होकर करना पड़ रहा है।' ऐसे प्रतिक्रमण करना है। लेकिन दुनिया में जो-जो फर्ज़ हैं, वे तो निभाना।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में प्रिन्सिपल है कि पपीता साबुत है, लेकिन यदि कुछ हिस्सा सड़ जाए तो उसे काटकर एक तरफ रख देना चाहिए। यह प्रिन्सिपल सही है?

दादाश्री : हाँ, सही है।

प्रश्नकर्ता : उसे समभाव से *निकाल* कह सकते हैं?

दादाश्री : हाँ।

भैंस की भाषा में निकाल

भैंस है न, इस दरवाज़े के आगे आकर ऐसे देख रही हो, तब

यदि आप समभाव से *निकाल* करो कि, 'एय, चली जा यहाँ से, चली जा यहाँ से।' अंदर आ जाएगी तो बल्कि परेशान हो जाएगी बेचारी। परेशान होगी तो फायदा है या बाहर रहेगी तो?

प्रश्नकर्ता : बाहर रहेगी तो फायदा है।

दादाश्री : अब उस बेचारी को समझ नहीं है। अगर अंदर घुस जाए तो आपको क्या करना पड़ेगा? 'बहन, आप बाहर जाओ, आप बाहर जाओ', इस तरह समभाव से *निकाल* नहीं करना है। एक लाठी लेकर धीरे से पैर पर मार देनी है। क्योंकि अगर आप 'बहन' कहोगे तो वह समझेगी नहीं। उसकी भाषा में बात करनी पड़ेगी। हम मारेंगे तो वह समझ जाएगी कि, 'यहाँ पर ये मना कर रहे हैं, अंदर आने को।' यानी कि ज़्यादा नुकसान होने से रोका। उसे कहते हैं अहिंसा।

अहिंसा किसे कहते हैं? ज़्यादा नुकसान होने से रोका, भैंस का और खुद का, दोनों का नुकसान होने से रोका। उसे कहते हैं अहिंसा। वर्ना फिर अगर अहिंसा का पालन करके उसे अंदर आने दिया और फिर वह बेचारी घबराती रहे और हम भी घबराते रहेंगे, तो उसमें क्या मज़ा आएगा? समभाव से *निकाल* करने में हिचकिचाना मत। सबकुछ हो सकता है। विज्ञान है यह, धर्म नहीं है यह। धर्म में सारी आपत्तियाँ होती हैं।

व्यक्तिगत अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका ज्ञान लेने के बाद आपने कहा कि समभाव से *निकाल* करना, तो कोई नालायक इंसान हो तो उसके साथ भी हमें समभाव से *निकाल* करना है?

दादाश्री : आपको क्या? नालायक है वह अपने घर में। आपको उसके साथ बहुत नया हिसाब नहीं बाँधना है।

प्रश्नकर्ता : हमारी नीयत तो साफ है, लेकिन सामने से जो प्रतिभाव आए उसकी बात है यह।

दादाश्री : वह आए तो आप समभाव से *निकाल* ही करते रहना और उस व्यक्ति के लिए खराब विचार आए तो अंदर प्रतिक्रमण करना कि, 'ऐसे खराब विचार क्यों करते हो, उसके लिए?' आपको उसके बारे में खराब विचार आए तो, फिर उसका प्रतिस्पंदन सामने वाले तक पहुँचता है।

प्रश्नकर्ता : उन्हें ऐसी प्रतीति होती है क्या?

दादाश्री : प्रतीति यानी अच्छी तरह से। इसीलिए तो यह जगत् खड़ा हुआ है। इस एक ही चीज़ से जगत् खड़ा हुआ है। खराब विचार आया कि तुरंत प्रतिक्रमण करो, फिर देखो कि वह व्यक्ति क्या करता है आपके लिए! यह विज्ञान है। यह विज्ञान की दृष्टि से कह रहा हूँ। खराब विचार आ जाएँ तो अभी उसका क्या करते हो? उसे अंदर पोषण देते हो?

प्रश्नकर्ता : उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

दादाश्री : दूर क्यों करना है? वे आए हैं पर दूर ही हैं। आप उसके प्रतिक्रमण कर लोगे तो उसी को कहते हैं दूर हो गए। प्रतिक्रमण कर लिया यानी कि वह अभिप्राय अपना नहीं है। प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? जो विचार आया, वह अपना अभिप्राय नहीं है। पूरा प्रतिक्रमण नहीं आता तो, 'नहीं भाई, उससे माफी माँगता हूँ और ऐसे विचार मत आना।' कुछ भी बोलना। संक्षेप में दो शब्द बोलोगे तो चलेगा, लेकिन उससे अभिप्राय अलग हो जाना चाहिए।

गारन्टी एक जन्म की

प्रश्नकर्ता : सामने वाली पार्टी यदि तैयार नहीं हो तो समभाव से *निकाल* कैसे करें? एक हाथ से ताली कैसे बजा सकते हैं?

दादाश्री : आप अपने मन में तय करना कि, 'यह जो फाइल आ रही है, मुझे उसका समभाव से *निकाल* करना है।' इतना ही करना है। सामने वाला ताली बजाए या नहीं, उससे आपको लेना-देना नहीं है। आप अपनी भावना बदलो तो तुरंत सब सही हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अब ये जो फाइलें हैं वे तो सभी पूरी करनी होंगी न? छोटी या बड़ी, सभी फाइलें?

दादाश्री : वे तो पूरी करनी ही होंगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कुछ फाइलों का एक तरफा *निकाल* करें तो? एक तरफा फाइल का *निकाल* हो सकता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। फाइलों का *निकाल* हो कर ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई बार हमें छूटना हो और सामने वाला नहीं छोड़ता, तो फिर खुद एक तरफा छूट सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : छूट सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : किस तरह से?

दादाश्री : अपनी वीतरागता देखकर। वह तो, यदि अपनी वीतरागता हो तो पूरा छूट सकते हैं। सामने वाला जमा करे या नहीं करे, वह आपको देखने की ज़रूरत नहीं है! यदि ऐसा होता तो कोई छूटता ही नहीं जगत् में।

प्रश्नकर्ता : हम समभाव से *निकाल* करते हैं और कोई इसका दुरुपयोग करे तो करने देना है?

दादाश्री : दुरुपयोग करने की किसी में शक्ति नहीं है। और जो दुरुपयोग होना है वह कहीं बंद नहीं होने वाला। जितना दुरुपयोग होने वाला है, उसमें कोई बदलाव हो सके, ऐसा नहीं है और नया दुरुपयोग करने की किसी में शक्ति नहीं है। यानी कि घबराहट मत रखना। घबराहट पूरी तरह से निकाल देना आप। एक जन्म के लिए तो घबराहट निकाल देना आप। उसकी गारन्टी है हमारे पास।

फिर नहीं जवाबदारी आपकी

प्रश्नकर्ता : दादा, अब भारी फाइलें आती हैं।

दादाश्री : चाहे भारी आएँ लेकिन उनका *निकाल* हो जाएगा। आप ऐसी तैयारी रखो कि, 'मुझे किसी भी प्रकार से पसंद-नापसंद नहीं करना है।' कमर इतनी मज़बूत रखना।

प्रश्नकर्ता : फिर भी यदि समभाव से *निकाल* नहीं होता तो फिर वह कुदरत पर छोड़ देना है?

दादाश्री : फिर आपको कुछ भी लेना-देना नहीं रहा। आपने समभाव से *निकाल* किया। आपने आज्ञा का पालन किया यानी यू आर नॉट रिस्पॉन्सिबल!

नहीं देखना है परिणाम

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी ऐसा लगता है कि कुछ-कुछ फाइलें बहुत भारी होती हैं। उनका हम *निकाल* कर सकेंगे या नहीं? 'यह कुछ कठिन लगता है, यह नहीं हो पाएगा', ऐसे जो विचार आते हैं...

दादाश्री : हाँ, उन्हें *चीकणी फाइल* कहते हैं। बहुत गाढ़ होती हैं वे तो!

प्रश्नकर्ता : हाँ, मतलब उस समय डगमगा जाते हैं कि यह हो पाएगा या नहीं? यह फाइल हमें छोड़ेगी नहीं।

दादाश्री : आपको ऐसे डगमगाने की ज़रूरत नहीं है। वह छोड़ेगी या नहीं, उसकी चिंता नहीं करनी है। आपको तो, आप उस समय क्या करने बैठे हो? तो यह कि, 'फाइल का समभाव से *निकाल* करना है।' आपको उसका परिणाम नहीं देखना है। आपको मैंने परिणाम देखने को नहीं कहा है, मैंने आपको आज्ञा पालन करने को कहा है, फाइलों का समभाव से *निकाल* करो। आप उसमें परिणाम देखते हो कि, 'यह फाइल छोड़े, ऐसी नहीं है', या फिर, 'यह फाइल छूटती नहीं है।' मैंने आपको परिणाम देखने को नहीं कहा है। परिणाम देखोगे तो कीचड़ में घुस जाओगे। 'इस फाइल का समभाव से *निकाल*', इतना करके आप मुक्त। बाकी जवाबदारी मेरी, अगर सवार हो जाएगी तो।

प्रश्नकर्ता : बस, समझ में आ गया। इसमें मेरी थोड़ी भूल थी समझने में।

दादाश्री : 'समभाव से *निकाल* करता हूँ', इतना ही। फिर, होता है या नहीं होता, वह भी नहीं देखना है। सरल और आसान बात है न!

इन्हें अच्छा है, एक भी *चीकणी फाइल* नहीं है। इसलिए फिर झंझट ही नहीं न! किसीने कपड़े पर नाक सिनक दी हो और आप यों कपड़ा धोते रहो तो आपका हाथ गंदा हो जाएगा लेकिन वह चिकनाई नहीं जाएगी, उसे कहते हैं *चीकणी फाइल*। 'ले, स्वाद ले!' वह *चीकणी फाइल*।

चीकणी फाइलों के प्रति समभाव

फिर, *चीकणी फाइल* अपने नज़दीक ही होती है, बाहर इधर-उधर नहीं होती। *चीकणी* यानी कि ऐसे धोते रहें न, साबुन लेकर धोएँ तब भी नहीं जाता। जैसे कि कपड़ा डामर वाला हो जाए न, और उस पर साबुन घिसते रहें तो क्या होगा? बल्कि डामर साबुन पर चिपक जाएगा। ये ऐसी फाइलें हैं! वहाँ पर जागृति रखनी पड़ेगी कि, 'साहब, अब मैं क्या करूँ? मेरा साबुन तो महँगा है और यह साबुन रगड़ा तो वह साबुन पर चिपक गया।' जब ज्ञानी पुरुष घासलेट लाएँ, उसमें डुबो देना। दो लीटर बिगड़ेगा, लेकिन अगर उसे डुबो दिया तो खत्म। ज्ञानी पुरुष रास्ता बताते हैं। वर्ना वह पानी से तो जाएगा नहीं। जैसे-जैसे पानी डालोगे, वैसे-वैसे और ज़्यादा चिपचिपा होता जाएगा। लोग पानी डालते रहते हैं, *चीकणी* फाइलों के लिए!

प्रश्नकर्ता : *चीकणी फाइलों* का *निकाल* करने के लिए जन्मोंजन्म तो लेने ही पड़ते हैं न? इन फाइलों को लेकर ही झंझट है न?

दादाश्री : सच कह रहे हो। फाइलों के *निकाल* के लिए ही है न! देखना फाइलों के साथ फिर से बैर नहीं बंधे। बैर को लेकर ये हिसाब खड़े हैं। आखिर में तो फाइलों को छोड़कर ही जाना है

न? *चीकणी फाइलें* नहीं हो न तो संसार अच्छा लगता है। मोक्ष के लिए यह नुकसानदायक है।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसी *चीकणी फाइलों* का *निकाल* करने की कला बताइए।

दादाश्री : उनका *निकाल* करना है। एक ही बात, जैसे कि अपना दिमाग़ बंद नहीं हो गया हो, वैसा मौन पकड़ लेना चाहिए। अन्य कोई उपाय नहीं है, बोले कि बिगड़ा।

प्रश्नकर्ता : हम मौन रहते हैं फिर भी सामने वाले की तरफ से हमें दखल रहा ही करे...

दादाश्री : हाँ, रहा ही करेगा।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसी कला सिखाए कि सामने वाली फाइल खुश रहे और *निकाल* हो जाए।

दादाश्री : खुश रहना बड़ा कठिन है। उनकी धारणा के अनुसार नहीं होगा तो वे खुश रहेंगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरे साथ ऐसा होता है कि सामने वाले इंसान को खुश करना हो तो जान-बूझकर ठगे जाना पड़ता है, तभी वह खुश होता है, वर्ना नहीं। मतलब इस समय हमें जो दु:ख रहता है या फिर उसे दु:ख रहता है, वह इसलिए कि हम अपनी पकड़ रखते हैं और वह अपनी पकड़ रखता है।

दादाश्री : पकड़ ही रखते हैं, बस। पकड़ छोड़ देंगे न तो हल आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि हम अपनी पकड़ छोड़ देंगे तो सत्संग भी गँवाना पड़ेगा। घर वाले अपनी पकड़ रखें और हम अपनी पकड़ छोड़ दें, तो सत्संग गँवाना पड़ेगा।

दादाश्री : ऐसे यदि सत्संग गँवाना पड़े तो अपनी पकड़ रखना

लेकिन सत्संग मत गँवाना। बाद में देख लेंगे। कम से कम नुकसान हो, वैसा काम करना चाहिए। कम से कम नुकसान यानी क्या कि सत्संग में जाने पर सौ का मुनाफा मिलता है। जबकि अपनी बात को पकड़े रखने पर तीस रुपये जुर्माना लगता है, फिर भी सत्तर तो अपने घर में रहे न!

प्रश्नकर्ता : कहना पड़ेगा, वीतराग विज्ञान का तो! ठीक है, तब भी मुनाफा रहेगा!

दादाश्री : यानी कि हमें कुछ मुनाफा होता हो तो ठीक है, इसमें तो अन्य कोई फायदा-नुकसान होता ही नहीं है। वह तो अहंकार का प्रोजेक्शन है। संसार क्या है? अहंकार का प्रोजेक्शन है, सामने वाले को मारना और जीतना।

प्रश्नकर्ता : सत्संग में आता हूँ, वह घर वालों को पसंद नहीं है। बाकी, मैं उनके साथ कभी भी उल्टा व्यवहार नहीं करता, इसके बावजूद भी वे खुश क्यों नहीं होते?

दादाश्री : जब तक तुझे हिसाब भुगतना है, तब तक खुश कैसे होंगे?

प्रश्नकर्ता : खुश नहीं हों न, तो भी हर्ज़ नहीं है, लेकिन नॉर्मल रहें न, तब भी मुझे अच्छा लगेगा।

दादाश्री : नॉर्मल रहेंगे ही नहीं। वे नॉर्मल हों, तब भी आपको ऐसा मानना चाहिए, 'खुश ही हैं'। उन्हें आप पसंद नहीं हो। आपके जो आचार-विचार हैं वे उन्हें पसंद नहीं हैं, ऐसा जानने के बावजूद भी आपको उनके साथ बैठकर खाना पड़ता है, रहना पड़ता है, सोना पड़ता है, 'हाँ में हाँ' मिलानी पड़ती है। क्या करें? चारा ही नहीं है न? वे कर्म भुगतने ही पड़ेंगे। जिस काल में, जिस क्षेत्र में, जो द्रव्य-भाव... सभी के साथ में रहकर जो भुगतना है, उसमें तो कुछ चलेगा ही नहीं। भागोगे तो कब तक भागोगे?

ये हमारे पास आसरा लेने आए होते हैं न, ये लोग आसरा लेने

आए हैं और हमें देना है, दोनों का एग्रीमेन्ट तो पूरा होना चाहिए न? रागपूर्वक नहीं, टाइमपूर्वक। टाइम निकल जाना चाहिए, लेन-देन चुका दो। फाइलें ही हैं न?

फाइलों को 'मेरा, मेरा' करके छाती से लगाया था। नहीं? इस पुस्तक को जब तक मैं 'मेरी' नहीं कहता, तब तक पुस्तक को अच्छा लगता है। 'मेरी' कहते ही पुस्तक को बुरा लगता है, गुस्सा करने को तैयार हो जाती है। सभी का ऐसा ही है न? 'मेरा' कहते ही चिपक जाता है, भूत लग जाता है। फिर भी 'मेरा' बोलने में हर्ज नहीं है। ड्रामेटिक 'मेरा' बोलना है तो बोलो न! ड्रामा में बोलते ही हैं न, 'यह मेरा राज्य, इतना बड़ा है, ऐसा है, वैसा है।' ऐसा सब नाटक ही करवाना है लेकिन सावधानी से।

पकड़ो समभाव, छोड़ो फाइल का भार

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आपने यह ज्ञान दिया है, अब, नहीं बोलने की कला और सभी में शुद्धात्मा देखें और अंदर उन्हें नमस्कार करें, तो *चीकणी फाइल* (गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति) का *निकाल* हो जाएगा न?

दादाश्री : फाइल अर्थात् विचार आए बगैर रहेंगे नहीं और बोले बगैर भी नहीं रह पाएँगे। नहीं बोलने की कला वहाँ पर नहीं चलेगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका कोई तरीका तो होगा न, दादाजी?

दादाश्री : उसके लिए तो हमें नियम रखना है कि, 'हमें बोलना नहीं है।' फिर भी अगर बोल दिया तो वह है फाइल की निशानी। फाइल जितनी *चीकणी* होगी, उतना बोलेंगे। वर्ना अगर आपके निश्चित किए अनुसार, यदि नहीं बोलना हो तो शायद नहीं भी बोलो। वह फाइल, जो *चीकणी* है, उसके साथ नहीं बोलना हो फिर भी बोल देते हो। लेकिन यह नहीं बोलना है ऐसा तय रखना चाहिए। उसके लिए, हमें नहीं बोलना है, नहीं सोचना है या बरताव नहीं करना है, अपने

मन में ऐसा तय करके उस फाइल का *निकाल* करना। फाइलें कहा, वे फाइलें मानी जाती हैं। 'फाइल मुझे ऐसे बाधा डालती है' ऐसा नहीं बोलना चाहिए। फाइल का तो अपने आप *निकाल* हो ही जाएगा। बाधक क्या है? जागृति कम रही वह बाधक है। फाइल का *निकाल* तो हो जाएगा, जो फाइल आई वह छः महीने या बारह महीने में भी *निकाल* हो जाएगी। उस पर बहुत ध्यान नहीं देना है। '*निकाल* करना है', ऐसा पक्का रखना। तो जब भी वह मिलेगी, तब '*निकाल* करना है,' ऐसा निश्चय हाज़िर रहेगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पूरी जागृति रहे तो फाइल कुछ बाधक है ही नहीं। और यह जो बाधक है, वह जागृति की कमी है अभी।

दादाश्री : आपको *निकाल* करना है और उसे *निकाल* नहीं करना है, तब भी कहो 'आ जा' हमें *निकाल* करना ही है। तो भी आप जीत जाओगे, वह नहीं जीतेगा। क्योंकि वह पौद्‌गलिक नियम के बाहर है। यह तो पौद्‌गलिक नियम के अंदर है। वह कहेगा, 'मुझे मोक्ष में नहीं जाने देना है।' आप कहो, 'मुझे जाना है' तो आप जा पाओगे, और वह कुछ समय तक हराकर, थकाकर फिर भाग जाएगा। कमठ के रूप में दस जन्मों तक पार्श्वनाथ भगवान का भाई बना था। लेकिन अंत में उसे भागना पड़ा, भगवान नहीं भागे।

फाइल चली जाएगी, लेकिन राग रहेगा

प्रश्नकर्ता : राग वाली जो फाइलें हैं वे किस तरह आगे भुगतनी पड़ती हैं फिर से?

दादाश्री : द्वेष वाली *चीकणी* और राग वाली *चीकणी,* दोनों समान रूप से *चीकणी* हैं। द्वेष वाली ज़्यादा *चीकणी* होती है, ऐसा नहीं। यह तो, अपने राग-द्वेष ही बंद करने हैं। आपके राग का ही निपटारा करना पड़ेगा। उस फाइल को लेना-देना नहीं है। यह राग रह जाएगा, और वह फाइल तो गई। अब अंदर राग बचा रहा, तो उसका फिर से *निकाल* करके, फिर से हस्ताक्षर कर देना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : वह चाहे किसी भी तरीके से निकले लेकिन, 'हम उससे सहमत नहीं हैं', ऐसे अलग रखना?

दादाश्री : नहीं, अन्य किसी के साथ, चाहे किसी के भी साथ संबंध स्थापित होकर, इसी तरह से यों राग का ही संबंध बनेगा फिर से और बाद में उसका निपटारा हो जाएगा। उस फाइल से कुछ लेना-देना नहीं है, वे सब फाइलें तो गईं।

यह जन्म समभाव से निकाल में

प्रश्नकर्ता : भाव बहुत रहता है, फिर भी यदि समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए तो उसकी जोखिमदारी नहीं है। आपका भाव है। आपको तय ऐसा रखना चाहिए कि ''नहीं हो पाता, तब भी मुझे अपना भाव नहीं बदलना है कि 'अब समभाव से *निकाल* नहीं करना है।' अब *निकाल* नहीं करना है'', ऐसा नहीं। 'मुझे समभाव से *निकाल* करना ही है।' आपको भाव नहीं छोड़ना है। नहीं होता है, वह 'व्यवस्थित' के ताबे की बात है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी तो होगा न, भले ही आज नहीं हो पाए, कल-परसों तो होगा ही!

दादाश्री : अस्सी प्रतिशत हो ही जाएगा। अस्सी प्रतिशत तो अपने आप ही *निकाल* हो जाएगा। यह तो, किसी का दस-पंद्रह प्रतिशत ज़रा बाकी रह जाता है। वह भी बहुत *चीकणी फाइल* होती है न, तो नहीं हो पाता। तो व्यवस्थित के अधीन है। उसके लिए गुनहगार 'व्यवस्थित' है, आप गुनहगार नहीं हो। आपने तो तय किया है कि 'मुझे समभाव से *निकाल* करना ही है।' आपके सारे प्रयत्न समभाव से *निकाल* करने के लिए होने चाहिए।

चीकणी सिर्फ आपकी ही नहीं है, ऐसे तो सभी लोगों को *चीकणी* होती है। आज के लोग *चीकणी* लेकर ही आए हैं न! और

चीकणी नहीं लाए होते, तो ज्ञानी के पास थोड़े ही निरंतर बैठे रह पाते? लेकिन कितनी *चीकणी* लाए हैं फाइलें?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ कीजिए कि एकदम से उड़ जाएँ, खत्म हो जाएँ।

दादाश्री : ऐसा करेंगे तो आत्मा की जो शक्ति है न, वह प्रकट नहीं होगी। जब तक मैं करता रहूँगा न, तब तक आपकी शक्ति प्रकट हुए बगैर रहेगी। आपको प्रकट करनी ही है न! आपको आवरण तोड़ने हों तो, आपको 'इस फाइल का *निकाल* करना है', ऐसा तय करते ही वह आवरण टूटने लगेगा। इसमें आपको कोई मेहनत नहीं है। भाव ही करना है, मन में तय ही करना है कि फाइल का *निकाल* करना है। वह फाइल टेढ़ी होती रहे, फिर भी आपको फाइल का *निकाल* करना है। वर्ना आत्मा निरालंब नहीं होगा न! फाइल के *निकाल* बाकी हो तब तक अवलंबन रह जाता है। अवलंबन रह जाए, तब तक एब्सल्यूट नहीं बन सकता। निरालंब आत्मा, वही एब्सल्यूट आत्मा है। यानी वहाँ तक पहुँचना है आपको। भले ही इस जन्म में नहीं पहुँच पाएँ, उसमें हर्ज नहीं है। अगले जन्म में तो हो ही जाएगा। लेकिन इस जन्म में आपने आज्ञा का पालन किया न, यही उपाय है। 'समभाव से *निकाल* करना', यह बहुत बड़ी आज्ञा है। और फिर *चीकणी* कितनी होती हैं? कोई दो सौ-पाँच सौ थोड़े ही होती हैं? दो-चार ही होती हैं। लेकिन असली मज़ा वहीं पर आता है न?

प्रश्नकर्ता : यह सब करते-करते चार डिग्री बुखार चढ़ जाता है कई बार।

दादाश्री : नहीं, वह बुखार चढ़ जाता है न, उसी में निर्बलता निकल जाती है सारी। और जितनी निर्बलता निकली उतना बलवानपन आप में उत्पन्न होता है। पहले था, उससे ज़्यादा बलवान महसूस होगा।

...बोलते ही परतें खिसकती जाती हैं फाइलों की

प्रश्नकर्ता : कई बार हम किसी फाइल का *निकाल* अपनी बुद्धि

के अनुसार, समझ के अनुसार, समभाव से करने का प्रयत्न करते हैं। यह भाव आ जाता है कि समभाव से *निकाल* करना है, लेकिन हकीकत में उसमें समभाव दिखाई नहीं देता।

दादाश्री : उसमें समभाव नहीं दिखाई देता, फिर भी उसी को कहते हैं समभाव। उसमें समभाव से नहीं हुआ, फिर भी आप शब्द बोले न, कि 'हमें समभाव से *निकाल* करना है।' बस उतनी ही आपकी जवाबदारी, अन्य प्रकार से *निकाल* होता है। यह गूढ़ साइन्स है। जैसे कि प्याज़ होता है न, तो जब हम समभाव से *निकाल* करते हैं तब उसकी एक परत निकल जाती है। लेकिन आपको तो फिर परतें ही दिखाई देती हैं। अब जिस प्रकार से आप समभाव से *निकाल* करते हो, उसकी हजारों परतें हैं। इसलिए आपको ऐसा नहीं देखना है कि ये फिर से वही का वही दिखाई दे रहा है। हजारों परतें हैं यानी एक बार आपने जितना किया, उतनी परतें कम हो गईं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या हमें ऐसा मानना है कि यह परत हमने कम कर ली है?

दादाश्री : हाँ, उसे *चीकणी फाइल* कहा गया है। जिसकी परतें ज़्यादा है, उसे *चीकणी फाइल* कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : दादा, समभाव से *निकाल* करना है, वह भावना हुई मतलब वह अमल में आना चाहिए, लेकिन उस पर अमल क्यों नहीं हो पाता है?

दादाश्री : नहीं, उसका *निकाल* हो गया। जैसे ही आप बोले न, तो हो गया वहाँ, एक परत उसकी निकल गई। दिखता वैसे का वैसा है फिर। लेकिन ऐसा करते-करते, जो हजारों परतें होंगी वे चली जाएँगी। आप संतोष मानना कि मैंने समभाव से *निकाल* किया। दादा की आज्ञा का पालन किया है। एक्ज़ेक्ट विज्ञान ही है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें यदि स्टेज देखें दादा तो, पहले भाव हुआ कि समभाव से *निकाल* करना है, बाद में सचमुच समभाव से

निकाल हो जाए तो यह आनंद जो आता है, यह कुछ अलग ही होता है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन वास्तव में *निकाल* हो या न हो, उसकी ज़रूरत ही नहीं है। आपको तो सिर्फ आज्ञा पालन करने की ज़रूरत है। अन्य किसी भी चीज़ का अधिकार आपको नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा! मैं क्या कहता हूँ कि हमने भावना की इसलिए वाइब्रेशन उत्पन्न हुए। उसका फल यह आया कि समभाव से ही *निकाल* हुआ। सामने वाले को संतोष हो गया।

दादाश्री : इसमें सामने वाले को संतोष हो या न हो, आप समभाव से *निकाल* कर रहे हो, उस समय यदि वह गालियाँ दे तो आप समझना कि अभी, ये परतें ज़्यादा हैं। उसमें हर्ज नहीं है। आप कहना, 'जितनी देनी हो, उतनी दो और फिर चाय बनाओ।' धीरे से ऐसा कहना आप। हाँ, वह थोड़े ही उसके खुद के अधीन है, वह जो गालियाँ देता है, वह?

प्रश्नकर्ता : सामने वाले को यदि हमारा प्रतिस्पंदन पहुँचेगा तभी हमें संतोष होगा न, कि भाई समभाव से *निकाल* हुआ।

दादाश्री : उसे संतोष नहीं हो फिर भी आप, संतोष है, ऐसा मानकर कहना कि, 'चाय-वाय बनाओ और नाश्ता निकालो।' फिर खाकर जाओ बाहर।

मोक्ष के रास्ते पर धकेलती हैं चीकणी फाइलें

मोक्ष में जाने के लिए सब से अधिक उपकारी कौन है? तो वह है, *चीकणी फाइल*। और हल्की फाइल आपको निकलने नहीं देगी। हल्की यानी जो मीठी लगती है न, वह आपको मोक्ष में जाने में मदद नहीं करती। आपको जाना हो तो जाओ, वर्ना कोई बात नहीं। वर्ना फिर नाश्ता करो आराम से। यानी कि मैंने तो जमा किया था। हमारी भाभी से रोज़ कहता था, 'आप हैं, तो मैंने यह पाया है, वर्ना नहीं पा सकता था।' *चीकणी फाइल* है न!

आप यदि सोचकर देखोगे तो आपको पता चलेगा कि *चीकणी फाइलें* हमें मदद करती हैं। यदि ज्ञान नहीं मिला हो तो आपका दिमाग़ खराब करके उल्टे रास्ते ले जाती हैं, नीचे अधोगति में ले जाती हैं। लेकिन यदि ज्ञान प्राप्त हुआ हो तो उपकारी है!

फाइल यानी कि जो विचित्र प्रकार का बोले। ऐसा विचित्र बोले कि अपना सिर दुःखने लगे, हैडेक वाले शब्द। सिर दर्द हो जाए। अब, वह ऐसा क्यों बोलती है? तो वह इसलिए कि वह फाइल है, *चीकणी फाइल*। फिर मन में समझ जाती है कि, 'यह ज्ञान मिला है इसलिए ऐसा नहीं होना चाहिए।' वर्ना चिपक पड़ेगी कि, 'मैं सही हूँ।' ऐसा ही समझेगी न! यह तो, तुरंत ऐसा समझ में आ जाता है कि 'मैं गलत हूँ'। तुझे एक घंटे के बाद समझ में आता है न, कि यह भूल हो गई!

प्रश्नकर्ता : तुरंत पता चल जाता है।

दादाश्री : तुरंत! लो फिर, तब इस ज्ञान का बल कैसा है! यह ज्ञान भी कितना असर वाला है!

संभालकर उखाड़नी चाहिए 'पट्टी'

चीकणी पट्टी यहाँ चिपक गई हो तो जब हम उसे उखाड़ने जाते हैं, तो बाल भी उखड़ जाते हैं। अत: जहाँ बहुत गाढ़ हो, वहाँ तो ज़रा मुश्किल हो जाता है न। हल्की फाइल हो तो बहुत अच्छा, यों बोलते ही छूट जाएगी। वहाँ कोई झंझट ही नहीं है न। *चीकणी फाइल* तो बहुत जटिल होती है।

आप पट्टी उखाड़ो तो बाल भी खिंच जाते हैं, ऐसी गाढ़ फाइलें बहुत कम होती हैं। तो उन फाइलों से ज़रा संभालकर काम लेना चाहिए। उस पट्टी पर पानी डालकर, गीली करके धीरे-धीरे उखाड़ना चाहिए। वर्ना अगर बाल समेत पट्टी उखड़ जाए न, तो कितनी जलन होती है! सिर्फ पट्टी यदि इतना दुःख देती है तो 'ये पट्टियाँ' तो कितना दुःख देंगी? ये फाइलें भी पट्टियाँ ही हैं। उनका आत्मा जुदा है, लेकिन

यह फाइल यानी पट्टियाँ। पट्टी उखाड़ते समय जल्दी से उखाड़ देंगे तो? बाल भी उखड़ जाएँगे। तब लोग कहेंगे, 'अरे, ऐसे ज़ोर से नहीं उखाड़ते।' और उखाड़ने वाले को डाँटेंगे न। इसलिए आपको तो कहे अनुसार करना चाहिए। गरम पानी करवाकर, पट्टी पर धीरे-धीरे पानी लगाकर, समझा-बुझाकर धीरे-धीरे निकालनी चाहिए। ये सारी पट्टियाँ ही हैं, चिपकी हुई। वे कैसी हैं? साथ में बाल भी उखाड़ लेंगी यानी कि बैर बाँधेंगी। यानी कि अगर संभलकर काम लोगे तो एक भी बाल नहीं उखड़ेगा। पहले तो यदि मुहर नहीं लगी होती थी न तो लिफाफे पर से टिकट भी उखाड़ लेते थे। किसी को पता नहीं चले, ऐसे उखाड़ लेते थे। देखो अक्लमंद हैं न!

फाइल चीकणी या गोंद?

यह तो आपके हाथ में नहीं है न? यह आपने किया या चंदूभाई ने किया?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई के हाथ में। चंदूभाई ने किया।

दादाश्री : तो आप क्यों चिपक जाते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं दादा, भूल हो गई। उखड़ गया, नहीं चिपकना चाहिए।

दादाश्री : इसी को फाइल कहते हैं न! गोंद *चीकणा* (गाढ़ा, चिपचिपा) होता है। चुपड़ने वाले *चीकणे* नहीं होते हैं। पट्टी *चीकणी* नहीं होती है।

प्रश्नकर्ता : यह स्पष्ट कीजिए न! यह गोंद निकल जाए, ऐसा कर दीजिए न!

दादाश्री : निकल ही गया है। मैंने आपको शुद्ध ही कर दिया है। आपकी समझ में नहीं आता तो मैं क्या करूँ?

प्रश्नकर्ता : दो शब्दों में बहुत बड़ा साइन्स बता दिया। गोंद *चीकणा* होता है, चुपड़ने वाला *चीकणा* नहीं है, पट्टी *चीकणी* नहीं है,

और आप कहते हैं, 'मैंने आपको शुद्ध कर दिया है, लेकिन आप चिपक जाते हो।'

दादाश्री : खुद को ध्यान नहीं रहे, उसमें हम क्या करें? शादी करवा दी फिर भी वह कहता है, 'साहब, मेरी शादी क्यों नहीं करवाते?' ऐसा बोलेगा तब लोग क्या कहेंगे उसे?

प्रश्नकर्ता : समझता ही नहीं है।

दादाश्री : 'तीसरी क्लास में रख दो', कहेंगे। 'मेन्टल अस्पताल में!'

प्रश्नकर्ता : बहुत अच्छी बात बताई। जुदापन ला दे, ऐसी बात कही।

दादाश्री : अलग कर दिया है। जुदा हो गया है और परिणाम स्वरूप आपका सभी कुछ, अहंकार व ममता चले गए हैं, आप ऐसा एक्सेप्ट करते हो न? गोंद निकल गया है, ऐसा आप एक्सेप्ट करते हो न? 'गोंद भी हमारा नहीं है', ऐसा? पट्टी *चिकणी* नहीं होती। पट्टी उखड़ती ही नहीं है। उस पट्टी को क्यों तोड़ते हो? अरे! पट्टी ऐसी नहीं है। उस पर गोंद ऐसा है। हल्का गोंद लगाया होता तो हल्का। पट्टी ऐसी नहीं है। हल्की भी नहीं है और *चीकणी* भी नहीं है और चुपड़ने वाला भी ऐसा नहीं है। कैसा गोंद इस्तेमाल किया, वह तू जाने। कढ़ाई वाला गोंद इस्तेमाल किया है या दूसरा इस्तेमाल किया है?

चिपचिपाहट किस तरह खत्म हो?

प्रश्नकर्ता : आपसे प्रश्न पूछा था कि अनुभव होता है लेकिन आनंद नहीं होता। तो आपने कहा था कि *चीकणे* कर्म हैं, इसलिए। तो वे *चीकणे* कर्म किस तरह जल्दी खत्म हो सकते हैं?

दादाश्री : शुद्धात्मा में रहने से जल्दी खत्म हो जाएँगे। यदि *चीकणे* कर्मों में नहीं चिपकोगे और उन्हें 'देखते' रहोगे तो वे जल्दी खत्म हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : वह प्रोसेस (प्रक्रिया) तो चल ही रहा है।

दादाश्री : बस, तो खत्म हो जाएँगे, देर नहीं लगेगी। घर की फाइलों के साथ *चीकणे* कर्म लाए हो, बाहर की फाइलों के साथ हल्के होते हैं। घर की फाइलों के साथ *चीकणे* होते हैं, ऐसा अनुभव है न?

अभी अगर ट्रेन में किसी से परिचय हुआ और वह चाय पिलाए, तो वे सब हल्की फाइलें। लेकिन इन *चीकणी फाइलों* का *निकाल* करना तो बहुत कठिन है। आप समभाव से *निकाल* करो फिर भी बार-बार वापस चिपचिपाहट आ जाती है। 'समभाव से *निकाल* ही करना है।' इतना ही आपको बोलना है, फिर अपने आप हो जाएगा। क्योंकि ये फाइलें लंबे अरसे से चिपकी हुई हैं और बहुत बड़ा हिसाब बंध चुका है!

कोई *चीकणी फाइल* आने वाली हो और उसका समभाव से *निकाल* करना हो तो, उसके आने से पहले ही आपको उनमें शुद्धात्मा देख लेना चाहिए। रिलेटिव और रियल देख लिया। फिर आपने उसका समभाव से *निकाल* करना तय किया होगा, तो समभाव से *निकाल* हो जाएगा। सामने वाली फाइल टेढ़ी होगी तो *निकाल* नहीं होगा। आपको यह नहीं देखना है। आपका तो निश्चय है कि, 'समभाव से *निकाल* करना है', फिर देखो क्या होता है।

प्रश्नकर्ता : हम कहते हैं कि कुछ फाइलें *चीकणी* हैं, लेकिन यह चिपचिपाहट किसकी है? इन्हें *चीकणी* कौन करता है?

दादाश्री : वह तो, करने वाला भुगत रहा है न अभी। *चीकणी* की है, तभी तो करने वाले को भुगतना पड़ता है न!

प्रश्नकर्ता : दादा, *चीकणी* तो अन्योन्य के कारण होती है न? अकेले के कारण न भी हो न?

दादाश्री : वह तो, अन्योन्य कारण होते हैं।

प्रश्नकर्ता : *चीकणी* फाइलें हों, तो उन्हें दूर कैसे करें?

दादाश्री : दूर कर ही नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : दूर अर्थात् चिपचिपाहट कैसे दूर करें?

दादाश्री : वीतरागता से। चिपचिपाहट तो विलय होती ही रहती है निरंतर, लेकिन यदि आप *चीकणा* करोगे तो फिर से उत्पन्न हो जाएगी। आप वीतरागता दिखाओगे तो छूटती जाएँगी। अतः आपको समभाव से *निकाल* करना है, यह वीतरागता का ही भाग है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि हम से ज़रा ज़्यादा ही *चीकणा* हो जाए तो फिर प्रतिक्रमण करना पड़ेगा न?

दादाश्री : हाँ। यदि ज़रूरत पड़े तो प्रतिक्रमण कर लेना। वह भी आपको नहीं करना है, उसके लिए भी चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, प्रतिक्रमण करो!' यह अतिक्रमण आप कहाँ करते हो! अतिक्रमण तो चंदूभाई ने किया है, वहाँ चंदूभाई से कहना कि प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : संसार का सब से बड़ा कार्य है, 'समभाव से *निकाल* करो।'

दादाश्री : बस, इन फाइलों की ही झंझट है। इन फाइलों की वजह से ही आप फँसे हुए हो। इन फाइलों ने ही रोका है, अन्य कोई रोकने वाला नहीं है। अन्यत्र सर्वत्र वीतराग हो आप।

'देखने' से ही हटती हैं परतें फाइल की

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा कहते हैं, हमें ज्ञान मिला इसलिए राग-द्वेष तो चले गए लेकिन जब *चीकणी फाइल* आती है तब तो राग-द्वेष हो जाते हैं। यह क्या है?

दादाश्री : राग-द्वेष तो निश्चय से गए हैं लेकिन व्यवहार वाले रहे हुए हैं न! व्यवहार में चिढ़ जाता है न, लोगों पर? जब यह सब खत्म हो जाएगा, तब काम होगा। ज्ञाता-द्रष्टा रहने से सब चले जाएँगे। 'चंदूभाई' को हो जाएँगे और 'आप' 'देखते' रहो तो वे चले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि यदि ये चिढ़ें तब भी हमें 'देखते' रहना है?

दादाश्री : इस तरह 'देखना' नहीं हो पाता न आपसे, मुख्य बात यही है।

प्रश्नकर्ता : हम 'देखते' हैं कि ये चंदूभाई गुस्सा कर रहे हैं तब भी हमारी बुद्धि ऐसा बताती है कि यह फाइल खड़ी है अभी भी।

दादाश्री : खड़ी (पेंडिंग) रहेगी तो फाइल फिर से आएगी।

प्रश्नकर्ता : उस समय हम गुस्सा हो जाएँ फिर भी हम 'देखते' रहें तो फाइल का *निकाल* हो गया, ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : साफ-साफ 'देखा' होगा तो फिर कुछ नहीं होगा। लेकिन आप मन में अपने आप मान लोगे तो पेंडिंग रहेगा, क्योंकि वास्तव में नहीं 'देखा' है!

प्रश्नकर्ता : अगर हम एक्ज़ेक्ट 'देखें' तो सामने वाले पर असर होगा?

दादाश्री : सामने वाले पर तो सारा असर होगा। आप पर असर नहीं होगा। देखने वाले पर असर नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : तो हम फाइल का समभाव से *निकाल* करते हैं, तो वह क्या इसलिए ताकि हम पर असर हो?

दादाश्री : वर्ना और किसके लिए? उसके लिए?

प्रश्नकर्ता : दादा, यानी हमारे हिसाब से वह मिला था और उस समय यह जो निकला उसे हमने 'देखा', तो फिर उसे ऐसा कहा जाएगा कि हमारा *निकाल* हुआ? यदि करेक्ट 'देखा' हो तो? एक्ज़ेक्टली 'देखा' हो तो?

दादाश्री : वह तो, आपका समभाव रहा इसलिए उसका *निकाल* हो गया।

प्रश्नकर्ता : यह *निकाल* हो गया तो फिर से वह निमित्त नहीं मिलेगा न?

दादाश्री : मिलेगा न! फिर यदि दूसरी परत होगी, दूसरा हिसाब होगा तो फिर से मिलेगा न।

प्रश्नकर्ता : वह बात अलग है लेकिन फिर से इसके लिए तो नहीं होगा न?

दादाश्री : नहीं, वह गया।

फैमिली के साथ समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : दादा, हम जॉइन्ट फैमिली में रहते हों और सामने वाली पार्टी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा नहीं जानती तो हमें क्या करना चाहिए? यह सवाल आ जाता है इस जगह पर।

दादाश्री : सामने वाली पार्टी ऐसा जाने, उसकी हमें ज़रूरत भी नहीं है न।

प्रश्नकर्ता : हम शुद्धात्मा समझकर बोलते नहीं हैं, सहन करते हैं तो फिर सामने वाला उसका दुरुपयोग क्यों करता है?

दादाश्री : सामने वाला तो भ्रांति वाला है इसलिए दुरुपयोग कर सकता है और सदुपयोग भी कर सकता है। ऐसा भी आपको जानना है कि यह फाइल नं.1 पर कर रहा है, मुझ पर नहीं। फाइल नं.1 को तो कभी न कभी छोड़ना ही है न! फाइल नं.1 से आपका लेना-देना नहीं है न! उसके साथ जितने हिसाब हैं, उतने चुकाएगा। भ्रांति में भी चुक जाते हैं, लेकिन वह कहता है कि, 'मैंने भुगता।'

प्रश्नकर्ता : मैंने ज्ञान लिया है और मेरे घर में देवरानी-जेठानी, हज़बेन्ड, किसी को इस बात में ज़रा भी रुचि नहीं है और उन्हें, मैं जो यहाँ आती हूँ, वह भी पसंद नहीं है। इसलिए पूरी फैमिली में, कुटुंब में हर जगह खराब बातें करके निंदा करते रहते हैं, तो अब

इसका क्या उपाय है? इसमें मुझे किस तरह ज्ञान से रहना है? अभी तो मैं चुप रहती हूँ, कुछ बोलती नहीं हूँ।

दादाश्री : हाँ, चुप ही रहना है और इसे डाँटना हो तो भले ही डाँटें, चुप रहना हो तो भले ही चुप रहें। आप 'देखते' रहना। अपने आप शांत हो जाएँगे एक दिन। चुप रहने से शांत हो जाएँगे ऐसा भी नहीं मानना है और लड़ने से शांत रहेंगे ऐसा भी नहीं मानना है। उन्हें 'काल' शांत करेगा।

यह तो हमारा विज्ञान है! एक क्षण भर के लिए भी किसी जगह फँस जाओ, ऐसा नहीं है, रुक जाओ, ऐसा नहीं है, यदि पूरा-पूरा समझ लोगे तो। एक्ज़ेक्ट विज्ञान है। मैं जिस विज्ञान में रहता हूँ, वही विज्ञान आपको दिया है।

एक को भला और एक को बुरा?

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है कि, 'फाइलों का समभाव से *निकाल* करो' तो उसमें यदि घर में दो फाइलें हों और उनमें से एक का समभाव से *निकाल* करने जाएँ तो दूसरे को बुरा लग जाता है। दूसरे को ऐसा लगता है कि, 'मेरे साथ अन्याय हो रहा है, सामने वाले का पक्ष ले रहे हैं', तो ऐसे में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करना है, ऐसा तो आपको मन में रखना है। फिर जो होता है, वही सही। अन्य ऐसी सारी सेटिंग नहीं करनी है, वकालत नहीं करनी है। 'मुझे फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है', अगर इतना आप मन में रखो न, तो फिर जो बोलोगे, उसके जवाबदार आप नहीं हो। आपके मन में पक्का रहना चाहिए कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना ही है।' उसमें फिर, 'सामने किसी को बुरा लगेगा, एक के साथ ऐसा करेंगे', ऐसा सोचने की ज़रूरत नहीं है। आपको मन में ही करना है। फिर सब के साथ जैसी 'डीलिंग' हो, वही सही। उस 'डीलिंग' की जवाबदारी आपकी नहीं

है। आपका भाव ही चाहिए कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है।' बैर नहीं बढ़ाना है।

प्रश्नकर्ता : उसके बावजूद भी बैर बढ़े तो?

दादाश्री : ऐसा आपको लगता है। लेकिन आपको *निकाल* करना है, ऐसा आप तय रखते हो न! बैर बढ़ जाए तो आपको वह भी देखने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो सिर्फ यही एक सिद्धांत नहीं छोड़ना है कि मुझे समभाव से *निकाल* करना है।

छूट जाना पागलपन दिखाकर भी

किसी को दुःख हो ऐसा शब्द बोलना भी गुनाह है। यदि बोल दिया हो तो आपको कहना है, 'भाई, मेरा दिमाग़-विमाग़ ज़रा खिसक गया है, उल्टा-पुल्टा कुछ घुस गया है इसलिए ऐसा बोल दिया तो बुरा मत मानना।' ऐसा कहोगे न, तो फिर वह छोड़ देगा वर्ना फिर वह छोड़ेगा ही नहीं।

मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह आप समझे? पागल जैसे बनकर छूट जाना। पत्नी भी ऐसा कहेगी, 'आप घनचक्कर हैं' तो कहना, 'हाँ, सचमुच में मेरा खिसका हुआ ही है, वर्ना ऐसा तो कहीं बोलना चाहिए मुझे?' तब कहेगी, 'कोई बात नहीं। लेकिन ऐसी झंझट बहुत मत करना।' यानी कि बात को संभाल लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो यही मुख्य बात है न, कि संभालने की यह जो कला है, यह आपसे सीखने को मिलती है।

दादाश्री : यह तो हम सिखाते हैं न! हम आपको सिखाते हैं, लेकिन 'मैं घनचक्कर हूँ' ऐसे बोलना आना चाहिए न!

मैं तो हीरा बा को भी खुश कर देता हूँ, ऐसा बोलकर। हीरा बा बल्कि मुझसे कहती हैं, 'हं, आप तो बड़े अच्छे इंसान हो, ऐसा क्यों बोलते हो?' ऐसा करके पलट देना। आपकी नीयत बुरी नहीं है। पलटकर यदि आपको उससे कोई संसारी चीज़ हड़प लेनी हो तो गलत

है। आपको तो उसका मन स्वच्छ करने के लिए पलट देना है। आपने जो पत्थर डाले हैं वे पत्थर तो बैर बाँधेंगे।

भले ही कैसा भी कमज़ोर व्यक्ति हो, आपके सामने उसकी चलती नहीं हो, फिर भी यदि उसके मन पर पत्थर लग गए होंगे न तो बैर बाँधेगा। इसलिए वहाँ पर भी, उल्टा-सीधा करके मन साफ कर देना। 'पहले से ही ऐसा था मैं, और घनचक्कर भी हूँ।' तब वह कहेगा, 'अच्छा आदमी है लेकिन ऐसा हो गया।' फिर तुरंत आपका नाम किताब में से फाड़ देगा। नोट किया हुआ फाड़ देगा वह। क्या आपको ऐसा बोलना नहीं आएगा कि, 'यह घनचक्कर है'?

फाइलों का समभाव से *निकाल* करने से सब शुद्ध हो जाता है। क्लियरन्स कर देना है। हम तो भूल नहीं चला सकते, किसी भी तरह से। भूल होते ही अंदर हमारी मशीन चलने लगती है। इसलिए भूलें रहती ही नहीं।

घर में खाना खाकर चिढ़कर तुरंत दो-चार शब्द बोलकर वहाँ से चले जाते हो तो फिर उन्हें भी बोझ रहता है पूरा दिन, अंत तक। जब तक आप वापस नहीं मिलते तब तक रहता है और आपको भी तब तक बोझ रहता है। तब आप फिर शांति से बैठकर.. ज़रा दवाखाने जाने में देर हो जाए तो हर्ज नहीं है.. कहना, 'लाइए, ज़रा अंदर से इलायची लाइए, लौंग लाइए।' ऐसा कहकर फिर सब समेट लेना और कहना, 'हम से भूल हो जाती है। लेकिन आप तो बहुत अच्छी हैं। देखो न, जल्दबाज़ी में हम से कैसी भूल हो गई?' ताकि हल आ जाए। दिक्कत है क्या इसमें?

आपके साथ मेरा कोई टकराव हो जाए, बाद में मैं कहूँ, 'चंदूभाई, मुझ से कोई भूल हो गई हो तो माफ करना।' तो हल आ जाएगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : आ जाएगा।

दादाश्री : फिर आप छोड़ दोगे या नहीं छोड़ोगे? और अगर

उसके बजाय मैं आपसे कहूँ कि, 'मेरी बात तुम समझे नहीं। अरे! मूर्ख है? तू क्या समझेगा!' अरे! इतना समझ गए होते तो यह बखेड़ा ही नहीं होता न! नहीं समझे हो तभी तो दखल हो रहा है। यानी कि आप *निकाल* कर लो। फिर बात बढ़ाने से क्या होगा? उलझ जाएगा यह सब। इसीलिए तो जगत् के इन सभी लोगों के उलझे हुए कर्म हैं न! इनका निबेड़ा लाओ न!

अगर बेटे के प्रति आपसे भूल हो गई तो वहाँ पर, 'बेटा है', इसलिए आप उस भूल को स्वीकार नहीं करो तो फिर क्या होगा इससे? बेटा याद तो रखेगा न मन में कि आप सही बात भी नहीं मानते। अतः आपको कहना चाहिए कि, 'भाई, मुझसे भूल हो गई। वह तो, समझने में ज़रा भूल हो गई।' तुरंत हल आ जाएगा। ऐसा करने में कोई हर्ज है? भूल स्वीकार कर लेने से क्या बेटा बाप बन जाएगा? बेटा, बेटा ही रहेगा न! और यदि आप भूल स्वीकार नहीं करोगे तो बेटा बाप बन जाएगा!

कॉमनसेन्स से झटपट निकाल

यह मैंने अभ्यास करके सीखा था। मेरे भतीजे भरुच मिल के मालिक थे, सेठ। उन्होंने कहा, 'चाचा, आप इस धर्म में जाकर पूरे बिगड़ गए। आपके विचार बिल्कुल बदल गए हैं।' मैंने पूछा, 'क्यों, क्या हुआ?' तब कहने लगे, 'पहले तो बड़े अच्छे थे। नाम रौशन करें, ऐसे इंसान थे।' तब मैंने कहा, 'भाई, आपको क्या पता? आप इनके (अंबालाल के) साथ थोड़े ही रहते हैं? मैं साथ रहता हूँ इसलिए मैं जानता हूँ कि ये कैसे हैं! ये तो शुरू से ऐसे ही हैं।' तब फिर वे सोचने लगते, 'यह आप किसकी बात कर रहे हैं? 'वह', लेकिन 'वह' कौन?' वे उलझन में पड़ जाते, फिर माफ कर देते थे। उन लोगों को खुश कर देता था। पुरानी जान-पहचान वालों को ठीक नहीं लगे तो उन्हें कुछ भी करके खुश कर देता था। ये मनुष्य तो बेचारे बहुत अच्छे हैं। आपको इनका बंद ताला खोलना नहीं आता तो उसमें कोई क्या करे? मुझे तो सारे ताले खोलने आते हैं। क्योंकि मैंने ऐसा कहा है

कि मेरे पास इस तरह का कॉमनसेन्स है जो एवरीव्हेर एप्लिकेबल है, सारे ताले खोल देता है। अब अगर आप मेरे साथ बैठोगे तो थोड़ा-बहुत ताला खोलना तो आ ही जाएगा। और आपके बहुत से बंद नहीं हैं न! इसलिए ताले खोलने भी नहीं हैं। मैंने तो बहुत बंद कर रखे थे इसलिए मुझे आ गई यह कला! आपको तो झंझट ही नहीं है न? हम सब को तो मोक्ष में जाना है, यह सब साफ करके।

निकाल में फायदा-नुकसान नहीं देखना चाहिए

प्रश्नकर्ता : इस समभाव से *निकाल* करने की प्रक्रिया में हमें ऐसा लगे कि भविष्य में नुकसान होगा, तो भी हमें उसी तरह करना है?

दादाश्री : उसमें नुकसान हो या फायदा हो, आपको समभाव से *निकाल* करना है। नुकसान रोकने नहीं आए हो आप, फायदा करने नहीं आए हो, आप मोक्ष में जाने के लिए आए हो। आपको इन सभी दु:खों में से मुक्त होना है या दु:खों में पड़े रहना है?

प्रश्नकर्ता : बात सही है।

दादाश्री : यानी 'समभाव से *निकाल*' करने की इस आज्ञा का पालन करना है। नुकसान हो या चाहे कुछ भी हो। और अगर आज्ञा का पालन नहीं करोगे न, तो ज़्यादा नुकसान होगा।

कोर्ट में लड़ते हैं फिर भी समभाव से निकाल

समभाव से *निकाल* करते-करते कोर्ट जाना पड़े, कुछ और हो जाए तब भी आगे बढ़ने में तो हर्ज नहीं है। वह तो भाई आपने पहले हिसाब बांधा था, बेकार हिसाब, इसलिए ऐसा सब हो जाता है। और वह आपको अकेले को ही करना पड़ता है। मन में ऐसा भी लगता है कि यह कोर्ट और ऐसा सब करने का समय आया! और वैसे संयोग सर्जित हो जाते हैं। लेकिन आप तो जैसे ज़रा सा भी, कुछ भी नहीं हुआ है उसी तरह से रहना। प्रकृति, प्रकृति से लड़ती है। उसमें आपको

क्या? 'लाख रुपये दिए हैं इसलिए यह प्रकृति वापस लेने के लिए लड़ रही है और वह प्रकृति लाख नहीं देने के लिए लड़ रही है', ऐसा देखना है। उसके लिए शिकायत होनी ही नहीं चाहिए। शिकायत करना, वह भी गुनाह है।

यह जो मशीन का गियर होता है, उसमें उँगली फँस जाए तो क्या वह छोड़ देगा? अपना बनाया हुआ हो फिर भी क्या हमें छोड़ देगा? वहाँ अगर शोर मचाएँ कि, 'भाई, मैंने बनाया है तुझे' तो क्या वह गियर हमें छोड़ देगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं छोड़ेगा।

दादाश्री : ये सब गियर ही हैं। दिखाई देते हैं मनुष्य, फिर भी हैं गियर ही। तो चिल्लाने का मतलब ही नहीं है न! वह टाइम पूरा हो जाएगा। बाद में वापस वैसा टाइम आएगा ही नहीं। हिसाब चुका देने हैं। तब तक क्या करना होगा आपको? मौनम्... धारयते!

कोर्ट में केस लड़ सकते हैं लेकिन समभाव से

प्रश्नकर्ता : दादा, अब इससे उल्टी तरह का प्रश्न है कि हम कोर्ट में जाने की झंझट नहीं करते लेकिन यदि कोई हमें कोर्ट में घसीट ले जाए तो उस समय क्या करें?

दादाश्री : आपको तो, वे चंदूभाई को ले गए, वैसा देखते रहना होगा और चंदूभाई परेशान हो जाएँ तो चंदूभाई से कहना कि 'क्यों परेशान हो रहे हो? हिसाब चुका दो न! वे ले गए हैं, आप शौक से नहीं गए। वह तो, वे खींच ले जाते हैं।'

प्रश्नकर्ता : उसमें भरपूर कषाय हैं उसके।

दादाश्री : हाँ, उसे कषाय हो जाते हैं और आप कषाय रहित, इसकी तो बात ही अलग है न!

प्रश्नकर्ता : कोई समस्या हो ही ऐसी, कि कोर्ट में जाए बगैर हल ही नहीं निकल पाए, तो?

दादाश्री : हाँ, तो जाना पड़ेगा। समाधान नहीं हो और आपको किसी के साथ कोर्ट में जाना पड़े तो जाना ही। तब आप चंदूभाई से कहना कि, 'अच्छा वकील करना ताकि बहुत भाग-दौड़ नहीं करनी पड़े और थोड़ा झूठ बोलना पड़े तो बोलना, लेकिन कोर्ट में ठीक लगे वैसा करना। यानी कि कोर्ट में, पागलों जैसा दिखे, ऐसा मत करना, विवेक की खातिर। झूठ-सच का नियम नहीं है, विवेकपूर्वक करना।' यह विज्ञान अक्रम है। वर्ना लोग पागल कहेंगे कि कोर्ट में कहीं ऐसा प्रमाण देना चाहिए? 'मेरे बाप की पत्नी लगती हैं' ऐसा कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : वह तो जहाँ-जहाँ, जो-जो योग्य है उस अनुसार करना चाहिए।

दादाश्री : 'सब करना लेकिन राग-द्वेष रहित करना', ऐसा भगवान ने कहा है। हम ऐसा मानते हैं कि हर एक क्रिया जो राग-द्वेष रहित होती है उस क्रिया के जोखिमदार आप नहीं हो और यह जो विज्ञान दिया है, इस विज्ञान में जो पचास प्रतिशत आज्ञा पालन करता है, उसे वीतरागता रहती है। यानी कि यह विज्ञान अलग तरह का है। इसीलिए किसी को कुछ कहते नहीं हैं न! वर्ना हम डाँटते नहीं लोगों को कि 'कोर्ट में क्यों गए हो? ऐसा क्यों किया?'

प्रश्नकर्ता : विवेकपूर्वक वाली बात को ज़रा समझने की ज़रूरत है।

दादाश्री : विवेक की ही बात है। कोर्ट में विवेकपूर्वक यानी क्या? वकील ने कहा हो कि इस तरह बोलना और आप वहाँ कहो कि, 'मैं वही बोलूँगा जो हुआ है, कुछ और नहीं बोलूँगा।' तब फिर लोग हँसेंगे। इसलिए आपको वकील जैसा कहे, वैसा कह देना।

प्रश्नकर्ता : गाँवों में हम लोगों के बीच जायदाद को लेकर ही प्रश्न खड़े होते हैं। अब समभाव से *निकाल* करने जाएँ तो अपनी जायदाद चली जाती है, हक़ छोड़ देना पड़ता है, तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : खोना पड़े, ऐसा कुछ होता ही नहीं है। ऐसा कुछ होता ही नहीं है। यदि समभाव से *निकाल* करोगे तो फायदा होगा। और यदि विषम (भाव) से करोगे तो सर्वस्व, यह जायदाद जाएगी और आप भी जाओगे। भय रखे बगैर समभाव से *निकाल* करो। कुछ भी चला नहीं जाएगा। फिर मुझसे पूछना। आपके साथ क्या हुआ है हक़ीकत बताना।

समभाव से *निकाल* करने के लिए मुझसे पूछना कि, 'भाई, सामने वाला जेब काटे तो समभाव से *निकाल* करने का अर्थ क्या यह है कि उसे देखते ही रहना है?' तो कहते हैं, 'नहीं, पकड़कर पुलिस वाले को सौंप देना। यदि चाकू दिखाए तो छोड़ देना।'

अपना काम क्या है? राग-द्वेष नहीं करने हैं। अब यदि आपको किसी से पैसे वसूल करने हों और उसके पास सुविधा नहीं हो, तकलीफ हो तो छोड़ देना क्योंकि यह सब तो राग-द्वेष का कारण है। आगे बढ़ते हैं और वकील खोजने जाते हैं। वकील क्या मुफ्त में मिलते हैं? जाते ही, पहले पौने सौ (75) रुपये लाइए तो मैं अर्ज़ी लिख दूँ, कहता है। अरे भाई, पौने सौ रुपये? जिस हिन्दुस्तान देश में सलाह फ्री ऑफ कॉस्ट देते थे, बल्कि सलाह देकर भोजन भी करवाते थे, वहाँ यह कहता है, 'नहीं, पौने सौ रुपये दे दो!' यानी कि यह दुःखदायी है। लेकिन फिर भी आपके पास अन्य कोई सुविधा न हो तो दावा दायर करने में हर्ज नहीं है, लेकिन राग-द्वेष नहीं कर सकते। उसका भी समभाव से *निकाल* करना है। कानून के हिसाब से दावा दायर करना है और समभाव से *निकाल* करना है। आप मुझसे पूछना, मैं सब दिखाऊँगा। सभी रास्ते हैं यहाँ। समभाव से *निकाल* करने का मतलब ऐसा नहीं है कि बिल्कुल ही छोड़ दिया जाए।

प्रश्नकर्ता : वह जो कहा न, कि समभाव से *निकाल* करते हुए छोड़ देना पड़ता है, वह मेरे दिमाग़ में नहीं आया।

दादाश्री : छोड़ नहीं देना है। छोड़ देने का हेतु नहीं है अपना। समभाव से *निकाल* करना है। उस पर चिढ़ना नहीं है। सारी बातचीत

करना और अगर चिढ़ मचती हो तो बात मत करना आप। समभाव से *निकाल* करना। उसके प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। चाहे कैसा भी नुकसान करे फिर भी द्वेष मत करना। आप नुकसान के लिए दावा दायर करो, सबकुछ करो लेकिन द्वेष नहीं होना चाहिए। क्योंकि उसके भीतर शुद्धात्मा है, वह बात तो पक्की है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है।

दादाश्री : और वह द्वेष शुद्धात्मा को पहुँचता है इसलिए समभाव से *निकाल* करना। अतः दावा दायर करने में हर्ज नहीं है। शायद दो थप्पड़ मारनी पड़े न, हो सके वहाँ तक तो मारना तो नहीं ही लेकिन अगर मारनी हो न तो एक घंटा विधि करने के बाद मारना। 'हे भगवान आप बाहर बैठिए, आज तो मुझे दो थप्पड़ मारनी है,' कहना। लेकिन एक घंटे की विधि करनी पड़े, उसके बजाय ऐसे धंधे में नहीं पड़ना अच्छा।

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, एक घंटा विधि करेंगे तब तक तो मारने का गायब ही हो जाएगा, मारने का भाव ही गायब हो जाएगा।

दादाश्री : ऐसा नहीं है। एक घंटा विधि करने के बाद मारे तो उसकी जोखिमदारी मैं लेता हूँ। एक घंटा विनती करना, वे बाहर बैठ जाएँगे वर्ना भगवान बाहर नहीं बैठेंगे। दातुन चाहिए तो बबूल से कहना कि, 'भगवान, बाहर बैठिए। मुझे दातुन के लिए दो टुकड़े लेने हैं।' ज़्यादा वेस्टेज (दुर्व्यय) मत करना, आप दो टुकड़े ले लेना। दातुन के लिए एक बार बोलना, वहाँ घंटा भर नहीं। भगवान को बाहर बैठाकर उतना करना, नहीं तो दातुन तोड़ने में भी जोखिमदारी है। क्योंकि आत्मा है। कुछ हर्ज है क्या इसमें, कहने में हर्ज है क्या?

'करने' से होता है उल्टा, 'देखने' से सीधा

एक परसेन्ट भी तीर्थंकरों का विज्ञान नहीं है, बाहर किसी जगह पर। इतना सा भी नहीं रहा है। क्योंकि ओवरटर्न हो गया है पूरा। दूषमकाल, काल भी हो गया दुषम और ज्ञान भी दुषम हो गया सारा,

इसलिए यह पूरा संसार त्रस्त हो गया है। यानी कि यह मूल वस्तु है। अत: यहाँ निरंतर मोक्ष ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हमारे परिवार की कुछ फाइलें हैं उनका *निकाल* नहीं हो पाता, पूँछ अटक गई है। तो हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : स्टेशन पर राह देखते रहें लेकिन गाड़ी तो अपने टाइम पर ही जाएगी। बाहर देखते रहें तो मूर्ख कहे जाएँगे। यह वीतरागों का विज्ञान है, मोक्ष में रहकर काम करो। सारा काम हो जाएगा। जहाँ वीतराग विज्ञान हो वहाँ कुछ भी प्रिय नहीं होता, त्रास नहीं होता, दु:ख नहीं होता, कुछ भी नहीं। कैसा विज्ञान! चौबीस तीर्थंकर, कैसे हो चुके हैं! लोग यदि समझे होते तो कल्याण हो जाता। ज़रा सा भी यदि महावीर को पहचान जाते तो काम हो जाता।

सीधा करने के विचार नहीं करने हैं, अपने आप ही सीधा होता रहता है। अगर बहुत परेशानी हो रही हो तो यहाँ आकर आशीर्वाद ले जाना ताकि हो जाए। सीधा करना नहीं होता, करने से उल्टा ही होता है। हमेशा कुछ भी 'करना', उससे उल्टा ही होता है और सीधा अपने आप होता है, ऐसा नियम है।

प्रश्नकर्ता : 'ब्यूटीफुल!' कितना अच्छा बताया। यह तो एकदम सरल कर दिया, दादा।

दादाश्री : नहीं तो और क्या! सीधा अपने आप होता है, करने से उल्टा होता है।

प्रश्नकर्ता : यह तो बड़ा रहस्य बताया, दादा ने। सभी लोग सीधा करने जाते हैं।

दादाश्री : करने से ही तो... सभी उल्टा कर रहे हैं न! उल्टा करना हो तो 'करो'। सीधा करना हो तो ज्ञाता-द्रष्टा रहो, आज्ञा में रहो।

सही समझ, समभाव से निकाल की

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* नहीं हो पाता।

दादाश्री : नहीं होता? तो क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : अब मेरा ऐसा है कि फाइल नं.-2 मुझसे एकदम विरुद्ध है। इसलिए उसके साथ मेरा संघर्ष होता है और समभाव से *निकाल* नहीं हो पाता।

दादाश्री : लेकिन आपको तो चंदूभाई से कहना है कि, 'समभाव से *निकाल* करो न।' फिर भी अगर बहुत गाढ़ होगा, निकाचित होगा तो देर लगेगी।

प्रश्नकर्ता : औरों के साथ तो सहज रूप से हो जाता है लेकिन यहाँ पर नहीं हो पाता।

दादाश्री : संभाल-संभालकर करो न अब। जैसे पट्टी उखाड़ते हैं न, जलन नहीं हो उस तरह धीरे से।

प्रश्नकर्ता : हमारे तो फाइल के साथ वैचारिक मतभेद बढ़ते जा रहे हैं।

दादाश्री : लेकिन मतभेद क्यों बढ़ते जा रहे हैं? आपको समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का पालन करना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का पालन करने के बावजूद भी यही स्थिति रहा करती है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। 'समभाव से *निकाल* करना है,' उस आज्ञा का पालन करोगे, तो कुछ भी नहीं रहेगा। उस वाक्य में इतना अधिक वचनबल है कि बात न पूछो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन समभाव से *निकाल* करने में एकपक्षीय विचारणा ही हुई न?

दादाश्री : एकपक्षीय नहीं कहना है। आपको तो, समभाव से *निकाल* करना है, इतना ही तय करना है। फिर वह अपने आप ही होता रहेगा। नहीं हो पाए फिर भी प्याज़ की एक परत तो निकल ही जाएगी। फिर प्याज़ की दूसरी परत दिखेगी। यानी दूसरी बार में दूसरी परत निकलेगी, ऐसा करते-करते प्याज़ खत्म हो जाएगी। यह तो विज्ञान है! यह तुरंत ही फलदायी है, एक्ज़ेक्टनेस है। ये चंदूभाई क्या करते हैं, वह आपको देखते रहना है। सामने वाले व्यक्ति में शुद्धात्मा देखना है और फाइल के तौर पर समभाव से *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन यदि समभाव से *निकाल* करने में हमें व्यवहारिक मुश्किलें आती हों तो...

दादाश्री : व्यवहारिक मुश्किलें तो आएँगी और जाएँगी। एब एन्ड टाइड (ज्वार-भाटा), पानी बढ़ता है और घटता है, समुद्र में रोज़ दोनों समय बढ़ता-घटता रहता है।

प्रश्नकर्ता : हमारे मतभेद उस कक्षा के हैं कि साथ रह ही नहीं सकते।

दादाश्री : फिर भी समभाव से *निकाल* करके लोग इतनी अच्छी तरह से रह पाए हैं न! और अलग होकर भी क्या फायदा होगा?

प्रश्नकर्ता : वह समझने को तैयार ही नहीं होती। किसी भी सगे-संबंधी के साथ जमता नहीं है, किसी के साथ व्यवहार ही नहीं रखना हो, उस तरह रहना उसे अच्छा लगे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कोई तरीका नहीं रखना है। यह देखना है कि किस तरह रहा जाता है। डिज़ाइन का रास्ता नहीं है यह। यह ज्ञान डिज़ाइन वाला नहीं है। कैसे रहा जाता है, वह देखना है।

प्रश्नकर्ता : चाहे वह तरीका व्यवहारिक तौर पर योग्य हो या अयोग्य?

दादाश्री : आपको वह नहीं देखना है। आपको तो इस तरह से

रहना है। शांति चाहिए तो, आनंद चाहिए तो इस तरह से रहो। वर्ना फिर वह वाला व्यवहारिक तरीका अपनाओ। डिज़ाइन बनाओगे तो मार खाओगे। दूसरा कुछ नया नहीं मिलने वाला। अज्ञानता की निशानी यह है कि मार खाता है, कुछ और नहीं। इसे ओवरवाइज़ कहते हैं। ऊपर से अपनी अक्ल लड़ाने जाता है। तत्त्वदृष्टि मिलने के बाद कुछ और क्यों देखना? (तत्त्वदृष्टि) नहीं मिली होती तो बाकी सब था ही न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या फिर इसे कर्म बंधन मानकर सहन करते रहना है? इस परिस्थिति को?

दादाश्री : कुछ भी नहीं मानना है। मानना क्या है हमें? हम 'ज्ञाता-द्रष्टा', देखना ही है। क्या होता है, उसे देखना है। वॉट हैपन्स! कल घर पहुँचने के बाद खाना मिला था या नहीं मिला था?

प्रश्नकर्ता : खाना तो मिलता ही है।

दादाश्री : तो क्या परेशानी है? खाना मिलता है, सोने की जगह मिलती है। और क्या चाहिए? पत्नी बात नहीं करे तो कहना, 'रह अपने घर, आज उस तरफ सो जा।' वह नहीं बोले तो उसे 'बा' थोड़े ही कह सकते हैं? नहीं कह सकते। इसलिए नई झंझट तो करनी ही नहीं है। एक ही जन्म अगर ज्ञानी की आज्ञा के अनुसार चले तो मौज रहेगी। और वह खुद के सुख सहित होती है।

प्रश्नकर्ता : किसी भी संयोग में समभाव से ही *निकाल* करना है?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करना, इतना ही अपना धर्म है। कोई फाइल ऐसी आ गई, तो आपको तय करना है कि समभाव से *निकाल* करना है। अन्य फाइलें तो एडजस्टमेन्ट वाली होती हैं, उनके लिए तो बहुत ज़रूरत नहीं पड़ती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जहाँ टोटल डिसएडजस्टमेन्ट हो, फिर वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करने का भाव आपको मन में

तय करना है। 'समभाव से *निकाल* करना है' इतने ही शब्दों का उपयोग करना है।

प्रश्नकर्ता : सामने वाला कोई एडजस्टमेन्ट नहीं करे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह नहीं करे तो हमें वह नहीं देखना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन तब फिर हमें क्या करना चाहिए? हमें अलग हो जाना चाहिए?

दादाश्री : आपको देखते रहना है। और कुछ तो उसके या आपके ताबे में नहीं है। अर्थात् जो भी हो रहा है, उसे आप देखो। अलग हो जाए तो भी हर्ज नहीं है। अपना ज्ञान ऐसा नहीं कहता कि आप अलग मत होना या अलग हो जाना, ऐसा भी नहीं कहता। क्या होता है, उसे देखते रहना है। अलग हो गए तो भी कोई विरोध नहीं करेगा कि क्यों आप अलग हो गए और साथ रहोगे तो भी कोई परेशानी नहीं। लेकिन यह डिसएडजस्टमेन्ट गलत चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : यदि स्वभाव ही विरोधी हो तो फिर वह चेन्ज किस तरह हो सकता है?

दादाश्री : विरोधी स्वभाव को ही संसार कहते हैं। संसार का अर्थ ही है, विरोधी स्वभाव। और उस विरोधी का *निकाल* नहीं करेंगे तो विरोध तो रोज़ ही आएगा और अगले जन्म में भी आएगा! उसके बजाय यहीं पर हिसाब चुका दो। उसमें क्या बुरा है? आत्मा प्राप्त होने के बाद हिसाब चुका सकते हैं।

'आज्ञा का पालन करना है' इतना बोलना है बस। अन्य एडजस्टमेन्ट तो किसके हाथ में है? व्यवस्थित के हाथ में है।

आप समभाव से *निकाल* करना तय करोगे, तो आपका सब ठीक हो जाएगा। उस शब्द में जादू है। वह अपने आप ही सारा निबेड़ा ला देगा।

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* करना, यानी सामने वाला व्यक्ति जो कुछ भी कहे, उसकी हाँ में हाँ मिलाएँ?

दादाश्री : वह कहे कि 'यहाँ बैठिए' तो बैठना। वह कहे 'बाहर निकल जाइए' तो बाहर चले जाना। वह व्यक्ति कुछ भी नहीं करता। यह तो, व्यवस्थित करता है। वह बेचारा तो निमित्त है। बाकी, 'हाँ में हाँ' नहीं मिलानी है, लेकिन चंदूभाई क्यों हाँ कहते हैं या ना कहते हैं, वह 'आपको' देखना है। और फिर 'हाँ में हाँ' मिलाने की ऐसी कोई सत्ता भी आपके हाथ में नहीं है। व्यवस्थित आपसे क्या करवाता है, वह देखना है। यह तो आसान बात है, लोग इसे उलझा देते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि सामने वाला व्यक्ति अलग होने से खुश हो, तो क्या हमें अलग हो जाना चाहिए?

दादाश्री : वह तो व्यक्ति अच्छा है, बहुत अच्छा है। कहीं और तो मार-मारकर दम निकाल दे! आपको मारा तो नहीं है न? तो बहुत अच्छा! कहना 'मेरे तो धन्यभाग्य'!

प्रश्नकर्ता : फिर उसे तो खुद के तरीके से रहना है।

दादाश्री : आप कल्पनाएँ क्यों करते हो कि वह ऐसा करेगी?

प्रश्नकर्ता : वह कर ही रही है। उसका अनुभव हो रहा है मुझे।

दादाश्री : नहीं। अनुभव हो रहा हो तब भी आपको कल्पना नहीं करनी है। यह कल्पना से ही सब खड़ा हो गया है, पागलपन! बिल्कुल सीधा है और समभाव से *निकाल* करने की हमारी आज्ञा का पालन किया जाए न, तो एक बाल जितनी भी मुश्किल नहीं आती है और वह भी.. साँपों के बीच भी! और वह तो, साँपिन नहीं है, वह तो स्त्री है न! और कुछ नहीं है। यह तो, आपने ही यह सब गाढ़ किया है।

कला की नहीं, निश्चय की ज़रूरत

जीवन जीने की कला जाननी पड़ेगी।

प्रश्नकर्ता : दादा, तब फिर समभाव से *निकाल* करने के लिए भी किसी कला की ज़रूरत है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : यदि वह कला नहीं होगी तब भी ऐसा बोलने से उसे कला आ जाएगी। अगर इतना बोले न 'दादा की आज्ञा का पालन करना है'। तो कला नहीं आती होगी फिर भी आज्ञा का पालन करता है इसलिए आ जाएगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका पूरी तरह से *निकाल* नहीं होगा न, यदि इस तरह कला करके एडजस्टमेन्ट करना नहीं आए तो?

दादाश्री : अरे, कला कहाँ से होगी, वह भी इस काल में? जीना ही नहीं आता तो कला कैसे आएगी? सारी स्त्रियाँ मेरे पास आती हैं और कहती हैं, 'इन पतियों की परीक्षा लेकर देखिए।' तो लाखों में से दो-तीन पास होंगे। वह भी, अगर निष्पक्षपाती रूप से लूँ तब भी! पति बना है तो क्लेश क्यों होता है? मतभेद क्यों होते हैं? मतभेद होते हैं इसलिए तुझे पति होना नहीं आता।

यह तो समभाव से *निकाल* करने को कहा, उसका मतलब इतना ही है कि अगर शादी की है तो उसका हल तो निकालना ही पड़ेगा न! और उसमें भी यदि छुटकारा हो जाए तो उस जैसा उत्तम तो कुछ भी नहीं है। छुटकारा तो करना ही पड़ेगा न, कभी न कभी। तब तक नवाँ गुणस्थानक (संपूर्ण ब्रह्मचर्य का) पार ही नहीं कर सकते न! नवाँ गुणस्थानक पार हो नहीं पाएगा और आगे बढ़ नहीं पाएँगे।

बच्चों के साथ निकाल की राह

प्रश्नकर्ता : बच्चे डिमान्ड करें कि स्कूटर लेना है, टी.वी. लेना है। अब साल भर की तनख्वाह भी उतनी नहीं होती, तो यहाँ समभाव से *निकाल* कैसे करें दादा?

दादाश्री : बच्चों से कहना, 'लाओ न, कमाकर लाओ। मुझे हर्ज नहीं है। मैं अपनी कमाई के हिसाब से लाया हूँ। आप अपना

कमाकर लाओ। मुझे हर्ज नहीं है। मैं नहीं डाँटूँगा।' फिर क्या किया? बैंक से लोन लिया?

प्रश्नकर्ता : नहीं। मना कर दिया इसलिए मुँह फुलाकर घूमते रहते हैं। अब वहाँ किस तरह *निकाल* करें?

दादाश्री : उनका मुँह फूला हुआ हो तो आपको ऐसा देखना है कि यह डिज़ाइन कैसी दिखाई देती है। आप किसी से कहो कि, 'तेरा मुँह फूला' तो इस तरह फुलाया हुआ काम नहीं आएगा। वह तो एक्ज़ेक्टली फूला हुआ होना चाहिए तब डिज़ाइन देखने में मज़ा आएगा। तब आपको आराम से देखना है और खुश होना है। उससे ऐसा कहना, 'दादाजी ने कहा है, देखना और जानना, उसी अनुसार कर रहा हूँ।' कहना, 'तुम फिक्र मत करना, मुझे तुम्हें डाँटना नहीं हैं। बस देखता और जानता हूँ।' देखो खिला-पिलाकर बड़ा किया लेकिन गुर्राना (विरोध करना) सीख गए! यहीं पर, वह भी घर में ही। अरे! बाहर जाकर गुर्राओ न! वहाँ पर तो बकरी!! घर में ही गुर्राते हैं। आप बहुत खुशनसीब हो कि गुर्राने वाले हैं! बेटियाँ तो नहीं गुर्राती बेचारी! ये लड़के गुर्राते हैं।

प्रश्नकर्ता : लड़के सिनेमा के लिए पैसे माँगते हैं।

दादाश्री : तो कितने? पाँच रुपये लेते हैं?

प्रश्नकर्ता : ज़्यादा हो जाते हैं, दादा। अभी बहुत महँगा हो गया है सब।

दादाश्री : हाँ, तो महीने में दो-तीन देखता है?

प्रश्नकर्ता : महीने में दस-पंद्रह फिल्म देख लेता है।

दादाश्री : पैसे तो अपनी माँ से ले जाता होगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, कभी मुझसे भी माँगता है।

दादाश्री : नहीं, आप मत देना। आप तो उसकी माँ को देना।

बेटे को झंझट या झगड़ा होगा तो उसकी माँ से होगा। आप कहाँ करोगे यह सब! कैशियर से ही लड़ते हैं हमेशा। कहेगा 'क्यों नहीं देती, क्यों नहीं देती?' तब वे ऐसा कहेंगी कि, 'टंकी में से आएगा तो दूँगी न?' लेकिन बेटा तो निमित्त को ही काटेगा। इसलिए आप तो उसकी माँ को देना। फिर उसकी माँ उसे देंगी। फिर यदि नहीं देंगी तो उसकी माँ और वह, दोनों लड़ाई-झगड़ा करेंगे। आप देखना कि दुनिया कैसे चलती है! और फिर वाइफ भी खुश हो जाएँगी कि, 'फैसला करना मेरे हाथ में सौंपा!' यानी कि दोनों ही तरह से फायदे में रहोगे आप। मुझे आता है ऐसा सब।

खोटा सिक्का यानी कि जो सिक्का बाज़ार में नहीं चलता, जिसका बाज़ार में कोई ग्राहक नहीं होता, वह फिर भगवान के पास पड़ा रहता है। घर में चलन चलाने के बजाय तो आप चलन छोड़ दो! मैं तो चलन छोड़ देता हूँ, ताकि फिर झंझट ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा रहता है न दादा, घर में मैं बड़ा, मैं बाप, मेरा चलन होना चाहिए।

दादाश्री : बच्चों का गुस्सा झेलने के लिए बाप बनना है क्या? ऐसी पीड़ा में कौन उतरे बिना बात के? लोग तो समझेंगे कि यह तो बहुत चतुराई की है! धूर्तविद्या की होगी कोई! तीर्थंकर ऐसे पक्के थे! लक्ष्मी को छूते-करते नहीं थे। तीर्थंकर ऐसा जानते थे कि किस तरह भाग छूटना! और इज़्ज़त से (मोक्ष में) जाते थे। ऐसी फ़ज़ीहत नहीं करते थे।

बच्चों को डाँटना चाहिए या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बेटा गलत कर रहा हो तो हमें उसे डाँटना चाहिए? फादर के तौर पर कहना चाहिए या फिर कर्माधीन है ऐसा रखना चाहिए?

दादाश्री : आपको तो चंदूभाई से कहना है कि, 'क्या देखकर आप फादर बने हो? इस लड़के को कुछ कहो तो सही। ऐसे कैसे

चलेगा? इस तरह अगर फादर के तौर पर आप पड़ोसी धर्म नहीं निभाओगे न, तो आप भी गलत दिखोगे।'

प्रश्नकर्ता : बेटे को स्पष्ट कहने से क्या हमें कर्म बंधन होता है?

दादाश्री : आपको क्यों होगा? यह तो हिसाब है। इसलिए जितना हिसाब होगा, एक जन्म का लगना होगा तो लगेगा। आपको तो उसे कह देना है कि, 'भाई, आप इस लड़के को सुधारो। ऐसा नहीं चलेगा।'

खुद फादर है, ज़िम्मेदार है इसलिए बेटे को कहना-करना, फिर भी मारने का सिस्टम मत रखना। मारने से बच्चे जड़ हो जाते हैं। हम क्या कहते हैं, ज़्यादा से ज़्यादा समझाओ उन्हें, 'यदि तू चोरी करेगा और पकड़ा जाएगा तो पुलिस वाले क्या करेंगे, वह तू जानता है?' यानी कि समझाओ। बहुत दिनों तक समझाने के बाद ज्ञान उसकी समझ में फिट हो जाएगा। और ज्ञान फिट होने के बाद भी यदि करता है तो वह पछतावा करता रहेगा कि, 'यह गलत हो रहा है।' बस, वहाँ तक ले जाना। आप उसे पीटते रहते हो लेकिन पीटने जैसा नहीं है। वह तो कर्माधीन कर रहा है बेचारा। उसे भान भी नहीं रहता उस समय।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे संयोगों में भी ऐसा कह सकते हैं न, कि हमने समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का ठीक से पालन किया है?

दादाश्री : पालन किया न! जब से तय किया कि मुझे समभाव से *निकाल* करना है, उसी को कहते हैं पालन किया।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन, 'समभाव से *निकाल* करना है', ऐसा तय करते ही 'मैं' तो अलग ही हो जाता हूँ, तब फिर चंदूभाई करते रहते हैं।

दादाश्री : सभी जगहों पर अलग ही हो जाना है आपको।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर क्या चंदूभाई से कहना पड़ेगा कि आप ऐसा करो?

दादाश्री : हाँ, चंदूभाई से आप ऐसा कहना, लेकिन आपको क्या लेना-देना? पड़ोसी से कहना अपना फर्ज़ है।

मैं तो यहाँ तक कहूँ कि, 'भाई, मैंने पूर्व जन्म में तेरा क्या बिगाड़ा है कि तू मेरे पीछे पड़ा है?' ऐसा कहकर उसे वापस मोड़ दूँ। तब वही कहेगा, 'नहीं दादाजी, आपने कुछ भी नहीं बिगाड़ा है।' वापस मोड़ दूँ। हम डाँटते हैं या नहीं लोगों को?

प्रश्नकर्ता : हाँ, डाँटते हैं न।

दादाश्री : मेरे साथ रहने वालों को डाँटना हो, तो वह कैसे? ड्रामेटिकली। अत: उन पर कोई और खराब असर नहीं होता। उसका उन पर अच्छा असर पड़ता है।

चोरी करे तब निकाल

ऐसा है न, हमारे यहाँ क्या सिखाया जाता है? एक मनुष्य हर तरह से दोषी हो, उसके दोष काटने जाएँ तो, दोष तो आचरण है और आचरण उदयाधीन है। यानी कि कुछ फायदा नहीं होगा। आप डाँटते रहोगे और वह सुधरेगा नहीं। आप डाँटते रहोगे और वह फिर उल्टे भाव करता रहेगा। बाप बेटे को डाँटता है, 'रोज़ाना होटल में जाता है?' उसे जाना नहीं है फिर भी जाता है, बेचारे के पास कोई चारा ही नहीं है। जाना नहीं है, फिर भी उदय उसे ले जाता है। ऊपर से यह बाप कहता है, 'तू क्यों गया?' इस तरह फिर बच्चे को बहुत कहते रहने के कारण वह बच्चा बाप से कहता है कि, 'मैं नहीं जाऊँगा।' लेकिन मन में पक्का करता है, 'मैं तो जाऊँगा ही। भले ही बोलते रहें!' बल्कि भाव बिगाड़ते हैं। इन लोगों को अभी बाप की तरह जीना नहीं आता, माँ की तरह जीना नहीं आता, गुरु की तरह जीना नहीं आता। इसीलिए तो मुझे ऐसे चिल्लाना पड़ता है, 'जीना आता है क्या?' ये सब तो खाते, पीते और घूमते हैं!

प्रश्नकर्ता : हमारा बेटा चोरी करे तो हमें चोरी करने देनी चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : नहीं। विरोध करना। विरोध का दिखावा, अंदर समभाव। बाहर दिखने में विरोध, और जो चोरी करे उस पर आपको ज़रा सी भी निर्दयता नहीं रहनी चाहिए। यदि अंदर समभाव टूट जाएगा तो निर्दयता आ जाएगी और जगत् सारा निर्दयी हो जाता है। फिर उससे कहना। वह लड़का अंदर से समझ जाएगा कि, 'ये मुझ पर चिल्ला रहे हैं, लेकिन मेरे पिता जी को द्वेष नहीं है।' इसलिए, क्योंकि अंदर समभाव है। समभाव रखता है न, तब बाप फिर क्या करता है? फिर बेटे को बैठाकर कहता है, 'बैठ बेटा, बैठ, हाँ'। ऐसे हाथ-वाथ फिराए न तो बेचारे को ठंडक लगती है। दिल शांत हो जाता है उसका। फिर आप कहना 'भाई, हमारी कितनी इज़्ज़त है, हम किस खानदान के!' यानी कि भाव बदलते हो। यानी कि वह ऐसा तय करता है कि, 'नहीं ही करना चाहिए। यह करने योग्य चीज़ ही नहीं है, यह चीज़ ज़हर खाने जैसी है।' ऐसा उसे फिट हो जाए।

यदि बच्चा निश्चय करता है तो ऐसा कहा जाएगा कि उसकी प्रगति करवाई, वर्ना अधोगति करवाते हैं। यह तो, बाप को बाप बनना नहीं आता। मुझे लिखना पड़ा कि, 'अनक्वॉलिफाइड फादर्स एन्ड अनक्वॉलिफाइड मदर्स। हे हिन्दुस्तान के जीवों!' ऐसा लिखना पड़े तो क्या अच्छा लगता है?

पहले तो आपको पूछना होगा, 'तू जान-बूझकर करता है या हो जाता है?' तब वह कहेगा, 'मुझे नहीं करना है। दो-तीन बार नहीं करना था तो भी वहाँ चला गया।' यानी कि बच्चा भी समझता है कि, 'मुझे यह नहीं करना है फिर भी हो जाता है।' यानी कि तीसरा कोई भूत है। वह कर्म के उदय का भूत है। यानी कि, 'नहीं करना है फिर भी हो जाता है', जब ऐसा कहे न तब से आप समझना कि 'यह बदल रहा है।' उसकी समझ बदलने के बाद उसे क्या कहना चाहिए कि अब प्रतिक्रमण करना, जब-जब भूल हो जाए तब 'हे भगवान,

आज मुझसे यह हो गया, उसके लिए माफी माँगता हूँ। फिर से नहीं करूँगा अब।' प्रतिक्रमण सिखाना, बस। और कुछ नहीं।

फाइल है, रिश्तेदार नहीं

इसीलिए इन्हें फाइल कहा जाता है। बिना बात के परेशान करे, उसे कहते हैं फाइल। हमने फाइल शब्द यों ही नहीं दिया है। एक नौ-दस साल का लड़का था। वह दर्शन नहीं कर रहा था। इसलिए उसके बाप ने उठाकर उसका सिर (चरणों में) झुका दिया। फिर उस लड़के ने बाप को मारा। मारा यानी बहुत मारा! फाइल का समभाव से *निकाल* कर लो। ये फाइलें हैं, रिश्ता नहीं है। जो आमचा-तुमचा करने को रहे न, वे मार खाकर मर गए सब।

जन्म दिया, इतना फर्ज़ है आपका। फिर उसे अपना दूध पिलाओ और नहीं पिलाना हो तो बाहर से लाकर पिलाओ, लेकिन पिलाकर बड़ा करना, ऐसा सब करना, वह सब आपका फर्ज़ है। फिर स्कूल में पढ़ाना, पैसे देना, वह सारा आपका फर्ज़। वह अच्छी तरह से पास हो गया, नौकरी मिली। वह कहेगा, 'अब मुझे तनख्वाह मिलती है।' तो आपकी उस ओर की दिशा बंद। वह आइटम पूरा हो गया, आपका अब। आइटम कम्प्लीटेड।

प्रश्नकर्ता : वह फाइल पूरी हो गई।

दादाश्री : हाँ, फाइल पूरी हो गई। फिर भी यदि उस फाइल में लकीरें खींचते रहोगे तब क्या होगा?

हमें समभाव से *निकाल* करना है, उसका अर्थ पूरा ही अलग है। ऐसा कुछ हो जाए तो समभाव से *निकाल* करना और शुद्धात्मा के तौर पर तो आपका किसी तरह का रिश्ता ही नहीं है। यह तो हिसाब ही है आमने-सामने लेन-देन का। वह भी रुपयों का लेन-देन नहीं। *शाता* वेदनीय और *अशाता* वेदनीय, ये ही हैं, वह चुकाना है। बेटा ज़रा अच्छे कपड़े पहनकर फर्स्ट क्लास पास होकर आए, उस दिन आपको *शाता* वेदनीय बरतती रहेगी और फिर कभी बेटा गर्लफ्रेन्ड को

लेकर आ जाए फिर *अशाता* वेदनीय शुरू होगी। आप पूछते हो, 'कौन है यह?' तब कहता है, 'मेरी फ्रेन्ड है, कुछ कहना मत।' तब *अशाता* वेदनीय महसूस होती है। बस, वेदनीय चुका रहे हैं। दु:ख देने आया है या सुख देने आया है, पता चलता है। उस पर से नाप लेना कि देने का हिसाब है या नहीं देने का। लोग नहीं कहते, हमारा बेटा देने में लगा है। देना मतलब *शाता* देता है। आखिर कुछ तो समझना पड़ेगा न?

क्लर्क बड़ा या फाइलें?

प्रश्नकर्ता : हमें तो बहुत *निकाल* करना है अभी।

दादाश्री : हाँ, लेकिन फाइलों का *निकाल* करना है न? क्लर्क बड़ा या फाइलें बड़ी?

प्रश्नकर्ता : क्लर्क बड़ा।

दादाश्री : हाँ, क्लर्क तो कहेगा कि अब एक रूम की फाइलों का क्या हिसाब! और पाँच लाइए। क्लर्क क्या ऊब जाता है? तू चाहे उतनी ला न!

प्रश्नकर्ता : मैं फाइलों को छोड़ना चाहता हूँ लेकिन फाइलें बढ़ती जा रही हैं। क्या करना चाहिए?

दादाश्री : फाइलों को छोड़ना है, और यदि छोड़ने का प्रयत्न नहीं करोगे तो?

प्रश्नकर्ता : तो बढ़ेंगी। लेकिन यहाँ तो छोड़ने का प्रयत्न करने जाएँ तो लिपटती ही जाती हैं, तो क्या करना चाहिए दादा?

दादाश्री : 'ये फाइलें हैं', ऐसा जानते ही नहीं थे, तब तक छोड़ने का प्रयत्न नहीं करते थे न। जो नहीं जानते उसे तो फाइल का दु:ख लगता भी नहीं है। जान गए कि ये सभी फाइलें हैं इसलिए दु:ख होता है, इसलिए बोझ लगता है, वर्ना बारह बच्चों वाले को भी बोझ नहीं लगता। लेकिन अगर कहें कि बारह फाइलें हैं, तो बोझ लगता है। यानी कि 'फाइल' समझना, ऐसा ज्ञान होना, वह कोई ऐसी-

वैसी...आसान बात नहीं है। फिर भले ही सारी फाइलें बढ़ें। बढ़ेंगी तो *निकाल* हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : एक फाइल में से दूसरी फाइल खड़ी होती है।

दादाश्री : फाइलें तो आएँगी न! फाइलें तो आपने खड़ी की हैं न! वे तो आएँगी न! यदि अन्य किसी ने खड़ी की होती तो आप उससे झगड़ भी लेते।

फाइलों का एक साथ समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : एक फाइल का समभाव से *निकाल* अभी नहीं कर पाए हों, उससे पहले तो दूसरी दो आ गई होती हैं तो कई बार इतने परेशान हो जाते हैं कि चाहे कैसे भी इसका *निकाल* करना है। यानी कि यह जो आज्ञा पालन करने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन पालन नहीं कर पाते तब फिर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह तो, फाइलों का एक साथ *निकाल* कर लेना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन *निकाल* नहीं कर पाते। उतनी ताकत नहीं है। तो ओवर-ओवर (ज़रूरत से ज़्यादा) हो जाता है।

दादाश्री : नहीं, वह तो यदि आप कहोगे कि फाइल का समभाव से *निकाल* करना है तो हो जाएगा। वह तो ऐसा लगता है आपको। आपके मन में ऐसा हुआ कि पालन नहीं कर सकेंगे तो बिगड़ा।

प्रश्नकर्ता : नहीं, पालन नहीं कर पाएँ ऐसा नहीं। जैसे-जैसे हम समभाव से *निकाल* करने का प्रयत्न करते हैं, वैसे-वैसे ज़्यादा आती हैं, ऐसा लगता है।

दादाश्री : आपको निश्चय ही करना है कि, 'मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना है।' बस! प्रयत्न नहीं करना है। फिर अपने आप सहज होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार बढ़ जाता है इसलिए आज्ञा में कम रहा जाता है।

दादाश्री : व्यवहार तो जितना है, उतना ही है। दूसरा कुछ नया उत्पन्न नहीं होने वाला। यानी कि हल हो रहा है यह सब। घबराने का कोई कारण नहीं है। सभी आज्ञाओं का पालन हो सके, ऐसा निश्चय करना।

ज्ञान के बाद नहीं, नई फाइलें

प्रश्नकर्ता : 'हर एक फाइल का समभाव से *निकाल*', इसमें जो फाइल शब्द है, वह पता है लेकिन उसमें एक वाक्य ऐसा आता है कि नई फाइल खड़ी मत करना।

दादाश्री : नई तो होती ही नहीं हैं न।

प्रश्नकर्ता : ये जो नई फाइलें हैं, वे हम खड़ी नहीं करते, फिर भी नई फाइलें आती ही रहती हैं।

दादाश्री : नई फाइल तो आ ही नहीं सकती, आपको हंड्रेड परसेन्ट बता रहे हैं। जो नई लगती है, उसके लिए अभी आपने हर प्रकार से हिसाब नहीं निकाला है इसलिए ऐसा लगता है। जब हिसाब निकालेंगे तब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स ही होंगे उसके पीछे। क्योंकि साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं इसलिए वह भी पुरानी ही थी।

प्रश्नकर्ता : फिर यदि हमारे परिवार में जो मेम्बर्स हैं, उनमें एक नया एडिशन हो, बच्चे का जन्म हो या फिर मैरिज होकर आए तो वह हमारी नई फाइल ही कही जाएगी न?

दादाश्री : नहीं, पुरानी फाइल के बगैर तो बच्चा जन्म ही नहीं लेता। जो आपको मिली, वह पुरानी फाइल है।

प्रश्नकर्ता : हमें पता नहीं है कि यह फाइल है हमारी।

दादाश्री : नहीं, वह तो पहले के हिसाब से ही मिले हैं। किसी का मिलना, फाइल होगी तभी वे मिलेंगे, वर्ना मिलेंगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि नई फाइल का मतलब यह है कि इस जीवन में जितने भी हमारे संसर्ग में आते हैं, वे सभी हमारी पुरानी फाइलें ही हैं, नई फाइल है ही नहीं।

दादाश्री : पुरानी के सिवा आपको मिल नहीं सकता। मिलना तो साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है।

प्रश्नकर्ता : तो अब आप नई फाइल किसे कहते हैं?

दादाश्री : नई फाइल होती ही नहीं है। नई फाइल तो, जिसे ज्ञान नहीं है न, उसकी नई फाइल खड़ी होती है। उसे भावकर्म कहा जाता है। भावकर्म यानी क्या? जिसे चार्ज कर्म कहते हैं, वह नई फाइल है। जहाँ कर्म चार्ज नहीं करते, उनके लिए नई फाइल नहीं होती। यानी कि जो पुरानी फाइल है, वही मिलती है। समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, अब आ गया। अब ध्यान रहेगा।

दादाश्री : यानी अगर ज्ञान नहीं हो तब वह चार्ज करके नई फाइलें उत्पन्न करता है। अपनी तो जो पुरानी हैं, वे डिस्चार्ज होती रहती हैं। यह जो बच्चे का जन्म हुआ, वह भी आपकी पुरानी फाइल है।

प्रश्नकर्ता : आज्ञा में समझाते हैं कि फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है और नई फाइल खड़ी नहीं करोगे तो इसका *निकाल* हो जाएगा?

दादाश्री : हाँ। नई फाइल खड़ी मत करना, यानी क्या कि आप उसके साथ चार्ज नहीं करोगे किसी भी प्रकार का, तो फिर उस फाइल का *निकाल* हो जाएगा। लेकिन उसमें चार्ज करना भी नहीं है न, यह तो सिर्फ साधारण बात बताने के लिए इसे ऐसा कहते हैं। ज़रा भी कमी न रहे। बाकी, चार्ज होता ही नहीं है इसमें।

प्रश्नकर्ता : हम नया काम बढ़ाएँ तो 'फाइलें' बढ़ती हैं?

दादाश्री : ऐसा है कि 'फाइलें' जितनी हैं न, उतना ही काम बढ़ेगा। अब नई 'फाइलें' खड़ी नहीं होंगी। काम बढ़े तब आपको समझना है कि अभी भी हमारे पास फाइलें पड़ी हैं। अत: यदि 'फाइलें' नहीं होंगी तो काम ही नहीं रहेगा न! बड़ा व्यापार चल रहा हो लेकिन यदि फाइलें नहीं होंगी तो कुछ काम ही नहीं रहेगा।

जल्दी-जल्दी या राइट टाइम पर?

प्रश्नकर्ता : दादा, व्यवहार की इन सारी फाइलों का जल्दी-जल्दी *निकाल* हो जाए, ऐसा कुछ कीजिए न?

दादाश्री : ऐसा है, ये 'फाइलें' तो अपने आप ही समय होने पर पूरी होती ही रहती हैं। 1979 में पूरी होने वाली '79' में पूरी होंगी, 80 में होने वाली '80' में होंगी, '81' में होने वाली '81' में होंगी... इन इंजन और डिब्बों के बीच कहीं हमेशा के लिए शादी नहीं होती। जो डिब्बे जोड़े हैं, वे फिर चाहे किसी भी स्टेशन का हो, अगर बड़ौदा का है तो फिर उस डिब्बे को वहाँ छोड़ देते हैं। इंजन तो अपने आप हमेशा आगे ही चलता रहता है। हमारे पीछे भी बहुत डिब्बे हैं, और सब चलता रहता है।

फाइल खत्म हो गई, उसका प्रमाण

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा लगता है कि इन फाइलों का अब जल्दी से कैसे *निकाल* होगा। मन में ऐसा होता रहता है, उसका क्या?

दादाश्री : वही झंझट यह नुकसान करती है। उसका *निकाल* होना ही है। इसलिए आप अन्य कार्यों में लग जाओ। कोई चारा ही नहीं है उसके पास। खुद फाइलों को भी *निकाल* हुए बगैर कोई चारा नहीं है। अगर इसकी राह देखोगे तो कोई और काम करना रह जाएगा। इसलिए कोई और काम करो आप। *निकाल* होने की राह देखोगे न,

तो वे फाइलें समझेंगी कि, 'ओहोहो, हमारा रौब तो बहुत बढ़ गया है!' वर्ना उसका *निकाल* हो ही जाना है। इसलिए आपको इसके लिए इतना सब नहीं रखना है।

प्रश्नकर्ता : यानी यह जो सारा उपयोग फाइलों का *निकाल* करने में रखते हैं, उसके बजाय उपयोग कहीं और रखें?

दादाश्री : हाँ, उपयोग भले वहाँ रहे, *निकाल* हो ही जाना है। टाइम हुआ न, तो घंटी बजेगी। तब आप हाज़िर हो जाना। आप फाइलों से कहना कि, 'जब आना हो तब, यह घर आपका ही है।' और तुरंत वीतरागता से *निकाल* कर देना, सच्चिदानंद।

प्रश्नकर्ता : यानी कि फाइलों का *निकाल* करने के उपयोग में फँस नहीं जाना चाहिए?

दादाश्री : 'यह कब होगा, जल्दी हो जाए', इसे तो, बुद्धि उल्टी राह पर है, ऐसा कहा जाएगा।

जैसे-जैसे फाइलें कम, वैसे-वैसे शुद्ध उपयोग बढ़ता है

प्रश्नकर्ता : दादा के पास आने के बाद हमारी फाइलें कम होती जाती हैं।

दादाश्री : वैसे-वैसे खुद की आत्मशक्तियाँ प्रकट होती जाती हैं। वह खुद आत्मा रूप होता जाता है। फाइल खत्म यानी तुरंत ही शक्तियाँ बढ़ती जाती है। जैसे-जैसे फाइलें कम होंगी, वैसे-वैसे बल्कि उपयोग बढ़ेगा। जैसे अभी जिस उपयोग में रहते हो न, तो इन फाइलों के कारण उपयोग पूरी तरह से नहीं रह पाता। जैसे-जैसे फाइलें कम होती जाएँगी, वैसे-वैसे उपयोग बढ़ता जाएगा। फाइलें पूरी हो जाएँगी तो उपयोग शुद्ध हो जाएगा, पूरा संपूर्ण हो जाएगा, फिर उसमें और क्या रहेगा?

प्रश्नकर्ता : फिर निरंतर उपयोग में ही रह पाएँगे न?

दादाश्री : फाइलें जितनी कम होंगी तो उपयोग पूर्ण हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार का उपयोग होना चाहिए?

दादाश्री : प्रकार नहीं होता उसका। खुद शुद्ध है और गालियाँ देने वाला भी शुद्ध है। सामने वाला चंदूभाई को गालियाँ दे रहा हो, उस समय यदि उसके प्रति शुद्धता नहीं जाए, तो उसे शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। उस समय यदि मन में ऐसा हो कि, 'नालायक है', तो उपयोग चूक गए। इसलिए उतना फिर से धोना पड़ेगा क्योंकि यह विज्ञान है। पूरा नहीं जाएगा, लेकिन फिर से धोना पड़ेगा। फाइल पर फिर से हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। अज्ञान से जो बाँधे हुए हैं, वे ज्ञान से धोने पड़ेंगे। यदि ज्ञान से नहीं धुलेगा और अज्ञान से होगा तो फिर उसी फाइल को फिर से धोना पड़ेगा। आपको कर्म नहीं बंधेंगे, लेकिन आपको धोना तो पड़ेगा ही।

प्रश्नकर्ता : दादा, जैसे-जैसे फाइलें कम होती जाती हैं, वैसे-वैसे यहाँ उपयोग में विचार भी अधिक आते जाते हैं?

दादाश्री : ऐसा कोई नियम नहीं है। विचार तो, कुछ लोगों की एक भी फाइल कम नहीं हुई हो न, तब भी उन्हें पूरा दिन, चौबीसों घंटे विचार आते रहते हैं। तो क्या उन्हें भी आप ऐसा कहोगे कि, 'भाई, इनकी फाइलें कम हो गई हैं?' नहीं। वह तो, आपका यह क्लियर होता जाता है इसलिए जो विचार नहीं दिखाई देते थे, वे भी दिखने लगते हैं इसलिए आपको ऐसा लगता है कि यह बढ़ता जा रहा है। बढ़ता नहीं है, थे ही लेकिन दिखाई नहीं देते थे। अब निबेड़ा आता जा रहा है। आए हैं तो फिर उतना निबेड़ा आ जाएगा। संयोग का वियोग हुए बगैर रहता नहीं। इसलिए यदि ज्ञानपूर्वक वियोग होगा तो आपका क्लियर हो जाएगा और कहीं अन्य जगह पर ध्यान रह गया, तो फिर से धोना पड़ेगा।

फाइलों की उलझनों से जागृति डिम

प्रश्नकर्ता : निज स्वभाव में हम तन्मयाकार हो जाते हैं तो उसका मतलब ऐसा है कि हम निज पद में ही हैं?

दादाश्री : हाँ, निज स्वभाव, वही निज पद है!

प्रश्नकर्ता : निज स्वभाव में स्थिरता नहीं रहती। क्या इसका मतलब यह है कि आज्ञा का पालन नहीं हो रहा है?

दादाश्री : नहीं-नहीं। वे फाइलें हैं न! जब फाइलों में उलझ जाते हो, उस क्षण आपकी काफी कुछ जागृति वहीं पर खर्च हो जाती है। इसलिए यह ज़रा सी मंद हो जाती है। तो फाइल का *निकाल* करने जाना ही पड़ेगा न कभी न कभी! उतना समय तो बिगाड़ना ही पड़ेगा न? जब फाइल रहित स्थिति हो जाएगी तब और ही मज़ा आएगा। खाली होने लगीं तो फाइलें खाली ही होती जाएँगी। दस-पंद्रह-बीस साल बाद तो फाइलें रहती ही नहीं हैं एक भी।

फाइलों के कारण रुका है स्पष्ट वेदन

प्रश्नकर्ता : दादा, अपने ज्ञान के बाद महात्माओं को इतना पता चला है कि आत्मा अनंत सुख का धाम है। अब यह जो स्पष्ट वेदन का अनुभव होना चाहिए, वहाँ बाधक कारण कौन सा है?

दादाश्री : उस वेदन में बाधक कारण है फाइलों का बहुत ज़ोर। फाइलों का ज़ोर यदि ज़्यादा नहीं रहे तो अनुभव बढ़ता जाएगा।

ऐसा है न, कोई यदि दोपहर डेढ़ बजे कहे कि, 'मुझे बाहर जाने में क्या दिक्कत है?' तब कहेंगे, 'भाई, अभी डेढ़ बजा है। पाँच बजे जाना न, वर्ना अकुलाहट में दम निकल जाएगा तेरा।' अतः यह जो फाइलों का ज़ोर है न, उसे लेकर ऐसा सब होता रहता है। फाइलें कम हो जाएँगी तो अपने आप ही फर्क पड़ेगा। फाइलें कम हो जाएँ, वैसा करो। पाँच आज्ञा का पालन करो। बस उतना ही करना है, और कुछ नहीं करना है।

ये सारी फाइलें कम हो जाएँगी न, फिर तो आनंद समाएगा ही नहीं। आनंद छलकेगा और पड़ोस वालों को भी लाभ होगा। क्योंकि कोई भी चीज़ जब छलकती है तो बाहर निकलती है, और जो बाहर

निकलती है वह औरों के काम आती है। उससे पड़ोसी को भी लाभ होगा। इस समय फाइलों का *निकाल* करने में आनंद ही नहीं आता। ये सब दखल उस आनंद को चखने नहीं देते।

प्रश्नकर्ता : फाइलों का *निकाल* ज्ञान मिलने के कितने समय बाद हो जाता है?

दादाश्री : वह तो जितनी गाढ़ हो... अगर बहुत गाढ़ हो तो पूरी ज़िंदगी चलती रहती है और हल्की हो तो दस-बारह महीनों में चली जाती है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन एक लाइफ में हो जाती है या दो-चार लाइफ में होता है या फिर कितना समय लगता है ज्ञान मिलने के बाद?

दादाश्री : नहीं। एक-दो जन्म। जिसे *निकाल* करना है, उसे देर नहीं लगती। जिसे *निकाल* नहीं करना है, उसे बहुत समय लगेगा। जिसे निबेड़ा लाना है, उसे देर नहीं लगेगी। आत्मशक्ति का मूल स्वभाव क्या है कि यदि आपको निबेड़ा लाना है, तो वह निबेड़ा लाने में हेल्प करेगी। निबेड़ा लाना हो तो अक्रम में आ जाना और अभी आ ही गया है मार्ग, लेकिन आप परिचय में नहीं रहते हो? यहाँ कितने घंटे मेरे परिचय में रहे हो? यह बताओ।

प्रश्नकर्ता : पूरे दस घंटे रहे होंगे।

दादाश्री : अब, दस घंटे में आप इतना बड़ा ज्ञान माँग रहे हो! इस समय आपको (यह ज्ञान) मिला है, यही बहुत बड़ा आश्चर्य है। दस घंटे में इतना बड़ा फल भोग रहे हो। नहीं? ज्ञानी पुरुष के साथ एक-दो घंटे बिताने हों तब भी बहुत पुण्य चाहिए। दस घंटे का इतना फल मिला है तो फिर छः सौ घंटे बिताने का फल कितना मिलेगा!

मेरे साथ आए थे न, साथ ही साथ रहे थे न, उसका फल तो मिले बगैर रहेगा ही नहीं।

क्या हिसाब पूरा हुआ?

प्रश्नकर्ता : हमें पिछले जन्मों का हिसाब पूरा कर लेना है। अब हम ऐसा करें कि एक बार बहीखाता खोलें, तब हम ऐसा करके जाने देते हैं 'चल भाई, तेरा ठीक है'। दूसरी-तीसरी-चौथी बार, ऐसा कितनी बार करते रहें हम?

दादाश्री : जब तक यह संयोग है, तब तक। फिर संयोग अपने आप अलग हो जाएगा, फिर आपको नहीं मिलेगा। हिसाब पूरा हो गया। फिर वापस मिलेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कब पता चलेगा कि उसके साथ हिसाब पूरा हो गया?

दादाश्री : वह तो, आपको उस पर राग-द्वेष नहीं होंगे, कुछ नहीं होगा। आपको उसका बोझ नहीं लगेगा। वह आए तो ईज़ीनेस, जाए तो ईज़ीनेस, ऐसा रहे तब छूट गया।

फाइलों का विलय कब?

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारी ये जो व्यवहारिक फाइलें हैं, जिन्हें गाढ़ फाइलें कहते हैं तो, उनका संपूर्ण विलय हो गया, ऐसा कब कहा जाएगा?

दादाश्री : आपके लिए वह उल्टा बोले फिर भी मन में दुःख नहीं हो तो आपकी तरफ से तो विलय हो गया। पहले आपकी तरफ से होता है फिर उसकी ओर से हो जाता है। एक तरफ आप आवाज़ करते हो, इसलिए वहाँ से प्रति-आवाज़ आती है। लेकिन कुछ हद तक। फिर जब आपकी आवाज़ बंद हो जाएगी तब फिर उसकी भी बंद हो जाएगी। यानी कि अपने साथ वह चाहे कैसा भी उल्टा-सीधा करे फिर भी उस पर द्वेष नहीं होना चाहिए। तो अपना छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हमारी ओर से विलय हो गया हो, लेकिन सामने वाले की ओर से नहीं हुआ हो तो?

दादाश्री : वह आपको नहीं देखना है। आपकी ओर से दु:ख नहीं हुआ होगा तो आपको दु:ख नहीं होगा। आपको द्वेष रहेगा तो दु:ख होगा। जिसे द्वेष नहीं होता, उसे दु:ख ही नहीं होगा न!

प्रश्नकर्ता : फाइल पूरी तरह से सुलझ गई, उसका *निकाल* हो गया, ऐसा कब कहा जा सकता है?

दादाश्री : उसके प्रति मन में कुछ नहीं रहे तो हो गया। आपके मन में और उसके मन में नहीं रहे तो हो गया।

प्रश्नकर्ता : उसके मन में भी नहीं रहना चाहिए?

दादाश्री : रहे तो हमें हर्ज नहीं है। आपके मन में बिल्कुल क्लियर हो जाएगा तो हो गया।

प्रश्नकर्ता : यानी क्या कि हमें उसके लिए विचार भी नहीं आने चाहिए, ऐसा? विचार आने बंद हो जाने चाहिए उसके लिए?

दादाश्री : हाँ।

महात्माओं के बीच का झगड़ा

प्रश्नकर्ता : ये सभी जो महात्मा हैं, उनका आपस में कभी मनमुटाव हो जाता है तो उसका तंत रहता है। तो ऐसे में किस तरह *निकाल* लाना चाहिए?

दादाश्री : उसका तो समभाव से *निकाल* ही करना है, और कुछ भी नहीं। वह तो, जो माल भरा हुआ है वह तो निकलता रहेगा। लेकिन आप अंदर समझ लेना कि यह माल निकला। कचरा निकल रहा है, आपको इतना समझना है। यदि वह टकराए तो आपको देखना चाहिए। टकराता तो रहेगा ही, उसमें कुछ नहीं चलेगा। जो माल भरा हुआ है वह टकराए बगैर रहेगा नहीं न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमारे जो महात्मा हैं, दादा के....

दादाश्री : महात्माओं में ही होता है। बाहर वाले तो टकराते हैं, उनमें तो लड़ाई ही है न! यहाँ पर वैसा टकराव, वैसी लड़ाई नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि महात्मा आवेश में आ जाए और वह भी सामने एक लगा दे, तो उन दोनों में से भूल किसकी है?

दादाश्री : भूल कोई देखनी ही नहीं है। ये तो महात्मा हैं। जिसे जागृति रहेगी, वह प्रतिक्रमण करेगा कि, 'मुझसे यह बहुत बड़ी भूल हो गई, ऐसा नहीं होना चाहिए।' अतः क्या होता है, वह 'देखते' रहो।

प्रश्नकर्ता : आवेश में आकर उसने भी एक लगा दी लेकिन यदि अंदर वह प्रतिक्रमण करे, पश्चाताप करे, उसके बाद जागृति रहे, तब क्या इसे उसका समभाव से *निकाल* होना कहा जाएगा या नहीं?

दादाश्री : हाँ, समभाव से *निकाल* ही हो गया। उसे कोई और दखल करने की ज़रूरत ही क्या है?

महात्मा हैं दादा की फाइलें

प्रश्नकर्ता : लेकिन यहाँ पर आप कई बार जो फाइलों का *निकाल* करते हैं न, वह देखने में बहुत मज़ा आता है।

दादाश्री : वह तो जब समझ में आए तब न, कि यह फाइल का *निकाल* किया। कैसा किया, वह भी समझ में आना चाहिए न? यानी कि यह देख-देखकर सीखना है।

प्रश्नकर्ता : एक-एक महात्मा आपकी फाइल ही है न?

दादाश्री : हाँ, फाइलें हैं सभी।

प्रश्नकर्ता : आपको उनका *निकाल* समभाव से करना पड़ता है क्योंकि हमारा अहंकार तो कभी भी टेढ़ा हो जाता है।

दादाश्री : अरे वह तो, चाहे कैसा भी घनचक्कर जैसा बोले। जैसा ठीक लगे वैसा बोलता है, लेकिन इसमें क्या हो सकता है अब?!

प्रश्नकर्ता : हम सभी आपकी फाइलें हैं न?

दादाश्री : ये फाइलें हैं तो सही। लेकिन ये फाइलें मुझे बोझ नहीं लगतीं न और दूसरी कोई हो तो वह भी बोझ नहीं लगतीं न! यानी निर्बोझ जैसा लगा करता है। बाकी, खाते हैं-पीते हैं, सब फाइलें ही कहलाती हैं लेकिन निर्बोझ जैसा, असर नहीं होता न!

मेरी फाइलों का काफी कुछ *निकाल* हो गया है, तब भी फिर ये फाइलें ही कहलाएँगी न! लेकिन ये सभी ऐच्छिक (मरजियात) फाइलें हैं। इनमें मुश्किल नहीं होती और वे अनिवार्य (फरजियात) फाइलें, रात को दो बजे भी छोड़तीं नहीं अपने को!

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यह है कि इस हिसाब से आपकी कई फाइलें हैं?

दादाश्री : बहुत, बेहिसाब।

प्रश्नकर्ता : महात्मा और महात्मा की फैमिली, सभी फाइलें?

दादाश्री : फैमिली-वैमिली सभी, पूरी टोली। कई फाइलें हैं, लेकिन हमारी समझ अलग है इसीलिए न! उन सभी भूलों को निकाल देता हूँ।

प्रश्नकर्ता : एक भी फाइल के प्रति राग-द्वेष नहीं हैं न, वीतराग फाइलें हैं ये तो।

दादाश्री : वीतराग। इसलिए वास्तव में ये सभी हमारी फाइलें नहीं कहलातीं। हमारे और आपके बीच गाढ़ ऋणानुबंध नहीं है न किसी तरह का! ऋणानुबंध हो, वह फाइल कहलाती है। हमारी फाइलें नहीं हैं। हम आपकी फाइल नहीं हैं और आप हमारी फाइल नहीं हो। फाइल तो वह है जो घड़ी भर में डिप्रेशन और एलिवेट करवाए।

दादा जैसे नहीं बन सकते

दादाश्री : तुझे इस सत्संग से फायदा हुआ है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अब फाइलों का *निकाल* बाकी रहा।

दादाश्री : बाहर की फाइलें नहीं होतीं तो अंदर की फाइलें होती हैं। संपूर्ण ज्ञानी हो जाने पर फाइलें नहीं रहतीं। हमारी फाइलें नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी नहीं हैं लेकिन हमारी तो... जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक फाइलें रहेंगी?

दादाश्री : नहीं, केवलज्ञान तो अभी बाद में होगा। मुझसे आगे वाला स्टेशन है। लेकिन मेरे जैसी स्थिति तक पहुँच जाएगा तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : क्या इस जन्म में ही महात्मा आपकी दशा तक पहुँच सकेंगे?

दादाश्री : नहीं पहुँच सकेंगे। अरे! यह पद जो आपको मिला है न, वह तो.. सभी साधु, जैनों को, वैष्णवों को सभी को इकट्ठा किया जाए और आपके पद के बारे में बताया जाए तो वे कहेंगे ऐसा पद हो ही नहीं सकता। ऐसा तो सत्युग में भी नहीं था। यह आपका पद किसी की धारणा में ही नहीं आ पाए, ऐसा ग़ज़ब का पद है, उच्च पद है! अब ज़्यादा आगे आने की इच्छा नहीं करनी है। हमारी आज्ञा में रहो। पाँच आज्ञाएँ जो हैं न, उनमें रह सको तो बहुत हो गया। टाइम होने पर स्टेशन आएगा। आपको गाड़ी में बैठे रहना है। आपको उतरना नहीं है। अपने आप आएगा वह स्टेशन। दादर स्टेशन पर आप गाड़ी में बैठे तो बैठे। यानी कि अगर बैठे रहें तब भी औरंगाबाद आ जाता है। हम जाते नहीं तब भी औरंगाबाद आ जाता है और दूसरे लोग तो जाते ही हैं।

प्रश्नकर्ता : यहाँ से हटने का मन ही नहीं होता बिल्कुल भी।

दादाश्री : होता नहीं है लेकिन चारा ही नहीं है न! फाइलें हैं इसलिए फाइलों का हल तो लाना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या ऐसा समय आएगा कि निरंतर, चौबीस घंटे आपके पास रह पाएँगे?

दादाश्री : हाँ, आएगा न! जिसने ऐसी भावना की है, उसका। यह ट्रेन तो जा ही रही है, फिर जिसे मुंबई जाना हो वह मुंबई जाता है, सूरत जाना हो वह सूरत जाता है। जहाँ जाना हो वहाँ। खुद अपनी धारणा के अनुसार ही जा सकता है न! आपकी भावना होगी तो पास में रह पाओगे।

बाकी रहा निकाल करना परिषहों का

क्रमिक मार्ग में तो कहते हैं, 'सारे परिषहों को जीतो।' ठंड लगे, वह परिषह। अब ठंड तो बाहर लगती है लेकिन परिषह अंदर उत्पन्न होते हैं। गर्मी बाहर लगती है लेकिन अंदर अकुला जाते हैं। अंदर वैसा हो जाता है। भूख लगे वह परिषह, प्यास लगे वह परिषह। प्यास लगी हो और दुनिया में पानी न मिले तो? स्त्री का नाम ले या पानी माँगे? फिर, स्त्री भी परिषह है। 'उसे जीतो', कहते हैं। लेकिन यह तो दादा का विज्ञान है, विज्ञान क्या कहता है कि परिषहों का *निकाल* करो। जीतोगे कब? आपके पास हथियार नहीं है। आप अहिंसक हो गए। शुद्धात्मा यानी अहिंसक। अत: यदि हथियार हों तो उठाओ, जीतो। लेकिन हथियार नहीं हैं, इसलिए अब *निकाल* कर लेना है।

अब इन परिषहों को कब जीतोगे? एक को भी जीता जा सके, ऐसा नहीं है। बहुत ठंड लग रही हो, बर्फ गिर रही हो, ऐसा हो, ओढ़ने का नहीं हो तो हाथ-पैर सिकोड़कर सो जाओ। यह मत सोचना, 'उस दिन बिस्तर में सोए थे तब कितना मज़ा आया था!'

परिषह यानी क्या, कि चंदूभाई को जल्दी उठने की आदत है और उससे कहा जाए कि, 'यहाँ से, आठ बजे तक पलंग पर से नहीं खिसकना', वह परिषह। और जिन्हें देर से उठने की आदत है उन्हें सुबह जल्दी जगाया जाए तो परिषह उत्पन्न नहीं होगा। हमें परिषह उत्पन्न नहीं होता। आपको परिषह का *निकाल* करना बाकी रहा।

रात को नींद नहीं आई तो भी समभाव से *निकाल* और नींद आई तो भी समभाव से *निकाल*। क्या होता है, वह देखते रहो। हम

जिस रास्ते से गए हैं वही रास्ता बताते हैं, कोई और रास्ता नहीं बताते। यानी कि अनुभव वाला रास्ता बताते हैं। फिर देर ही नहीं लगेगी न? करना कुछ भी नहीं है, जानना है सब।

फाँसी का भी समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : अभी मुझे आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होते, आपका ज्ञान मिलने के बाद, लेकिन मान लीजिए कि होते हों तो फिर उसके लिए हमें किस तरह से पुरुषार्थ करना चाहिए?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो वही करना है। आपको तो आर्तध्यान व रौद्रध्यान हो नहीं सकते। फाँसी पर चढ़ा दिया जाए तब भी आपको क्या पुरुषार्थ करना है? समभाव से *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान व रौद्रध्यान का समभाव से *निकाल* करना है।

दादाश्री : आर्तध्यान व रौद्रध्यान तो कुछ भी नहीं हैं। यों खुले तौर पर फाँसी की सज़ा सुनाई जाए। वे कहें, 'अब तीन घंटे बाद फाँसी है' फिर भी समभाव से *निकाल* करना है आपको। क्योंकि *निकाल* किसका करना है? जो *निकाली* है, उसका *निकाल* करने को कहा है। जो *निकाली* नहीं है... जो *निकाल* करने वाला है वह, और *निकाली* बातें, वे दोनों अलग हैं। *निकाल* करने वाला स्थिर है, शाश्वत है। *निकाली* बातें अस्थिर हैं, वे चली जाएँगी। उन *निकाली* बातों में आर्तध्यान व रौद्रध्यान होते हैं। *निकाल* करने वाले में नहीं होते। ऐसी समझ सहित सबकुछ होना चाहिए। फिर नासमझी में जितनी भूलें होंगी, उतना ही आप जलोगे। यह विज्ञान है, आपसे भूल होगी तो आप जलोगे, उसमें मैं क्या करूँ? बाकी, समझ सहित होना चाहिए।

स्थापना अब इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट की

आप शुद्धात्मा हुए और कहते हो, 'यह फाइल नंबर वन' है। आपकी जो गुनहगारी थी, उसका आपको *निकाल* कर देना है। अन्य

किसी की गुनहगारी नहीं थी उसमें। जब तक यह गुनहगारी है तब तक आप शुद्धात्मा रूप नहीं हुए हो। क्योंकि जब तक फाइलों का *निकाल* करना बाकी है, तब तक आप शुद्धात्मा नहीं हो सकते, तब तक अंतरात्मा हुआ जा सकता है। अंतरात्मा के दो काम हैं। जब फाइलों का *निकाल* नहीं करना होता तो शुद्धात्मा के ध्यान में रहता है और फाइल का *निकाल* करना हो तो फाइल का *निकाल* करता है। दो काम करने हों तो इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट कहलाती है और फाइल के *निकाल* का काम हो गया तो फुल गवर्नमेन्ट।

अंतरात्मा तो सिर्फ एक ही चीज़ पर आ जाता है कि, 'इन फाइलों का *निकाल* करना है और मैं शुद्धात्मा।' शुद्धात्मा प्राप्त होने के बाद अंतरात्मा प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसने ज्ञान लिया हो उसके लिए क्या?

दादाश्री : उसी को अंतरात्मा प्राप्त होता है, औरों को अंतरात्मा प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो आपने कहा न, कि पुरुषोत्तम बनना है, तो फाइलों का जब तक *निकाल* नहीं हो जाता, तब तक इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट रहेगी। तो फिर सारी फाइलों में से निकल जाएँ, *निकाल* हो जाए, उसके लिए सब से जल्दी पहुँचने वाला रास्ता कौन सा है?

दादाश्री : जल्दी करने वाले खुद ही उलझन में फँस गए हैं। आपकी फाइलें बंद हो जाएँगी न, तो चिल्लाने लगोगे अभी। सिनेमा की फिल्म की तरह देखो तो कोई हर्ज है, देखने में? जब तक पूर्ण नहीं हो जाता, जब तक फुल गवर्नमेन्ट नहीं हो जाती, तब तक सेमी गवर्नमेन्ट तो रहेगी न? सेमी गवर्नमेन्ट कब तक? फाइलों का *निकाल* नहीं हो जाता, तब तक। फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तो आप इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट में से फुल गवर्नमेन्ट हो जाओगे। इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट किसलिए? तब कहते हैं, 'फाइलों का काम बाकी है, इसलिए', वर्ना फुल गवर्नमेन्ट। आपको फुल गवर्नमेन्ट की प्रतीति है ही। लोगों को यह प्रतीति होना

भी मुश्किल है। प्रतीति नहीं आई है, यदि आई होती तो यह काम बाकी नहीं रहता।

करनी हैं बातें, फाइल नंबर वन से

प्रश्नकर्ता : खुद की जो फाइल नंबर वन है उसे हैन्डल करना बहुत मुश्किल हो जाता है कई बार। उसे फिर डाँटना-करना पड़ता है।

दादाश्री : समझा-बुझाकर काम लेना। ज़रा ऊपर बैठे हों तो ऐसा कहना, 'नीचे बैठो, समझदार हो जाओ।'

प्रश्नकर्ता : ऐसा सब कहने पर भी फाइल नहीं मानती। कई बार ऐसा होता है।

दादाश्री : वह तो हो जाएगा दादा के नाम से कि, 'दादा का तो मानो' कहना। उसमें यदि थोड़ी-बहुत कमी रह जाएगी तो फिर से करना पड़ेगा। फिर उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन आप कहते हो न उसे? आप फाइल नंबर वन से कहते हो तभी से आप शुद्धात्मा हो गए, इसे आश्चर्य ही कहा जाएगा न! यह प्रमाण कुछ कम है? आप उसे कहते हो, तभी से खुद किसमें हो?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा में।

दादाश्री : तो फिर इसे क्या कुछ कम कहा जाएगा? आप तो फाइल नंबर वन कहते हो न, तो शुद्धात्मा पूर्ण हो गया। बाकी, अब फाइल नंबर वन के अलावा और क्या रहा? तब कहते हैं, 'सिर्फ शुद्धात्मा ही!'

वह यदि बहुत उछल-कूद करे तो कहना, 'चंदूभाई ज़रा धीरे। ऐसा मत करो। धीरे से काम करो।' दोनों अलग ही हैं। कहने वाला और करने वाला, दोनों अलग हैं। कहने वाला मतलब चेताने वाला। चेताता कौन है? चेतन। चेताने वाला और करने वाला, दोनों अलग हैं। इसलिए आप कहना, 'क्यों यह झंझट करते रहते हो? धीरे-धीरे काम लो न।' यदि एक दिन अकुला जाएँगे न, तो पाँच लोगों के केस

बिगड़ जाएँगे। इसलिए आपको उसे कहना पड़ेगा कि, 'आप घर से अकुलाकर आए हो तो उस वजह से यहाँ जल्दबाजी मत करना।' ऐसा सब कहना पड़ेगा। समभाव से *निकाल* किए बगैर तो कैसे चलेगा? आप अकुलाए हुए हों और खाने-करने बैठो तो चलेगा क्या? खाने का तो सब तरीके से करना पड़ेगा। अकुलाहट तो हो जाती है। मनुष्य देह है तो किसे नहीं होती होगी? सिर्फ ज्ञानी को ही अकुलाहट नहीं होती। अन्य सभी को तो अकुलाहट हो जाती है न! अकुलाहट हो जाती है क्या?

प्रश्नकर्ता : कई बार डिप्रेस भी हो जाते हैं।

दादाश्री : तब आप कहना कि, 'डिप्रेस मत होना। डिप्रेस क्यों होते हो? हम हैं न आपके साथ।'

प्रश्नकर्ता : फाइल नंबर एक डिप्रेस हो सकती है क्या?

दादाश्री : होती है न! डिप्रेस नहीं होगी तो और क्या होगा? एलिवेट होगी तो डिप्रेस भी होगी। खुश होगी और राज़ी होगी या नाखुश होगी, यही धंधा है उसका। आपको कुछ नहीं।

पहचान भिन्न, अहंकार और प्रज्ञा की

आप खुद कैसे थे, ऐसा आप देख पाओगे। यह पूर्व जन्म की फोटो है। यह जो क्रिया हो रही है यह पूर्व जन्म का प्रोजेक्शन है, प्रोजेक्शन है पिछले जन्म का। अभी यह फिल्म चल रही है। इससे पहले आप कैसे थे, ऐसा पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : यह किसे पता चलता है कि, 'हम पहले ऐसे थे, अभी ऐसे हैं।' क्योंकि जो ज्ञाता-द्रष्टा है, उसे क्या ऐसा कोई प्रश्न हो सकता है?

दादाश्री : यह सब जो है वह प्रज्ञा का है। अहंकार ऐसा भी कहता है कि, 'अरे, हम ऐसे थे।' प्रज्ञा कहती है, 'आप ऐसे थे।' ये दोनों, हम और आप हैं ही। आप, वह फाइल है और हम, वह हम

हैं। फाइल नंबर वन आप, यानी एक नंबर की फाइल को तो आप पहचानते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पहचानते हैं।

देह ज्ञेय और हम ज्ञायक

दादाश्री : फाइल नंबर वन जो है वह तो कर्माधीन है। अत: फाइल नंबर वन से कुछ गलत हो जाए तो उससे आपको क्या? आज आप शुद्धात्मा हो गए हो। यह जानता है न, कि पहले बनी होगी ऐसी फाइल। लेकिन अब तो आप शुद्धात्मा हो गए हो और यह जो फाइल है वह व्यवस्थित के अधीन है। अत: अब फाइल से उल्टा हो जाए, कोई बड़ा जंतु कुचल जाए, तो फिर, आप शुद्धात्मा हो इसलिए इसमें आपकी जवाबदारी नहीं है। आप तो ज्ञायक हो। आज अपने धर्म में रहने की ज़रूरत है। उस दिन अज्ञानता में अपना जो धर्म था वह किया था, कर्तापद का। अब ज्ञायक धर्म करना है। अब कर्तापद का धर्म नहीं हो सकता। उसे व्यवस्थित के ताबे में कहा गया है।

शुद्धात्मा का ज्ञायक स्वभाव है, कर्ता स्वभाव नहीं है। जिस स्वरूप हो गए हो, उस स्वरूप में रहने में क्या हर्ज है? आपको उसी स्वभाव में रहना है। ज्ञायक स्वभाव का फल क्या मिलता है? तो कहते हैं, परमानंद। वही आपको चाहिए, वह आपको मिलता रहेगा और इन फाइलों का *निकाल* समभाव से होता रहेगा। फाइलें अपनी ही बुलाई हुई हैं न? भूल से बुलाई थी न?

अब, 'मेरा है', ऐसा मुँह से बोलते तो हो, लेकिन अंदर ऐसा कुछ नहीं है न! हृदय से, कोई चीज़ मेरी है, ऐसा नहीं है न? ममता भी छूट गई न? एक घंटे के लिए भी किसी से इस देह का मालिकीपन नहीं छूट सकता। देह की बात करें न तब कहता है, 'देह तो मेरी है न, इसलिए मुझे ही दु:ख होगा न! मुझे लग गई है, मुझे टीस उठ रही है', ऐसा बोलते हैं। साधु-आचार्य महाराज ऐसा ही कहते हैं न? इसमें कुछ चलता ही नहीं न! क्योंकि जब तक 'मैं हूँ', ऐसा

देहाध्यास है, तब तक और कुछ कह ही नहीं सकते न! और आप तो कहते हो कि, 'मेरी फाइल बिगड़ गई है, फाइल नंबर वन।' यह ज्ञान कुछ कम नहीं है। ऐसा-वैसा ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान इतना सरल और आसान है!

प्रश्नकर्ता : अन्य सभी फाइलें हैं, उसका तो हम समभाव से *निकाल* करते हैं। लेकिन इस फाइल नंबर वन का समभाव से *निकाल* कैसे करें, यह स्पष्ट रूप से समझाइए। क्योंकि सारे दखल फाइल नंबर वन के ही होते हैं।

दादाश्री : उन दखलों को देखने से ही वे चले जाएँगे। फाइल है, ऐसा देखने से ही। टेढ़ा हो या मेढ़ा हो, उसे (खुद को) फाइल से बहुत झंझट नहीं रहती। वे 'देखने' से ही चले जाते हैं। यदि सामने वाली फाइल क्लेम करे तो उसका प्रतिक्रमण करना होगा। जबकि इसमें (फाइल-1 में) तो दावा दायर करने वाला कोई है ही नहीं न! यानी उन्हें 'देखने' से ही चले जाएँगे। मन में खराब विचार आते हों, ज़रा टेढ़े आते हों, बुद्धि खराब चल रही हो तो इन सब को 'देखते' ही रहना। जो भी कार्य कर रहे हो उसमें हर्ज नहीं है, उसे 'देखते' ही रहना है। यह पूरा तो सरल मोक्षमार्ग है, सब से आसान मोक्ष।

प्रश्नकर्ता : 'देखते' रहना यानी उससे सहमत नहीं होना है?

दादाश्री : सहमत तो होगा ही नहीं, वहाँ पर। देखता रह न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम से जो दखल हुआ, उसे हमने 'देखा' और 'जाना', तो हमारे दखल से सामने वाले को दुःख हुआ हो तो हमें प्रतिक्रमण करना पड़ेगा न?

दादाश्री : अतिक्रमण क्यों किया? सामने वाले को दुःख हो, ऐसा? उसके लिए प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। सामने वाले को दुःख हो ऐसा नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : रोज़ प्रतिक्रमण करते हैं, फिर भी नहीं सुधरता।

दादाश्री : नहीं, ऐसा तो बहुत माल भरा है, ज़बरदस्त माल भरा है। प्रतिक्रमण करना ही पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : 'यह तो बहुत माल भरा है', इस तरह बचाव तो नहीं हो जाता?

दादाश्री : नहीं-नहीं। बचाव तो इसमें होता ही नहीं न! पूरा जगत् प्रतिक्रमण नहीं करता। पूरा जगत् एक तो घूंसा मारता है और बाद में कहता है कि, 'मैंने सही किया है।'

फाइल एक का निकाल

प्रश्नकर्ता : फाइल नंबर एक का वास्तव में *निकाल* किया, ऐसा कब कहा जाएगा?

दादाश्री : फाइल नंबर एक बहुत गर्म हो गई हो और उस समय शांत हो जाए, तब समझना कि इस फाइल का सही में *निकाल* हुआ है।

प्रश्नकर्ता : यह समझाइए ठीक से।

दादाश्री : गर्म तो होगी न, लेकिन अब तो बंद हो जाएगा न! हमेशा ही यह जो संयोग है न, वह वियोगी स्वभाव वाला है। इसलिए अपने आप वियोग हो ही जाएगा। तब तक स्थिरता नहीं छोड़नी है आपको। वह तो चला जाएगा। वे तो अपने ही किए हुए हैं। अंदर क्या किसी का कम दखल है? किसी और का दखल हो तो बात कहने जाएँ कि, 'मुझे ऐसा होता है।' इसमें तो ऐसा कह भी नहीं सकते न? अपनी दखल का परिणाम हमें नहीं समझ जाना चाहिए? और दूर रहकर देखेंगे तो चला जाए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इस फाइल नंबर एक का *निकाल* करता हूँ न। अब अंदर जो कुछ होता रहता है वह बिल्कुल दिखाई देता है तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि फाइल नंबर एक का *निकाल* हो रहा है?

दादाश्री : क्यों नहीं होगा लेकिन? पहले तो अपने पास फाइल

नंबर एक की तरफ ऐसी दृष्टि ही नहीं थी। जो कुछ करते थे उसे, 'मैं ही करता हूँ' ऐसा कहते थे। अब तो फाइल नंबर एक जो करती है, उसे आप जानते हो।

प्रश्नकर्ता : एक तो क्या है... मानो कि अंदर क्लेश हो रहा होता है और हम जानते भी हैं।

दादाश्री : क्लेश हो ही नहीं सकता। यह विज्ञान ही ऐसा है कि क्लेश नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जो कुछ भी अंदर होता है वह क्या है?

दादाश्री : वह सफोकेशन है, घुटन है। उलझन हो जाती है न, कुछ समझ में नहीं आता, इस वजह से। इससे आपको उलझन होती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह सफोकेशन कैसे दूर हो सकता है?

दादाश्री : उसके लिए तो, ज्ञानी पुरुष की सभी आज्ञाओं का ठीक से पद्धतिपूर्वक पालन करो।

फाइल एक का निकाल, सूक्ष्मता से

इस पहले नंबर की फाइल के साथ कोई झंझट नहीं है न? किसी प्रकार की भी नहीं? ओहोहो! और कोई गुनाह नहीं किया था पहले नंबर की फाइल के प्रति?

मैं पूछता हूँ अपने महात्माओं से कि, 'पहले नंबर की फाइल का *निकाल* करते हो न, समभाव से?' तब कहते हैं, 'पहले नंबर की फाइल का क्या *निकाल* करना है?' अरे! सबसे महत्वपूर्ण तो पहले नंबर की फाइल ही है। आप जो दुःखी हो, आपको यहाँ पर जो दुःख लगता है न, वह असहजता का दुःख है। मुझसे किसी ने पूछा था कि, 'इस फाइल नंबर एक को फाइल नहीं मानें तो क्या हर्ज है? यह किस काम का? इसमें यह कुछ खास हेल्पिंग नहीं है।' तब मैंने ऐसा जवाब दिया कि, 'इस फाइल से तो बहुत ही माथापच्ची की है इस जीव ने। असहज बना दिया है।'

तब कहता है, 'इन अन्य फाइलों का हमने कुछ नुकसान किया हो तो समझ में आता है लेकिन अपनी फाइल का, पहले नंबर की फाइल का क्या नुकसान किया, यह समझ में नहीं आता।' ये जो सारे नुकसान किए हैं, उसे यदि स्पष्ट करेंगे न, तब समझ में आएगा।

'समभाव से *निकाल* करते हो इन सभी फाइलों का। फिर, इस दूसरे नंबर की फाइल के साथ तो झगड़े हुए होते हैं, झंझट हुई हो तो उसका समभाव से *निकाल* करते हो, लेकिन यह फाइल नंबर एक अपनी ही फाइल है। इसका क्या *निकाल* करना?' लेकिन लोगों को पता ही नहीं है कि क्या *निकाल* करना है। बेहिसाब *निकाल* करने हैं, यह मैंने उन्हें समझाया। तब उन्होंने भी कहा, 'यह भी बहुत सोचने जैसी बात हो गई...यह तो।'

बाहर भाषण चल रहे हों उन सब के, प्रधानमंत्री वगैरह के। उस समय थूकना हो तो थूकता नहीं है। सभा में बैठा हो, पेशाब करने जाना हो तो दो-डेढ़ घंटे तक नहीं जाता। होता है या नहीं होता ऐसा? संडास जाना हो फिर भी, 'अभी तो अब घंटे भर बाद।' वर्ना अगर सभा में से उठे तो इज़्ज़त जाएगी न? और यदि संडास जाना हो तो रोकता है क्या घंटे भर?

प्रश्नकर्ता : हाँ। तब भी रोकता है। उससे नहीं रुक पाए, तब जाता है।

दादाश्री : लेकिन ऐसा सब जो किया न, देह का जो सहज स्वभाव था, वह सहज स्वभाव टूट गया। इसे सहज रहने ही नहीं दिया। यानी कई बातों में ऐसा किया है। यानी कि पहले नंबर की फाइल को बहुत नुकसान पहुँचाया होता है।

इस शरीर को सहज नहीं रहने दिया। इसी तरह आपकी इस पहले नंबर की फाइल का समभाव से *निकाल* करना है। असहज हो गया है, सारी वृत्तियों को दबा-दबा कर। थक गया हो फिर भी चलता ही रहता है।

किसी होटल में खाने बैठा हो, पहले नंबर की फाइल का पेट भर गया हो लेकिन यदि अच्छा स्वादिष्ट भोजन हो तो ठूंस-ठूंसकर खाता है, उससे नुकसान होता है। पहले नंबर की फाइल को तो बहुत परेशान करते हैं लोग।

अच्छी पुस्तक हो तो पढ़ता ही रहता है, टाइम हो गया हो सोने का, तब भी। थोड़ा इन्टरेस्ट आता है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह पहले नंबर की फाइल ऐसी होगी, ऐसी कल्पना ही कैसे हो?

दादाश्री : हाँ, 'मैं ही हूँ' सब।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो आपके पास आए और आपने ऐसा कुछ जादूमंतर किया तब पता चला कि अब यह हमारी फाइल है। वर्ना हम भी वैसे ही थे।

दादाश्री : 'मैं ही हूँ', तो फिर तू चोटी क्यों बाँधता है? तब कहता है, 'मेरी परीक्षा चल रही है अभी।' ''अरे 'तू है' तो कर न! पढ़ न!'' तब कहता है, 'नहीं, नींद आ जाती है।' 'तो फिर क्या वह तू नहीं है?' फिर भी उसे भेद समझ में नहीं आता।

नाटक देखने जाना हो, तो पहले नंबर की फाइल को सोना हो फिर भी सोने नहीं देता और नाटक देखने जाता है। तीन बजे तक नाटक देखता है और नाटक में यों एकाध झपकी भी आ जाती है। तब यदि कोई कहे, 'भाई, नाटक देखो न, ऐसा क्यों कर रहे हो?' फिर जागता है। जाग न पाए तो आँखों पर कुछ चुपड़कर बैठता है। लेकिन कुछ भी करके, जबरदस्ती इससे काम लिया है। इस फाइल की नींद में अब्स्ट्रक्शन (रुकावट) डाले हैं। किसलिए? नाटक देखने के लिए नींद में अब्स्ट्रक्शन डालता है।

इससे अनियमित हो गया। अनियमित अर्थात् असहज हो जाता है। असहज होने पर आत्मा को असहज कर देता है। जिसका शरीर

सहज, उसका आत्मा सहज। यानी पहले फाइल नंबर वन को सहज करना है। जागरण करता है या नहीं? पुण्यशाली हो, आपके हिस्से में तो नाटक-वाटक नहीं हैं, हमारे हिस्से में तो बहुत नाटक थे। पहले नंबर की है क्या कोई भूल? पहले नंबर की फाइल देखने योग्य है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : है दादा! पहले नंबर की ही फाइल।

दादाश्री : यहाँ से मुंबई जाते हैं गाड़ी में, तो नींद को अब्स्ट्रक्ट करते हैं या नहीं करते लोग? सोने में भी जो है... तो वह गाड़ी में बैठा मुंबई जाने के लिए, पूरी रात का रतजगा। शरीर तो ऐसे हिचकोले खाता है। किसी पर गिर जाता है यों... जो साथ में होते हैं न! तब हमें लगता है कि, 'आप इतने बड़े आदमी होकर, कॉन्ट्रैक्टर जैसे आप ऐसे मेरे ऊपर गिरे! अपने कोट को फिर वह तेल वाला कर देता है। अब उनसे क्या कहें? कह भी क्या सकते हैं हम? क्योंकि उसका कोई गुनाह है नहीं। हम बैठे इसलिए हमारा गुनाह। उनका क्या गुनाह? वे तो सहज रूप से सोए हैं बेचारे। लेकिन देह को सहज नहीं होने दिया इसलिए असहज हो गए। उस वजह से यह सारा हिसाब है। भगवान क्या कहते हैं, 'देह को सहज करो।' जबकि इन्होंने असहज किया।

गाड़ी में अगर थकान लगी हो तब भी नीचे नहीं बैठता। पहले नंबर की फाइल क्या कहती है, 'बहुत थक गया हूँ' फिर भी यह आबरूदार आदमी नीचे नहीं बैठता। होता है या नहीं होता ऐसा? मैं कहूँ कि, 'बैठ न अब, बैठ।' तो 'ये लोग देखेंगे न!' 'लेकिन इन लोगों में से तुझे कौन पहचानता है और पहचानता हो तो भी क्या? कोई आबरूदार है इनमें? गाड़ी में कोई आबरूदार दिखा तुझे?' आबरूदार होंगे तो अपनी आबरू जाएगी। मैंने तो बहुत आबरूदार देखे हैं इसलिए मुझे तो समझ में आ गया था, तो जब थर्ड क्लास में सफर करता था, तब बैग होता था तो उसे नीचे रखकर उस पर बैठता था, बैग खराब हो जाए तो हर्ज नहीं।

यानी मेरा कहना है कि इस देह को असहज कर देता है और फिर कहता है, 'अब मुझे भूख नहीं लगती।' भूख लगती है उस समय लगता है, 'जल्दी क्या है? अभी बातचीत चलने दो।' डेढ़ घंटा बीत जाता है, ऐसा ही करता है न रोज़ाना। फिर कहता है, 'अब मेरी भूख बिल्कुल मर गई है।' तो भाई, कैसे जिंदा रहती वह? तूने प्रयोग ही ऐसे किए हैं न! अरे, भूख लगने के दो घंटे बाद खाता है, ताश खेलने बैठा ही रहता है। कुछ लोग मौज-मज़े में रह जाते हैं, 'हो रहा है, हो रहा है'... तो दो घंटे बाद, भूख मर जाने के बाद खाते हैं। यानी कि इस तरह से सबकुछ असहज हो गया है।

अरे! एक आदमी तो मैंने देखा था आज से तीस साल पहले। उसने स्टेशन पर चाय मँगवाई, और चाय वाले ने चाय का कप उसके हाथ में दिया। इतने में गाड़ी चलने लगी। अब उसके मन में ऐसा लगा कि, 'इस चाय के पैसे बेकार जाएँगे।' उसने चाय सीधे मुँह में उँडेल दी, भाई ने! जल गया। यह तो मैंने खुद देखा था। हाँ, चाय का पूरा कप उँडेल दिया अंदर। पहली रकाबी पी ली और बाद में पौन कप बचा न और गाड़ी चलने लगी तो उस दुकानदार ने कहा, 'अरे, पी लो, पी लो।' तो इसने पी ली। पीने के बाद जो जलन हुई। बड़ी परेशानी में फँस गया था बेचारा। ये लोग तो होशियार लोग हैं, पैसे ज़्यादा व्यर्थ नहीं जाने देते न? एक पैसा तक व्यर्थ नहीं जाने देते।

तो समझाने पर कहते हैं, 'ओहोहो! ऐसी चीज़ें बहुत की हैं।' तब मैंने कहा, 'तू आना। मैं तुझे संक्षेप में समझाऊँगा, उस पर से समझ जा ना।' समभाव से *निकाल* नहीं किया है फाइल नंबर एक का। इस फाइल को फिर से सहज करना है, समभाव से *निकाल* करके।

फाइल किसकी?

प्रश्नकर्ता : आपने आज्ञा दी कि समभाव से फाइल का *निकाल* करना, तो अब इस फाइल का समभाव से *निकाल* कौन करता है? रियल करता है या रिलेटिव करता है? क्योंकि रियल को तो सिर्फ देखते रहना है और रिलेटिव तो व्यवस्थित है फिर।

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति कर लेती है, मोक्ष में ले जाने के लिए।

प्रश्नकर्ता : यह जो फाइल नंबर एक है, वह किसकी है? शुद्धात्मा की या मूल आत्मा की या किसकी?

दादाश्री : अंदर जो प्रज्ञाशक्ति है न, उसकी। उन्हें मोक्ष में ले जाने के लिए प्रज्ञाशक्ति को स्थापित किया है, जो बंधे हुए थे उन्हें। अत: यह जो चंदूभाई है, वह इस प्रज्ञाशक्ति की फाइल है। क्योंकि 'उसे' मोक्ष में ले जाने में यह फाइल अंतराय डालती है। लेकिन आत्मा हाथ नहीं डालता न, सीधे-डायरेक्ट!

वहाँ होती है अध्यात्म विजय

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा कहने के बजाय 'यह फाइल नंबर एक है', उससे ज़्यादा जुदापन रहता है।

दादाश्री : हाँ, ज़्यादा जुदापन रहता है, जुदा ही रहता है। चंदूभाई के पीछे तो बहुत सी बलाएँ हैं। फाइल के पीछे तो बला ही नहीं रहती न! फाइल यानी बाकी का सब क्लियरन्स। आत्मा क्लियर, उसे कहते हैं फाइल।

प्रश्नकर्ता : फाइल नंबर एक अर्थात् एट ए टाइम (उस समय) जुदा ही रहता है।

दादाश्री : जुदा ही।

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदूभाई हूँ' इस स्मृति के बजाय इस फाइल नंबर एक की स्मृति ज़्यादा रहती है।

दादाश्री : चंदूभाई के पास तो वह सब बहुत है। चंदूभाई अक्लमंद है, कम अक्ल वाला है, ज़्यादा अक्ल वाला है। लंबा है, ठिगना है, काला है, श्याम है, चंदूभाई के पास ऐसी कितनी बलाएँ हैं और फाइल कहा तो सब आ गया उसी में।

प्रश्नकर्ता : उसका वर्णन नहीं करना पड़ता, आ जाता है सबकुछ।

दादाश्री : F... I... L... E... फाइल कहा कि सब आ गया।

यह तो फाइल है न! फाइल नंबर वन, इस पूरी फाइल में आत्मा है ही नहीं। अगर इस फाइल को हटा दिया तो उसमें किसी तरह का मिक्स्चर नहीं है और इस फाइल में एक परसेन्ट भी आत्मा नहीं है। समझ में आए, ऐसी बात है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : इसलिए हमने कौन से हिस्से को फाइल कहा है? तो कहते हैं, 'जिसमें एक परसेन्ट भी चेतन नहीं है, उसे।' और फाइल के सिवा कौन सा भाग शुद्धात्मा है? तो कहते हैं, जिसमें एक परसेन्ट भी अचेतन नहीं है, वह। हाँ, साफ-सुथरा, क्लियर। इसे फाइल नंबर वन बोला, उसे तो अध्यात्म विजय कहा जाएगा। वह तो खुद आत्मा होकर बोलते हैं! और यह तो 'फाइल' है। देह को तो खुद का माना ही नहीं है न? 'फाइल' ही हो गई है न! फाइल मतलब अलग। खुद अलग और फाइल अलग। फिर कोई लेना-देना रहेगा?

देह फाइल है, घर फाइल है, अँगूठी फाइल है, ज़ेवर फाइल हैं, कपड़े फाइल हैं, बक्सा फाइल है, सब फाइलें हैं। मैं और ये फाइलें, दोनों अलग हैं। यानी कि देह फाइल है, देह मुझसे अलग है। मन फाइल है, तो मन अलग है। इस तरह अलग हैं, ऐसा भान रहना चाहिए। उसे सब से बड़ा ज्ञान कहा गया है। आपको सब फाइल लगता है न?

ये फाइलें ही हैं, ऐसा जाने तब से तो वह मोक्ष में जाने वाला है। उसके लिए कोई एतराज़ नहीं कर सकता। बाकी, जगत् में कोई बड़ा संत पुरुष भी क्या कर सकता है? मेरा पेट, मेरे पैर। उन सभी को यदि फाइलें जाने तब तो काम ही हो गया न! जिसने जाना कि फाइलें हैं, तब उसका काम हो ही गया न! जिसने, फाइलें हैं ऐसा जाना, फाइल शब्द इटसेल्फ कहता है कि, 'मैं और यह अलग हैं!'

यह ज्ञान कितना सरल रखा है, यह सब। शुरू से ही फाइल कहा जाता है और तब वह एक्सेप्ट करता है। वह 'हाँ' भी कहता है।

प्रश्नकर्ता : लोग पढ़े-लिखे तो हैं न, तो यह भाषा उन्हें तुरंत समझ में आ जाती है कि, 'नहीं, यह तो फाइल है।'

दादाश्री : लेकिन ऐसा पुण्य लाए कहाँ से? दो महीनों में पच्चीस करोड़ कमाए, ऐसा पुण्य कहाँ से इकट्ठा हो? ऐसा पुण्य इन लोगों के पास इकट्ठा हुआ है, जो करोड़ों जन्मों में भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह घंटे भर में प्राप्त हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और ऐसे काल में!

दादाश्री : ऐसे काल में, हाँ।

हम यहाँ पहले दिन से ही जुदा कर देते हैं। वह ऐसा कहता है कि, 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ और यह चंदूभाई के नाम की फाइल है।' फाइल कहा, तभी से आत्मा जुदा हो गया। बाकी, किसी ने भी फाइल नहीं कहा है।

हमने फाइल कहा है, वह अच्छा है। नहीं? फाइल नंबर एक कहा यानी बन गया आत्मा।

प्रश्नकर्ता : यह पूरा साइन्स ऐसा है न, ऑटोमैटिक ही अलग कर देता है।

दादाश्री : विज्ञान अलग तरह का है।

प्रश्नकर्ता : इस 'फाइल' शब्द से ही लोग सोच में पड़ जाएँगे।

दादाश्री : बस, उसी से वह सब हो जाएगा। आमचा पोट, आमचा पोट, तो कहाँ तक आमचा पोट? पोट किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : पोट मतलब पेट।

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में खुद के शरीर को मेरा शरीर मानते

थे, खुद के पैर को मेरे पैर मानते थे और इसीलिए आगे देख-देखकर चलते थे, जंतु कुचल जाएगा मुझसे। और अपना यह अक्रम तो सीधे ही प्राप्त हो गया और इसे फाइल मानने लगे हम।

कोई भी साधु-आचार्य महाराज शरीर को फाइल नहीं कहते। 'यह मेरा शरीर है।' फाइल कहते हैं क्या? 'मेरा शरीर, ये दाँत मेरे हैं, नाक मेरी है, आँखें मेरी हैं और मेरा यह शरीर बहुत मोटा हो गया है, मेरा शरीर बहुत पतला है, यानी सूख गया हूँ। मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ', तो सब शरीर की ही झंझट है न?

'मैं आत्मा हूँ, जुदा हूँ', ऐसा कहता है न, तब वह आत्मा, आत्मा के रूप में नहीं रहता और 'ये सब फाइलें हैं', कहा तो आत्मा रूप से है। क्योंकि फाइल में आत्मा के सिवा सारी चीज़ें आ जाती हैं और फाइल नंबर वन कहते ही आत्मा साबित हो गया। मैं आत्मा ही हूँ, शुद्धात्मा हूँ। बहुत बड़ा विज्ञान है यह तो।

यह फाइल है ऐसा भान ही नहीं है इस जगत् को! तब मुझे एक व्यक्ति ने कहा था, 'इसमें फाइल शब्द रखें तो उसका अर्थ इतना ही हुआ कि आत्मा के अलावा जो सारी चीज़ें बाकी बचीं, उन्हें आप फाइल कहते हैं!' यानी कि इसे फाइल नंबर वन कहो तो आप शुद्धात्मा हो गए। क्योंकि वह जुदा हो गया। फाइल नंबर वन बोलते ही फिर आत्मा जुदा हो गया। क्योंकि आप शुद्धात्मा हो और सामने फाइल नंबर वन, दो ही हैं। 'फाइल नंबर वन का मुझे समभाव से *निकाल* करना है', ऐसा भाव किसे होता है? तो कहते हैं, 'दूसरे को, जो जुदा हो जाता है उसे।' तो पूछते हैं, 'आत्मा में वह भाव कहाँ है?' तो कहते हैं, 'जब तक प्रज्ञा है, तब तक वहाँ प्रज्ञा का भाव रहता है।' प्रज्ञा उत्पन्न होती है और प्रज्ञा काम कर लेती है। मूल आत्मा काम नहीं करता। जब सम्यक् दर्शन होता है तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जिसे कृष्ण भगवान ने स्थितप्रज्ञ कहा है, वह अलग है। स्थितप्रज्ञ दशा, वह अलग है और यह तो सहज प्रज्ञा है। मोक्ष में ले जाने तक छोड़ेगी ही नहीं आपको। सावधान, सावधान, सावधान करती रहेगी। उसका

स्वभाव ही मोक्ष में ले जाने का है। कुछ भी करके, इधर से, उधर से हिलाकर लेकिन आखिर में राह पर ला देती है।

फाइल कहते ही ममता गायब

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें आपने जो फाइल शब्द रखा है न, उस फाइल शब्द का अंग्रेजी अर्थघटन इतना बड़ा है कि फाइल शब्द आया तो लगता है कि यह मेरा नहीं। तब समभाव करने के लिए अंदर ज़रा पॉज़िटिव हो सकते हैं।

दादाश्री : फाइल शब्द अर्थात् 'फाइल नंबर वन', जो ऐसा बोलता है, वह आत्मा है। यह बात पक्की हो गई। इतनी गहन बात है यह।

प्रश्नकर्ता : एक मनोवृत्ति उत्पन्न होती है न, कि समभाव से *निकाल* करना है तो पूरा द्रष्टाभाव उत्पन्न होता है और अहम् चला जाता है।

दादाश्री : हाँ, वह चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए फिर 'हाँ, खबर लूँगा, देख लूँगा', वह चीज़ नहीं आती।

दादाश्री : हाँ, चला जाता है सब।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् इस ज्ञान में जो प्रयोग के लिए इस्तेमाल हुआ है जैसे फाइल और समभाव से *निकाल,* इस तरह फाइल बोलने से अंदर से एक प्रकार की ऐसी समझ पैदा हो जाती है कि यह अपना नहीं है, यह पराया है और इसलिए समभाव से *निकाल* करने में सरलता रहती है। यदि अपना मानते हैं तो समभाव से *निकाल* करने में कठिनाई होती है।

दादाश्री : फाइल यानी 'ऐसी चीज़ जो अलग है।' सभी को पता चलता है। ये शब्द ऐसे निकले हैं न सारे!

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जो कहते हैं, उससे ऐसा लगता है कि

आपने जो भी बोला है, भविष्य में उस पर से शास्त्र बनेंगे। ऐसा ही लगता है मानो यह वाक्य शास्त्र का ही है। फाइल शब्द जो रखा है, अब उसका विवरण करने वाले करेंगे कि फाइल मतलब क्या?

दादाश्री : जितने शब्द निकले हैं, उतने सभी एक्ज़ेक्ट हो गए हैं न!

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट हो गए हैं।

दादाश्री : बेटे और उसके बीच संबंध है लेकिन इन फाइलों और आपके बीच संबंध नहीं है। क्योंकि फाइलें हमेशा अलग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : फाइल शब्द इस्तेमाल किया जाए तो ममता नहीं रहती।

दादाश्री : ममता नहीं हो तभी फाइल है, और तब ममता भी खत्म हो जाती है। पूरा तरीका ही वैज्ञानिक है। उसका रास्ता ही वैज्ञानिक, इसलिए घंटे भर में फल देता है! आपको ज्ञान लेते समय घंटा भर ही लगा था या ज़्यादा लगा था? लेकिन कैसा उग निकला! नहीं तो कितने जन्म में ज्ञान प्रकट होता है! यह तो अपना अक्रम विज्ञान है इसलिए वह ऐसा समझता है कि, 'यह फाइल नंबर टू, यह फाइल नंबर वन', इस वन नंबर की फाइल को पहचानता है। विज्ञान बहुत फर्स्ट क्लास है यह।

प्रश्नकर्ता : यह जो फाइल नंबर वन है, यह तो ग़ज़ब की खोज है।

दादाश्री : ऐसा है न, ये सब, यह एक-एक शब्द खोज है। वर्ना करोड़ों जन्म में भी मुक्त नहीं हो पाए मनुष्य।

'निकाल' शब्द का इफेक्ट

प्रश्नकर्ता : आपने *निकाल* शब्द का जो प्रयोजन किया है, उससे इंसान पर सायकोलॉजिकल इफेक्ट होता ही है। यह *निकाल* शब्द ही ऐसा है।

दादाश्री : इफेक्ट होता ही है, *निकाल* शब्द का। ये एक-एक शब्द इफेक्टिव हैं, सिर्फ *निकाल* ही नहीं, रियल और रिलेटिव तो व्यक्ति के लिए इतना इफेक्टिव हो जाता है, यानी कि ये सारे शब्द इफेक्टिव हैं और *निकाल* तो बहुत बड़ा शब्द है। ये एक-एक शब्द, ये तो आज ही नहीं लेकिन इनका तो आगे जाकर भी पृथक्करण होगा।

'*निकाल*' शब्द अच्छा लगता है न? यह '*निकाल*' शब्द शास्त्रों में कहीं भी नहीं है। किसी शास्त्र में हो ही नहीं सकता न! 'समभाव से *निकाल* करना' यह अक्रम विज्ञान का प्रताप है! लोग तो इतने खुश हो गए हैं, इस विज्ञान से।

प्रश्नकर्ता : इस '*निकाल*' शब्द का इस्तेमाल करने के बाद कहीं भी आग्रह नहीं रहता, वर्ना सभी जगह आग्रह था।

दादाश्री : हाँ, आग्रह ही रहता है जबकि यहाँ तो, न ग्रहण है, न ही त्याग। *निकाल* ! अपने इस समभाव से फाइल के *निकाल* में, जप, तप, त्याग सबकुछ आ जाता है।

यदि कोई ऐसी बातें कर रहा हो कि, 'अब इस दुकान का *निकाल* कर देना है' तब हम समझ जाते हैं कि क्या *निकाल* करना चाहते हैं, और फिर उसका कैसा परिणाम आएगा, वह भी हम समझ जाते हैं। '*निकाल*' शब्द कहेंगे तो समझ में आएगा और 'बेच देना' कहेंगे तो समझ में नहीं आएगा। क्योंकि क्या सामान है और बिकने वाली चीज़ किसे कह रहे हैं? लेकिन '*निकाल*' कहते ही तुरंत समझ जाते हैं कि इसका *निकाल* कर देना है।

'*निकाली* है' यानी कि तेरी *निकाली* और इसकी *निकाली*। आप अलग और यह *निकाली* अलग, इससे अभेदता उत्पन्न होती है। यह इतनी अधिक साइन्टिफिक चीज़ है कि जब इसका पृथक्करण करेंगे न, जब फॉरेन के वे साइन्टिस्ट मुझसे मिलेंगे तब यह बात ज़्यादा समझ में आएगी। यदि ऐसा योगानुयोग हुआ न, और मुझसे मिलना हुआ तो

उन्हें आगे की सारी रूपरेखा दूँगा। फिर बीवी-बच्चे वगैरह, वह चीज़ तो *निकाली* बात है, यह उसकी ग्रहणीय बात नहीं है। त्याग की बात हो तब भी वह बला है। ग्रहण की बात हो तब भी बला ही है न! उन *निकाली* बातों का लगाव नहीं रहा। त्याग हो न, तो त्याग में और *निकाल* में अंतर है या नहीं? क्या अंतर है, बताओ?

त्याग चीज़ क्या कहती है? अपने यहाँ कहावत है *'त्यागे इसकु आगे'* ऐसी कहावत सुनी है? 'त्यागे सो आगे।' यदि किसी ने यहाँ एक बीवी छोड़ दी तो फिर देवगति में उसे और भी अच्छी बीवियाँ मिलेंगी। यानी कि आपने जो छोड़ा, उससे पुण्य बंधन होता है और उसका ज़्यादा फल मिलेगा। यह समझ में आया न? *'त्यागे इसकु आगे',* जितना त्याग करेगा आगे जाकर उसे उसका फल मिलेगा। आप यहाँ से, घर में से दस मन अनाज खेत में डाल आए, वह त्याग किया। फिर उसका फल आगे आएगा न! उसी तरह इस दुनिया में त्यागे सो आगे। 'यदि तुझे चाहिए तो त्याग कर', कहते हैं।

और यह '*निकाल*' अर्थात् लेना भी नहीं और देना भी नहीं। '*निकाल*' कर दो, भाई। आपको अब लेना-देना नहीं रहा। यानी कि *निकाली* चीज़ों का विज्ञान अलग तरह का है।

निकाल और फाइल। '*निकाल*' यानी क्या कहना चाहते हैं कि, 'जिस विज्ञान में त्याग करने को नहीं कहते, ग्रहण करने को नहीं कहते, वहाँ *निकाल* करना होता है।' अपने यहाँ तो ग्रहण भी नहीं करना है, त्याग भी नहीं करना है। ग्रहण-त्याग अहंकारी कर सकते हैं। पूरा जगत् ग्रहण-त्याग में ही पड़ा हुआ है। साधु, गृहस्थी के आचारों का त्याग करते हैं और फिर साधुपन के आचार ग्रहण करते हैं। अत: मुक्ति कभी भी नहीं मिलती। वह चीज़ ही ऐसी नहीं है कि मुक्ति मिल सके। मुक्ति तो ऐसी होनी चाहिए कि शुरू से ही, एक-एक वाक्य मुक्त लगे आपको। मुक्त लगे, मिठास वाले लगें वाक्य। अत: उसकी बात अलग है। बाकी तो यह सब जंजाल है, यह तो उलझने हैं।

दादा का है यह विज्ञान

अब सिर्फ यही करने जैसा है। यह विज्ञान है, यह धर्म नहीं है। इसलिए आप यहाँ मुझसे कुछ पूछो न, और फिर आपको जो बताएँ उसी अनुसार करना। समभाव से *निकाल* करना है। बहुत बल है इसमें तो। एक शब्द में तो इतना वचनबल रखा है कि छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है और नुकसान कुछ होना नहीं है। वर्ना नुकसान तो, जब से इस दुनिया में आए हैं तब से फायदा और नुकसान तो है ही।

'समभाव से *निकाल* करना है', ऐसा कहने से अंदर पूरा परिवर्तन हो जाता है। हमारी वाणी का वचनबल है यह। इस वाक्य में वचनबल रखा गया है। उससे बहुत अच्छा काम होता है। और आखिरकार दो साल में, पाँच साल में भी उसके साथ समभाव से *निकाल* हो जाएगा। व्यवहार में उसके साथ संबंध ही नहीं रहेगा, राग-द्वेष वाला संबंध ही नहीं रहेगा, 'फाइल' नहीं रहेगी।

अब, 'समभाव से *निकाल* किया', यह एक वाक्य क्या कहता है? उतना पुण्य बंधन होता है, उससे अगले जन्म में हल आ जाता है। इस 'फाइल का समभाव से *निकाल'* का अर्थ ही ऐसा है। यह आत्मा को आत्मा बना दे, ऐसा है। किसी काल में होता ही नहीं न! आज कोई मानेगा नहीं यह बात! वह चखेगा तब मानेगा।

अहो! अहो! यह अक्रम विज्ञान

इसलिए ऐसा कहता हूँ, 'यह अक्रम विज्ञान बहुत साइन्टिफिक है, विज्ञान है।' इसका तो, जब यह प्रकाश में आएगा तब पता चलेगा कि यह क्या है! एक दिन पूरा जगत् सौ, दो सौ, पाँच सौ साल बाद भी आफरीन होगा इस पर। विज्ञान अर्थात् अविरोधाभास, सिद्धांत। सिद्धांत उसे कहते हैं जो कि कभी भी असैद्धांतिक नहीं हो सकता। बाकी, अन्य कहीं पर सिद्धांत है क्या? कहीं पर सिद्धांत देखा ही नहीं गया है न! पच्चीस पन्ने पढ़ें हो, तो वहाँ विरोधाभास हो जाता है। यहाँ

तो कभी विरोधाभासी वाणी निकली ही नहीं है। फ्रेश है, नई है, उसे हेल्प करती है।

वही है लेकिन फ्रेश है। फाइल शब्द तो बहुत अच्छा रखा है अंग्रेजी में। क्योंकि लोग बाद में खोजेंगे कि यह किस युग में हुआ होगा? यानी अंग्रेजों के युग में हुआ होगा, ऐसी खोज करेंगे। फिर, 'कोई बाप भी रचने वाला नहीं है', चरोतर में हुआ है यह। यानी कि यह भाषा इटसेल्फ सब बता देगी। खोजने वाले को मिल जाएगा।

दस लाख साल के बाद प्रकट हुआ यह विज्ञान

प्रश्नकर्ता : दादा का यह जो विज्ञान है, उसमें हमें मौलिक चीज़ यह लगी कि दादा अहम् का विरेचन कर देते हैं। अहम् का निरसन (खात्मा) कर देते हैं और अन्य किसी स्थान पर अहम् का निरसन नहीं देखा।

दादाश्री : नहीं हो सकता, हो ही नहीं सकता। हुआ ही नहीं है कभी, इसलिए दस लाख साल कहा है। अक्रम दस लाख साल बाद आया है। इस अहम् के चले जाने से आपकी और भगवान महावीर की दशा में अंतर इतना रहा कि महावीर की दशा में उन्हें *निकाल* नहीं करना होता था। उनकी फाइलें ही नहीं थीं और आप फाइलों में उलझे हुए हो, इतना ही फर्क है। बाकी, वे चिंता रहित थे और आप भी चिंता रहित हो!

बिना फाइल वाले, वे भगवान

कोई और है ही नहीं, अपनी भूलों का फल हमें भुगतना है। मालिकी अपनी, *ऊपरी* भी कोई नहीं। जो भीतर बैठे हैं, वही अपने भगवान। ये शुद्धात्मा, यही भगवान हैं। बिना फाइल वाले शुद्धात्मा, भगवान कहलाते हैं और फाइल वाले शुद्धात्मा, वे शुद्धात्मा कहलाते हैं।

जब तक चंदूभाई की फाइलें हैं, तब तक आप शुद्धात्मा हो।

जब तक फाइलें हैं तब तक बुद्धि रहेगी, लेकिन आप इन सभी से जुदा हो। आप इनमें से एक भी नहीं हो। दादा ने यह जो जुदा किया है तब से, यदि फाइलें हों तो बैठना, बैठकर उनके साथ घूमना। अच्छा नहीं लगता फिर भी साथ में रहना पड़ता है इसलिए अंदर ज़रा चुभता रहेगा लेकिन अंदर से अलग होने के बाद फिर अलग ही है। इन फाइलों का समभाव से *निकाल* करेंगे तो सब से छूटते जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : आप जैसी स्थिति प्राप्त करनी है दादा, सभी फाइलें होने के बावजूद भी असर न डालें।

दादाश्री : हाँ, यानी कि अब फाइल के रूप में लाए हो। अब फाइल का समभाव से *निकाल* कर लेना है। बस, तो हो गया, सारा काम हो जाएगा।

[4.1]

भरा हुआ माल

'नहीं है मेरा' कहने से, छूट जाएगा

प्रश्नकर्ता : हम जानते हैं कि यह करने जैसा नहीं है, यह गलत है फिर भी भूल हो जाती है। क्या ऐसा पिछले जो सारे कर्म लेकर आए हैं, उनके कारण?

दादाश्री : वह तो कचरा माल भरकर लाए थे। 'पूछे बगैर' भरा हुआ माल। अज्ञानी लोगों को समझ में आए वैसा सारा माल। वह हमें निकालना तो पड़ेगा न? जैसा भरा हुआ माल है, वह।

ऐसा जो समझ में आता है कि, 'यह गलत माल भर लाए हैं', वहाँ पर आत्मविज्ञान है, वहाँ प्रज्ञा है, वह 'देखती' है। देखने वाले में प्रज्ञा है। प्रतिक्रमण करके 'यह मेरा नहीं है', इतना बोलेगा तो भी बहुत हो गया। 'मेरा' कहकर चिपकाया है। अब, 'यह मेरा नहीं है', कहकर छोड़ देना है। ज्ञान देने के बाद अच्छा रहता है। ज्ञान दिए बगैर नहीं हो सकता। जब ज्ञान देते हैं तब सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं न! तभी से हल्का हो जाता है। वर्ना बेचारे सत्संग सुनते रहते हैं लेकिन कुछ हासिल नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लिए पाँच-पाँच साल हो गए हैं फिर भी अभी तक हम से मेल क्यों नहीं बैठ पाता?

दादाश्री : अब तो ऐसा ही कहा जाएगा कि मेल बैठ गया। ऐसा किस तरह का मेल बैठाना है?

प्रश्नकर्ता : इन भूलों में से।

दादाश्री : अंदर साफ हो जाएगा। अभी भी माल तो निकलता रहेगा। जो कचरा भरा है न, वह तो निकलेगा ही न? वर्ना टंकी खाली नहीं होगी न? पहले तो ऐसा समझते ही नहीं थे कि कचरा निकल रहा है। अच्छा निकल रहा है, यही समझते थे न? उसे कहते हैं संसार, और अगर ऐसा समझ लिया कि 'यह कचरा माल है', तो वह है मुक्त होने की निशानी।

ऐसा है न, जैसे-जैसे साल बीतेंगे न, वैसे-वैसे मोह कम होता जाएगा, बढ़ेगा नहीं। फिर कुछ सालों बाद तो बिल्कुल खत्म हो जाएगा। आप देखने जाओगे तो टंकी में कुछ भी नहीं बचा होगा। तब उस समय अवरोध नहीं आएँगे, उस समय बहुत मज़ा आएगा।

यह तो है सिद्धांत

प्रश्नकर्ता : मुझे लगता है कि ऊपर से मैं अच्छा दिखाई देता हूँ लेकिन मेरा स्वभाव वैसे का वैसा ही है।

दादाश्री : हम जानते ही हैं कि यह माल ऐसा ही है। एक-एक बोतल (ज्ञान की) पिलाते ही हैं, रोज़। यह स्वभाव पूरा चेन्ज हो जाएगा। परिवार में खोजेंगे कि, 'अपने भाई कहाँ गए?' क्योंकि बहुत पावरफुल है यह ज्ञान तो। यह सारा (ज्ञान) कोई घोटाले वाला नहीं है, लेकिन अब कचरा माल भरा है तो उसका क्या हो सकता है?

फिर मुझसे कोई कहे कि, 'दादा, यह तो अपने घर में तकरार कर रहा था।' वह तकरार करके भी भरा हुआ माल खाली कर रहा है न! कुछ नया भर रहा है क्या? इसका उपयोग करने लगा है तो वह खाली हो जाएगा। अपने पास नई आमदनी नहीं है। नई आमदनी नहीं हो और खर्च होता रहे तो फिर बचेगा क्या?

बाकी, यह तो सिद्धांत है। यह सिद्धांत किसी जगह ब्रेक डाउन होता हो तो मुझे बताओ! अपना सिद्धांत ब्रेक डाउन नहीं होता।

भरा हुआ माल लाए थे, वह मुझसे पूछकर लाए थे?

प्रश्नकर्ता : पूछे बगैर।

दादाश्री : हाँ, सब पूछे बगैर भरते गए थे। स्टोर (दुकान) में गए तब जो आया सो ले लिया, खुद को जो अच्छा लगा वह। लेकिन दादा से नहीं पूछा कि, 'यह लूँ या नहीं लूँ।' मुझसे पूछकर लिया होता तो चिपकता नहीं कुछ। क्योंकि, मेरी आज्ञा द्वारा हुआ, ऐसा कहलाता न! अब वह चिपका हुआ उखड़ गया है, लेकिन भरा हुआ माल निकल रहा है।

प्रश्नकर्ता : गाड़ी को कंट्रोल में रखने के लिए हम कुछ नियमों का पालन करते हैं। एक स्पीड लिमिट को पार नहीं करते। नब्बे-पचानवे की स्पीड रखेंगे तो टकरा जाएँगे। उसी तरह हमारे जीवन में, यानी कि चंदूभाई को, देह को थोड़ा कंट्रोल में रखना पड़ेगा न?

दादाश्री : वह गाड़ी, उसका तो कंट्रोलर है न! कंट्रोलर बनोगे उसके बाद फिर नियम में रखने के लिए प्रयत्न करने पड़ेंगे। लेकिन फिर भी नियम में नहीं रह पाते क्योंकि यह परसत्ता है, अपनी सत्ता है ही नहीं। खुद ने उसे अपनी माना और लोग भी यही मनवाते हैं। खुद की सत्ता मान लिया न, इसलिए उसे कंट्रोल करने जाते हैं। भरी हुई टंकी को यदि खाली नहीं करोगे और उसका अगर कंट्रोल करोगे तो आगे जाकर आपका यह ज़्यादा लंबा चलेगा। यह डिस्चार्ज अर्थात् भरी हुई टंकी।

प्रश्नकर्ता : अभी ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : अपना यह चार्ज नहीं रहा है अब। कर्म का कर्ता नहीं रहा। कॉज़ेज़ नहीं रहे। सिर्फ इफेक्ट रहा। इफेक्ट मतलब भरी हुई टंकी। यदि आप उसे कम करने जाओगे तो लंबा चलेगा। उसके

बजाय निकल जाने दो, जितना हो सके उतना जल्दी। जो निकले उसे 'देखते' रहो। इफेक्ट हमेशा कैसा होता है कि अपनी टॉर्च में सेल डालते हैं न, अब सेल का कम इस्तेमाल करेंगे तो लंबी चलेगी और ज़्यादा इस्तेमाल करेंगे तो जल्दी हल निकल आएगा। सेल मुक्त हो जाएँगे और आप भी मुक्त हो जाओगे। मन-वचन-काया की ये तीन बैटरियाँ हैं। उनमें पावर भरा है। उस पावर का अब इस्तेमाल हो रहा है। नया पावर नहीं भरा जा रहा है। अतः पावर यदि जल्दी इस्तेमाल हो जाएगा तो जल्दी हल निकल आएगा। फिर तो एकदम निरंतर समाधि रहेगी और अपना सारा काम चलता रहेगा।

टंकी भरी है, जिसकी बड़ी भरी है उसका बड़ा माल और छोटी भरी हो तो छोटा। कुछ खास तरह का माल भरा होता है। विषयों का ज़्यादा भरा हो तो उसका विषय ज़्यादा निकलता है। जिसने मान का ज़्यादा भरा हो तो मान ज़्यादा निकलता है। जिसने हिंसा का ज़्यादा भरा हो तो हिंसा का ज़्यादा निकलता है। जिसने जो भरा हो, सारा वही माल निकलता है। उसे 'देखते' रहना है आपको।

कर्तापन छूटने के बाद अब करने जाओगे तो वैसा कुछ हो सके, ऐसा नहीं है। वैसे भी किसी से कुछ हो नहीं सका है। यह तो इट हैपन्स, हो रहा है, उसमें खुद को कर्ता मानता है। इन तीन बैटरियों में पावर भरा है। नया पावर बंद हो जाए तो फिर बैटरियाँ डिस्चार्ज हो जाएँगी। तो मुक्त हो गए और अभी से दुःख मुक्त हो गए हो। अब दुःख रहता ही नहीं। राग-द्वेष नहीं होते, वीतरागता रहती है। यानी चंदूभाई क्या करते हैं, वह आपको 'देखते' रहना है, बस इतना ही काम है!

इस जन्म में क्षायक समकित प्राप्त हुआ है। अब जितना हमारी आज्ञा में रहोगे उतनी समाधि रहेगी। अब आपको निरंतर इन आज्ञाओं में रहना है, लेकिन अंदर जो माल भरा है वह रहने नहीं देता। इसलिए हो सके उतने ज़्यादा प्रयत्न करने हैं आपको। माल का स्वभाव क्या है? आज्ञा में नहीं रहने देना। अब वह माल क्या भरा हुआ है? तब कहते हैं कि, इधर से मूर्च्छा के परमाणु भरे, इधर से अहंकार के

परमाणु भरे, इधर से लोभ के परमाणु भरे, सारे जो परमाणु भरे न, अब वे जो परमाणु हैं, तो जब उनका समय हो जाए न, तब फिर वे ढोलक बजाते हैं। 'अरे! तुम क्यों ढोलक बजा रहे हो?' तब कहते हैं, 'हम हैं न अंदर।' तो उनका समभाव से *निकाल* कर लेना।

निकाल करना है या हो रहा है?

जैसे-जैसे यह माल निकलता जाएगा, वैसे-वैसे खाली होता जाएगा। भरे हुए माल को द्रव्य संग्रह कहा जाता है। वह अच्छा भी हो सकता है और गलत भी हो सकता है, दोनों हो सकता है। भाव जागृति हो जाने के बाद निकलता है, वर्ना नहीं निकलता। इन लोगों को भाव जागृति नहीं है इसलिए वहाँ द्रव्य संग्रह में ही पड़े रहते हैं। अच्छा आया तो अच्छा और गलत आया तो गलत।

प्रश्नकर्ता : भाव जागृति आने के बाद अच्छा-गलत दोनों का *निकाल* ही होता रहता है?

दादाश्री : *निकाल* ही होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब दादा, आपने भाव जागृति की बात की। भाव जागृति होने के बाद *निकाल* होता रहता है। अब किसी का अच्छा डिस्चार्ज हो रहा हो तो भले ही अच्छा हो, सुगंधीदार हो, लेकिन उसका भी जब तक पूरा-पूरा डिस्चार्ज नहीं हो जाता तब तक...

दादाश्री : तब तक *निकाल* कहलाएगा ही नहीं न! लेकिन अच्छा-गलत तो हम यहाँ कहते हैं, वहाँ पर नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, लेकिन आपने यह *निकाल* की बात कही कि, 'जो अच्छा है, उसका भी *निकाल* करना पड़ेगा।' तो फिर अच्छे में भी अभिनिवेष बिल्कुल रहेगा ही नहीं न?

दादाश्री : वह तो होगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : हं, क्योंकि आज चाहे कितना भी अच्छा हो फिर भी उसका *निकाल* करना है।

दादाश्री : *निकाल* करना है। इसलिए '*निकाल*' शब्द रखा है। उसका *निकाल* कर देना है। अच्छा-गलत वहाँ पर है ही नहीं न! यानी कि इसे तो डिस्चार्ज करना है, इसका *निकाल* कर लेना है।

प्रश्नकर्ता : अब *निकाल* करना है, लेकिन उसमें भी आपका ज्ञान तो इस प्रकार का है कि *निकाल* करना नहीं है, लेकिन *निकाल* हो ही रहा है, खुद यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो।

दादाश्री : यह शब्द उसकी समझ में आ जाना चाहिए। *निकाल* हो रहा है। *निकाल* करना कहने से शब्द उसकी समझ में आ जाता है और वह *निकाल* करता ही है। क्योंकि डिस्चार्ज अहंकार से *निकाल* होता ही रहता है। अतः *निकाल* कर ही रहा है। फिर 'वह हो रहा है' ऐसा ज़रा आगे की स्टेज में है, जब देखने वाला तैयार हो जाएगा तब। यानी कि जब तक 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा प्रतीति में हो तब तक, 'मैं *निकाल* कर रहा हूँ', ऐसा कहता है। फिर जैसे-जैसे प्रतीति ज्ञान में परिणमित होती है वैसे-वैसे खुद को दिखता जाता है कि *निकाल* हो रहा है। बाद में ऐसा रहा करता है।

भरा हुआ माल निकलना ही चाहिए

प्रश्नकर्ता : दादा, जो घटना हुई हो वह हमारे ध्येय को नुकसान पहुँचती हो तो उस पर विचार करके हम उसे पूरा समझ लें तब फिर वह चीज़ नहीं होनी चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, वह होगी ही। होनी ही चाहिए। नहीं होगी तो गलत कहा जाएगा। अंदर जितना माल भरा है उतनी होगी। जो नहीं भरा होगा वह नहीं होगा। तुझे तो प्रतिक्रमण करते रहना है। 'नहीं होनी चाहिए', इसे करने वाला फिर वह कौन है? करने वाला तो अकर्ता किरतार बन गया। यह तो, समझ नहीं है तभी ऐसा कहता है न!

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा हो जाता है। इसलिए मैंने पूछा कि यह फिर से ऐसा क्यों हो जाता है?

दादाश्री : आपने उल्टा-सुल्टा किया हुआ है तो फिर क्या हो सकता है? हर एक काम में नहीं होता, कुछ ही कामों में होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा बोध लेने की और सार निकालने की वह शक्ति कैसे खिलेगी, दादा?

दादाश्री : शक्ति है ही अंदर। बोध भी लिया हुआ है। गलत है, ऐसा भी जानता है लेकिन रुकता नहीं है न? माल का जत्था ज़्यादा भरा है, इसलिए वह रुकता नहीं है और यदि कम भरा हुआ हो तो रुक जाता है।

प्रश्नकर्ता : हमारा स्वरूप जब इस हद तक शुद्ध हो जाएगा तब हमारा एक-दो जन्मों के बाद मोक्ष होगा न?

दादाश्री : स्वरूप तो शुद्ध हो चुका है। अब दुकान खाली करनी बाकी है। दुकानदार था, वह दुकान बढ़ाता जा रहा था। फिर अंदर से थक गया और बहुत दु:खी हो गया। तब कहता है, 'अब दुकान खाली कर देनी है।' फिर दुकान खाली करने की शुरुआत की। लेकिन वह पूरी तरह से कैसे खाली करे? वह तो, यदि इस जन्म में कोई ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ तो। ज्ञानी पुरुष उसका रास्ता बताएँगे कि दुकान कैसे खाली करनी है! जो सारी शर्तें ज्ञानी पुरुष बताएँ उन शर्तों के अनुसार फिर समभाव से *निकाल* कर देना सब का।

कर्ज़ की वजह से नहीं दिखता मुनाफा

प्रश्नकर्ता : दादा का ज्ञान मिलने के बाद ज्ञान प्रकाश के सारे ही प्रवाह खुल क्यों नहीं जाते?

दादाश्री : सभी हो चुके हैं, लेकिन आपके पहले के जो डेबिट साइड के कर्ज़ हैं न, वे प्रेज़न्ट होते रहते हैं। बाकी, सारे ज्ञान खुल गए हैं। अब यह कर्ज़ चुकाए जा रहे हैं न, जब तक इस कर्ज़ की भरपाई हो रही हैं न, तब तक आपको जितने चाहिए उतने रुपये खर्च करने को नहीं मिलता। अभी हाथ तो तंग ही रहता है, ऐसा है यह।

पिछला कर्ज़ बेहिसाब है, ये सभी कर्ज़ चुका रहे हैं। जैसे-जैसे कर्ज़ कम होता जाएगा, वैसे-वैसे वह हल्का होता जाएगा।

बात तो समझने जैसी है, वर्ना एक बार यह ज्ञान मिलने के बाद कल्याण हो जाए। लेकिन या तो अभी इसमें दिल नहीं लगा है... बाकी जिसका इस ओर दिल लग गया है उसे तो अंदर एक्ज़ेक्ट लाइट हो ही जानी चाहिए।

आपके कर्ज़ की वजह से आपका उलझा हुआ रहता है। यह तो आपको परमात्मपद दिया है! हमारा कर्ज़ खत्म हो चुका है। हम परमात्मपद भोग रहे हैं। आपका खत्म होने लगा है न?

प्रतिक्रमण से होता है साफ भरा हुआ माल

प्रश्नकर्ता : सुबह उठकर मैं तय करता हूँ कि मुझे पाँच आज्ञा में ही रहना है, किसी को दु:ख नहीं देना है। फिर भी वापस दे ही देता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : दे देते हो, वह सब तो इसलिए, क्योंकि अंदर माल भरा है। फिर आपने अब पक्का किया है न, नए सिरे से साफ व्यापार करना है, इसलिए अब साफ हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कई बार, हमने चाहे कितना भी पक्का किया हो, फिर भी बोल ही देते हैं।

दादाश्री : नहीं बोलना हो तब भी मुँह से निकल जाता है। गोली छूट जाती है। आपके हाथों में नहीं है वह गोली। दो-चार घंटों तक दबाकर रखने पर भी फिर निकल ही जाती है।

प्रश्नकर्ता : मैं मन में ऐसा निश्चय करता हूँ कि, 'ऐसा नहीं करना चाहिए,' इसके बावजूद भी बोल देता हूँ।

दादाश्री : इसमें कुछ नहीं चलेगा। आपको सिर्फ उसके लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए, इतना ही उपाय है। अन्य कोई उपाय नहीं

है। उसे बंद नहीं करना है लेकिन, 'ऐसा नहीं हो तो अच्छा', आपको चंदूभाई से ऐसा कहना है। इसके बावजूद भी जो माल है, वह निकले बगैर रहेगा ही नहीं। टंकी में डामर भरा होगा तो डामर निकलेगा और केरोसीन भरा होगा तो केरोसीन निकलेगा। जैसा भरा होगा वैसा निकलता रहेगा। लेकिन यह अक्रम विज्ञान है, यानी कि खुद में कर्म खचाखच भरे हुए हैं, बहुत सारा *निकाल* करना बाकी है और यह ज्ञान प्रकट हो गया है, इससे क्या हुआ है? इससे खुद की चिंताएँ और वह सब बंद हो गया और सिर्फ यह *निकाल* करना बाकी रहा। जैसे-जैसे *निकाल* होता जाता है, वैसे-वैसे आनंद बढ़ता जाता है। चिंता बंद हो जाती है, *उपाधि* बंद हो जाती है। आपको कोई *उपाधि*-चिंता रहती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : जैसे-जैसे फाइलों का *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे बोझ कम होता जाएगा।

चौदह सालों में फाइलें खत्म हो जाएँगी। क्योंकि कोई नई आमदनी नहीं है। टंकी जितनी भरी हुई है फिर वह टंकी खाली हो जाएगी और कुछ सालों में उसका हल आ जाएगा। बहुत *चीकणा* (गाढ़) माल भरा हुआ है, इसलिए पाँच-सात साल ज़्यादा लग सकते हैं, लेकिन खाली होती ही रहेगी।

प्रश्नकर्ता : चौदह साल से पहले खाली नहीं हो सकती?

दादाश्री : हो सकती है न! वह तो जैसा जिसका पुरुषार्थ। तीन सालों में खाली कर दें, एक घंटे में खाली कर दें, ऐसे भी लोग होते हैं। वैसा पुरुषार्थ भी होता है। लेकिन माल ऐसा गाढ़ लाया है कि आपका वैसा पुरुषार्थ जाग्रत ही नहीं हो पाता।

अब बचा है पानी पाइप लाइन वाला

ऐसा है न, अंदर टंकी में माल भरा पड़ा है। अब कौन सा माल भरा पड़ा है? तब कहते हैं, (मान लो) सात सौ मील दूर बड़ा सरोवर

हो, उसका पानी यहाँ बॉम्बे में आता हो और अपने यहाँ एक छोटा तालाब है, वह भर लेना है। अब, म्युनिसिपालिटी वालों ने कहा कि, 'वहाँ से पानी यहाँ आने दो।' तो वहाँ से पानी आता है और इधर तालाब भर जाने आया, थोड़ा बाकी रहा तब इसने फोन करके कहा कि, 'आप वहाँ से बंद कर दीजिए।' तो उसने बंद कर दिया। उसके बाद भी पानी आता रहा और छलककर बाहर निकलने लगा तब इसने कहा, 'बंद करो, बंद करो।' तब उसने कहा, 'मूर्ख है, कब से बंद कर दिया।' यानी कि यह सात सौ मील वाला पानी आ रहा है। इतना तो समझना पड़ेगा न! अतः तब तक धीरज रखना पड़ेगा, यह माल निकल जाने तक। नया नहीं आता, फिर पुराना वाला निकलता है। धीरज तो रखना चाहिए न? आपका नहीं निकलता? गंदा पानी निकलता है या अच्छा निकलता है?

प्रश्नकर्ता : गंदा।

दादाश्री : तो अब ये जो मन और चित्त हैं, ये चंदूभाई का भरा हुआ माल है। आप शुद्धात्मा हो इसलिए आपको देखते रहना है कि चंदूभाई के ताबे में क्या माल है। मन किस ओर घूमता है, चित्त कहीं भी भटक रहा हो तब भी हर्ज नहीं है। खाली होता रहेगा और खाली होने के बाद कुछ भी रहेगा ही नहीं। तब फिर आप ढूँढोगे तो भी पानी नहीं मिलेगा। अतः आपको परेशान नहीं होना है।

अच्छा-बुरा, दोनों ही निकाली

'मैं शुद्धात्मा हूँ' इस उपयोग में रहा जाए तो उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग। फिर चाहे वह कैसा भी माल भरा हो, चाहे कैसे भी बंध पड़े हुए हों, मन तो *निर्जरा* होता ही रहेगा न? उसमें आपका क्या जाता है? जब अच्छा और बुरा, दोनों माल फेंक देने को तैयार हो गए हो, तो फिर उससे पीड़ा क्यों? ऐसा है, मैं बहुत अच्छे उपयोग में रह पाता हूँ। मेरा चित्त अच्छा है फिर भी फेंक ही देना है और आपका भी फेंक देना है। फिर दोनों की कीमत समान ही हो गई न,

तब फिर उसमें उपयोग क्यों जाने दें? चंदूभाई कैसे हैं, वह देखते रहना और फिर भरे हुए माल के बगैर तो ऐसा कुछ निकलता है क्या?

दादा की सूक्ष्म उपस्थिति से भी मुक्ति

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा क्यों है कि आपकी उपस्थिति में एक भी वृत्ति बिल्कुल ज़ोर नहीं मारती और जैसे ही आप जाएँगे तो बाद में ये भाई जैसे कि वहीं के वहीं, सब शुरू हो जाता है फिर रोज़ाना का क्रम!

दादाश्री : यदि हमारी सूक्ष्म हाज़िरी रख सको तो ऐसा नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, सूक्ष्म हाज़िरी कैसे रखनी है?

दादाश्री : आँखें मीचो और दिखाई दें। जहाँ देखो वहाँ दादा दिखाई दें। दादा दिखाई दें तो फिर आपकी जोखिमदारी नहीं। आज्ञा में रहोगे तो जिनकी आज्ञा का पालन करते हो न, उनकी जोखिमदारी।

प्रश्नकर्ता : आज्ञा पालन करने वाले महात्मा से कोई परोपकार हो जाए तो उसका क्या?

दादाश्री : परोपकार हो जाए या पर-अपकार हो जाए फिर भी उसका *निकाल* हो गया। जो *निकाली* चीज़ हो, उसे याद ही नहीं करना होता न? पर-उपकार किया या पर-अपकार किया, वह सब डिस्चार्ज है! ज्ञान नहीं हो तो परायों पर उपकार करना, परोपकार करना, वह तो पुण्य के लिए है। किसी पर कोई भी अपकार करना या किसी पर उपकार करना दोनों ही विरोधी शब्द हैं लेकिन ज्ञान लेने के बाद इनका और आज्ञा पालन करने का कोई लेना-देना नहीं है। आज्ञा पालन करने से तो कोई चीज़ स्पर्श नहीं करती। सभी शास्त्रों में कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो कि आज्ञा की बराबरी कर सके। लेकिन आज्ञा देने वाला एक्ज़ेक्ट होना चाहिए।

काम निकाल लेना है। फिर भले ही यदि आपका मन मोटा हो तो आप ज़्यादा बैठे रहना लेकिन हल ले आओ न! कलियुग का माल

है न, तो बहुत माल भरा होता है। आपने तो यह ज्ञान पाया, वही बड़ा पुण्य कहा जाएगा, ज़बरदस्त पुण्य कहा जाएगा।

भरा हुआ माल दिखाए दादा का भी दोष

प्रश्नकर्ता : दादा के प्रति बहुत भाव है, फिर भी मुझे कभी-कभी दादा के प्रति ज़रा से उल्टे भाव हो जाते हैं फिर बहुत आँसू बहते हैं।

दादाश्री : तो उसमें हर्ज नहीं है। यह विज्ञान है ही ऐसा कि जो होता हो उसे 'देखते' रहना है। अत: यह विज्ञान ही आपको छुड़वाएगा। यह विज्ञान है ही इतना सुंदर कि अंत तक का काम कर देगा। यह ज्ञान देने के बाद मैंने आप में हिंसक भाव उत्पन्न हुआ हो, ऐसा देखा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी आप ऐसी कुछ कृपा कीजिए कि अब इससे छूट पाएँ।

दादाश्री : ऐसा है, आपको तो क्या-क्या नहीं होता होगा, वह सब मैं जानता हूँ। मेरे लिए आपके भाव बिगड़ते रहते हैं, यह भी मैं जानता हूँ लेकिन फिर भी मैं जानता हूँ कि आप छूट जाओगे। क्योंकि आपको पता चलता है कि, 'यह गलत हुआ है।' मेरे लिए ये जो भाव उत्पन्न होते हैं, इसका क्या कारण है? यह पूर्व जन्म की *निर्जरा* (कर्म का फल) है। इस *निर्जरा* का आपको पता चल जाता है कि, 'यह गलत हुआ, ऐसा नहीं होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ताबड़-तोड़ पता चल जाता है।

दादाश्री : मैं आपको पहचानता हूँ, मैं तो अच्छी तरह समझता हूँ कि आपको मेरे प्रति ऐसा ही भाव होता है। अब इसका क्या कारण है। मुझ में कुछ खराब नहीं दिखाई देता लेकिन यह पूर्व जन्म का अहंकार है। यह जो सारा माल निकल रहा है, यह पूर्व जन्म का कचरा माल निकल रहा है और अपना यह ज्ञान दिखाता है कि, 'यह

गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए।' ऐसे उल्टे भाव दिखाई देते हैं फिर भी इनमें हिंसक भाव नहीं है, यह आपको बता देता हूँ। इसलिए, आप काम निकाल लोगे, ऐसा विश्वास तो मुझे है ही। यह विज्ञान जो दिया है वह ज्ञान ही क्रियाकारी है। तो यह ज्ञान ही अपने आप सारा काम करता रहता है। वर्ना जहाँ लाखों जन्मों में भी नहीं छूटा जा सकता, वहाँ अब एक ही जन्म शेष रह जाता है, यह ऐसा एकावतारी विज्ञान है।

जहाँ दखलंदाज़ी नहीं, वहाँ झड़ जाती हैं

यह विज्ञान कैसा है, अपने आप झड़ (छूट) जाएँगी। निकालनी नहीं हैं क्योंकि जीवित नहीं हैं। ये संसार की आदतें हैं न, जिसे ज्ञान नहीं मिला उसके लिए ये जीवित हैं जबकि इनकी आदतें मुर्दा हैं इसलिए कभी न भी अपने आप ही... जैसे कि छिपकली की पूँछ कटने के बाद भी हिलती रहती है, लेकिन क्या वह हमेशा ऐसे ही हिलती रहेगी? कब तक? उसमें जीवन नहीं है। उसमें जो अन्य तत्त्व हैं, वे तत्त्व निकल जाएँगे तब फिर वह रुक जाएगी। उसी तरह यहाँ पर कुछ भी छोड़ना नहीं है। बिल्कुल कुछ भी नहीं छोड़ना है, अपने आप छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह 'झड़ (छूट) जाती है' ऐसा जो कहा न, वह शब्द मुझे बहुत अच्छा लगा। ऐसा सोचता हूँ कि कितना सहज भाव है, 'झड़ जाती है' में!

दादाश्री : 'झड़ जाए' तब तक आपको 'देखते' रहना होगा।

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न नहीं करने हैं।

दादाश्री : नहीं। दखलंदाज़ी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब उनका योग्य समय आएगा तब झड़ जाएँगी?

दादाश्री : अपने आप ही झड़ जाएँगी। भले ही लोगों को इधर

का बोलना हो तो ऐसा बोलें और उधर का बोलना हो तो वैसा बोलें। लेकिन यदि आप दखल दोगे न, तो सब गड़बड़ हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आपने पेड़ की जड़ों में वह दवाई रख दी है न, इसलिए पत्ते–वत्ते दिखाई तो देते हैं लेकिन सब झड़ते ही जाएँगे न! अब तो धीरे–धीरे हमारी सारी अलमारियाँ खाली हो जाएँगी।

दादाश्री : हाँ, अलमारियाँ तो सारी खाली ही हो जाएँगी न! आपको मोक्ष में जाने की इच्छा हुई इसलिए यह संसार भाव टूट गया, अपने आप ही टूट गया। आपको यहाँ से मामा की पोल जाना है, उस तरफ गए तो आप टावर की ओर नहीं जाओगे, ऐसा पक्का हो गया। यानी इस ओर, मोक्ष की ओर मुड़ा तो संसार का त्याग हो ही गया, भाव त्याग ही बरतता रहता है। यानी कि अपने आप ही झड़ जाना चाहिए। 'झड़ जाना' शब्द समझे आप?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मूर्च्छा नहीं हो न तो भरा हुआ माल सारा झड़ जाता है। उसका समय आने पर खत्म हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : दादाजी, वापस यह प्रश्न आता है कि अजागृति क्यों हो जाती है?

दादाश्री : लेकिन हो जाएगी न, कर्मों का फोर्स ज़्यादा है न!

प्रश्नकर्ता : वह तो आपने उदाहरण दिया है न, कि आधे इंच की नली के सामने उँगली रखें तो टिकी रहेगी, लेकिन डेढ़ इंच के पाइप के आगे नहीं रहेगी।

दादाश्री : किसी का पाँच इंच हो तो कैसे रह पाएगी? ऐसा दिन भर भी नहीं रहता लेकिन फिर भी सत्संग में पड़े रहने से वह सब खाली हो जाएगा। क्योंकि साथ रहने से, हमें देखने से हमारी डायरेक्ट शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, इसलिए जागृति एकदम बढ़ जाती है!

प्रश्नकर्ता : हो जाने के बाद देख पाते हैं, लेकिन जब हो रहा

होता है तब इतनी जागृति में नहीं रहा जाता कि तभी के तभी जुदापन दिखाई दे।

दादाश्री : अंदर उस समय जुदापन से देख रहे थे, लेकिन यह जो कर्मों का धक्का लगा इसलिए खिसक गया।

विचार भी भरा हुआ माल

मन में खराब विचार आएँ, वे भी संयोग और अच्छे विचार आएँ, वे भी संयोग। खराब और अच्छा तो लोगों ने नाम दिया है। भगवान के यहाँ ऐसा कुछ है नहीं। वे ज्ञेय हैं और आप ज्ञाता हो। आप को देखते रहना है कि खराब विचार आ रहे हैं। इस व्यक्ति के लिए अच्छे विचार आए, वे भी ज्ञेय हैं। साठ साल की उम्र में भी शादी का विचार आता है। उसे भी *निकाल* कहा है। जो *पूरण* किया था, वही *गलन* होता है। *गलन* होते समय आपको *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, साठ साल की उम्र में उदय आया तो शादी कर लेनी है या विचारों को सिर्फ देखते रहना है, या सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा रहना है?

दादाश्री : अब, भरा हुआ माल है इसलिए आपको देखते रहना है कि क्या माल भरा है यह? साठ साल की उम्र में ऐसी फज़ीहत करवाने जैसी बात कहता है अंदर से! अत: उस भरे हुए माल पर राग-द्वेष मत करना जबकि अज्ञानी का भरा हुआ माल जब खाली होता है तब वे राग-द्वेष करते हैं, इसलिए नया भर जाता है। यह भरा हुआ माल *आश्रव* होकर खाली होने की तैयारी करता है और *निर्जरा* होने के बाद वह खाली हो गया, ऐसा कहा जाएगा। उस अरसे में जो है, ये राग-द्वेष करते हैं इसलिए कर्म बंधन होता है।

प्रश्नकर्ता : याद आए तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : याद आए तो आप देखते रहना कि, 'ओहोहो, अभी तो अंदर ऐसा माल भरा हुआ है।' ऐसा देखते रहना, तो हल आ

जाएगा। अब, आपको उसमें तन्मयाकार नहीं होना है। भरे हुए माल को देखकर जाने देना है। आज आपको उसकी ज़रूरत नहीं है। समय होने पर चला जाएगा फिर।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब निकल रहा हो, उस समय उसका क्या करना चाहिए?

दादाश्री : क्या भरा है, वह देखते रहना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा सब निकलता है तब अच्छा नहीं लगता न?

दादाश्री : अच्छा क्यों नहीं लगता? बल्कि अच्छा है, अच्छा लगे, ऐसा है। कम ही हो जाएगा न! नहीं निकलेगा तो अंदर ही रह जाएगा। जितना माल भरा होगा उतना माल निकलता रहेगा।

पुद्गल की जो भी स्थिति हो, उसे देखो। दम घुटने लगे या कुछ और हुआ हो तो उसे देखते रहो न! वह फिर चाहे कैसा भी हुआ हो, वह डिस्चार्ज है। कचरा आएगा और चला जाएगा। आपको देखते रहना है। कचरा खत्म हो रहा है, ऐसा समझ लेना चाहिए। यह किस गोडाउन का माल? गोडाउन नंबर एक, गोडाउन नंबर नौ...?

निःशंक हो जाओ, लेकिन उद्धत नहीं

प्रश्नकर्ता : दया और अहिंसा, वे मन में आते ही रहते हैं, वे किस तरह आते हैं?

दादाश्री : वह तो, सारा माल ही वैसा भरा है। जैसे किसी व्यक्ति ने मार्केट में से मारने का माल भरा हो, द्वेष का भरा हो तो द्वेष आता है। अहिंसा का भरा हो तो अहिंसा का आता है। दया का भरा हो तो दया का आता है। जो माल ज़्यादा भरा हुआ हो, वह ज़्यादा आता है।

प्रश्नकर्ता : व्यवसाय व उद्योग के कारण अनेक प्रकार की जीव

हिंसा हो जाती हैं तो उसे कैसी जागृति रखनी चाहिए? उसके कैसे भाव होने चाहिए?

दादाश्री : जिसे ज्ञान नहीं है, उसे तो दोष लगेगा ही खुद को। जिसे ज्ञान है उसे दोष कैसे लग सकता है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वह निमित्त तो बनता है न?

दादाश्री : उसे निमित्त बनने के फल मिलते रहेंगे। नया दोष लगना यानी क्या? नए बीज डालना। वह नए बीज नहीं डालेगा तो दोष लगेगा ही नहीं न।

प्रश्नकर्ता : यानी दादा, तो यह उदयकर्म के कारण ही है, ऐसा ही मान लें और ऐसा मानकर रुक जाएँ?

दादाश्री : उदय ही है। लेकिन ऐसा मानकर रुक नहीं जाना है। किसी को ज़रा ज़्यादा दुःख हो रहा हो तो चंदूभाई से कहना कि, 'भाई, ऐसा कहा, उसके लिए प्रतिक्रमण करो।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, और यह तो उदय है।

दादाश्री : रिज़ल्ट है यह तो। लेकिन कभी अगर ऐसा बोल दे न, कि किसी को दुःख हो जाए तो आप चंदूभाई से कहना। तो रिज़ल्ट में भी उसका असर होगा क्योंकि आप पुरुषार्थी हो। इसलिए आप कहना कि, 'इसके लिए प्रतिक्रमण करो। दूसरों को दुःख क्यों होता है?' और दूसरा साधारण (व्यवहार में) तो कुछ करना है ही नहीं। साधारण *निकाल* करते ही जाना है। इस तरह व्यवसाय या रोजगार में आपको प्रतिक्रमण करना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि कोई जीवित व्यक्ति सामने हो, उस बारे में तो प्रतिक्रमण करते हैं लेकिन व्यवसाय संबंधित व्यवहार में उस तरह की जीव हिंसा चलती रहती है, जैसे कि कपास का व्यापार है, दाल का व्यापार है। सभी व्यापारों में किसी न किसी तरह की जीव हिंसा तो हो ही जाती है।

दादाश्री : सभी व्यापार हिंसा वाले ही होते हैं। वह आपको स्पर्श नहीं करेगा। शंका होगी तभी स्पर्श करेगा।

प्रश्नकर्ता : शंका किसके, खुद के बारे में?

दादाश्री : कोई बहुत समझदार हो तो उसे खुद को शंका हो जाती है कि दादा जो कहते हैं उस पर फिर नई शंका करने वाला कौन है?

प्रश्नकर्ता : दादा कहते हैं उस बारे में नि:शंक रहता है।

दादाश्री : वह तो आत्मा के बारे में नि:शंकपन रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ। लेकिन यह व्यवहार की बात है न?

दादाश्री : इसमें भी यदि मैंने आपसे कहा हो कि, 'भाई, इसमें इससे कोई दिक्कत नहीं आएगी। यह रिज़ल्ट है और खुद फिर वहाँ पर शंका करता है कि ऐसा किस आधार पर होता होगा?

प्रश्नकर्ता : हाँ। यानी आपके पास बैठकर यह पक्का हो जाता है कि, 'ऐसा उदय के कारण है'। इस बात पर शंका नहीं करनी है। शंका नहीं होनी चाहिए।

दादाश्री : शंका नहीं होनी चाहिए। साथ ही उच्छृंखलता भी नहीं आ जानी चाहिए। मनुष्य का स्वभाव है कि यदि दोनों में से एक तरफ.. ऐसा (शंका) नहीं हो तो उच्छृंखल भी हो जाता है फिर। रिज़ल्ट है, ऐसा करके उच्छृंखलता नहीं होनी चाहिए कि, 'मुझे क्या लेना-देना?' ऐसा नहीं होना चाहिए। हम शंका निकालने को कहते हैं, इसका मतलब ऐसा नहीं कि इंसान उच्छृंखल हो जाए। यदि शंका नहीं होगी तो उच्छृंखल हो जाएगा। लोगों को इन दोनों में से... उनके लेवल में रखने के लिए मुझे बहुत ऐसा सब कहना पड़ता है। लेकिन आ जाएगा, सबकुछ ठिकाने आ जाएगा।

❖❖❖❖❖

[4.2]
चार्ज-डिस्चार्ज

ज्ञान मिलने के बाद...

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान लेने के बाद इस दुनिया में क्या करना है और क्या नहीं करना? ज़िंदगी किस तरह जीनी है?

दादाश्री : किस तरह जी रहे हैं, वह देखना है।

प्रश्नकर्ता : तो सही-गलत का डिसिज़न कैसे लेना है? कैसे तय करना है?

दादाश्री : आपको सही-गलत का क्या करना है अब? आप को तो, चंदूभाई क्या करते हैं, वह देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई करें तो हर्ज नहीं है?

दादाश्री : चंदूभाई जो करते हैं, वह डिस्चार्ज स्वरूप है। उसमें बदलाव हो सके, ऐसा नहीं है। डिस्चार्ज कभी भी बदल नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन गलत करे तो दूसरे जन्म में तकलीफ होगी न?

दादाश्री : नहीं होगी। आपको तो सिर्फ चंदूभाई से ऐसा कहना है कि, 'प्रतिक्रमण करो।' अब कर्ता ही नहीं रहे न! अच्छा हो या

बुरा, 'आपको' कोई लेना-देना नहीं है। आपको *निकाल* कर लेना है। यह दुकान बेच देनी है। यानी कि अच्छा माल हो या खराब माल, वह दुकान में से बेच देना है। यह परिणाम है अब!

समझ चार्ज-डिस्चार्ज भाव की

यह ज्ञान मिलने के बाद आपका चार्ज होना बंद हो गया और सिर्फ डिस्चार्ज ही रहा है। अत: अब आपके लिए यह व्यवस्थित ही है। अब आप आत्मा का पुरुषार्थ करते रहो। यह अपने आप व्यवस्थित होता ही रहेगा। आपको कुछ कर्तापन रहा नहीं है। इसमें ऐसा समझ में आता है न, डिस्चार्ज में?

प्रश्नकर्ता : यह भाव डिस्चार्ज है और यह भाव चार्ज है, अंदर हमें यह फर्क कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : 'मैं चंदूभाई हूँ' जब तक इतनी ही आपकी श्रद्धा हो, तब तक चार्ज भाव होते हैं। लेकिन आप 'शुद्धात्मा हो', अब वे चार्ज भाव बंद हो गए, नया कर्म बंधन रुक गया।

प्रश्नकर्ता : अंदर सावधान करता है कि गलत हो रहा है, फिर भी गलत हो जाता है, उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : जो हो जाता है, वह तो चंदूभाई करते हैं, आपको क्या लेना-देना? उसके कर्ता आप नहीं हो और वह तो डिस्चार्ज है, वह चार्ज नहीं है। चंदूभाई यह जो कर रहे हैं, वह सब डिस्चार्ज है। चार्ज तो, आप खुद यदि चंदूभाई होते तभी होता। अब आप शुद्धात्मा हो। अभी आपको कोई खरे दिल से पूछे कि आप सचमुच कौन हो तो क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो फिर उससे आपका चार्ज नहीं होगा। व्यवहार से ही है यह तो, चंदूभाई तो पहचानने का साधन है लेकिन उसका कर्ता नहीं है, कर्ता तो व्यवहार से है। सचमुच 'मैं चंदूभाई हूँ', 'मैं कर्ता

हूँ' उससे कर्म बंधते रहते हैं। पहले ऐसा कहते थे न, 'वास्तव में चंदूभाई हूँ!' कुछ और नहीं जानते थे, इसलिए। अब वह छूट गया!

चार्ज होने के बाद डिस्चार्ज हुए बगैर चारा ही नहीं है। डिस्चार्ज होने के बाद चार्ज हो या न भी हो, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। जो डिस्चार्ज है वह चार्ज की अपेक्षा नहीं रखता। जो चार्ज है वह डिस्चार्ज की अपेक्षा रखता ही है। हमारा ज्ञान देने के बाद सिर्फ डिस्चार्ज बचता है। लेकिन ज्ञान नहीं मिला हो तो डिस्चार्ज में से फिर चार्ज उत्पन्न होता है। कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़, कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट जो है, वह डिस्चार्ज है और चार्ज, वह कॉज़ेज़ है।

डिस्चार्ज को छानना, ज्ञान से

यहाँ बैठे हैं और हवा आ रही है, यह भी डिस्चार्ज कर्म छूट रहा है और वहाँ आगे जाएँ और बहुत गर्मी लगे और बेचैनी हो तो वह भी डिस्चार्ज कर्म छूट (निकल) रहा है। बेचैनी होने से परेशान हो जाते हो तो वह भी डिस्चार्ज है। किसी पर चिढ़ जाते हो तो वह भी डिस्चार्ज है। राग-द्वेष रहितता से सारा हल लाना है। राग-द्वेष कब तक रहते हैं? जब तक अहंकार है तब तक राग-द्वेष होते हैं। आत्मा होने के बाद राग-द्वेष कैसा? सारे राग-द्वेष अहंकार के हैं।

कीर्ति-अपकीर्ति की अब कोई भी वांछनाएँ नहीं रहीं। अब छूटना ही है। फिर भी यदि अपकीर्ति आए तो वह डिस्चार्ज है और कीर्ति आए तो वह भी डिस्चार्ज है। यानी कि अब यह डिस्चार्ज रहा है थोड़ा-सा। दिन में कभी भी फुरसत मिले तो इस ज्ञान से छानते रहना है। झूठ बोलता है, वह भी डिस्चार्ज है और सच बोलता है, वह भी डिस्चार्ज है। खाने की सारी छूट क्यों दी है? क्योंकि तू तेरी खाने की थाली दूसरे को दे देता है, वह भी डिस्चार्ज है और तू खुद खाए, वह भी डिस्चार्ज है। लेकिन यदि दूसरों का ले ले, उस समय उसका समाधान करना। आमने-सामने समझाकर विनती करके, प्रतिक्रमण

करके, लेकिन समाधान कर लेना। आमने–सामने नहीं समझे तो प्रतिक्रमण करना अकेले में। डिस्चार्ज अर्थात् सिर्फ अच्छे कर्म ही हों, ऐसा नहीं है! जैसे हों वैसे, वे तो जैसे होंगे वैसे ही। उन्हें कहीं बदला नहीं जा सकता न?

छूटो प्रतिक्रमण करके

एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को सुख दिया। एक व्यक्ति ने इस व्यक्ति का ज़रा अपमान किया। तब कहते हैं कि हमारे ज्ञान के अनुसार इसमें न्याय क्या है? ऐसा कहते हैं कि, 'यह भी छूट गया और वह भी छूट गया।' यह अपने चार्ज किए हुए भाव से छूट गया। उसने ऐसा चार्ज किया था वह उसमें से छूट गया। वे दोनों छूट गए न? सात से गुणा किया हो और यदि उसमें नौ से भाग लगाएँ तो भाग नहीं लग सकता, उसमें तो सात से भाग लगाएँगे तभी भाग लग सकेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, यानी कि ज्ञान द्वारा वह खुद अलिप्त रहता है न? उससे निर्लेप रहता है वह?

दादाश्री : हाँ, लेकिन फिर है ही निर्लेप। निर्लेप है, असंग है लेकिन साथ–साथ ऐसा भी है न! हिसाब चुक जाते हैं। लेकिन अपमान चार्ज किए हुए हैं तो वह डिस्चार्ज अपमान से ही खत्म होगा न? मान से किए हुए चार्जिंग मान से ही खत्म होंगे। इन दोनों को खत्म करने के लिए *निकाल* तो करना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जो अपमान करता है, उसके मन में क्या भाव रहने चाहिए?

दादाश्री : किसी का अपमान करता है न, तब वह उसके लिए प्रतिक्रमण करता है। खुद चंदूभाई से कहता है कि, 'अतिक्रमण क्यों किया? प्रतिक्रमण करो।' और जो अच्छा किया है, उसके लिए प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता!

इसीलिए तो हो गए बेफिक्र

प्रश्नकर्ता : यह चार्ज है या डिस्चार्ज, उसकी कोई भेदरेखा है क्या?

दादाश्री : है न! चार्ज अहंकार से होता है। अहंकार के बिना चार्ज नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : कई बार पता नहीं चलता।

दादाश्री : नहीं, लेकिन अब आपको चार्ज होता ही नहीं है। चाहे पता चले या न चले।

प्रश्नकर्ता : जागृति नहीं रखें तब भी चार्ज तो नहीं होता न?

दादाश्री : चार्ज नहीं होता। लेकिन वही कर्म साथ में आते हैं, फिर से आते हैं। जितने-जितने कर्मों का *निकाल* नहीं किया, वे स्टॉक में रहेंगे। लेकिन कर्म कब चार्ज होते हैं? जब आपको ऐसा पक्का हो जाए कि, **'**मैं चंदूलाल हूँ**'** तब फिर से चार्ज होता है। अभी यह पक्का है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', और व्यवहार से चंदूलाल है न, इसलिए चार्ज नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ऐसा शब्दों से कहते हैं, लेकिन समझ में पूरी तरह से नहीं आया हो तो?

दादाश्री : समझ में आए या नहीं आए, आपको वह नहीं देखना है। आपको तो इतना ही देखना है कि करार क्या हुआ है। वह करार अपना फल देता ही रहेगा। करार करने के बाद में आप टेढ़े चलो या सीधे चलो, हमें देखने की क्या ज़रूरत?

प्रश्नकर्ता : तब तो सभी बेफिक्र हो जाएँगे।

दादाश्री : हो ही गए हैं न! किसी को भी चिंता ही कहाँ है?

प्रवृत्ति में भी निवृत्ति

डिस्चार्ज अर्थात् इन पाँच इन्द्रियों से जो सारे कार्य होते हैं, वे

पाँच इन्द्रियाँ खुद ही डिस्चार्ज रूपी हैं और उनसे जो–जो कार्य होते हैं, वे सब डिस्चार्ज रूपी हैं। इसलिए हमने 'व्यवस्थित' कहा।

अतः ऐसा जो दिखाई देता है कि दिन भर काम करते हो न, फिर भी आपको चार्ज नहीं होता। प्रवृत्ति में निवृत्त रहते हो जबकि लोगों को तो निवृत्ति में भी प्रवृत्ति। घर जाकर आराम से बैठे हुए हों और नींद आ जाए, तब यदि अंदर मन ज़रा सा चंचल हो जाए अर्थात् प्रवृत्ति शुरू हो गई। यानी कि निवृत्ति में प्रवृत्ति रहती है और आपको प्रवृत्ति में निवृत्ति रहती है। कौन सा अच्छा है? यानी कि चार्ज नहीं होता, सिर्फ डिस्चार्ज बाकी रहता है! डिस्चार्ज यानी जितना हिसाब पक्का सेट हो चुका है, उतना ही भुगतना है, उससे ज़्यादा नहीं।

प्रश्नकर्ता : कोई जो कुछ भी चार्ज करता है फाइन (अच्छा) चार्ज करता है, तो क्या यह सही बात है कि उसे डिस्चार्ज भी पूरा फाइन आता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। डिस्चार्ज तो फाइन और फाइन न हो वैसा, दोनों ही आते हैं। ऐसा कुछ नहीं है। डिस्चार्ज तो, पहले का जो गलत चार्ज किया था, उसका सब आज गलत आएगा। तो उसका पछतावा करके धो देना।

प्रश्नकर्ता : पहले यानी इस जन्म का है या दो–तीन–चार जन्मों पहले का भी हो सकता है?

दादाश्री : पिछले एक ही जन्म का और तब की आपकी जो भूलें रही होंगी, उनका डिस्चार्ज कभी गलत भी आता है और अच्छा भी आता है। आपके ब्लंडर्स हों तो गलत परिणाम भी आ सकता है। अब नए सिरे से गलत नहीं होगा, लेकिन पुराना गलत है वह तो आएगा न? यानी कि डिस्चार्ज अच्छा भी आ सकता है और खराब भी आ सकता है। *निकाल* कर देना है।

हे कर्मों ! आओ, पधारो

प्रश्नकर्ता : दादा का ज्ञान लेने के बाद व्यवहार के कुछ डिस्चार्ज अच्छे नहीं लगते, तो इसे (फाइल 1 को) कैसे मनाऊँ?

दादाश्री : वे पसंद हों तो अपने, और पसंद न हों तो पराए? नापसंद और पसंद, इन दोनों का ही समभाव से *निकाल* करना है और जो नापसंद हों उन्हें तो ऊपर, छत पर जाकर आवाज़ देना कि, 'सब आओ साथ मिलकर।' बाकी, चिंता ही नहीं करनी है, चार्ज की तो।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि डिस्चार्ज की चिंता नहीं करनी चाहिए।

दादाश्री : इस डिस्चार्ज को ये लोग क्या कहते हैं? 'मुझे ऐसा क्यों होता है, अभी भी क्रोध हो जाता है, ऐसा होता है।' अरे भाई! यह तो डिस्चार्ज हो गया, बल्कि अच्छा हो रहा है। यह यदि डिस्चार्ज नहीं होता, तो उसमें झंझट है। हम ऐसा कहते हैं कि डिस्चार्ज हो रहा है तब भी आप उससे ऊब जाते हो। आपको तो ऐसा रखना चाहिए कि, 'जल्दी से जल्दी सही तरीके से डिस्चार्ज हो जाए', ऐसा कहना चाहते हैं। डिस्चार्ज होने पर तो बल्कि आपको खुशी होनी चाहिए कि, 'ओहोहो! बहुत अच्छा हुआ। जल्दी निकल गया।' अगर नहीं हो रहा हो तो बल्कि उसके लिए प्रयत्न करने चाहिए कि, 'यह नहीं हुआ है', तो वैसा करना चाहिए आपको। इसलिए ऐसा कह रहा था, ऊपर से बुलाओ, 'आओ, पधारो' कहना, यानी इसके लिए जतन करना चाहिए।

बात है बहुत ही सूक्ष्म

प्रश्नकर्ता : लेकिन चौबीसों घंटे तो ऐसा रहता नहीं है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

दादाश्री : नहीं, चौबीस घंटों में से एक मिनट के लिए भी कम नहीं होता। एक बार तय हो जाने के बाद खुद का नाम भूल गए

हों तब भी क्या हुआ? तब भी वह कोई दूसरा नाम धारण नहीं कर लेगा। चौबीसों घंटे तू शुद्धात्मा ही है।

प्रश्नकर्ता : यह बहुत ही सूक्ष्म बात है आपकी। क्षण भर में समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है। यह समझने जैसी बात है।

दादाश्री : समझना होगा न! इसलिए तो यहाँ बैठे रहते हो। आपको समझने की इच्छा हो तो मैं तैयार हूँ। बात बहुत सूक्ष्म है परंतु सरल है, आसान है।

चार्ज करने वाला कौन हैं? ज्ञान लेने से पहले जो, 'मैं चंदूभाई ही हूँ' ऐसा मानता था, वह है। हम कहें कि, 'नहीं, तू चंदूभाई नहीं, तू शुद्धात्मा ही है।' तब भी कहेगा, 'नहीं, मैं चंदूभाई ही हूँ।' वह चार्ज करता था। वह चार्ज करने वाला चला गया और डिस्चार्ज कर्म अपने आप होते रहते हैं। डिस्चार्ज करने वाला भी नहीं रहा, वह डिस्चार्ज करने वाला जो है, वह व्यवहार है चंदूभाई का।

डिस्चार्ज स्वभाव से हो रहा है। पानी गर्म करने को चार्ज करना कहा जाएगा। और फिर जब उस गर्म पानी की टंकी को ठंडा करना हो तब यदि कोई आपसे पूछे कि, 'साहब, मुझे क्या उपाय करना होगा?' तब कहते हैं, 'नहीं, तू सो जा! वह स्वभाव से, अपने आप ही ठंडा हो जाएगा।' इस तरह का डिस्चार्ज कहना चाहते हैं हम।

बनाते हैं बाउन्ड्री परिग्रह की

बात को समझना है। अब अपना व्यवहार रहा छोटा सा! अब, अज्ञानता में तो पूरी दुनिया के साथ व्यवहार रखता है। क्योंकि जब तक उसने लिमिट नहीं रखी है तब तक क्या हो सकता है? इसलिए जैन शास्त्र लिमिट रख देते हैं कि 'भाई, तुझे ज्ञान नहीं हो तो लिमिट रखना कि मुझे इस हद से बाहर नहीं निकलना है।' ताकि उतने में से ही तेरा हिसाब बंधे। वर्ना पूरी दुनिया में फैलाव रहेगा, जबकि अपनी तो यह लिमिट आ गई। डिस्चार्ज की लिमिट आ गई है कि 'इतना ही।'

प्रश्नकर्ता : बस, यह पूर्व जन्म के जो बाकी हैं, वही।

दादाश्री : हाँ, उन परमाणुओं का *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : तो इन परिग्रहों को कम करना, वह लिमिट है या परिग्रह की सीमा तय करनी है?

दादाश्री : सबकुछ डिस्चार्ज है। परिग्रह बढ़ाना, वह भी डिस्चार्ज और परिग्रह की सीमा तय करना, वह भी डिस्चार्ज है और अपिरग्रही रहना भी डिस्चार्ज। क्योंकि अपरिग्रही रहने का भाव किया था इसलिए अपरिग्रहता आई है। लेकिन वह भी डिस्चार्ज है, वह भी छोड़ देना पड़ेगा। वह भी कहीं वहाँ मोक्ष में साथ नहीं आएगा। यह तो, जिस स्टेशन पर वह हेल्प कर सकता है उस स्टेशन पर हेल्प करेगा। इस स्टेशन पर बिल्कुल भी हेल्प नहीं करेगा। इस स्टेशन पर तो तुझे उसका निबेड़ा लाना है। उन्हें सॉल्व कर देना है, सभी को।

इसमें भय किसे?

अत: इस दुनिया में सब डिस्चार्ज है। अब, डिस्चार्ज में कमियाँ निकालें तो उसमें कोई स्वाद नहीं आएगा। डिस्चार्ज की कमियों से ही तो यह जगत् कायम है। जिसे आप परिणाम कहते हो, उसे जगत् कॉज़ेज़ कहता है और इसीलिए जगत् उलझ रहा है। 'यह आपने ही किया' कहते हैं जबकि हम कहते हैं कि, 'नहीं, यह परिणाम है, यह डिस्चार्ज है।' इसलिए आपको भय नहीं है। आपके डिस्चार्ज उन्हें कॉज़ेज़ लगते हैं और कहेंगे, 'ऐसा वर्तन क्यों कर रहे हो?' 'अरे भाई, हमें भय नहीं लगता फिर तुझे किस बात का भय लगता है?' और लगना हो तो दादा को भय लगना चाहिए कि, 'भाई, मेरे ये सभी फॉलोअर्स भला ऐसे कैसे हैं?' लेकिन मैं तो जानता हूँ कि यह जो माल भरा था, वह निकल रहा है। नया कहाँ से निकाल सकता है?

ज्ञान के बाद अहंकार भी निरहंकारी

प्रश्नकर्ता : अपने ज्ञान के हिसाब से यह हमारा डिस्चार्ज है, ऐसा कहें तो उसकी आड़ लेकर पलायन तो नहीं कर रहे हैं न?

दादाश्री : पलायन करने जैसा रखा ही नहीं है। शंकास्पद रखा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मैं शंकास्पद नहीं कह रहा। मैं क्या कहना चाहता हूँ कि उसमें भी एक प्रकार का अहंकार तो नहीं हो जाता कि यह तो मेरा डिस्चार्ज है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यों वह निरहंकारी है। वह अहंकार है न, वह भी निरहंकारी है।

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान तो सही है, लेकिन हमारी, सभी महात्माओं की क्या हालत है इसमें?

दादाश्री : उनकी हालत अच्छी है, हाई क्लास हालत है। मैं फिर जांच करता हूँ, मेरी बारीकी से पूरी जांच करता हूँ। नहीं, लेकिन बहुत अच्छी हालत है। फिर कुछ लोग कमज़ोर भी पड़ जाते हैं न! यह तो मैं जांच करता ही हूँ।

डिस्चार्ज यानी डिस्चार्ज, फिर झंझट ही कैसी? जो अहंकार करता है वह भी अहंकार नहीं है, वह भी डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे यदि देखें, वास्तव में देखें तो पूरे जगत् में सर्वत्र डिस्चार्ज ही है न!

दादाश्री : नहीं, वह डिस्चार्ज नहीं है। वह चार्ज प्लस डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यहाँ पर यदि अहंकार करे तो चार्ज नहीं होता?

दादाश्री : नहीं। अहंकार किसे कहते हो? इस ज्ञान के बाद अहंकार नहीं होता। जिसे अहंकार होता है वह तो खत्म हो गया है। यह तो क्लियर डिस्चार्ज है!

कई लोगों के मन में ऐसा रहता है कि, 'यह मुझे अहंकार तो नहीं हो रहा न?' मैंने कहा, 'नहीं हो रहा भाई, इसमें अहंकार कैसे

होगा? मुझे पूछे बगैर तू अहंकार कैसे कर सकता है? तुझे मुझसे पूछना होगा अहंकार करने के लिए, चाबी मेरे पास है।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, यदि ठीक से चाबी नहीं सौंपी होगी तो?

दादाश्री : नहीं, वह किसी भी तरह से चलेगा। उसने झूठमूठ में सौंपी होगी फिर भी मैंने खींच ली है। इसलिए कहता हूँ न, कि निर्भय रहना भाई। सिर्फ मेरी आज्ञा में रहो, और कुछ भी नहीं। मुझे झंझट नहीं है। मेरी आज्ञा में रहो। फिर अहंकार हो जाए तो उसमें हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपने तो ऐसा भी कहा है न, आज्ञा में नहीं रह पाओ तब भी, 'आज्ञा में रहना है,' ऐसा तय करना है।

दादाश्री : 'रहना है', इतना तय ही करना है। रहना है ऐसा नहीं कहता हूँ। आपको इतना तय ही करना है। यह तो सिद्धांत है। इसमें, सिद्धांत में फर्क नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : सिद्धांत में फर्क नहीं है, उसके एप्लिकेशन में ही दिक्कत है।

दादाश्री : नहीं, चाहे कैसे भी अप्लाइ किया होगा, एप्लिकेशन रोंग की होगी तो चलेगा। क्योंकि यह रघा सुनार का तराजू नहीं है, यह कारुण्यता का तराजू है। रघा सुनार का तराजू तो कहेगा, 'अरे, ज़रा कम है चले जाओ।' अरे! थोड़ा कम हो गया, उससे क्या बिगड़ गया?

प्रश्नकर्ता : यदि हम जाग्रत नहीं रहें और अन्य भाव हो जाते हैं तो ऐसे में चार्ज हो जाएगा न?

दादाश्री : जाग्रत नहीं रहते, ऐसा होता ही नहीं है। जागृति में रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी-कभी ऐसे संयोगों का बहुत दबाव रहता है।

दादाश्री : दबाव के समय भी जागृति रहती है। संयोगों के दबाव को भी वह जानता है। इसलिए वह तो जाग्रत ही होता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के बारे में तो मैं ठीक से समझता हूँ। लेकिन यह जो, 'प्रतिष्ठित आत्मा चार्ज नहीं करता', उस बारे में मैं समझना चाहता हूँ।

दादाश्री : उसे चार्ज करने का अधिकार नहीं है। प्रतिष्ठित आत्मा के पास चार्ज करने का अधिकार ही नहीं है। हमारी आज्ञा में रहो तो आपको कुछ भी चार्ज नहीं होता। चाबी हमारे पास रहती है, चार्ज करने की। आप कैसे चार्ज कर सकोगे?

आज्ञा पालन करते हो, उतना ही चार्ज

प्रश्नकर्ता : जहाँ आज्ञा का ठीक से पालन नहीं करते, वहाँ पर वह कुछ चार्ज कर देते हैं न?

दादाश्री : नहीं! चार्ज नहीं होता। आज्ञाएँ दी हैं, वही चार्ज करवाती हैं। अब आप कर्ता नहीं हो। आज्ञाएँ दी हैं, और आप मेरी आज्ञा के अनुसार करते हो, उससे चार्ज होता है। आज्ञा प्रोटेक्शन के लिए है, रक्षण देने के लिए। प्रोटेक्शन किया है इन आज्ञाओं द्वारा, अत: उस वजह से एक-दो जन्म होंगे।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, आपकी आज्ञा पालन करने में कर्तापद है?

दादाश्री : हाँ, उसमें कर्तापद है। हमारी आज्ञा का पालन करते हो न, उसके एवज़ में एक-दो जन्मों के कर्म बंधते हैं। उसमें कर्तापद है, भाव है। अत: एक-दो जन्मों में सेफसाइड हो जाती है। 'आज्ञा का पालन करना है', ऐसा जो भाव है, वह एक्ज़ेक्ट भाव है। वह डिस्चार्ज नहीं है। यानी वह तो अगले जन्म के लिए है। एक-दो जन्मों

के लिए है। दादा की सेवा करना, पैर दबाना, सही मायनों में तो यह डिस्चार्ज है। क्योंकि उसका फल इसी जन्म में मिलेगा। डिस्चार्ज में वह जो भी करता है न, उसका फल इस जन्म में मिलेगा और चार्ज का अगले जन्म में मिलेगा। पाँच आज्ञा का जो पालन करते हो, उसका फल अगले जन्म में मिलेगा और इस सेवा का फल इस जन्म में मिलेगा। कोई अन्य व्यक्ति किसी को गालियाँ दे तो उसे अगले जन्म में फल मिलेगा और अगर आप गालियाँ देते हो तो इसी जन्म में फल मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों, दादा?

दादाश्री : आपका डिस्चार्ज है और उसका चार्ज है। इस सेवा से पुण्य बंधता है लेकिन यह डिस्चार्ज पुण्य है। यह है तो डिस्चार्ज लेकिन इसी जन्म में इसका फल मिलेगा। डिस्चार्ज यानी भुगतना, और चार्ज यानी बीज बोना। अगर बीज बोए तो उतने बीज अपने घर में से कम हुए न, उतने गेहूँ कम हो गए न! फिर जब फल आता है तब? जो फल आता है उसे डिस्चार्ज कहते हैं। और यह चार्ज कहलाता है, अगले जन्म के कर्म बाँधता है तू और फिर कर्म भुगतने पड़ेंगे। कड़वे-मीठे, दो तरह के फल आते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, अब आपने यह जो बताया कि ज्ञान के बाद भावना नहीं करनी है और कॉज़ेज़ नहीं डलेंगे तो फिर पुरुषार्थ कहाँ आया?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो, हमें खुद के स्वरूप का पुरुषार्थ करना है। पुरुष हुए, इसलिए पुरुषार्थ करना है। यानी ज्ञाता-द्रष्टा, वही पुरुषार्थ है। यों उस पुरुषार्थ को स्वभाव कहा जाता है। स्वभाव ही है उसका ज्ञाता-द्रष्टा रहने का। करने को कुछ नहीं रहता। स्वभाव है, लेकिन व्यवहार में शब्द बोलने पड़ते हैं, 'पुरुषार्थ'! बाकी, स्वभाव है उसका ज्ञाता-द्रष्टा रहने का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान के बाद जो भाव होते हैं वे डिस्चार्ज भाव हैं, चार्ज भाव नहीं हैं, इसका ऐसा मतलब हुआ?

दादाश्री : वे सब डिस्चार्ज भाव हैं। भावकर्म किसे कहा जाता है? तब कहते हैं, 'क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष जिनमें हों, वे सभी भावकर्म।' वे क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं लेकिन आप तो उनसे अलग रहते हो, इसलिए भावकर्म नहीं होते हैं। शरीर डिस्चार्ज कर्म करे या गुस्सा हो जाए तब आप कहते हो, 'नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।' तो खत्म हो जाएगा। भावकर्म तो बंद हो गए आपके। यदि भावकर्म होते तो आज भी आपको आर्तध्यान व रौद्रध्यान लगते और आपकी आत्म प्रगति नहीं हो पाती। जिनके आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो जाएँ, उनके लिए सब जैन साधु ऐसा कहते हैं कि, 'ये अब मुक्त पुरुष कहे जाएँगे।' लेकिन अभी यदि आप साधुओं से कहने जाओ कि, 'साहब, मेरे आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो गए हैं' तो साधु अंदर-अंदर बातें करेंगे, 'ज़रा पागल है', ऐसा कहेंगे। ऐसी समझ है वहाँ पर! बोलो अब!

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहेंगे, 'जो इस काल में संभव नहीं है, वैसी बात कर रहे हो?'

दादाश्री : वे तो जो चाहे कहें। 'हम इतने पहुँचे हुए हैं, हमें नहीं हुआ और इन्हें कैसे हो गया?' कौन स्वीकार करे ऐसी बात?

प्रश्नकर्ता : अभी जो भाव आते हैं हम लोगों को, वह सारा इफेक्ट है, वह नया चार्जिंग नहीं है?

दादाश्री : नहीं! नया चार्जिंग तो मेरी आज्ञा का पालन करते हो, वह है। आपके एक-दो जन्म इसमें बीतेंगे। अत: आज्ञा पालन करने जैसा धर्मध्यान और कोई नहीं है। यानी बहुत बड़ा पुण्य का बंधन होता है। पुण्य कैसा कि जहाँ जन्म होगा न, वहाँ मकान बनवाने के लिए नहीं सोचना पड़ेगा, न ही गाड़ी लाने के लिए सोचना पड़ेगा। गाड़ियाँ तैयार, मकान तैयार, सबकुछ तैयार! रोज़ाना सीमंधर स्वामी के पास छोड़ आएँगे और लेने आएँगे। सब तैयार मिलेगा और ठीक से पुण्य नहीं हों तो खुद खोदकर बंगला बनाना पड़ता है, मोटर खरीदनी पड़ती है। पुण्य वालों के लिए तो सबकुछ तैयार।

डिस्चार्ज का डिस्चार्ज

प्रश्नकर्ता : ये शक्तियाँ माँगते हैं न सारी, नौ कलमों में सारी शक्तियाँ माँगते हैं, उनकी अनुभूति कैसे होगी?

दादाश्री : वह बोलते रहना है, दूसरी और क्या अनुभूति करनी है? ऐसे माँगते रहें न, तो शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं और अंदर वह शुरू हो जाता है। व्यवहार में करने की चीज़ नहीं है यह कि आप लेकर घूमो। क्योंकि करना, वह डिस्चार्ज है जबकि यह चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : क्या शक्तियाँ माँगना, वह चार्ज है?

दादाश्री : हाँ! चार्ज है वह। यानी आप जो शक्तियाँ माँगते हो, वह चार्ज यानी कि डिस्चार्ज का चार्ज है। डिस्चार्ज में भी चार्ज करते हैं तब वापस कुछ समय बाद फिर से डिस्चार्ज शुरू हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : डिस्चार्ज का चार्ज क्या है? वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : यह सब डिस्चार्ज है, इसमें जब खाते हैं तो भूख मिटती है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन भूख लगे वह डिस्चार्ज है या खाते हैं वह डिस्चार्ज है?

दादाश्री : भूख लगना डिस्चार्ज है, बाद में जब खाते हैं तो वह भी डिस्चार्ज है लेकिन फिर वह डिस्चार्ज का चार्ज है। और फिर बाद में संडास जाता है, वह डिस्चार्ज है। यानी वह डिस्चार्ज का डिस्चार्ज है। यानी कि आपके हाथ में सत्ता नहीं है। लेकिन ऐसे नौ कलमें पढ़ोगे तो कुछ समय बाद वे शक्तियाँ शुरू हो जाएँगी। आपको तो ये नौ कलमें रोज़ बोलते ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इससे हमें अनुभूति कैसे होगी?

दादाश्री : यही अनुभूति होती रहेगी न फिर!

डिस्चार्ज का दुरुपयोग

प्रश्नकर्ता : किसे डिस्चार्ज नहीं मानना है?

दादाश्री : ऐसा उल्टा कहाँ पूछा? तू ऐसा सब करता है इसलिए तेरे दोष जाते नहीं हैं, इसका कारण यही है न! पश्चाताप करके धो लेना चाहिए। तूने ज़िंदगी में पश्चाताप किया ही नहीं है न! डिस्चार्ज ही कहा, इसलिए उल्टा हो गया। डिस्चार्ज कहकर आगे बढ़ गया, इसलिए यह बिगाड़ दिया।

'हमारे लिए यह डिस्चार्ज और उसके लिए चार्ज', ऐसा नहीं बोलना चाहिए। डिस्चार्ज को तो आपको जानना है कि भाई, यह डिस्चार्ज है और आपके लिए परेशानी खड़ी करने वाला नहीं है। यह किसी को कहने के लिए नहीं है।

हमारे यहाँ पर एक लड़के ने उसके कालेज के किसी दूसरे लड़के का बहुत नुकसान किया होगा, उसका करियर बिगाड़ दे, ऐसा। खुद का करियर बनाने के लिए दूसरे का करियर बिगाड़ दिया, ऐसा किया था। तब फिर उस लड़के से मैंने बहुत कहा, 'यह कैसे आदमी हो, दूसरे के करियर पर...' तो उसे ज़रा अंदर पश्चाताप होने लगा। तो उसका बड़ा भाई था न, उसने इसे समझाया कि, 'यह तो डिस्चार्ज है। इसमें हर्ज नहीं है अब।' तब, वह जो पश्चाताप कर रहा था, वह भी बंद हो गया। आपको, शुद्धात्मा को पश्चाताप नहीं करना है लेकिन चंदूभाई पश्चाताप नहीं करेगा तो कैसे धुलेगा वह? कपड़ा तो धोना ही पड़ेगा न? उसने डिस्चार्ज कहा तो पश्चाताप भी बंद हो गया। क्या ऐसा दुरुपयोग करना है इस डिस्चार्ज का?

अक्रम में निर्जरा संवरपूर्वक

प्रश्नकर्ता : मतलब क्रमिक मार्ग में क्रोध-मान-मोह-चारित्रमोह और दर्शनमोह हैं, उसी तरह इस अक्रम मार्ग में भी हैं न?

दादाश्री : सभी कुछ है! हाँ, वह सभी कुछ।

प्रश्नकर्ता : वहाँ *निर्जरा* होनी चाहिए, वैसी ही यहाँ भी होनी चाहिए न?

दादाश्री : पूरी होती है। सिर्फ यहीं पर फुल स्टॉप यानी *संवरपूर्वक निर्जरा* होती है, वहाँ बंधपूर्वक *निर्जरा* होती है।

शरीर जो करता है, वह *निर्जरा* है; मन जो करता है वह भी *निर्जरा* है; वाणी जो करती है, वह भी *निर्जरा* है। तू देखता रह, क्या *निर्जरा* हो रही है? अक्रम विज्ञान क्या कहता है? सबकुछ *निर्जरा* ही है। *निर्जरा* कहाँ से आई, साहब? तो कहते हैं, बंध डाले थे, वे। अब तुझे बंध (कर्म बंधन) से छूटना है तो... यह बंध की *निर्जरा* हो रही है अपने आप। जितना बंध हुआ है, उतनी *निर्जरा* होगी। बाद में क्या *निर्जरा* होने वाली है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : बंध की ही *निर्जरा* होती है न? जगत् को *निर्जरा* में से वापस बंध होता है। जगत् (के लोगों) की भी *निर्जरा* होती है। जीवमात्र की *निर्जरा* होती रहती है। लेकिन *निर्जरा* होकर फिर बंध होता है।

अब, मन में चाहे जो विचार आएँ, वे सब *निर्जरा* हैं। चंदूलाल जो कुछ भी करे, वह सब *निर्जरा* है। उसमें आपको दखलंदाज़ी नहीं करनी है, सिर्फ जानना और देखना है कि, 'भाई, चंदूभाई ने इस अनुसार किया।'

प्रश्नकर्ता : *निर्जरा* में से *पूरण* हो रहा है या *गलन*, ऐसा पता चलता है?

दादाश्री : आप शुद्धात्मा और *पूरण-गलन* भी अलग है और *निर्जरा* और बंध, ये दोनों अलग चीज़ें हैं। *पूरण-गलन* तो, यह जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, वह है। लेकिन जो बंध बन गया था, वह *निर्जरा* यानी विचार के रूप में *निर्जरा*। यह *निर्जरा पूरण-गलन* के रूप में है।

खाने का *पूरण* किया। आलू खाए और वायु हुई। जो वायु हुई उसे भी जाना और *पूरण* किए हुए को भी जाना। यह सब जानना है। यह बंध की *निर्जरा* है और आप शुद्धात्मा हो, ऐसा ध्यान रहे तो आपको कोई बंध नहीं होगा। शुद्धात्मा का ध्यान, वह शुक्लध्यान है। यानी शुक्लध्यान में बंध नहीं है। धर्मध्यान में बंध है। शरीर में तो *पूरण-गलन* होता ही रहेगा न? चाहे कुछ भी खाएँ लेकिन नाक से हवा तो जाएगी न, वह *पूरण* कहलाता है। वापस *गलन* भी करता है। वह *पूरण-गलन,* वह देह की *निर्जरा* है। जैसे-जैसे *निर्जरा* होती जाती है, वैसे-वैसे हल्के होते जाते हैं।

अब राग-द्वेष नहीं करोगे तो *निर्जरा* रहेगी, कर्म बंधन नहीं होगा। *संवर* अर्थात् चार्ज बंद हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो दैनिक क्रिया में क्या करना है?

दादाश्री : उस क्रिया को आपको देखते रहना है। चंदूलाल क्या करते हैं दिन भर। सुबह से शाम तक, बिस्तर पर सो जाने तक। ये चंदूभाई क्या करते हैं, वही देखते रहना है। सही कर रहे हों या गलत, वह आपको देखना और जानना है। उससे आपको बंध नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : उसका बंध (कर्म बंधन) किसे होता है?

दादाश्री : बंध रहा ही नहीं न, *निर्जरा* ही कहलाती है। देखता रहा यानी स्वभाव में रहा। स्वभाव में रहा यानी *निर्जरा* रही। देखते ही रहना है, चंदूभाई उल्टा करें या सीधा करें या उग्र हो गए हों, अंदर लोभ वगैरह खड़े हो गए हों, वह सब देखते रहना कि, 'हाँ, अभी लोभ तो भरा पड़ा है!'

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ध्यान रहा तो निरंतर *संवर* रहेगा। और जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा ध्यान था, तब तक *आश्रव* और बंध। और अब यह *आश्रव* और *संवर* रहता है। जिसका *आश्रव* हुआ, उसकी *निर्जरा* हुए बगैर रहेगी नहीं। जब आप चंदूलाल थे तब भी *निर्जरा* होती थी और आप शुद्धात्मा हो गए तब भी *निर्जरा* होती रहती है।

सिर्फ, जब चंदूलाल थे तब नया बंध पड़ता था और इस समय अब नया बंध पड़ना बंद हो गया। अपना यह साइन्स है। साइन्स में दखल देने जाएँगे तो बखेड़ा हो जाएगा।

जैसा माल भरा हो, वैसे भाव से *निर्जरा* होती है। शांत भाव से बंध हुआ हो तो शांत भाव से *निर्जरा* होती है। कषाय भाव से हुआ हो तो कषाय भाव से *निर्जरा* होती है। यानी जैसे भाव से बंध हुआ होगा वैसी *निर्जरा* तो होगी न! लेकिन यदि आप सिर्फ देखते रहोगे तो *संवर* भाव रहेगा, इतना ही कहना चाहता है अपना विज्ञान।

प्रश्नकर्ता : कषाय भाव से बंध हुआ हो और कषाय भाव से *निर्जरा* हो तो उस समय कषाय भाव का बंध नहीं होगा?

दादाश्री : नहीं! बंध नहीं होगा। जिस भाव से बंध हुआ हो उसी भाव से *निर्जरा* होती है। जानवरों में भी *निर्जरा* होती है और आप में भी *निर्जरा* होती है। *निर्जरा* में फर्क नहीं है, सिर्फ लोगों की दृष्टि में फर्क है कि, 'मुझे हो रहा है यह।' अज्ञानता में मन में मानता है कि, 'मुझे हो रहा है और ऐसा हो रहा है यह।' लेकिन इस ज्ञान के बाद, 'मैं जुदा हूँ', जुदापन अनुभव करता है। उसे *संवर* कहा जाता है। फिर भी यदि कहें, कषाय भाव से *निर्जरा* हो रही हो और किसी को दुःख हो जाए, ऐसा शब्द बोल दिया तो आप कहना कि, 'चंदूभाई, अतिक्रमण क्यों किया, प्रतिक्रमण करो।' आप किसी को दुःख देने नहीं आए हो। वर्ना उसका हिसाब नहीं चुक पाएगा। आपको पता चलता है या नहीं कि यह अतिक्रमण हो गया है?

प्रतिक्रमण से मिटे डिज़ाइन

इस जन्म के इफेक्ट को लेकर ज़रा कच्चा रह जाता है। एकदम से उसका इफेक्ट बदलता नहीं है न! आदत होती है न, वह क्या एकदम सुधर जाती है?

प्रश्नकर्ता : हम जो इफेक्ट भुगतते हैं, तब कभी ऐसा लगता है कि यह मुझसे हो गया।

दादाश्री : नहीं, वैसा होता तो है लेकिन तुरंत ऐसा समझ आता है न, 'मुझसे यानी किससे?' तब कहते हैं, 'चंदूभाई से हुआ।' उस समय ध्यान तो रहता है न, 'मेरा हिस्सा कौन सा और चंदूभाई का कौन सा?'

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब जो बैड इफेक्ट होता है, तो...?

दादाश्री : वह होगा ही, इफेक्ट तो होगा न लेकिन खुद उस इफेक्ट को जानता है कि, 'यह इफेक्ट हो रहा है इस समय, चंदूभाई को।' अंत तक वह खुद जानकार रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह जो अच्छा-बुरा इफेक्ट होता है, अब वह व्यवहार की दृष्टि से ऐसा लगता है कि यह गलत है, तो...

दादाश्री : 'गलत है' ऐसा लगता है, लेकिन वह तो चंदूभाई को लगता है न! व्यवहार दृष्टि से है, और वह भी जानता है कि, 'यह गलत है'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। हम वह सब जानते हैं, लेकिन फिर भी भाव करके उस इफेक्ट को स्टॉप करना है या *निर्जरा* हो जाने देनी है?

दादाश्री : नहीं, इतना ध्यान रहना चाहिए कि, 'यह अपना नहीं है'। ऐसा ध्यान नहीं रहे तो उसे कहना कि 'अपना नहीं है', तो अलग ही।

प्रश्नकर्ता : मेरा कहना क्या है कि मान लीजिए कि मैं चोरी करता हूँ। अब, हम समझते हैं कि इफेक्ट है जो पूर्व जन्म के कारण हुई, लेकिन यदि चोरी करते हुए हमें ऐसा लगे कि यह गलत है, तो उस इफेक्ट की *निर्जरा* होने देनी है?

दादाश्री : नहीं! उसकी उस समय *निर्जरा* होती रहती है। *निर्जरा* तो होती है सभी चीज़ों की, उसमें कोई पुरुषार्थ नहीं है। 'गलत है', ऐसा मानो तब भी *निर्जरा* और नहीं मानो तब भी *निर्जरा* है।

प्रश्नकर्ता : तो मान लीजिए कि मैं किसी की जेब से पाँच डॉलर ले लेता हूँ, वह इफेक्ट है। अब, हमें ऐसा लगता है कि, 'यह गलत है', तो पाँच डॉलर ले लें और इफेक्ट की *निर्जरा* होने दें या फिर पाँच डॉलर नहीं लें और...?

दादाश्री : तब क्या होता है, वह देखना है। नहीं लेने या लेने हैं, उसका निश्चय नहीं करना है हमें। ले लिया जाए तो भी *निर्जरा* और नहीं लिया जाए तो भी *निर्जरा*।

प्रश्नकर्ता : अब, हम जो चोरी करते हैं, तब अंदर जो भाव होता है कि यह चोरी नहीं होनी चाहिए, तो क्या वह पुरुषार्थ कहलाता है?

दादाश्री : नहीं, वह तो यदि आत्मा नहीं मिला हो तो वह पुरुषार्थ कहा जाएगा। आत्मा मिलने के बाद *निर्जरा,* इफेक्ट है वह। लेकिन पछतावा हो तो अच्छा ताकि यह डिज़ाइन जल्दी मिट जाए। वर्ना डिज़ाइन नहीं मिटेगी, जब तक पछतावा नहीं होगा तब तक। अत: प्रतिक्रमण करने से फायदा होगा।

कर्म भोले तो भोगवटा हल्का

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने एक बात बताई थी कि आपको जो भुगतना है, वह अभी ही भुगत लेते हैं इसलिए *निर्जरा* हो जाती है। अब, हम लोगों को संसार में रहना है। कुछ चोट लगी या सिर दर्द हुआ तो तुरंत दवाई लेकर वापस काम पर जाते हैं, तो उसे *निर्जरा* करना कहा जाएगा या भुगतना रोके रखा, ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : नहीं, *निर्जरा* हो गई, ऐसा कहा जाएगा। दवाई मिल जाए तो भी *निर्जरा,* दवाई नहीं मिले और पाँच दिन देर करें, तब भी वह *निर्जरा*। दवाई के लिए हाय-हाय नहीं करनी है। उस समय *निर्जरा* नहीं होगी। जो सहज रूप से मिलता रहता है न, वह सब *निर्जरा* ही हो रही है।

जो कर्म हमने बाँधा हो, वह यदि भोला हो न, तो उसकी दवाईयाँ जल्दी मिल जाती हैं हमें, और बनिये जैसा गाढ़ कर्म हो न तो देर से, देर लगती है, दवाई नहीं मिलती। भोले कर्म होते हैं या नहीं? जो मनुष्य भोला हो न, उसके कर्म भोले होते हैं। जो लुच्चा हो, उसके कर्म लुच्चे होते हैं। नालायक हो, उसके कर्म नालायक होते हैं। जो लायक हो, उसके कर्म लायक होते हैं। यानी जैसा है, वैसे ही उसके कर्म के उदय होते हैं। जो दूसरों का तेल निकाल देता हो, उसका खुद का तेल निकाल देते हैं उसके कर्म।

खुद के कर्म का जो उदय है न, उसका *निकाल* हो जाना है। भुगतने पर छुटकारा होगा। कड़वा-मीठा फल चखने के बाद में जाते हैं। अगर अभी आप बंद करोगे, तो बाद में चखना पड़ेगा। इसलिए रात को चखने के बजाय दिन में ही चख लो न।

प्रश्नकर्ता : इस जगत् में चली आई मान्यताएँ, उन पर दादा के ज्ञान से बुलडोज़र चल गया।

दादाश्री : बुलडोज़र नहीं चलाएँगे तो लाख जन्मों में भी नहीं छूट पाएँगे। यह सारा क्रमिक, यानी कान को ऐसे पकड़ना (बायें हाथ से दायी कानपट्टी पकड़ना) और अक्रम यानी ऐसे पकड़ना (सीधे हाथ से सीधी कानपट्टी पकड़ना)। पूरा बुलडोज़र घुमा दो अब। लेकिन यदि इस ज्ञान को ही पकड़ ले न, तब भी काम हो जाएगा। दरअसल विज्ञान को जैसा है वैसा अनावृत किया है। कितना हो रहा है? कितना करना पड़ता है? कितना हो जाता है? सब बता दिया है। डिस्चार्ज किसी ने कहा ही नहीं है। डिस्चार्ज का स्वरूप सब से पहले हमने बताया है। अक्रम विज्ञान में सभी कुछ, जो भी बताते हैं, वह सब पहली बार या प्रथम है वह चीज़।

[4.3]

कॉज़ - इफेक्ट

हस्ताक्षर हो जाते हैं, वह भी इफेक्ट

प्रश्नकर्ता : तो फिर हर एक इफेक्ट में कॉज़ को पहचानेंगे तभी हमारे नए कॉज़ ठीक से डलेंगे न?

दादाश्री : नहीं। नए कॉज़ तो आपके बंद कर दिए हैं, लेकिन आप जान-बूझकर यह सब चित्रित करो तो उसमें कोई क्या कर सकता है?

प्रश्नकर्ता : हमें अलग-अलग प्रसंगों में, पुराने माल के आधार पर हमारे प्रतिभाव तो होते ही हैं न, कि 'यह व्यक्ति परेशान कर रहा है।' अब उन प्रतिभावों पर हस्ताक्षर तो हो ही जाते हैं न?

दादाश्री : वे तो हो जाएँगे। उसमें भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : बाद में यदि हमें ज्ञान हाज़िर रहे तो हम वे हस्ताक्षर वापस ले लेते हैं या फिर शाम को प्रतिक्रमण करते हैं। लेकिन अगर मन में ऐसा रहे कि, 'वह व्यक्ति परेशान कर रहा है', तो वह फिर से चार्ज हो जाएगा या नहीं, यदि हमने प्रतिक्रमण नहीं किया या वापस नहीं लिया तो?

दादाश्री : कुछ भी चार्ज-वार्ज नहीं होगा। यदि वह खुद ऐसा कहे कि, 'नहीं, मैं चंदूभाई ही हूँ', तभी चार्ज होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर मुझे किसी ने थप्पड़ मारा तो उस समय क्षण भर के लिए तो ऐसा असर हो ही जाता है न, कि 'मैं चंदूभाई हूँ।'

दादाश्री : ऐसा कुछ होता ही नहीं है, वह सब इफेक्ट है। यह जितना भी आप बोल रहे हो न, वह सारा इफेक्ट है। इस जगत् में जो कुछ भी देखा जा सकता है, सुना जा सकता है, वह सारा इफेक्ट है। यह व्याख्यान करते हैं यह भी इफेक्ट है, सुनने वाले भी इफेक्ट हैं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, लेकिन हम उस इफेक्ट में हस्ताक्षर कर देते हैं न।

दादाश्री : हाँ, हस्ताक्षर करते हो, वह भी इफेक्ट है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, फिर छूटेंगे कैसे?

दादाश्री : छूट ही गए हो, लेकिन आपको तो मन में वहम हो जाता है कि यह क्या हो गया? किसी को यदि लड्डू-जलेबी की इच्छा होती है तो वह भी इफेक्ट है। आँखों से दिखाई देने वाला, कानों से सुनाई देने वाला, सब इफेक्ट ही है।

राग-द्वेष, वे हैं कॉज़ेज़

कॉज़ेज़ में क्या है? क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, वे सब कॉज़ेज़ हैं।

प्रश्नकर्ता : वह तो अभी ढेरों हैं।

दादाश्री : नहीं, वे आपको होते ही नहीं हैं, ऐसा आपको लगता है। कभी होता है आपको?

प्रश्नकर्ता : होता है, लेकिन प्रतिक्रमण हो जाता है। दादा, चंदूभाई की तो बहुत सी इच्छाएँ और बहुत भाव रहे हुए हैं कि अभी बहुत भोगना है, ऐसी सारी इच्छाएँ यों दिखाई देती हैं।

दादाश्री : वे सभी इच्छाएँ मात्र इफेक्ट हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वे पूरी करने के लिए भी कुछ टाइम चाहिए न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर नॉट रिस्पॉन्सिबल।

प्रश्नकर्ता : कोई लोभ की वृत्ति उदय हुई तो उस लोभ को अमल में लाने के लिए अंदर कपट खड़ा हो ही जाता है। अब, जो उदय हुआ, उसके संस्कार बहुत बलवान हों तभी वह अमल में आता है। तो उन संस्कारों को निर्मूल करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, यह डिस्चार्ज स्वरूप है। डिस्चार्ज यानी इफेक्ट। इफेक्ट को तो देखते ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका इफेक्ट होता तो है न, हम पर?

दादाश्री : जिसने यह ज्ञान नहीं लिया हो, उसे सारा बदलाव करना पड़ता है। उस संस्कार में बदलाव करना पड़ता है उसे अहंकार करके। लेकिन इसमें अहंकार नहीं रहा और अब सिर्फ डिस्चार्ज रहा। यह डिस्चार्ज है इसलिए चाहे कैसे भी कपट करे, सब करे, फिर भी वह डिस्चार्ज है।

प्रथम बदलाव कॉज़ में

कॉज़ पहले बदलते हैं और परिणाम बाद में बदलते हैं। अत: 'ज़ेवर वगैरह अब काम के ही नहीं हैं और इस संसार के पैसों-वैसों या किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है', ऐसी प्रतीति बैठ जाती है उसे। फिर भी गिनते समय तो सतर्क रहता है। क्योंकि गिनते समय वे पिछले परिणाम हैं और यह प्रतीति, यह कॉज़ है। इसलिए हम परिणाम को नहीं देखते, हम यह देखते हैं कि प्रतीति क्या बैठी है। फिर हट जाते हैं, हम जानते हैं कि यह कॉज़ हुआ है, अत: वैसे ही

परिणाम आएँगे। फिर हम डाँटते नहीं हैं जबकि लोग तो किच-किच करते हैं, 'दादा का ज्ञान लिया है तब भी वैसी की वैसी ही रही।' भाई, यह तो परिणाम हैं उसके। लेकिन वह समझ में नहीं आता इसलिए वह भी चिढ़ जाती है। फिर कहती है, 'छोड़ो न, इसके बजाय तो जैसे पहले थे वही अच्छा था।' तब प्रतीति में जो आया हुआ होता है वह भी चला जाता है।

अत: यह जो उल्टा दिखाई देता है, यह परिणाम है पहले का। सारे ही वर्तन परिणाम हैं और अंदर जो प्रतीति है, वह पुरुषार्थ है। उस पुरुषार्थ का फल आएगा और उस पहले के पुरुषार्थ का फल अभी आया है। अभी तो यदि कहीं व्यापार में नुकसान हो जाए तो अकुलाहट हो जाती है, उसका क्या कारण है? अकुलाहट, वह पहले का परिणाम है, वह आज का परिणाम नहीं है।

क्या यह भी इफेक्ट है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद में अच्छे भाव उत्पन्न होते हैं, अच्छी चीज़ करने के भाव उत्पन्न होते हैं तो यह भी इफेक्ट कहा जाएगा न?

दादाश्री : इफेक्ट ही है यह तो।

प्रश्नकर्ता : इफेक्ट है तो फिर इसका फल मिलना चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, यह जो अच्छा करने के भाव उत्पन्न होते हैं न, तो फिर इसका फल आगे जाकर मिलेगा ही। लेकिन ये जो अच्छे भाव होते हैं, ये भी इफेक्ट हैं और जो फल मिलता है वह भी इफेक्ट है। इसमें कॉज़ेज़ नहीं हैं, कॉज़ेज़ तो, जब कर्ता बन जाए कि 'इस तरह के भाव का मैं कर्ता हूँ,' तब कॉज़ेज़ बनते हैं। बाकी, अच्छे भाव आना अलग चीज़ है और कर्ता बनना अलग चीज़ है। कर्ता हो तो वह कॉज़ेज़पन है और ममता हो तो वह कॉज़ेज़पन है।

यह ज्ञान देने के बाद में कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होते। पिछले जन्म

के कॉज़ेज़ का ही आज परिणाम आता है। ये परिणाम बदले नहीं जा सकते। अत: परिणामों को 'देखते' रहना है। यदि कॉज़ेज़ होते तो हमें आपसे कहना पड़ता, 'देखो, ऐसा रखना, वैसा रखना।' लेकिन ये कॉज़ेज़ नहीं हैं, ये परिणाम हैं। सिर्फ इफेक्ट है। यह भी फिर व्यवस्थित है। तो चंदूभाई पर क्या इफेक्ट हो रहा है, वह सब देखते रहना है। किसी महात्मा को यदि उसकी पत्नी पीट दे तो महात्मा आकर मुझे बताते हैं। तब मैं कहता हूँ कि, 'आप समभाव से *निकाल* कर देना। क्योंकि यह सारा तो परिणाम है।' और महात्मा समता रखते भी हैं, अद्भुत समता रखते हैं!

प्रश्नकर्ता : यह जो इफेक्ट है, यह किसका है? पूर्व संचित का है?

दादाश्री : पूर्व जन्म में जो कॉज़ेज़ डल चुके थे, उसका इफेक्ट है यह। अब, नए कॉज़ेज़ बंद हो गए हैं इसीलिए फिर अब दूसरे नए इफेक्ट नहीं आएँगे। ये पुराने इफेक्ट जो आज भुगतने पड़ रहे हैं, उसे लोग प्रारब्ध कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करने के लिए, मैंने पिछले जो सारे कर्म किए हुए हैं वे सब मुझे खपाने पड़ेंगे न?

दादाश्री : वे इफेक्ट हैं। इफेक्ट अर्थात् जो अपने आप होता रहता है। हमें फिर से दखल नहीं देना है।

वह है भीड़ वाले असर में सफोकेशन

प्रश्नकर्ता : यदि ज्ञान में स्थिर रहकर कोई व्यक्ति रोज़ का जीवन जीए तो सब स्थिर हो जाएगा, पक्का हो जाएगा कि मरना-जीना होता ही नहीं है लेकिन वह ज्ञान कभी-कभी चला जाता है न? चला जाता है इसलिए संसार कायम रहता है न?

दादाश्री : ऐसा है न, कि यदि बहुत भीड़ वाला (ज़ोरदार) इफेक्ट आ जाए न, तो वह ज़रा सफोकेशन करवाता है। आपके भीड़

वाले इफेक्ट नहीं आएँगे इसलिए आपका जाएगा ही नहीं न, इधर–उधर जाएगा ही नहीं न! जिसके भीड़ वाले इफेक्ट आते हैं, उसका यह सारा चला जाता है। वास्तव में वह चला नहीं जाता, सिर्फ सफोकेशन ही होता है।

कॉज़ेज़ व इफेक्ट तो हमने ही कहा है न! किसी ने कहा ही नहीं है न अभी तक! अगर इफेक्ट को किसी ने कीमती नहीं माना है तो वह हमने। बाकी, पूरा जगत् इफेक्ट्स में ही पड़ा हुआ है। उनके लिए कॉज़ेज़ की कीमत ही नहीं है। कॉज़ेज़ में जो होना हो वह हो लेकिन इफेक्ट पर ही ध्यान देते रहते हैं और इसीलिए फिर कॉज़ेज़ उत्पन्न होते रहते हैं और अंदर निरे पाप बंधते रहते हैं। इफेक्ट अच्छा भी हो तो उसका क्या करना है? छोड़ो न यहीं!

यह जगत् किस कारण से कायम है? कॉज़ेज़ और इफेक्ट। कॉज़ेज़ बंद हो जाएँगे तो फिर इफेक्ट ही रहेगा। तो समय आने पर भरा हुआ माल खाली हो जाएगा। कॉज़ेज़ बंद हो गए, अब इस इफेक्ट को 'देखते' रहना है। इफेक्ट फिल्म है और आप फिल्म को देखने वाले हो। अब, यह जो सारा बचा है वह 'व्यवस्थित' है। वह सारा इफेक्ट है। चंदूभाई जो कुछ भी भुगतते हैं, वह सारा इफेक्ट है!

[5]
'नहीं है मेरा'

फिर तो जाना ही होगा न मोक्ष में

अपना तो क्षायक समकित है। यानी सम्यक् दर्शन से भी बहुत उच्च प्रकार का है। अब, सम्यक् दर्शन का अर्थ क्या है कि जिस दिन से जाना कि, 'यह मैं नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', तभी से जो-जो कचरा निकलता है, 'वह मेरा नहीं है।' सम्यक् दर्शन जिस दिन हो जाता है, एक गुणस्थानक (48 मिनट्स) जो सुख चखा, वह मैं हूँ, बाकी का यह सारा कचरा है, बाकी सारा उदयकर्म है। कभी अच्छा निकलता है, कभी खराब निकलता है, कचरा निकलता है। लेकिन तब अपने आपसे यह कह देना कि, ''भाई यह सारा जो है वह 'मैं नहीं हूँ।'' इसीलिए सम्यक् दर्शन क्या कहता है कि, 'मुझे प्राप्त करने के बाद में यदि तुझे मोक्ष में नहीं आना होगा तब भी आना ही पड़ेगा।' अत: यहाँ आने से पहले सोच लेना!

'नहीं है मेरा', वहाँ पर नहीं रहते राग-द्वेष

प्रश्नकर्ता : अंदर से जो प्रेरणा होती है वह फाइल कहलाती है, अत: उस फाइल का समभाव से *निकाल* करना पड़ेगा न?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करे या फिर ऐसा कहे कि, 'मेरा नहीं है,' तब भी छूट जाएगा, नहीं तो (वह कर्म) चिपक जाएगा। अलग

है, ऐसा देखने से भी छूट जाएगा। वह तो क्या कहता है कि, 'आप राग-द्वेष करोगे तो आपसे चिपकेंगे, नहीं तो नहीं चिपकेंगे। उन्हें जब अलग देखते हो, उस समय राग-द्वेष नहीं होते या फिर 'मेरा नहीं है' ऐसा कह दो तो राग-द्वेष नहीं होते हैं। मेरी चीज़ पर राग-द्वेष होते हैं न?

अब परेशान करते हैं व्यवहार कषाय

कषाय धीरे-धीरे हल्के हो जाते हैं। ये कषाय सिर्फ व्यवहार कषाय हैं। वास्तव में निश्चय कषाय नहीं हैं ये। लेकिन वे हल्के होते जाएँगे। और अंत में व्यवहार कषाय भी नहीं होने चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : ये जो व्यवहार कषाय हैं, वही बहुत परेशान करते हैं न?

दादाश्री : नहीं, अपने ज्ञान के बाद कषाय परेशान करते होंगे क्या?

प्रश्नकर्ता : इस फाइल नंबर वन में जो कषाय हैं वे बहुत परेशान करते हैं। उससे आकुलता होती है, क्लेश होते रहते हैं फिर।

दादाश्री : लेकिन वह आपको नहीं होता है न?

प्रश्नकर्ता : मान्यता में तो ऐसा ही है कि मुझे नहीं होता है लेकिन फिर भी जो अनुभव होता है न, वह अनुभव अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : उसके लिए आप इतना ही कहो कि, 'यह मेरा नहीं है' तो आप पर असर ही नहीं करेगा। आपकी जो मान्यता है अगर आप वैसा ही बोलोगे कि 'यह मेरा नहीं है', तो असर नहीं करेगा। यदि आप 'मेरा नहीं है' नहीं कहोगे तो फिर अंदर घुस जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या बार-बार ऐसा बोलना पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ, वह तो बोलना ही होगा न उस समय। जब वे अंदर घुसने की तैयारी करें तब क्या आपको नहीं समझ जाना चाहिए

कि, 'अरे! यह मेरा नहीं है। पराए घर वाला यहाँ कहाँ घुस रहा है?' इस तरह से बोलना होगा। व्यवहार का अर्थ यही है कि शब्दश: बोलना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : फिर एक घंटे बाद ध्यान आता है कि 'यह मेरा नहीं है'।

दादाश्री : लेकिन ऐसा बोल दोगे तो फिर आएगा ही नहीं न! 'चला जाता हूँ', ऐसा ही कहेगा। आपको स्पर्श नहीं करेगा वह तो।

'नहीं है मेरा' कहते ही खत्म

ये सारे खुलासे कर लो न! यह तो पूरा विज्ञान है। और फिर उस अनुसार रहता ही है। यह ज्ञान दिया है न, तभी से एक्ज़ेक्ट अलग हो जाता है। या फिर कोई परेशानी आए न तो 'मेरा स्वरूप नहीं है' ऐसा कहोगे न, तो अलग हो जाएगा। क्योंकि मेरा और आपका दोनों के बीच में लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल दी है। अत: यदि उन दोनों के बीच कोई झगड़ा हो जाए तो यह 'मेरा नहीं है' कहने से अलग हो जाएगा। मन का कचरा, चित्त का कचरा, चाहे कैसे भी विचारों में मन डूब गया हो तब 'मेरा नहीं है' ऐसा कहने से वह अलग हो जाएगा, एक ही वाक्य से। इतना बोलने की ही ज़रूरत है। तो फिर आपको स्पर्श नहीं करेंगे! है ही नहीं अपना स्वरूप वह। अंदर असमंजस में पड़ोगे तो चिपक पड़ेगा, फिर उसका बोझा रहेगा। और जब उलझन आए तो 'मेरा नहीं है,' ऐसा कह देना। क्योंकि ये सारी उलझनें आपकी नहीं हैं। उलझनें तो चंदूलाल की हैं सारी। जगत् में, 'हमारा है, हमारा' ऐसा करने से यह भूत लग गया है। वास्तव में उनका नहीं है न, फिर भी ऐसा मानते हैं, 'हमारा है' जबकि आपके लिए तो वास्तव में 'हमारा नहीं है' इतना कहने में हर्ज ही क्या है? अपना है ही नहीं।

'नहीं है मेरा' कहा कि बैठा 'स्व' में

प्रश्नकर्ता : यों तो जिसे उपयोग नहीं रहता, वह स्वरूप से बाहर ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : कोई भी रिलेटिव चीज़ आने पर जो ऐसा कहे, 'यह मेरी नहीं है' तो वह 'स्वरूप' में है। तब यहाँ पर स्वरूप में बैठकर बोलता है। वर्ना बोल ही नहीं सकता। बाहर खड़ा हो तो नहीं बोल सकता। 'यह मेरा नहीं है,' कहा तो वह स्वरूप में है। अगर प्योर है तो फिर कुछ बाकी रहा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन सभी संयोगों में 'मेरा नहीं है' ऐसा नहीं रहता, दादा।

दादाश्री : वह 'तेरा है' ऐसा लगता है तुझे?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कोई भाव नहीं रहता कि यह मेरा है या नहीं।

दादाश्री : यानी कि उपयोगपूर्वक नहीं रहता है, ऐसा है। अपने आप तो रहता है, लेकिन उपयोगपूर्वक रहना चाहिए कि 'नहीं है मेरा'। हमारे 'नहीं है मेरा' बोलने से अंदर बाकी सारे जो बैठे हुए हैं, वे सुनेंगे और कहेंगे, 'ओहोहो! हम से सच ही बोल रहे हैं अब।' बुद्धि, मन और चित्त को विश्वास हो जाता है कि अब ये 'उस' पक्ष के हो गए हैं, अब अपना नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : शुरुआत की अवस्थाओं में बोलना है, फिर तो परमानेन्ट ऐसा हो जाएगा न? यानी अभी बोलते रहना है?

दादाश्री : लेकिन अभी तो, शुरुआत तो अभी ही हुई है न! 'मेरा नहीं है' कहने में क्या हर्ज है? बस धीरे से, मन में, ज़ोर से नहीं बोलना है। मन में बोलना है कि 'मेरा नहीं है'। तिजोरी के आसपास जो पुलिस वाले होते हैं। वे रात को बारह बजने पर बारह बजे के घंटे बजाते हैं। एक बजा हो तो एक का घंटा बजाते हैं और फिर एक-एक घंटे में बोलते हैं, 'अल बेल... अल बेल...' ऐसा बोलते हैं। अत: फिर सभी पुलिस वाले सुनते हैं, सभी आराम से सो जाते हैं। 'अल बेल' का मतलब क्या है?

'अल बेल' अर्थात् 'ऑल वेल'। अब इतना बोलते हैं, इसीलिए

फिर लोग आराम से सो जाते हैं न? अगर नहीं बोलें तब फिर शंका होती है कि, 'क्यों साढ़े बारह हो गए फिर भी आज बोला नहीं।' एक-एक घंटे में बोलना पड़ता है, उसी तरह हमें भी बोलना है। बोलने से प्रमाणित हो जाएगा कि खुद स्वरूप में हैं, जागृतिपूर्वक है और 'मेरा नहीं है' कह रहा है।

स्वरूप में रहे, उसका प्रमाण क्या? तो कहते हैं कि अगर कोई पत्थर मारे, उस समय उसे अगर तुरंत ही ऐसा होगा कि यह 'स्वरूप मेरा नहीं है।' यानी क्या कि खुद स्वरूप में बैठकर बोलता है। चाहे कैसा भी रिलेटिव आए तो 'मेरा स्वरूप नहीं है' बोलने से छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कई बार जागृति रहती है कि, 'यह मेरा स्वरूप नहीं है', सहज रूप से रहती है। कई बार जागृति नहीं रहती और तन्मयाकार हो जाते हैं उस रिलेटिव चीज़ में।

दादाश्री : हाँ, तो ऐसा बोल न! 'मेरा स्वरूप नहीं है' ऐसा बोलने का अभ्यास करने से जागृति आ जाती है। अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कई बार कोई रिलेटिव चीज़ या संयोग नहीं हो तब ऐसा लगता है कि मैं स्वरूप में हूँ।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। कोई हर्ज नहीं है। संयोगों के आने पर ही उसका (स्वरूप) इधर-उधर होना संभव है। तो संयोगों से आप कह देना कि 'मेरा स्वरूप नहीं है'।

प्रश्नकर्ता : संयोग नहीं हों तब हम स्वरूप में होते हैं?

दादाश्री : 'संयोग नहीं हों' अर्थात् उसने बात को समझा नहीं है। मन भी नहीं है उस समय! मन यदि कुछ सोच रहा हो, तो वह संयोग कहलाता है। तब भी आप ज्ञायक स्वरूप में ही हो। भटकते चित्त को आप देखते रहो, उस समय आप स्वरूप में हो। जैसे कि आपकी गाय हो, वह इस तरफ दौड़े, उस तरफ दौड़े, तो उसे भी आप देखते ही रहो, तब आप स्वरूप में हो। चित्त का स्वभाव भटकने

का है लेकिन उसमें तन्मयाकार हो जाएगा तो वह बिगड़ जाएगा। तू कभी हुआ है तन्मयाकार?

प्रश्नकर्ता : हुआ हूँ। अभी तक तन्मयाकार ही थे।

दादाश्री : उसे तन्मयाकार कहा जाता है, तदाकार कहा जाता है, वह जो है फिर उसी आकार का बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, कई बार एकाध मिनट तन्मयाकार हो जाते हैं और दूसरे ही मिनट में जागृति आती है कि ये मेरे विचार नहीं हैं।

दादाश्री : तो हर्ज नहीं है। उसके बाद अगले मिनट पर ही बोल दोगे तो भी हर्ज नहीं है। उस समय छींक आ रही हो तो नहीं बोल सकोगे। छींकने के बाद में आप बोल पाओगे। बाद में कहते हो तो जागृति कम है ज़रा, लेकिन दिक्कत क्या है? लेकिन फिर तुरंत कह देते हो न।

वह नहीं होने देता है, एक

प्रश्नकर्ता : आत्मा और अनात्मा के संधि स्थान को एक नहीं होने दे, उसके लिए कौन सा उपाय करना चाहिए?

दादाश्री : अपना एक खेत हो उसमें डिमार्केशन लाइन डाल दी कि, 'भाई, यह है इसका और यह अपना।' अब उस खेत वाले को भ्रम हो जाता है। कोई आकर कहे कि एक व्यक्ति तेरे खेत में से भिंडी ले गया। तो उसे वह बताया तो उसका दिमाग़ घूम जाता है। जाकर देखता है तो फिर खुद का ही है, ऐसा लगता है क्योंकि खुद के (खेत के) नज़दीक है न! अतः वह तुरंत ही शोर मचा देता है, परेशान होता है, गालियाँ देता है और ऐसा सब... तब फिर यदि कोई ज्ञानी आकर कहे कि, 'भाई, क्यों परेशान हो रहा है बिना बात के?' 'अरे! मेरी भिंडी गई तो क्या मैं परेशान नहीं होऊँगा? आपको भी होगी।' 'अरे भाई, तू देख तो सही। देख, इतने तक तेरा है और यह इनका है', तब फिर खूब आनंद में आ जाता है।

अतः हम, 'शुद्धात्मा हूँ', उस होम डिपार्टमेन्ट में रहें तो कोई ज़रा परेशानी वाला स्पंदन होने लगे, कोई अड़चन वाला, तब 'मेरा स्वरूप नहीं है' कहते ही छूट जाएगा। जिस प्रकार इस खेत में मेरा नहीं है इस तरफ का, ऐसा कहते ही छूट गया न! 'मेरी है' ऐसा कहा तभी तक परेशानी होगी इसलिए ऐसा कहना पड़ता है। क्या कहना पड़ता है? 'मेरा नहीं है।' उस समय यथार्थ रहेगा फिर।

इसने कुछ छुआया कि तुरंत ही देखो हाथ हटा लिया न, तो वह जो गुदगुदी हुई वह *पुद्गल* का स्वभाव है लेकिन इस प्रकार हाथ खींच लिया, वह *पुद्गल* का स्वभाव है। लेकिन दूसरे ही मिनट पर मैंने कहा कि, 'यह मेरा नहीं है' तो तुरंत ही फिर कुछ भी नहीं होता। किसी जगह पर मेरापन रह गया हो तब 'मेरा नहीं है' ऐसा कहने से फिर झंझट नहीं होगी। 'मेरा नहीं है' कहा तो फिर से दोनों अलग हो जाएँगे।

कर्म अलग और आत्मा अलग

प्रश्नकर्ता : होटल में पहले कभी कुछ खाकर आया होऊँ तो वैसी चीज़ खाने के बहुत विचार आते हैं कि बिस्कुट खाऊँ या यह खाऊँ या वह खाऊँ। तो उसके लिए प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे या सिर्फ देखते रहना है?

दादाश्री : वहाँ पर 'नहीं है मेरा' ऐसा कहना है। देखते नहीं रहना है। 'नहीं है मेरा', वह तो चंदूभाई का है। 'चंदूभाई, तेरा दुःख भी हम नहीं लेते' ऐसा कहना।

प्रश्नकर्ता : यानी कि यदि कुछ हो जाए तो उसे अपने सिर नहीं लेना है?

दादाश्री : हाँ, अपने सिर नहीं लेना चाहिए। आप अलग और हम भी अलग। इतना ही कह दिया तो बस हो गया! इतना कहना होगा, 'हम अलग'। उस समय अपना ज्ञान गुलाट नहीं खा जाए इसलिए बोलना पड़ता है। शुद्धात्मा अलग है और यह भी अलग है, दोनों चीज़ें

अलग ही हैं न! अत: जैसा है वैसा बोलना चाहिए हमें, जितना जाना है उतना। फिर ज़रा भी असर नहीं होगा। अंदर ज़रा कुछ भी बदलाव हुआ कि उसमें 'आप' अलग और 'मैं' अलग, बस हो गया! 'हम हैं,' ऐसी गप्प नहीं लगानी है। यह कल्पित चीज़ नहीं है!

हम शुद्धात्मा हैं और ये कर्म हैं। ये कर्म, वह जो चीज़ है, वह परिस्थिति है। वह बदलती रहती है। तो हम, 'आप अलग और हम अलग', ऐसा बोलेंगे ताकि हम पर असर न हो। कर्म अपना काम करते रहेंगे लेकिन असर नहीं होगा, अनइफेक्टिव और अगर उसमें दखल देंगे तो कुछ सुधरेगा नहीं वह। बल्कि अपना जो सुख है, वह रुक जाएगा। दखल देने की आदत पहले से ही डली हुई है, वह अभी भी जाती नहीं है! हमें अब यह आदत डालनी चाहिए, 'तू अलग, मैं अलग। मैं तेरी हेल्प करूँगा।' ऐसा कहना।

प्रज्ञा करती है, अलग

प्रश्नकर्ता : अंदर से यह जो वार्तालाप होता है, वह भी प्रतिष्ठित आत्मा ही करता है न?

दादाश्री : यह जो प्रज्ञा स्वरूप है न, वह प्रज्ञा सारा काम कर ही लेती है। आत्मा को कुछ नहीं करना पड़ता। जब तक यहाँ संसार का कर्म स्वरूप है, तब तक प्रज्ञा है। कर्म स्वरूप खत्म होते ही प्रज्ञा बंद हो जाएगी। तब तक प्रज्ञा कह देती है कि, 'भाई, आप अलग और हम अलग। अपना कुछ लेना-देना नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : उन कर्मों के इफेक्ट भी बहुत अरुचिकर हो जाते हैं।

दादाश्री : वह तो, आप उनका असर होने देते हो इसलिए अरुचि होती है न! कभी भी जब उनका स्पर्श हो तो तुरंत ही आपको उनसे कह देना है कि 'मेरा नहीं है'। तो कुछ भी नहीं होगा। एक बार बोलकर तो देखो! इसी तरह पाँच-पच्चीस बार बोलकर देखो, फिर प्रैक्टिस हो जाएगी! 'मेरा नहीं है' कहते ही तुरंत अलग। अपना

है ही नहीं। जो अलग हो चुका है उसे, 'मेरा नहीं है,' ऐसा कहने में हर्ज क्या है? और यह चारित्र मोहनीय है। चाहे कैसा भी लेकिन मोह है वह।

जब सफोकेशन हो जाए तब कहना, 'नहीं है मेरा'। हालांकि सफोकेशन बहुत नुकसान नहीं करता लेकिन सुख आना रुक जाता है न। जो अपना नहीं है, उसे अपना कैसे कह सकते हैं अलग करने के बाद में? वर्ना पहले कहते ही थे न, 'यह मेरा, यह मेरा।' 'यह मेरा' नहीं कहते थे? अब जो, 'अपना नहीं है,' ऐसा पक्का कर लिया तो फिर उसके लिए 'अपना नहीं है' ऐसा कह दिया तो उसी क्षण अलग। किसी के लिए अंदर गुस्से के परमाणु आ जाएँ चंदूभाई में, उस समय यदि आप कहो, 'मेरा नहीं है' तो अपने आप ही शांत हो जाएगा तुरंत। लेकिन आप पर तो असर नहीं होगा। शायद अगर आवेश में आ जाए फिर भी आप पर असर नहीं होगा। जो खुद का नहीं है उसे, 'मेरा नहीं है,' कहना चाहिए जबकि ये लोग तो जो खुद का नहीं है, उसे भी खुद का कहते हैं। हम, जो नहीं है उसे 'नहीं है' कहते हैं और जो खुद का है उसे, 'है' कहते हैं। हम बिल्कुल सीधी डायरेक्ट बात करते हैं।

तोड़ना पड़ता है जग आधार

प्रश्नकर्ता : आपने एक बार कहा था कि निश्चिंत और निर्भय नहीं होओगे तो दिया हुआ आत्मा भी चला जाएगा।

दादाश्री : उसमें तो फिर वह रहा ही नहीं न! ऐसा अपने यहाँ नहीं होता। लेकिन वास्तव में प्रयोग करने चाहिए कि अनादिकाल से यह संसार किस आधार पर टिका हुआ है? जो आधार अभी तक टूटा नहीं है। अत: उसका आधार तोड़ते रहना पड़ेगा। अपना ज्ञान लेने के बाद में क्या तोड़ते रहना है? जिसके आधार पर यह जगत् टिका हुआ है, संसार टिका है, उस आधार को तोड़ना चाहिए। अब कुछ लोगों का आधार टूट जाता है और कुछ लोगों का टिका रहता है। उस आधार को तोड़ते रहना है, और कुछ भी नहीं है।

अब, यह जगत् किस आधार पर टिका हुआ है? तो कहते हैं, मन में जो पर्याय हैं, मन की अवस्थाएँ, उनमें आत्मा (व्यवहार आत्मा) तन्मयाकार हो जाता है, इसलिए टिका हुआ है। न तो बुद्धि परेशान करती है और न ही कुछ और परेशान करता है। अतः मन के पर्यायों को तोड़ते रहना चाहिए। 'ये मेरे नहीं हैं, मेरे नहीं हैं।' वहीं पर बैठे-बैठे उसे हिलाते ही रहना चाहिए। उसे तोड़ता रहेगा तो अलग हो जाएगा। अनादि से अभ्यास है न, अलग नहीं होने देता। तो उसे जो मिठास बरतती है, वह शुद्धात्मा को नहीं बरतती, अहंकार को बरतती है। उसे तोड़ते रहना पड़ेगा। दोनों को अलग देखना पड़ेगा। 'मेरा नहीं है' कहा तो भी ऐसा कहा जाएगा कि उसे अलग किया, उसके बाद देख सकेंगे।

परेशानी में भी असीम आनंद

और मन में डिप्रेशन आए तो उसमें भी तन्मयाकार नहीं हो जाना है, उसका विरोध करना है। किसी भी काम में जब डिप्रेशन आए तब आत्मा का अनुभव होता है, जिसने अपना यह ज्ञान लिया हुआ हो उसके लिए! जहाँ डिप्रेशन में भी सतत आनंद रहे तो वह जगह अपनी। ऐसी खोज कर सके, ऐसा यह ज्ञान है। कभी बाहर से अड़चन आ जाए तब भी यदि अंदर आनंद रहे तो वह जगह अपनी, इस प्रकार जगह को ढूँढ निकालता है कि यह जगह अपनी है और यह जगह अपनी नहीं है। वर्ना चाहे कैसा भी कर्म हो तो कह देना 'यह मेरा नहीं है' कि अलग हो जाओगे। क्योंकि यह आपका और यह औरों का। इस प्रकार अलग कर दिया है न!

प्रश्नकर्ता : मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : स्वरूप नहीं कहोगे तो चलेगा।

प्रश्नकर्ता : पर इस बार अनुभव अच्छा हुआ है।

दादाश्री : अच्छा हुआ। नहीं? अनुभव बढ़ता जाए तो काम का है।

वहाँ स्थिर होता है आत्मानुभव

प्रश्नकर्ता : बाहर के अथवा अंदर के प्रसंगों में कोई भी उदय आए तब यदि हम जानें, 'यह मेरा स्वभाव नहीं है', तब अनुभव स्थिर होता है न?

दादाश्री : हाँ, होता है न! 'मेरा स्वभाव नहीं है', तभी से अनुभव स्थिर हुआ। वह जागृति रही, उस क्षण अनुभव स्थिर हो ही जाता है। 'मेरा स्वभाव नहीं है', जो इतना समझता है न, वह खुद के स्वभाव में स्थिर हो जाता है। मेरा-तुम्हारा का भेद हुआ, मेरा कौन सा और तुम्हारा कौन सा, निश्चय से यह मेरा है और व्यवहार से यह मेरा, वह तुम्हारे में गया। व्यवहार से वह पूरा अपने में नहीं माना जाएगा। अपनी दृष्टि से व्यवहार में बोलने के लिए बोलना पड़ता है। लेकिन अपनी दृष्टि से तो वह पराया-बाहर का कहलाएगा।

संयोग मात्र पुद्गल का

अब वह जो बोला, वह किसकी डाक है उसकी हमें जाँच करनी चाहिए कि क्या यह डाक *पुद्गल* की है? *पुद्गल* की सारी संयोगी डाक होती हैं। और कोई भी संयोग है तो वह आत्मा की डाक नहीं हो सकती, अर्थात् कोई भी संयोग आया तो वह *पुद्गल* का है। अब उसने उल्टा बोला, वह भी संयोग हुआ न? वह *पुद्गल* का है इसीलिए, 'मेरा नहीं है', ऐसा कह देना तो अलग ही... क्योंकि अनादि से आदत है, अभ्यास हो गया है न, वह छूटता नहीं है। इसलिए कुछ समय, दो-तीन महीने तक 'मेरा नहीं है' ऐसा कहेंगे तो फिर जुदापन रहेगा। सब से पहले 'मेरा नहीं है', ऐसा कहना चाहिए। क्योंकि शुद्धात्मा होने के बाद कोई भी चीज़ अपनी नहीं है। सिर्फ यह जो चंदूभाई की प्रकृति है वह अपनी पहले की गुनहगारी का फल है। अब उसका समभाव से *निकाल* करके अर्थात् साफ करके जाने देने जैसा है। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि, 'अज्ञान से बांधे हुए को ज्ञान से अलग कर। शुद्धात्मा के हिसाब से ही इन सब को छानकर हटाना है, इतना ही है, बाकी सारा काम अब पूरा हो गया है।

अब सिर्फ, जो संयोग मिलें, उन्हें 'मेरा नहीं है', ऐसा कह देना। वे संयोग बाह्य भाव को लेकर मिले हैं। संसार भाव की वजह से वे संयोग हैं, संयोग मिलें तब, 'मेरा नहीं है', ऐसा कह दोगे तो छूट जाएगा। जो डाक जिसकी है, वह उसे दे देनी है। बिना बात के आप डाक ले लोगे तो फिर वे चिढ़ेंगे कि, 'मेरी डाक क्यों खोल दी?' हम तो कहते हैं कि, 'लो अंबालाल भाई, यह आपकी डाक आई।' यह तो विज्ञान है। इसमें, ज़रा सा भी, किंचित्मात्र भी असर नहीं हो, ऐसा ज्ञान दिया है मैंने। लेकिन यदि हमारे इन शब्दों को पकड़ लिया तो फिर कोई दिक्कत नहीं आएगी। लेकिन पहले की आदत है न! पहले उस फॉरेन को होम माना हुआ था, वह आदत अभी भी जाती नहीं है। अभी भी फॉरेन में चले जाते हैं। लेकिन इतनी जागृति रखनी है कि कोई भी संयोग आए तो वह आत्मा का नहीं है। आत्मा असंयोगी है और बाहर के जो संयोग हैं, वे फिल्म हैं। उसे देखते रहना है आपको। और यदि चंदूलाल संयोगों से झगड़े तो उसमें भी दिक्कत नहीं है। ऐसे में आपको भी देखते रहना है। चंदूलाल किसी से झगड़ रहे हों तब भी देखते रहना है। फिर उनके जाने के बाद आप कहना कि, 'चंदूभाई, ऐसा बहुत मत करना। ज़रा कम करो।' उस व्यक्ति के सामने कहोगे तो बुरा दिखेगा। वह कहेगा, 'ये दो लोग कौन हैं अब भला? खुद अपने आप को ही डाँट रहा है।'

'नहीं है मेरा' शब्दों का साइन्टिफिक असर

प्रश्नकर्ता : सबकुछ करने के बावजूद भी जब सामने से दबाव आता है तब शरीर पर दबाव का असर हो जाता है और यों अंदर के अंत:करण पर दिखाई देता है तो ऐसे समय में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : किसी भी समय कुछ भी आ जाए, चाहे कितना भी उलझन भरा हो न, एक घंटे से उलझा हुआ हो लेकिन यदि कहोगे कि, 'मेरा नहीं है' तो छूट जाएगा। क्योंकि यह आपका और यह मेरा, ऐसे भाग कर दिए हैं, हमने बंटवारा कर दिया है। उस समय उसे कह ही दिया था कि, 'भाई, यह मेरा नहीं है, यह मेरा और यह आपका।'

प्रश्नकर्ता : जो भी संयोग आएँ, उन संयोगों का अनुसरण करके प्रकृति तो ऊँची-नीची (डिस्टर्ब) होती ही रहेगी, उस पर 'मेरा नहीं है' कह दिया तब भी कोई कन्ट्रोल तो नहीं होगा न?

दादाश्री : लेकिन 'मेरा नहीं है' कहने से वह अलग हो जाएगा। जिन्हें यह ज्ञान दिया है उनमें। जिन्हें ज्ञान नहीं दिया है, उन्हें नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह है कि, 'मेरा नहीं है' कहते ही, हम, यों ज्ञाता-द्रष्टा भाव में ही हों उस प्रकार से हम रास्ता निकालते हैं।

दादाश्री : नहीं। अंदर से ज्ञाता-द्रष्टा रहा जा सके या नहीं, वह अलग चीज़ है लेकिन 'मेरा नहीं है', कहने से वह अलग हो जाता है। इन शब्दों में बहुत साइन्टिफिक असर हो ही जाता है तुरंत।

जो दुःख दे, 'वह नहीं है मेरा'

अपना नहीं है, उसे अपना मानते हैं वहीं से भूल हो जाती है। अपना विज्ञान क्या कहता है कि यह लाइन ऑफ डिमार्केशन डल गई। फिर यह पौधा अपना नहीं है। इसे अपना मानेंगे तो दुःख होगा। यह पौधा क्यों सूख गया? अरे भाई, लेकिन नहीं है अपना। यह तो किसी और का है।

प्रश्नकर्ता : अब समझ में आया कि इसे छोड़ ही देना है कि अपना है ही नहीं, फिर क्या? यों ही मालिकी लेकर बैठे थे।

दादाश्री : आपको मालिकी छोड़ देनी है। बिना बात के यह बोझा...

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने हमें ज्ञान दिया, उस समय तो हमने समर्पण कर दिया था लेकिन चुपचाप हम वापस ले जाते हैं।

दादाश्री : क्योंकि उल्टा अभ्यास है। डॉक्टर ने कहा हो कि दाँए हाथ से मत खाना। यहाँ जो ज़रा दर्द है वह बढ़ जाएगा। फिर भी खाना खाते समय उसमें दाँया हाथ आ जाता है। अत: लाइन ऑफ

डिमार्केशन डाली हुई है न, कि वह 'अपना नहीं है'। और इतना ध्यान रखना कि जो कुछ भी दु:ख देता है, कुछ उल्टा असर डालता है, वह 'अपना नहीं है' और जो अपना है, वह उल्टा असर नहीं डालेगा। बस, ये दो बातें समझ लो। आसान हैं न, बस!

दु:खे, उसे समझो सौतेला

जैसे ही हम सौतेला समझते हैं तभी से अपना मन उससे अलग हो जाता है। जब तक हम मामा को सगा मामा समझते थे तब तक मामा के वहाँ घुल-मिलकर रहते थे। लेकिन एक बार माँ बता दे कि, 'अरे, ये मामा तो सौतेले हैं, सगे नहीं हैं तेरे' तभी से मन उनसे अलग हो जाता है। नहीं हो जाता? यह सारा सौतेला है।

एक व्यक्ति ने कहा कि, 'मेरा यह पैर बहुत दु:ख रहा है।' दु:ख रहा है तो उसके लिए क्या करना चाहिए? तो कहता है, 'ज़रा हाथ फेर दीजिए न!' मैंने कहा, 'ले न! हाथ फेर देता हूँ।' तब कहता है, 'कुछ कम नहीं हो रहा है।' तब मैंने कहा, 'यह तो तेरा सौतेला पैर है, तेरा सगा नहीं है। इसे तू सगा मान बैठा है, यह तो सौतेला है।' मैंने कहा, 'बोल, पाँच बार। यह सौतेला पैर है और यह मेरा सगा है। यह मेरा सगा है और यह मेरा सौतेला, जो दु:ख रहा है, वह सौतेला है। तू बोला, तो देख ठीक हो गया न!'

प्रश्नकर्ता : दादा, उस दिन मुझे बुखार आया था तब आपने मुझे यह उदाहरण दिया था, तो पाँच मिनट बैठकर ऐसा किया तो बुखार उतर गया।

दादाश्री : उतर ही जाएगा, आप कहो कि यह सगा है और यह सौतेला, तभी से उसके प्रति सारे भाव खत्म होते जाते हैं और सबकुछ शांत हो जाता है। इसलिए सौतेला है ऐसा रखना, अब मन की नहीं चलेगी। इस तरह ज़रा रूबरू दिखाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : दर्पण में देखता हूँ, ऐसे?

दादाश्री : वह उपाय अच्छा है या नहीं? दादा जो चाबियाँ देते हैं न, उनसे सभी ताले खुल जाते हैं।

व्यसन से ऐसे होते हैं मुक्त

'मुझे पसंद है', ऐसा करके सिगरेट से शादी की। 'पसंद नहीं है' करके छूट जाओगे। पाँच-दस दिनों में लाखों बार बोल देना चाहिए और वह भी एक घंटे आराम से बैठकर। दिन में एक घंटे या शाम को एक घंटे, इस तरह दो घंटे बैठकर करना चाहिए। सिगरेट को ऐसे सामने रखकर कि, 'मुझे अब यह सिगरेट नहीं पीनी है। मुझे नहीं पीनी है यह, मुझे नहीं पीनी है...'

प्रश्नकर्ता : दादाजी, इस प्रकार लाख बार बोलने से कोई भी व्यसन छूट जाएगा? यदि सामने रखकर किया जाए तो? किसी भी व्यसन के सामने...

दादाश्री : सब छूट जाएगा, अगर इस तरह से किया जाए तो।

वह शादी के मंडप में बैठा न, तभी से 'मेरी' कहा और तभी से लपेटने लगा। तो दस साल से लपेट ही रहा है, 'मेरी, मेरी' करके! ऐसे में पत्नी के मरने के बाद रोते हैं वे। अरे, शादी से पहले तो रिश्ता ही नहीं था न। इसलिए फिर यदि आप कहो कि, 'नहीं है मेरी, 'नहीं है मेरी' तो छूट जाएगा वह।

प्रश्नकर्ता : कोई भी बुरी आदत चली जाती है?

दादाश्री : अरे, 'मेरी' से बंध गई थी और 'नहीं है मेरी' से छूट जाएगी। यदि ज़्यादा ज़ोर होगा तो ज़्यादा बार बोलना पड़ेगा। लेकिन अंत में छूट जाएगी। यही रास्ता है न इसका। यह जगत् साइकोलॉजिकल इफेक्ट ही है सिर्फ।

पौन लाख (पचहत्तर हज़ार) बार बोले हो, अब अगर पच्चीस हज़ार बार और बोलते तो छूट जाता। ऐसे में कोई कहे कि, 'यह सिगरेट तो छूटती नहीं है। कैसे भक्त हुए हो दादा के?' तब कहते

हो, 'सिगरेट में कोई हर्ज नहीं है।' 'हर्ज नहीं है' कहते ही, वह सब फिर से सजीवन हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन ऐसा नहीं कहेंगे हम। ऐसा कहेंगे कि हम छोड़ने की तैयारी में ही हैं, तो?

दादाश्री : हाँ, वह तो 'हमारी कमज़ोरी ही है और यह मेरी है ही नहीं', कहना। 'यह हमारी कमज़ोरी है लेकिन मेरी नहीं है यह', लगातार बोलना होगा। टुकड़े में बोलने से नहीं चलेगा। वहाँ उसका रक्षण करोगे तब भी नहीं चलेगा। अपनी आबरू बचाने के लिए उसका रक्षण हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : किसी चीज़ को, 'यह तो *निकाली* है', ऐसा करके भी हम उसे पोषण देते हैं न?

दादाश्री : पोषण दिया। जबकि उसमें तो आपको कहना चाहिए कि, 'भाई, यह कमज़ोरी है मेरी।' तो फिर रक्षण नहीं करने से वह जीवंत नहीं होगा।

जागृति डिम तो असर शुरू

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण निडरता नहीं आ पाती। निर्लेपता नहीं है इसलिए उतनी निडरता नहीं है। ज़रा कम है।

दादाश्री : बाहर चाहे हम जितना भी देखें लेकिन अगर अंदर असर नहीं हो तो उसे कहते हैं, निर्लेपता। क्योंकि आप शुद्धात्मा हो, शुद्धात्मा पर किसी प्रकार का असर नहीं होता। क्योंकि वह इफेक्टिव नहीं है। लेकिन जहाँ पर ज़रा इफेक्ट हो जाता है न, वहाँ पर आपकी जागृति ज़रा कच्ची पड़ जाती है। वहाँ पर आपको ऐसा करना चाहिए कि, 'चंदूभाई, आप क्यों यह अपने सिर लेते हो या आपको क्या लेना-देना है इससे।' बस, इतना ही कह देना चाहिए तो अलग हो जाएगा। आपको इतनी 'जागृति' रखनी चाहिए। या फिर दूसरा और कुछ समझ में नहीं आए तो 'मेरा स्वरूप नहीं है', ऐसा कहकर भी छूट जाना।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा ज्ञान तो फिर हाज़िर रहता है, 'यह मैं इसमें कहाँ पड़ा, यह रिलेटिव है।'

दादाश्री : लेकिन फिर भी हो जाता है। हो जाए तब रिलेटिव कहने के बजाय 'मेरा स्वरूप नहीं है' कहने से सब अलग हो जाएगा। हमने क्या कहा है कि, 'यह तेरा स्वरूप है और यह नहीं है,' तो अब आप 'यह मेरा नहीं है' कहोगे तो अलग हो जाएगा। फिर तो उसे पकड़ोगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : जितनी चीज़ों में तन्मयता है, उतना कच्चापन ही है न?

दादाश्री : हाँ, वही तो! अतः अब, तन्मयता का और कोई कारण नहीं है। सिर्फ जागृति मंद हो जाती है। जागृति मंद क्यों? तो कहते हैं कि पहले के अभ्यास के कारण। अतः यदि इसमें आप ज़रा ज़्यादा जागृति रखोगे तो तुरंत शांत हो जाएगा, अलग हो जाएगा। मैं तो चाहे कितनी भी खराब तबीयत हो और लोग कहें कि, 'आज तो दादा, आपकी तबीयत वीक है।' तो हम कहते हैं, 'मुझे कुछ नहीं हुआ है। क्या होना है?'

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मैं कितनी जगहों पर घूमता हूँ लेकिन कुछ भी नहीं होता। क्या होना है? यदि आप कहोगे कि मुझे हुआ, तो वह चिपक जाएगा!

जला घर, बेचने के बाद

आपने तय किया कि भाई, वह व्यापार हमारा नहीं है। तभी से आप सिर्फ अपने व्यापार के काम में ही सतर्क रहते हैं। वह जो आपका व्यापार नहीं है, वहाँ पर आप सतर्क नहीं रहते। फिर वहाँ पर रकम देकर आ जाओ, ऐसा नहीं होगा। पहले जो दे दी होगी, उसे देखा जाएगा। लेकिन अब नए सिरे से नहीं देते। अतः आपको कहना चाहिए कि, 'भाई, यह अपना व्यापार नहीं है,' तभी से मन बदल जाएगा न?

अभी एक व्यक्ति का मकान जल जाए तो उसे कितना अधिक दुःख होगा? लेकिन आज बेच दिया और फिर आज ही रुपये ले लिए और दस्तावेज करवा लिया और फिर कल जल जाए तो?

प्रश्नकर्ता : तो कुछ भी नहीं होगा, दादा।

दादाश्री : ऐसा? वही का वही मकान है। हमें पक्का हो जाए कि, 'अब हमने इसे बेच दिया है और पैसे हाथ में आ गए हैं,' फिर चाहे वे पैसे किसी को दे दिए हों और उसने नहीं लौटाए, लेकिन कहेंगे, 'अपना तो बिक गया'। इसलिए फिर उसमें चित्त नहीं रहेगा। फिर रोएगा नहीं। बल्कि खुद अपने आपको खुश किस्मत मानेगा कि, 'ओहोहो! मैं तो बहुत अक्ल वाला।' देखो न, बिक जाने के बाद नहीं रोता न? बिक जाने के बाद यदि पैसे हाथ में नहीं आए हों तो मन में ऐसा लगता है कि, 'अरे, कोई गड़बड़ हो जाएगी तो?' बिक गया, दस्तावेज सारे बन गए, लेकिन पैसे नहीं दिए। तब फिर वह गड़बड़ करेगा न, नहीं देगा तो? वापस ऐसी शंका घुस जाती है। पैसे हाथ में आने के बाद में फिर नहीं रोता। यहाँ तो मैंने मूल रकम आपके हाथ में दे दी है। सबकुछ हाथ में दे दिया है। आपने कहा था कि अब कुछ भी नहीं बचा। उसके बाद तो मैंने आपको मुक्त कर दिया।

यह अपना और यह पराया। उसे अपना मानते थे, वह भूल थी। वह भूल खत्म हो गई इसलिए अब उसमें अपना वह सब (ममता) नहीं रहता। जितना उसके साथ हिसाब है उतना ही। जितना उसका बाकी है उतना देकर बंद कर देना। इससे ज़्यादा और कोई झंझट मत करना।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह रिलेटिव व्यापार और यह रियल का व्यापार, उन दोनों के बीच में साम्यता जैसा है न?

दादाश्री : एक सरीखा ही है न! उनका लेना-देना है ही! यह तो आपकी भूल थी, उस वजह से मार खा रहे थे, बस इतना ही। भूल खत्म हो गई तो मार खाना बंद हो गया।

'नहीं है मेरा' वाला अंत में जीतता है

चाय-पानी करना, नाश्ता करना, सभी लोगों को बुलाना, मकान को रंगवाना, सभी कुछ करना और जब वह मकान जलने लगे तो एक कोने में बैठकर पाँच हज़ार बार बोल जाना, 'नहीं है मेरा, नहीं है मेरा,' तो अलग हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : 'नहीं हैं मेरे, नहीं हैं मेरे,' लेकिन पति 'मेरी, मेरी' करता रहता है। वहाँ पर क्या हो सकता है?

दादाश्री : फिर भी जो 'नहीं है मेरा' कहता है वह मुक्त ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वाइफ कहती है, 'नहीं हैं मेरे, नहीं हैं मेरे' और मैं कहता हूँ कि, 'मेरी, मेरी', तो अब क्या होगा?

दादाश्री : तब भी 'नहीं है मेरा' वाला जीतेगा, 'मेरी' वाला नहीं जीतेगा। 'नहीं है मेरी' वाला जीतेगा। साथ में बैठने से ममता उत्पन्न होती है और अलग होने पर ममता खत्म हो जाती है। वह कुछ समय के लिए बाहर घूमे न, तो फिर ममता छूट जाती है। अतः ऐसे करते-करते वह वाला सारा अभ्यास खत्म हो जाता है।

ममता लेकिन ड्रामेटिक

प्रश्नकर्ता : कोई हम पर ममता रखे, तो उसका हम पर क्या असर होता है?

दादाश्री : आप पर क्या असर होगा? आप अंदर इन्वॉल्व हो जाओगे तो होगा। आप उस पर ध्यान नहीं दोगे तो फिर कोई भी असर नहीं होगा। अतः यदि आप सीधे हो तो कोई आपका नाम भी लेने वाला नहीं है। आपको इन्वॉल्व नहीं होना है। महावीर पर कितने-कितने लोगों ने भाव किए थे लेकिन चला नहीं न!

प्रश्नकर्ता : अपने बीवी-बच्चे हैं, अब उन पर तो हमें व्यवहारिक

तौर पर ममता तो रखनी पड़ती है न? वे ममता रखते हैं तो हमें भी रखनी पड़ेगी न?

दादाश्री : वह तो रखनी नहीं पड़ती, अपने आप रहती ही है। उसे निकालना है, ममता को निकालना है। ममता तो रहती ही है। कुत्ते को भी ममता रहती है न! लेकिन वह भी तभी तक जब तक छोटे-छोटे पिल्ले होते हैं, बाद में फिर बड़ा हो जाने पर नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह सारा नाटकीय रखना है, ड्रामेटिक रखना है?

दादाश्री : सारा ड्रामेटिक। साठ हज़ार लोगों के प्रति, सब के प्रति ममता है न, लेकिन उसमें कैसा है? मेरापन रहता है, ममता रहती है लेकिन नाटकीय!

यह जगत् तो ड्रामा ही है। वर्ल्ड इज़ द ड्रामा इट सेल्फ! यह ड्रामा तैयार हो चुका है। ड्रामा करता है, उसमें ममता करता है। 'यह मेरा और यह तेरा!' तो मेरा बोलने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन ड्रामेटिक प्रकार से बोलो। शादी करो तब भी ड्रामेटिक। लेकिन यह तो दरअसल शादी करता है। इसलिए फिर वैधव्य भोगना पड़ता है न! तब फिर रोना-धोना करना पड़ता है! इसलिए दरअसल (वास्तव में) कुछ भी नहीं करना है। सब ड्रामा ही है।

मैं दिन भर ड्रामा ही करता रहता हूँ न! ड्रामा यानी क्या? मैं देखने वाला रहता हूँ, मैं इसमें अलग रहता हूँ। उस ड्रामे में क्या होता है? भर्तृहरि का किरदार निभाता है लेकिन यदि उस समय उससे पूछा जाए कि, 'यह याद था कि तू कौन है?' तब कहेगा, 'मैं लक्ष्मीचंद हूँ, वह तो भूलता ही नहीं हूँ न और मुझे खिचड़ी खानी है, वह भी नहीं भूलता!' खिचड़ी खाना *लक्ष* में रहता है या नहीं रहता? इस तरह से ड्रामेटिक रहना है!

ममत्व रहित मालिकी

नाटक में कहता है, 'मेरी रानी' और फिर नाटक खत्म होने के

बाद यदि वह कहे कि, 'चलो घर' तो वह आएगी क्या? नहीं आएगी। नहीं? यह सब ऐसा ही हो गया है। इनकी नाटक की मालिकी यानी कैसी? ममत्व रहित मालिकी। लोगों को रूबरू दिखाता है, कहता भी है कि, 'यह मेरी पिंगला है और ऐसा सब' लेकिन ममत्व रहित, अंकुड़ा (हुक) नहीं। फिर नाटक खत्म होने के बाद अगर कहें कि, 'चल घर'। तो वह कहेगी, 'आपको मुझसे ऐसा नहीं कहना चाहिए।' कोई संबंध नहीं, मुक्त। यानी कि ममत्व रहित मालिकी। ज्ञानी पुरुष खुद ममत्व रहित मालिकी में रहते हैं। पूरी मालिकी होती है लेकिन ममत्व नहीं होता और उन्हें देखकर यही सीखना है आपको।

वे जो पुरानी आदतें हैं न, पिछली आदतों के कारण ज़रा कमज़ोर पड़ जाता है। भले ही चाय पीने की आदत रही। चाय पी न। उसमें हर्ज नहीं है लेकिन चाय को तू समझकर पी। यह तो इतना अधिक तन्मयाकार हो जाता है, बेहोश हो जाता है, वह बाधक है।

मालिकी रखने में हर्ज नहीं है लेकिन यह तो ममत्व वाली मालिकी है। और फिर जहाँ पर गुरुआनी बनती हैं, वहाँ पर भी ममत्व वाली मालिकी। क्योंकि ममता अंत तक रहेगी। यह मेरा उपाश्रय और यह मेरा वह है, यह मेरी शिष्या और मेरी चेली। और यदि वह मालिकी रहित हो न, ममत्व रहित मालिकी तो हर्ज नहीं है। उपाश्रय 'हमारा है', ऐसा कहें और फिर कोई उपाश्रय में से निकाल दे तो कुछ भी नहीं। यह कहीं बहुत मुश्किल नहीं है। लोग सिर्फ मालिकी रखते हैं। इस ममता के अंकुड़े (हुक) को निकाल दो, उसके बाद मालिकी रखो न!

प्रश्नकर्ता : यह जो ममत्व है न, वह ज्ञानी पुरुष के बगैर नहीं निकल सकता।

दादाश्री : नहीं निकल सकता। लेकिन यदि किसी का ममत्व निकल गया है, ऐसा देखो तब आप में हिम्मत आ जाती है। वर्ना हिम्मत आ सकती है क्या? किसी का ममत्व चला गया, ऐसा देखें

तब से हिम्मत आती है कि, 'ओहोहो! इन्हें ऐसा नहीं है।' आपको श्रद्धा हुई कि, 'हमें ममता में से बाहर निकाल दिया है,' तो वह श्रद्धा ही आपकी ममता निकाल देगी। कुछ भी करना नहीं पड़ेगा! ज्ञानी पुरुष से मिलने के बाद कुछ भी करना नहीं पड़ता।

शाता व अशाता, 'नहीं है मेरा'

प्रश्नकर्ता : यह जो आयुष्य, *अशाता* वेदनीय, नाम, गोत्र, इन चार अघाती कर्मों को खुद ऐनालिसिस कर-करके कम कर सकता है?

दादाश्री : कम कर सकता है, यानी कि उनका असर नहीं हो, ऐसा कर सकता है। *शाता, शाता* के रूप में असर न करे और *अशाता, अशाता* के रूप में असर न करे। हमें जब *शाता* वेदनीय होती है न तब हम, वह भूत घुस न जाए इसलिए कहते हैं, हम ज्ञान में हाज़िर रखते हैं कि यह सुख मेरा नहीं है और कड़ी धूप में हों तब भी, यह नहीं है मेरा परिणाम। *शाता* वाला और *अशाता* वाला, वे हमारे परिणाम नहीं हैं, ऐसा हमारे ज्ञान में हाज़िर हो जाता है।

आम का रस खा रहे होते हैं, उस समय, 'यह परिणाम हमारा नहीं है।' उसका जो स्वाद आता है, स्वाद में उसे *शाता* वेदनीय होती है। तीर्थंकर बिल्कुल भी एकाकार नहीं होते, किसी में भी नहीं होते। आत्मा अव्याबाध स्वरूपी है। उसके अव्याबाध स्वरूप में ज़रा सी भी परेशानी डाले तो वह सारा पराया है। ज़रा सी भी परेशानी हो तो 'यह पराया है, मेरा नहीं है, मेरा नहीं है', बोलेगा तो तुरंत ही वह उससे अलग हो जाएगा। क्योंकि आत्मा बिल्कुल जुदा कर दिया है। कुछ लोगों में शायद इतना ज्ञाता-द्रष्टा रहने की शक्ति न हो, तो यदि ऐसा नहीं आए तब, 'मेरा नहीं है,' ऐसा कह देने पर भी अलग हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं बोलेगा तो चिपट जाएगा वह, उसका बोझा लगता रहेगा, खटकता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : और व्यवहार में भी कितनी ही बार, 'इसका मुझसे लेना-देना नहीं है,' ऐसा बोलने से फर्क पड़ जाता है।

दादाश्री : हाँ, 'लेना-देना नहीं है', ऐसा बोले कि तुरंत ही जुदा हो जाते हैं। तो ऐसा है यह! यदि पराया कहना नहीं आए तो 'मेरा नहीं है' ऐसा कह देने से वह पराया हो गया न! 'मेरा नहीं है' कहेंगे तो पूरा हो गया। अव्याबाध स्वरूप में ज़रा सी भी परेशानी आए तो 'मेरा नहीं है' ऐसा कह देना। उसका अव्याबाध स्वरूप जाता ही नहीं है, एक क्षण के लिए भी।

हे देह, तुझे जाना हो तो जा

आत्मा के अलावा बाकी सब सड़ी हुई चीज़ें हैं। सिर्फ आत्मा ही नहीं सड़ता है। उसे कुछ भी नहीं होता, ऐसा है वह। तो यदि आप आत्मस्वरूप हो गए तो काम हो जाएगा। वर्ना सारा काम बेकार। आत्मस्वरूप होने की ज़रूरत है, और कुछ भी नहीं है। यह देह कट जाए या चाहे कुछ भी हो, आपको देह स्वरूप नहीं होना है। परक्षेत्र में जाओगे तो संसार कड़वा ज़हर जैसा लगेगा।

अब देह से आप कह देना, 'तुझे जाना हो तो जा, हम हमारे मुकाम में रहेंगे।' उसके लिए बहुत हाय-हाय नहीं करनी है। अनंत जन्मों से देह को ही संभालते रहे हैं। एक जन्म के लिए देह ज्ञानी पुरुष को सौंप देंगे और उसे संभालेंगे नहीं तो हो जाएगा, शुद्ध हो जाएगा। हमने तो एक क्षण के लिए भी इस देह का ध्यान नहीं रखा है। एक क्षण के लिए भी, 'यह शरीर हमारा है' (कहा हो), ऐसा हमें पता नहीं है। इस ज्ञान के प्रकट होने के बाद यह हमारा नहीं है, यह पराई चीज़ है। यह पराई चीज़ अपने हाथ में रहेगी नहीं और हमें चाहिए भी नहीं। खुद की वस्तु, वह खुद की है और पराई, वह पराई।

लोगों के खेतों में पानी डालते हैं। ऐसे तो आप मेहनत कर-करके मर जाते हो और पानी लोगों के खेतों में चला जाता है। अपने खेत में कुछ उगता ही नहीं। लोग कहते भी हैं कि, 'अरे भाई, तूने पानी निकाला था तो वह गया कहाँ?' तब कहता है, 'भाई, मुझे तो पता नहीं।' वह अन्य रास्ते पर चला गया। पराए खेत में घुस गया।

उसी प्रकार यह पानी पराए खेत में जाता है। जब से हमने समझा कि पराया खेत है तब से उसका हक छोड़ दिया। अत: हमें उसमें से फसल वगैरह नहीं लेनी है। समझाया जाए तब भान में आता है तो फिर कहता भी है, 'हाँ, बात तो सही है।' फिर वापस जब भान चला जाता है और फिर से जैसा था वैसे का वैसा।

मालिकी भाव इसमें किसका?

प्रश्नकर्ता : मालिकी भाव किसका है?

दादाश्री : अहंकारी पुरुष का, अहंकारी का। जो 'मैं' है न उसका। 'मैं' उल्टी जगह पर जा बैठे तो मालिक। इससे जो है.. *पुद्‌गल* पर मालिकी भाव आ जाता है और 'मैं' अगर सही जगह पर बैठे तो खुद के गुणों पर मालिकी भाव आता है। पराया सारा बेच देना, फिर यदि जल जाए तो आपको तो चिंता नहीं, फिर शांति। सही है या गलत?

प्रश्नकर्ता : सही कहा। मान्यता से ही पूरा मालिकी भाव उत्पन्न हुआ है न? मान्यता ही बदलनी है न?

दादाश्री : मान्यता भी यों ही नहीं बदलती। आप अच्छे से पैसा गिनकर लेते हो। उसके बाद मान्यता बदलती है। वर्ना अगर यों ही मान्यता बदल जाती तो मकान जल जाने पर भी आप मन में ऐसा कहेंगे कि, 'अरे भाई, ऐसा मानो न, कि कल बेच दिया था हमने।' लेकिन नहीं मानेगा वह कुछ भी। वह तो, रुपये वगैरह गिनकर लेने पड़ते हैं। फिर चाहे वे रुपये अगले दिन सट्टे में लुट जाएँ, वह बात अलग है। लेकिन उसे खुद को तो ऐसा विश्वास हो जाएगा न, कि, 'मैंने तो रुपये लिए हैं।' मन समाधान चाहता है। माना हुआ समाधान नहीं चलता। अभी अगर आप सब ऐसा मानो कि, 'हमारी शादी हो गई है' तो हो जाएगा क्या? मानने से कुछ हो जाता है क्या? वह तो जब शादी करके लाओगे तब समाधान होगा मन को। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : यह मकान का उदाहरण दिया, उसमें पैसे लेकर बेच दिया, अत: उसे खुद को विश्वास हो जाता है कि, 'यह मेरा नहीं है।' इसलिए फिर उसे दु:ख भी नहीं होता, ममता छूट गई उसकी, इसी तरह अपनी इस रियल वस्तु में क्या होता है?

दादाश्री : वह तो, वास्तव में खुद का मालिकीपन कहाँ है, ऐसा समझने पर छूट जाएगा। खुद की बाउन्ड्री का नाप देख आए फिर दूसरे की बाउन्ड्री में हाथ नहीं डालेगा। जब तक उसे समझ में नहीं आता तब तक मालिकीपन रखता है। उसे समझ में आ जाए तो तुरंत ही दे देता है। तेरा मालिकीपन किसमें है अब? बता न।

प्रश्नकर्ता : मालिकीपन तो, दादा ने कहा न, कि खुद की बाउन्ड्री की मालिकी का पता चल गया इसलिए फिर और कहीं भी मालिकी रखता ही नहीं है न।

दादाश्री : खुद की मालिकी वाली जगह-प्लॉट देख लो और वहाँ पर आप बाउन्ड्री देख लो, फिर औरों की जगह से लेना-देना ही क्या रहा? जिसे खुद का और पराया निश्चित हो गया है, उसे किसी भी जगह पर, अन्य कहीं भी ममता रहेगी ही नहीं न! यह *पुद्गल* का है और यह आत्मा का है, जिसे ऐसा निश्चित हो गया, उसे फिर कैसा रहेगा!

बंधते समय हाज़िर, छूटते समय गैरहाज़िर

प्रश्नकर्ता : जब कर्म बंधन हुआ तब खुद एकाकार ही था लेकिन क्या छूटते समय भी खुद को उसमें उतना ही एकाकार होना पड़ता है?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वास्तव में ऐसा है कि अलग ही रह सकता है?

दादाश्री : रह सकता है। कुछ हिसाबों में अलग रह सकता है वह। तू तेरी मालिकी का सबकुछ अलग ले जा और हम दोनों की साझा मालिकी का हिसाब साफ कर। कर्म में पूरा मालिकी सहित सौंपा हुआ होता है, सबकुछ।

प्रश्नकर्ता : हं! तो क्या पूरा उदय मालिकी सहित ओपन होता है?

दादाश्री : उदय में तो... फिर उस समय ज्ञान के अनुसार मालिकी रहती है। यदि पूर्ण ज्ञान हो तो खुद का मालिकीपन पूरा ही निकाल लेता है। खुद, खुद का ही मालिकीपन, किसी और का नहीं, *पुद्‌गल* का नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो क्या उदय शुरू होने लगे तभी से खुद अपना मालिकीपन निकाल सकता है?

दादाश्री : जिस हद तक का ज्ञान, उस हद तक का मालिकीपन निकल ही चुका होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उदय होते समय तो साथ में ही ओपन होगा न? उदय के समय खुद उसमें हाज़िर रहता है न? उदय शुरू होने के लिए।

दादाश्री : आपको कोई लेना-देना नहीं है। जैसे कि यदि आप सो रहे हों तब भी सूर्यनारायण उग जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी सब अलग ही है और क्या इसीलिए अभी के उदय में नया मालिकी भाव घुस जाता है?

दादाश्री : ज्ञान जितना कम उतना ही मालिकी भाव रहा करता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और इस प्रकार से मैं अलग हूँ, ऐसा ज्ञान हुआ तो तेरा मालिकीपन छूट जाएगा और जितनी उसमें कमी, उतना ही इसमें मालिकीपन रहेगा। लेकिन उसमें अपना यह ज्ञान एक्ज़ेक्ट है, केवल ज्ञानस्वरूप है। इसलिए हर एक का खुद का एक्ज़ेक्ट आ ही

जाता है। यहाँ (अक्रम मार्ग में) चिंता नहीं होती, नहीं तो चिंता हुए बगैर रहेगी ही नहीं। क्रमिक मार्ग के ज्ञानी को बाहर के किसी भी व्यवहार में चिंता होती रहती है।

अब पुद्गल चाहता है शुद्धिकरण

प्रश्नकर्ता : कर्म के उदय के परिणाम स्वरूप जेल जाना पड़ा, लेकिन अब खुद का मालिकी भाव संपूर्ण निकाल लेना है। इस बीच जागृति कैसी होती है?

दादाश्री : मालिकी भाव तो निकल ही चुका है। तो अब *पुद्गल* क्या कहता है कि, "हिसाब चुकाने के लिए देखता रह। मैं क्या कर रहा हूँ, वह 'देखता' रह। मन क्या कर रहा है, बुद्धि क्या कर रही है, वह सब देखता रह और कुछ भी नहीं 'देखना' है। उस समय चूकना मत, अजाग्रत मत रहना। तू तेरे भान में रहना और मैं अपनी क्रिया में रहूँगा।" दोनों अपनी-अपनी क्रिया में रहते हैं। फिर उस उदय को 'देखना' चाहिए। उदय के सभी पर्यायों को देखना ही होगा। 'देखने' से वे शुद्ध हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन एक बार ऐसी बात हुई थी कि उदय उसी को कहते हैं कि उस घड़ी खुद उसमें तन्मयाकार रहता है?

दादाश्री : रहता है।

प्रश्नकर्ता : और फिर पुरुषार्थ उसे कहते हैं कि खुद अपने आप को (*पुद्गल* से) अलग करे।

दादाश्री : वह अलग हो ही जाता है, वह तो, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते ही अलग हो जाता है। वह *पुद्गल* क्या कहता है कि, 'तू शुद्धात्मा हो गया इसलिए ऐसा मत मानना कि तू अलग हो गया। तूने हमें बिगाड़ा था इसलिए तू हमें शुद्ध कर, तो फिर तू अलग और मैं अलग।' तब अगर पूछें कि, 'किस प्रकार से अलग करूँ?' तब कहता है, 'हम जो करें, उसे तू देख। बाकी कोई दखल मत

देना। राग-द्वेष रहित देखता रह बस। तो हम अलग। राग-द्वेष से हम मैले हुए हैं, तेरे राग-द्वेष को लेकर। अब वीतरागता से हम अलग।' परमाणु शुद्ध होते हैं। *पूरण* हुआ, वह *गलन* हुए बगैर रहेगा ही नहीं न! *पूरण-गलन* में अपनी कोई मिलकियत नहीं है और अपनी मिलकियत है उसमें से कुछ भी *पूरण-गलन* नहीं होता, इतना साफ व्यवहार है।

मालिकी भाव किस पर है? तुझे तो किसी पर मालिकी भाव नहीं है! यह हम पर जो तुझे मालिकी भाव आता है उसे मालिकी नहीं कहते। मुझ पर मालिकी भाव, वह करने का हक है सभी को। क्योंकि यहाँ पर तो प्रशस्त राग रहता ही है और यह प्रशस्त राग ही सब रोगों का नाश करने वाला है। बाकी सब राग चले जाएँगे। वर्ना यदि यहाँ पर राग नहीं हुआ तो नहीं जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो वीतराग की डेफिनेशन क्या है?

दादाश्री : जो देह से संपूर्ण अलग हो गया, वह वीतराग। देह को लेकर यह सब है न! देह व्यवहार में मालिक है न सभी का। उस मालिक से अलग हुआ तो सभी से छूट जाएगा यानी वीतराग हो जाएगा। जिस प्रकार उसमें मान्यता मालिक है उसी प्रकार इसमें देह मालिक है न।

प्रश्नकर्ता : यानी इस व्यवहार का? इस देह को मालिक किसका कहा है?

दादाश्री : इस जगत् की सभी चीज़ों का। उससे अलग हो गए तो फिर अलग हो जाएगा। जो इस देह से अलग हो गया, वह सभी से अलग हो जाएगा। सभी का मालिक देह है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् इस जगत् का जो व्यवहार है उसका पूरा केन्द्रस्थान यह शरीर कहलाता है, ऐसा कह रहे हैं?

दादाश्री : शरीर ही है न मालिक, और कौन है? शरीर ही है,

जिसे देहाध्यास कहते हैं, वह। खुद वास्तव में उसका मालिक भी नहीं है। यही रोंग बिलीफ है।

प्रश्नकर्ता : खुद कौन है इसमें?

दादाश्री : सेल्फ, आत्मा। अभी तक आप अपने आपको जो भी मानते हो, वह।

प्रश्नकर्ता : यदि शरीर का मालिकी भाव नहीं होगा तो अवलंबन लिया, ऐसा नहीं कहा जाएगा न?

दादाश्री : सारा अवलंबन व्यवहार से ही है न! निश्चिय में तो कुछ होता ही नहीं है न! हम हैं व्यवहार में ही, निश्चिय की तो प्रतीति बैठी है। लेकिन हैं व्यवहार में ही न? खाते हैं, पीते हैं, 'हम यह हैं', ऐसा तय हो गया है। लेकिन अब क्या कोई एकदम से हो गया। क्या कब्ज़ा सौंप दिया। कब्ज़ा सौंप सकते हैं? कब्ज़ा सौप दिया जाए तब कुछ भी नहीं रहेगा। फिर आप निरालंब हो गए।

प्रश्नकर्ता : वह तो अंत में सिद्ध क्षेत्र में जाने पर संपूर्ण निरालंब होगा।

दादाश्री : जब तक कब्ज़ा नहीं सौंपते हो तब तक किस प्रकार से जा पाओगे? महावीर भगवान ने भी कब्ज़ा सौंप दिया, तब जा पाए। बहत्तर साल तक किराये की जगह ली थी। किराया चुका दिया, दे दी वह जगह खाली करके।

प्रश्नकर्ता : यानी महावीर भगवान बहत्तर साल तक किराये की जगह में रहे। लेकिन उसके सौपे जाने तक अंदर क्या करते थे?

दादाश्री : धीरे-धीरे मालिकी भाव उठाते जाते थे। जब पूरा उठ गया तब फिर कब्ज़ा सौंप दिया एकदम से। जैसे ही कब्ज़ा उठाया तो वे खुद चले गए वहाँ और इस तरह कब्ज़ा सौंप दिया। कब्ज़ा सौंप दिए जाने के बाद लोग ले जाकर जला देते हैं। जो मालिकी रहित

होता है उस कचरे को। फिर हमें नहीं जलाना पड़ता। लोग अपने आप ही जला देते हैं। नहीं?

प्रश्नकर्ता : रहने वाले नहीं जलाते?

दादाश्री : रहने वाले कैसे जलाएँगे? रहने वाले तो रौब से गए, चार नारियलों के साथ, पानी वाले हों या बिना पानी के!

तूने कितने साल के लिए किराये पर ली है? ज़रा सौ एक साल जी न! लोगों का कल्याण होगा! सही है या गलत? ऐसी भी इच्छा है न इन लोगों की कि जगत् का कल्याण करना है। इस तरफ मुड़ेंगे तो काम ही *निकाल* लेंगे।

[6]

क्रोध - गुस्सा

भरा हुआ क्रोध हो जाता है खाली

प्रश्नकर्ता : फाइल का *निकाल* नहीं होता, और फाइल के साथ क्रोध हो जाता है।

दादाश्री : क्रोध तो हो जाता है। अंदर भरा हुआ माल है। आपको जानना है कि चंदूभाई को क्रोध होता है। वह तो, अंदर भरा हुआ है न! आपको चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, ऐसा क्यों करते हो?' लेकिन यह जो भरा हुआ माल है, वह निकल जाए तो अच्छा है। भरा हुआ माल खाली हो जाए तो हल आ जाएगा। टंकी में वह क्रोध भरा रहता है। फिर अगर टंकी में से नहीं निकालेंगे और रह जाएगा तो फिर बिगड़ेगा बल्कि। अपने आप ही निकलता हो तो क्या बुरा है? निकल जाएगा, चाहे कुछ देर बदबू मारेगा। यानी कि सारा निकल जाना चाहिए। पता चल जाता है न, तुरंत!

प्रश्नकर्ता : तुरंत। उससे ऐसा लगता है कि अपना है ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, बस। उसे तो देखते रहना है। लोभ का भी पता चलता है। इसलिए बिगड़ता नहीं है। यह तो दिनोंदिन सुधरता जाता है। ज्ञान में अधिक से अधिक दोष दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब फाइल आती है तो फिर फाइल पर क्रोध करता

है। बाद में उस काम के खत्म होने के बाद ध्यान आता है कि यह गलत हो गया है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन गलत हो गया है, ऐसा ज्ञान लेने से पहले पता चलता था?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : हाँ, नहीं चलता था। इसलिए कोई है इसमें, यह बात तय हो गई न? वही आत्मा है। जो प्रज्ञाशक्ति है वह दिखाती है। वह आत्मा की शक्ति है ऐसी। जब तक मोक्ष नहीं हो जाता तब तक प्रज्ञाशक्ति काम करती है, वही आत्मा है।

ज्ञान के बाद कषाय अनात्मा के

प्रश्नकर्ता : खुद के स्वरूप में आ जाए तो फिर क्रोध नहीं होता, मान नहीं होता, माया नहीं होती, कुछ भी नहीं होता है न?

दादाश्री : क्रोध-मान-माया-लोभ *पुद्गल* के गुण हैं। आत्मा में ऐसे गुण हैं ही नहीं। यानी अपने गुण नहीं हैं, उन्हें अपने सिर क्यों लेना है? जो कम-ज़्यादा होते हैं, वे सभी *पुद्गल* के गुण हैं। और जो बढ़ता नहीं, घटता नहीं, मोटा नहीं है, पतला नहीं है, ठिगना नहीं है, लंबा नहीं है, वज़नदार नहीं है, हल्का नहीं है, वे आत्मा के गुण। बाकी सारा *पुद्गल*।

प्रश्नकर्ता : आत्मा खुद, खुद के स्वभाव में रहता है। वह जो औरों के साथ व्यवहार करता है, उसे समझना चाहिए?

दादाश्री : अन्य व्यवहार होता ही नहीं है न! खुद का स्वाभाविक व्यवहार होता है। जिसका जो स्वभाव है, वैसा ही व्यवहार होता है। ज्ञाता-द्रष्टा, परमानंदी, वह खुद का स्वभाव है। अत: वैसा ही व्यवहार होता है। अन्य व्यवहार होता ही नहीं है न! व्यवहार तो बला है।

यहाँ हम से ज्ञान ले जाए तो उसके लिए क्रोध-मान-माया-लोभ

पुद्गल के गुण हैं और ज्ञान नहीं लिया हो तो आत्मा के गुण हैं। वास्तव में आत्मा के गुण नहीं हैं। लेकिन वही खुद कहता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ।' जो नहीं है, वैसा कहता है। उसी प्रकार ये गुण भी खुद के नहीं हैं। उन्हें खुद अपने सिर लेता है।

अतः ऐसा है कि हम से ज्ञान लेकर, हमारी आज्ञा में रहे, फिर क्रोध-मान-माया-लोभ हो जाएँ तब भी आपको असर नहीं करेंगे, कुछ भी नहीं होगा, समाधि जाएगी नहीं।

कषायों से मुक्ति अक्रम मार्ग में

आपको ज्ञान लिए इतना समय हो गया, तो अंदर जो सारे उछालें आते थे, वे कितने बंद हो गए। थोड़ा-बहुत बंद हो गया है या नहीं हुआ?

प्रश्नकर्ता : पचास प्रतिशत से ज़्यादा।

दादाश्री : अब इन उछालों को बंद करना, उसी को कहते हैं मुक्ति। अंदर कुछ भी नहीं रहता, यानी अपना यह मुक्ति का मार्ग कितना सुंदर है। एक-दो जन्मों में हल ला देता है!

प्रश्नकर्ता : दादा, वह परिणाम तो दिखाई देता है। कषाय मंद हुए हैं, ऐसा अनुभव होता है।

दादाश्री : नहीं। कषाय मंद नहीं, कषाय मुक्त हो गए हो।

प्रश्नकर्ता : अब संपूर्ण रूप से मुक्त हो गए, ऐसा कहना ज़रा ज़्यादा लगता है।

दादाश्री : कह सकते हो न! ज़्यादा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उसकी मंदता तो बरतती ही है।

दादाश्री : यदि आप चंदूभाई हो तो कषायों की मंदता है और यदि आप 'शुद्धात्मा' हो तो कषाय मुक्त हो।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ठीक है। तो उस प्रकार से कषाय मुक्त!

दादाश्री : यदि चंदूभाई हो तो मंदता है। क्योंकि चंदूभाई में जो मंदता है, वह डिस्चार्ज के रूप में है और डिस्चार्ज से तो कोई छूट नहीं सकता न! अब आप में से क्रोध-मान-माया-लोभ सभी चले गए। आप में कुछ रहा ही नहीं। आप शुद्ध हो गए हो। अब चंदूभाई में जो भरा हुआ माल है, वह अब डिस्चार्ज के रूप में निकलता रहेगा। अब नया माल चार्ज होना बंद हो गया है। अत: जो भरा है, वह निकलता रहेगा। वह डिस्चार्ज माल निकलता है। उसमें आपको क्रोध-मान-माया-लोभ जैसा लगता है। वास्तव में वे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं! डिस्चार्ज भाव हैं। चंदूभाई किसी पर गरम हो जाएँ, गुस्सा हो जाएँ तो वह डिस्चार्ज है, चार्ज नहीं है। यह विज्ञान है। विज्ञान को सिर्फ समझने की ही ज़रूरत है। एक क्षण बाद भी चिंता नहीं रहती, *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) नहीं होती, ऐसा निरुपाधि!

क्रोध चार्ज है और गुस्सा डिस्चार्ज

जब चंदूभाई गुस्सा करते हैं तब वे खुद अंदर पछतावा करते रहते हैं कि, 'अरे, ऐसा क्यों होता है, ऐसा क्यों होता है?' खुद को यह पसंद नहीं है, फिर भी हो रहा है यह। क्योंकि इफेक्ट है। आपको अच्छा लगता है क्या उस समय? नहीं लगता। यानी कि खुद अलग रहते हैं। खुद को अच्छा नहीं लगता और यह होता रहता है। उसमें खुद का एक भी अभिप्राय नहीं है, एकता नहीं है यह। आत्मा अलग हो गया है। पहले जब तक एकता थी तब तक क्रोध था। जिसके पीछे हिंसक भाव रहता है, उसे क्रोध कहते हैं। और जिसके पीछे हिंसक भाव नहीं है वहाँ आत्मा अलग है। आत्मा को वह अच्छा ही नहीं लगता। उसे क्रोध नहीं कहा जाता।

शुद्धात्मा को गुस्सा आता ही नहीं है न! गुस्सा किसे आता है? गुस्सा चंदूभाई को आता है, उसमें तू तो एकाकार नहीं होता, तन्मयाकार

नहीं होता इसलिए वह क्रोध नहीं कहलाता, गुस्सा कहलाता है। गुस्सा तो हो जाता है। वह गुस्सा अंदर भरा हुआ है, वह डिस्चार्ज हुए बगैर रहेगा नहीं न? क्रोध नहीं होना चाहिए। क्रोध तो जब खुद तन्मयाकार होता है, आत्मा एकाकार हो जाता है तब क्रोध होता है और उसे क्रोध कहा जाता है।

गुस्सा डिस्चार्ज है, क्रोध चार्ज है। डिस्चार्ज हुए बगैर तो चारा ही नहीं है न?

फिर प्रकट होता है शील

प्रश्नकर्ता : अब ये बच्चे कुछ शरारत करें, तो ऐसे में गुस्सा करना हो तो हो नहीं पाता।

दादाश्री : नहीं, लेकिन करने की ज़रूरत ही नहीं है न! जब गुस्सा नहीं करोगे तब आपका ताप बढ़ेगा। मैं गुस्सा नहीं करता हूँ तो मेरा ताप इतना अधिक लगता है, मेरे नज़दीक रहने वाले सभी लोगों को सख्त ताप लगता है और गुस्सा तो खुली निर्बलता है। बिना कुछ किए ही ताप लगे, ऐसा है। गुस्सा करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती, ताप ही लगता है उन्हें।

प्रश्नकर्ता : दादा, पहले होता था अब होता ही नहीं है। प्रयत्न करने जाएँ तब भी नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, तब फिर शील उत्पन्न हुआ कहा जाएगा और शील उत्पन्न होने से ताप लगता है। उनमें प्रताप उत्पन्न होता है! और जहाँ क्रोध है वहाँ अभी भी लिकेज हो जाता है इसलिए युज़लेस हो जाता है और बहुत क्रोध हो जाए तब तो मनुष्य बिल्कुल खत्म ही हो जाता है। जो क्रोधित होता है, वह तो यों काँपने भी लगता है। वह कितनी निर्बलता कही जाएगी, और भगवान महावीर कैसे थे, कोई मारे, गालियाँ दे तब भी कुछ नहीं! ऐसा देखकर आपको भी वैसा ही बन जाना है।

अपने यहाँ किसी को गुस्सा आता हो तो वह प्रतिक्रमण करता है, अत: गुस्सा खुद को नहीं आता। खुद अलग है और यह गुस्सा अलग है। ऐसा ज्ञान होने के बावजूद भी फिर वह प्रतिक्रमण करता है। लेकिन प्रतिक्रमण करने से क्या होता है कि ज़रा सा भी मल नहीं चिपकता।

तंत को कहा है क्रोध

इसमें तो प्रतिक्षण आत्मा का अनुभव होता है। क्योंकि जब चंदूभाई किसी पर चिढ़ जाते हैं, उस समय अंदर जो आत्मा है वह क्या कहता है? 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' अत: खुद अलग का अलग ही रहता है, वह आत्मा का अनुभव है। और ये चंदूभाई जो करते हैं वह भी अलग है और यह भी अलग, ये दोनों भेद नहीं दिखाई देते?

प्रश्नकर्ता : ये तो दिखाई देते हैं।

दादाश्री : पहले एकाकार था, क्रोध होते ही मन में तन्मयाकार हो जाता था। इसलिए खुद अपना क्रोध बंद नहीं कर सकता था। लेकिन इसे क्रोध नहीं कहा जाता। अब आपको क्रोध-मान-माया-लोभ रहते ही नहीं हैं। चंदूभाई को जो होता है वे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं माने जाएँगे, नियम से। तब कोई कहे कि, 'ऐसे कैसे नहीं माने जाएँगे? तो क्रोध की परिभाषा है कि क्रोध हमेशा हिंसक भाव सहित होता है और तंत वाला होता है।

तंत अर्थात् रात को पत्नी से झगड़ा हो गया हो आपका, तो सुबह जब वह चाय देती है तब चाय का प्याला यों पटकती है, ज़रा ऐसे। उसे तंत कहते हैं। रात का तंत अभी भी है। तब आप भी तंत में बोलते हैं, 'हं, अभी भी सीधी नहीं रहती!' वह सब तंत कहलाता है। अब यदि रात को आपका झगड़ा हो जाता है न, तो सुबह कुछ भी नहीं रहता। भूल जाते हो वापस। उनके प्रति तंत ही नहीं रहता। वर्ना तंत तो, पंद्रह साल पहले कोई व्यक्ति नुकसान कर गया हो, फिर आप खुद भूल जाते हो लेकिन कभी यदि आप यहाँ से भरुच गए

और भरुच के बाज़ार में वह दिखाई दे तो तुरंत ही वह तंत याद आ जाता है। यानी कि तंत नहीं जाता, जबकि यहाँ तो ऐसा तंत नहीं रहता।

अब क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए, उसकी निशानी क्या है? तो कहते हैं कि हमें तंत नहीं रहता। वर्ना चालीस साल में भी तंत नहीं जाता। यह तो, यदि कोई नाक काट जाए तो उस पर भी, अगले दिन तंत नहीं रहता। भयंकर विराधना कर जाए तब भी तंत नहीं रहता। जबकि उसमें तो ज़रा सा भी नुकसान कर जाए तो चालीस साल तक तंत नहीं जाता। मिलते ही तुरंत याद आता है कि यह वह आदमी आया। अब तो अगर शाम को कुछ भी झंझट हुई हो तो सुबह उसका तंत नहीं रहता। रहता है क्या अब तंत? यानी कि लोभ का तंत नहीं रहता, क्रोध का तंत नहीं रहता, किसी भी चीज़ का तंत नहीं रहता। आपको ऐसा कुछ तंत-वंत नहीं रहता। सरल हो जाते हो, जैसे कि रात को कुछ हुआ ही नहीं था। रात ही रात में उस फाइल का *निकाल* भी हो जाता है। तंत नहीं रहता।

भगवान ने तंत को ही क्रोध-मान-माया-लोभ कहा है। तंत है तो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं और यदि तंत नहीं है तो वे अजीव के गुण हैं, निर्जीव के गुण हैं। अत: तंत किसे रहता है कि जिसमें मिथ्यात्व हो। पूरे जगत् के जीवों को मिथ्यात्व तंत रहता है जबकि आपको तो यह सम्यक्त्व तंत हो गया है हमेशा के लिए, निरंतर सम्यक्त्व। यानी कि क्षायक दर्शन का तंत हो गया है इसलिए कषायों का तंत चला गया। आपको यह तंत रहा, इसलिए यह ज़्यादा याद रहता है। जहाँ तंत है वहाँ आत्मा है। यानी कि यह क्षायक दर्शन दिया है पूरा ही, निरंतर, इसका तंत रहेगा, निरंतर तार। क्षायक समकित कहलाता है यह। इसे प्रतीति का तंत कहते हैं, निरंतर प्रतीति, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसकी निरंतर प्रतीति बैठी हुई है।

भिन्न है क्रोध विभाग और आत्म विभाग

चंदूभाई चाहे कितना भी क्रोध करें लेकिन यदि आपको ऐसा

भान उत्पन्न नहीं होता कि, 'यह मुझे हो रहा है' तो आप जोखिमदार हो ही नहीं। ऐसा यह विज्ञान है। बहुत सतर्क रहना चाहिए और उस समय उससे किसी को दुःख हो जाए, आपके भाव से किसी को दुःख हो जाए तो सामने वाले व्यक्ति से आप कहना, 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण कर लो, अतिक्रमण क्यों किया?' आप अलग और चंदूभाई अलग! एक गुस्सा करता है और दूसरा मना करता है। जो मना करता है वह आत्म विभाग है और जो करता है वह *पुद्गल* विभाग।

प्रश्नकर्ता : वह सब पता चलता है।

नहीं हो एकाकार प्रतिष्ठित आत्मा, वह सही है

दादाश्री : सभी में क्रोध हो तब भी हम कहते हैं कि चला गया है। ऐसा किसलिए कहते हैं? क्योंकि क्रोध कब कहा जाता है? आत्मा क्रोध में तन्मयाकार हो जाए तब क्रोध कहा जाता है। नहीं तो क्रोध कहलाता ही नहीं है। तन्मयाकार हो जाए तभी सामने वाले को बुरा लगता है, वर्ना सामने वाले को बुरा नहीं लगता।

अब, तन्मयाकार (होना) दो प्रकार का है। मूल आत्मा तो जैसे कि तन्मयाकार होता ही नहीं है। यह जो आत्मा दिया है वह तन्मयाकार होता ही नहीं है। लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा जो है न, वह तन्मयाकार हो जाए तो बुरा लगेगा न किसी को। प्रतिष्ठित आत्मा एकाकार हो जाता है न, तो फिर बदसूरत लगता है। वर्ना सामने वाले व्यक्ति को बदसूरत कैसे लगेगा? प्रतिष्ठित आत्मा भी एकाकार नहीं होना चाहिए, वहाँ पर जागृति रखनी चाहिए।

हम डाँटते हैं, *ठपका* देते हैं, सब करते हैं लेकिन किसी को बुरा नहीं लगता। हमारे शब्दों से किसी के मन पर चोट नहीं लगती जबकि इन लोगों का जो क्रोध है उससे बर्तन जल जाते हैं। जबकि इससे तो चोट भी नहीं लगती। चोट (असर) के बिना बाहर निकल जाता है, डाँटे करें तब भी!

[7]
संयम

असंयमी के सामने संयम, वह संयमी

अब, संयमी किसे कहते हैं? वह तो, सामने वाला असंयमी हो तो उसे किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं होने देता। सामने वाला तो असंयमी है ही बेचारा। मैं ऊपर बैठा और वह नीचे बैठा तभी से... क्या वह नहीं समझता? संयमी को दु:ख नहीं होता और असंयमी को दु:ख हो जाता है। असंयमी को दु:ख नहीं होना चाहिए, ऐसा अपना... संयमी का रिवाज़ है। ठीक है नियम?

आजकल के सब लोग तो, सामने वाले को दु:ख हो जाए, ऐसा ही कर देते हैं। उसमें देर ही नहीं लगती न! और कोई कुछ कहे तो उन्हें भी दु:ख हो जाता है। यानी कि हमेशा जला हुआ इंसान ही दूसरों को जलाता है। आप नहीं जले हो तो आप क्यों जलाओगे? आपको दु:ख ही नहीं है। आपको अब दु:ख कहाँ होता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं। नहीं होता।

दादाश्री : तो फिर दूसरों को जलाने का क्या फायदा? उन्हें सुखी करना चाहिए आपको।

बाकी, यदि यों ही आप कहो कि मुझ में संयम है तो वह संयम नहीं चलेगा। आप सभी को ध्येय रखना चाहिए कि, 'भई, यह ध्येय

है मेरा', और मेरा यह ध्येय पूर्ण हो चुका है और किसी जगह पर अगर कच्चा रह जाए तब भी मैं फिर ठीक कर देता हूँ। कच्चा भी रह जाता है न कभी। सभी को थोड़े ही समाधान होता है? कैसे-कैसे दिमाग़ वाले आते हैं! लेकिन अपना ध्येय ऐसा होना चाहिए, ऐसे भाव होने चाहिए, यानी कि कहने का मतलब क्या है कि इच्छा व भावना आपकी यही है, शायद कभी भूल हो जाए लेकिन आपकी भावना यही है। तभी से हम उसे संयमी कहते हैं। हो जाता है, वह चीज़ अलग है लेकिन आपकी भावना क्या है? आजकल के संयम में लोगों की ऐसी भावना भी नहीं होती।

अपकारी को भी देखे निर्दोष

कोई गालियाँ दे, उस समय पूरा स्वाध्याय जल जाता है। भगवान ने ऐसा स्वाध्याय करने के लिए मना किया है। पहले बाड़ बना। वर्ना स्वाध्याय तो अनंत अवतार से बहुत किए ही हैं न! दिन भर का संयम लिया हो न, उसका भी यदि कोई एक अपमान करे तो उसे रात भर सोने नहीं देता। अरे, छोड़ न इसे। उसमें तूने क्या किया? तेरा किया हुआ सारा फोकट। अतः भगवान ने इसके लिए मना किया है। भगवान कुछ अलग कहना चाहते थे। भगवान तो ऐसा कहते हैं 'संयमी बन'।

संयमी तो उसे कहते हैं कि कोई गालियाँ दे, कोई अपमान करे तब भी वे सब निर्दोष दिखाई दें! कोई दोषित न दिखाई दें!

इन भाई से एक स्कूटर वाला टकरा गया तो पैर में फ्रेक्चर हो गया। तब वह व्यक्ति घबरा गया बेचारा। लोगों ने उसे पकड़ा। तब इनमें खुद में ज्ञान प्रकट था ही। इन्होंने कहा कि, 'भाई, उन्हें जाने दो। उन्हें बिल्कुल सेफली (सुरक्षित) जाने दो।' तब इन्होंने सब से विनती करके छुड़वाया, वर्ना मारते। अब इसी को संयम कहते हैं। यह सब से बड़ा संयम है। ऐसा संयम मनुष्य को परमात्मा बनाता है। आत्मा में से परमात्मा बनता जाता है। ज़रा सा आपका विचार भी नहीं बिगड़ा था। नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं। बिल्कुल नहीं, दादा।

दादाश्री : मनुष्य से परमात्मा बनने का रास्ता ही इतना, संयम का है!

जहाँ संयम वहीं पर कर्म निकाली

संयम रहे तभी *निकाली* कहलाता है, वर्ना *निकाली* कहलाएगा ही नहीं न! पहले संयम है, उसके बाद में *निकाली*। संयम के बिना तो मोक्ष हो ही नहीं सकता न! संयमपूर्वक ही *निकाल* होता है। जहाँ '*निकाल*' शब्द हो तो समझना कि ये संयम से कर रहे हैं। उसमें भी यदि सामने वाले को दुःख हो जाए, ऐसा हो तो हमने कहा है, चंदूभाई से कहना कि, 'भाई, सामने वाले को दुःख हो ऐसा क्यों करते हो? प्रतिक्रमण करो।'

क्रोध हुआ हो उसका निवारण हो सकता है क्योंकि वह *निकाली* चीज़ है। इसलिए गुनहगारी नहीं आती। लेकिन सामने वाले को दुःख हुआ, उसका उतना हिसाब चुका देना चाहिए उसके लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए।

संयम हो तभी *निकाली* क्रोध हो सकता है, वर्ना *निकाली* क्रोध नहीं हो सकता। क्रोध दो प्रकार के हैं, एक, *निकाली* क्रोध और दूसरा जो *निकाली* नहीं होता वैसा, वास्तविक क्रोध। *निकाली* क्रोध अर्थात् उसमें से जीव निकल चुका होता है और वास्तविक क्रोध जीव वाला! आपको क्रोध आने के बाद में अंदर ऐसा नहीं होता कि ऐसा नहीं होना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : हाँ। बहुत पछतावा होता है कि यह गलत हो गया।

दादाश्री : वह जो होता है वहाँ संयम हो रहा है और यह उसका बाहर का भाग ऐसी भूमिका अदा कर रहा है। उसमें आप संयम रखते हो कि ऐसा नहीं होना चाहिए। बाहर का भाग तो अपने आप ही निकलता रहता है, टंकी में जो माल है वह। तब उसे खुद

को तो वह अच्छा नहीं लगता, इसलिए वह कहता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए, यह शोभा नहीं देता!'

प्रकृति से अभिप्राय हुआ अलग, वह संयम

संयम अर्थात् चंदूभाई जो कुछ भी करे, किसी के लिए अहितकारी हो, ऐसा करे, फिर भी आपका अभिप्राय उससे बिल्कुल अलग ही हो, उसे संयम कहते हैं। चंदूभाई किसी को गालियाँ दे तब आपका अभिप्राय अलग ही हो कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए। यह ऐसा क्यों कह रहे हो?' यानी कि जिस प्रकार दो अलग-अलग लोग हों, उस प्रकार से बरते। उसे कहते हैं संयम।

संयम में रहते हो न ठीक से? सही है तब! हमें संयम की ज़रूरत है, बस। संयम से मोक्ष है। चंदूभाई जो करते हैं वह आपको ठीक नहीं लगता, आपका अभिप्राय अलग ही रहता है न! यदि चंदूभाई किसी पर गुस्सा हो गए हों तो आपको अच्छा नहीं लगता न? चैन नहीं पड़ता न? वही संयम है। प्रकृति से खुद का अभिप्राय अलग हो जाना, उसे कहते हैं संयम।

देहाध्यास है, वहाँ नहीं है संयम

भगवान ने कहा था, जहाँ देहाध्यास है वहाँ संयम नहीं है, जहाँ संयम होता है वहाँ देहाध्यास नहीं होता। फिर भी देखो न, आजकल संयम की कौन सी भाषा चल रही है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-द्रष्टा में रहना, वह संयम कहलाता है?

दादाश्री : नहीं। ज्ञाता-द्रष्टा में रहो वह संयम नहीं है, ज्ञाता-द्रष्टा में रहो तो वह ज्ञान कहलाता है। ज्ञाता-द्रष्टा में रहो तो वह अंतिम पद, ज्ञान कहलाता है। और संयम का अर्थ क्या है? आर्तध्यान-रौद्रध्यान रुक जाए, उसे कहते हैं संयम। देहाध्यास को भगवान ने संयम नहीं कहा है। भगवान इसे संयम नहीं मानते। जब देहाध्यास नहीं होता तब संयम होता है।

ऐसा तो वे खुद ही कहते हैं कि, 'हम देहाध्यास को मानते हैं, देहाध्यास को ही मानते हैं।' लेकिन देहाध्यास शब्द इस्तेमाल नहीं करते वे। वे क्या कहते हैं? 'अशुभ छोड़ो और शुभ करो।' 'शुभ करो', यह देहाध्यास है। (इसे तो) बल्कि देहाध्यास बढ़ाना कहा जाएगा। यह कम था तो बढ़ाया। अब यह सब समझ में नहीं आ सकता न? किस प्रकार से समझ में आएगा एट ए टाइम? यह तो ज्ञानी पुरुष की दृष्टि घड़ी भर में तो कहाँ से कहाँ घूम आती है! प्लस-माइनस करके, मूल जगह पर आ जाते हैं। क्योंकि दृष्टि निर्मल हो चुकी है। यह तो, ज़रा सा भी संयम ही नहीं है न, फिर भी लोग कहते हैं कि संयमी आए। क्योंकि यह लौकिक संयम है। लोगों द्वारा माना हुआ। ऐसे संयम को भगवान ने स्वीकार नहीं किया है। भगवान स्वीकार करें तो अपने सभी महात्मा संयमी हैं। क्योंकि गुस्सा आता है और संयम भी रहता है। असंयम में भी संयम रहता है।

प्रश्नकर्ता : कई लोग पूछते हैं कि वर्तन में कहाँ फर्क आया?

दादाश्री : मुझे यह वर्तन में नहीं देखना है। असंयम हो जाए तब हम संयम को देख सकते हैं कि यह संयम शुरू हुआ। आपको ऐसा लगता है कि आप संयम में हो। चंदूभाई असंयम में हैं और आप संयम में रहते हो।

हमारा काफी कुछ, दोनों ही क्लियर है। बाहर भी संयम रहता है और अंदर भी संयम रहता है। वर्ना फिर अपने ज्ञानी (महात्मा) कहेंगे, 'दादा, आप में और हम में फर्क क्या रहा?'

प्रश्नकर्ता : अपनी जागृति काफी है या नहीं, ऐसा कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : वह तो आपको बार-बार पता चलेगा, आपके संयम पर से। कोई व्यक्ति आकर चंदूभाई से कहे कि, 'आप इस बच्चे को पढ़ाते हो न, वह बिल्कुल... बहुत ही खराब तरीके से पढ़ाते हो।' इस तरह से वह ब्लेम करता रहे आपके सामने तो उस समय चंदूभाई

वापस उसे ब्लेम करते हैं और आप उसे जानते हो कि चंदूभाई असंयमी हो गए। वह, जो ऐसा जानता है कि असंयम हुआ, वह जानने वाला संयमी है। अत: जागृति है या नहीं, ऐसा पता चल जाएगा या नहीं? कोई गालियाँ दे तब अपनी जागृति का पता चल जाता है। या फिर अच्छे कपड़े पहनकर शादी में जा रहे हों और कोई ऊपर से थूक दे तो उससे झगड़ा करने नहीं जाते, अंदर से जागृति उत्पन्न हो जाती है। चंदूभाई शायद झगड़ा कर भी लें लेकिन तब भी अंदर ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। वह जागृति है और वही संयम है। असंयम को देखना, वही संयम है!

कषायों पर संयम, वह वास्तविक संयम

प्रश्नकर्ता : दादा, अंदर तपने पर क्या पहले तप उत्पन्न होता है, उसके बाद में संयम उत्पन्न होता है?

दादाश्री : संयम तो, जब से आप शुद्धात्मा हुए और चंदूभाई छूट गए, तभी से संयम की शुरुआत हो गई।

प्रश्नकर्ता : तप भी संयोगों के आने पर उत्पन्न होता है न?

दादाश्री : तब तप उत्पन्न होता है लेकिन यह संयम की शुरुआत तो हो चुकी है। सभी संयमी ही कहे जाएँगे। बाकी, संयम की शुरुआत तो यहाँ से हो गई है, ज्ञान दिया तभी से संयमी।

क्रोध-मान-माया-लोभ पर संयम रखना, उसी को कहते हैं संयम। क्योंकि जगत् पूरा क्रोध-मान-माया-लोभ से बंधा हुआ है और वे कषाय ही उसे दु:ख देते हैं, निरंतर। भगवान कहीं दु:ख नहीं देते। अत: जब क्रोध-मान-माया-लोभ पर संयम होता है तब वह संयम कहलाता है। जब अहंकार पर संयम होता है तब संयम कहलाता है। अहंकार पर संयम कब आता है कि जब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान हो जाता है, तब। तब तक संयम है ही नहीं न! लेकिन लौकिक में ऐसा कहा जाता है कि, 'ये संयमी हैं'। व्यवहार में ऐसा कहा जाता है कि, 'ये संयमी आए!' वास्तव में संयमी नहीं हैं।

आर्त व रौद्रध्यान नहीं, वह संयम

प्रश्नकर्ता : यह चिढ़ उठना क्या है?

दादाश्री : वह प्रकृति है, उसे आपको देखते रहना है। वह भी एक संयम है लेकिन खुद को ऐसा लगता रहता है कि खराब है। वहाँ पर इन आज्ञाओं का पालन करें न, तो संयम उत्पन्न होता है। वह संयम, वही पुरुषार्थ है। अतः अपने अक्रम विज्ञान के आधार पर, जिससे कि आर्तध्यान-रौद्रध्यान जाते हैं, वह संयम कहलाता है। आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं हों तो उसे संयम कहते हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ चंदूभाई को होते हैं लेकिन खुद को ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। स्वरूप को लेकर आपको ऐसा ही लगता है कि यह नहीं होना चाहिए। दोनों क्रियाएँ साथ ही होती हैं। चंदूभाई क्रोध कर रहे होते हैं और आपको अंदर ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। ये दोनों क्रियाएँ साथ में होती हैं, उसे कहते हैं संयम। असंयम पर संयम, उसे कहते हैं संयम। इस जगत् के लोगों को क्या होता है? असंयम पर असंयम। यानी कि बात है छोटी सी और समझे बगैर घोटाला होता रहता है सारा।

पाँच आज्ञा, यही है संयम

क्षायक समकित अर्थात् निरंतर अंतर संयम रहता है। बाह्य संयम की ज़रूरत नहीं है। बाहर तो चारित्रमोह है, वर्तनमोह है इसलिए यह मोह तो उत्पन्न हुए बगैर रहेगा ही नहीं। चश्मा पहनना ही पड़ता है। घड़ी पहननी पड़ती है, कमीज़ें पहननी पड़ती हैं, बाल बनाने पड़ते हैं लेकिन अंदर से मोह चला जाना चाहिए।

चंदूभाई का जो भी माल है, संयम वाला या असंयम वाला, उसे आप वीतराग भाव से देखना, यही संयम है। चंदूभाई चिढ़ें तो आपको उन पर नहीं चिढ़ना है, आपको देखना है। और बहुत हुआ तो कहना, 'ऐसा शोभा नहीं देता'। साधारणतः ऐसा भाव रहना चाहिए, बोलना तो है ही नहीं।

अपनी पाँच आज्ञाएँ, ये संपूर्ण अंतर संयम ही हैं! यदि पूरी तरह से, आदर्श रूप से पालन किया जा सके तो, वर्ना तो फिर जितना कम पालन होगा उतनी आदर्शता कम। इसीलिए इन सभी को अंदर संयम रहता है न! किसी भी फाइल के साथ समभाव से *निकाल* ही करते हैं। समभाव से *निकाल* करने के लिए कितना अधिक संयम रखना पड़ता होगा? ऐसा अंतर संयम निरंतर रहेगा।

यह ज्ञान मिलता है तब, शुद्धात्मा होने के बाद संयमी कहलाते हो। अब आप संयमी कहलाते हो। लेकिन लोग कबूल नहीं करेंगे। लोग तो कहेंगे, 'वेश नहीं बदले, (इनकी तो) पत्नी है, ऐसा सब है', ऐसे सारे कारण ढूँढेंगे! लेकिन अपने महात्माओं को निरंतर संयम रहेगा। यानी कि आंतरिक संयम रहेगा, बाह्य संयम नहीं। इन पाँच आज्ञाओं का पालन करने से आपको निरंतर आंतरिक संयम रहता ही है। यह संयम मोक्ष की ओर ले जाता है। जबकि बाह्य संयम भौतिक सुख देता है। दोनों ही संयम हितकारी हैं लेकिन उससे भौतिक सुखों का लाभ मिलता है जबकि आंतरिक संयम मोक्ष देता है। आंतरिक संयम रहता है, बाहर शायद न भी हो, इसमें कोई दिक्कत नहीं है। बाह्य संयम हो और आंतरिक नहीं हो तो दिक्कत है लेकिन ऐसा नहीं है, वर्ना बाह्य संयमधारी का कुछ बदल नहीं पाता। अंतर संयम से मोक्ष है, बाह्य संयम से पूरा संसार है, सोने की बेड़ी जैसा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जगत् में तो संयम का कुछ और ही अर्थ बताते हैं। कुछ कंट्रोल करना, खुद की वृत्तियों पर कंट्रोल करना।

दादाश्री : नहीं, वह तो हठयोग है। वह मन से ज़ोर लगाता है, बस इतना ही। एक यह नसवार नहीं छूटती, सुपारी नहीं छूटती, फिर क्या संयम रख पाता है? अहंकार करता है, बस इतना ही। संयम तो अलग ही दिखाई देना चाहिए। जो अहंकार करके किया जाता है वह संयम नहीं कहलाता!

अपना संयम कौन सा है कि ज्ञान में नहीं रह पाते, फिर भी

पाँच आज्ञा में रहने का प्रयत्न करते रहते हैं, इसे संयम कहते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ को रोकना, इसे कहते हैं संयम। यदि आप ज्ञान में रहते हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ रुक जाएँगे!

आत्मज्ञान से बरते संपूर्ण संयम

एक बार कोई आपको गाली दे और तब आप संयम रखो तो भगवान ने उसे प्योर संयम कहा है। भगवान तो प्योर संयम के भूखे हैं। प्योर संयम रखकर तो देखो, कितनी सीढ़ियाँ चढ़ा देगा। एक ही बार संयम रखने से दस-बीस सीढ़ियाँ यों ही चढ़ जाएगा, इसे कहते हैं लिफ्ट मार्ग! आपको खुद को भी पता चल जाता है कि, 'ओहोहो, मैं तो यहाँ था और अब तो यहाँ तक पहुँच गया!'

अब आप संयम रख सकते हो, ऐसा है। आपके पास ऐसा ज्ञान है कि अच्छी तरह से संयम रख सकते हो। और एक बार ऐसा संयम रखा जाए, पद्धतिपूर्वक, तो कितनी ही सीढ़ियाँ चढ़ा देगा! आपको ऐसा लगेगा कि यह हवा ज़रा ऐसी दुर्गंध वाली थी तो अभी सुगंध वाली हवा कहाँ से आई? जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे सुगंधित हवा आती जाती है, हवा में बदलाव नहीं होता? तुझे आई हैं ऐसी सीढ़ियाँ? तुझे संयम तो बहुत से आते हैं न? संयम के स्टेशन बहुत आते हैं न?

[8]

मोक्ष का तप

कलियुग में तप, घर बैठे

शास्त्रकार कहते हैं कुछ, और मार्गदर्शक करते कुछ हैं? व्यापार बढ़वाते हैं। तप करो, जप करो। भगवान ने कौन सा तप करने को कहा था कि कलियुग में घर बैठे जो आ पड़ें, वे तप करना। यह तो मुफ्त में तप आया है। कौन छोड़ेगा? अभी बस में बैठा था और कोई जेब काट ले गया और इस जेब में पाँच सौ थे और उसमें ग्यारह सौ थे। ग्यारह सौ वाला काट गया, तब फिर अंदर से वृत्तियाँ तुरंत शोर मचाने लगती हैं, उसे देने हैं तीन सौ, उसे पाँच सौ देने थे। आप समभाव से *निकाल* करने जाओ तब वृत्तियाँ कहती हैं, 'नहीं-नहीं! यह क्या समभाव से *निकाल* कर रहे हो?' तब उस समय आपको तप करना है। उस समय हृदय लाल हो जाएगा। उसे देखते रहना है। अंदर अकुलाहट होगी। तब आपको ऐसा समझना है कि कल जितना लाल आज नहीं है और फिर जब लाल कम हो जाए तब समझना कि हाँ, अब कम हुआ है। जिस प्रकार यह ग्रहण होता है न, तब ग्रहण बढ़ते-बढ़ते... हम समझते हैं कि अभी बढ़ रहा है, अभी बढ़ रहा है। और फिर बढ़ जाने के बाद में कम होता है, तब हम कहते हैं कि, 'अब ग्रहणमुक्त होने लगा है, अब एक घंटे बाद हम सबकुछ कर सकेंगे।' लेकिन एक घंटे बाद ग्रहणमुक्त हो जाएगा। हम जानते हैं कि यह तप कुछ समय में खत्म हो जाएगा। लेकिन हृदय तपता

है, और जगत् के लोगों का तपता है न, जो तपता है वह उनसे सहन नहीं हो पाता इसलिए सामने वाले पर अटैक कर देते हैं। आप अटैक नहीं करते और तपने देते हो। ऐसा होता है या नहीं होता? जब अटैक करते हैं न तब तप बंद हो जाता है। यानी कि नया लोन लेकर पुराने लोन को रीपे (वापस) करना और इस तप का मतलब तो नए लोन लिए बिना पुराना चुका देना। कठिन हो जाता है, नहीं? कठिन लगता है।

एक अमरीका वाला मुझसे कहने लगा, 'अधिक तप कब करना पड़ता है?' मैंने कहा, 'जॉब चली जाए, उस दिन!' अमरीका में जॉब छूटने में देर ही नहीं लगती। अत: उस दिन उन्हें बहुत भारी तप आता है। उस समय तो खूब तपता है अंदर। इतना तपता है कि रात को नींद नहीं आती। वह तपता है फिर भी अटैक नहीं, नो अटैक। मानसिक अटैक नहीं, हाथ से अटैक नहीं, वाणी से अटैक नहीं। तीनों प्रकार का अटैक नहीं। यह ज्ञान नहीं हो तो कितनी तरह से अटैक कर लेता है इंसान? मन से अटैक करता है, पलंग पर सोते-सोते कहता है, 'सुबह ऐसा कर दूँगा और वैसा कर दूँगा।'

प्रश्नकर्ता : शरीर से और वाणी से नहीं होता लेकिन मानसिक अटैक हो जाता है।

दादाश्री : हो जाए तो आप प्रतिक्रमण कर लेना। वास्तव में नहीं होता, लेकिन बहुत तप गया हो न तब ज़रा मानसिक (असर) हो जाता है तब फिर वापस प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। इसे सम्यक् तप कहा जाता है। किसी के दखल के बिना किया गया तप। आपको यह करते रहना है। ऐसा तप तो सभी को आता है। कोई छूट ही नहीं सकता न! जिस बाबत को लेकर एक बार तपना पड़ता है, उस तप के बाद फिर से नहीं तपना पड़ता। तप जितने कम हो जाएँगे, उतना ही हल आ जाएगा।

मेरे काफी कुछ तप कम हो गए हैं। मुझे तप है ही नहीं।

क्योंकि मुझे भी तप थे। वही तप मैं आपको बताता हूँ। नो अटैक। मानसिक अटैक नहीं, वाणी से अटैक नहीं, शरीर से अटैक नहीं। तप नहीं करना पड़े, उसके लिए लोग तीनों प्रकार के अटैक कर देते हैं।

अदीठ तप अर्थात् कोई पार्टी डूब जाए... और एक महीने पहले ही उनके पास लाख रुपये जमा करवाएँ हों और पार्टी डूब जाए तो सुनते ही अंदर तप शुरू हो जाएगा आपका। आपको उस समय तप कर लेना है। अगर आप तप करोगे, बिल्कुल समता रखोगे और उनके लिए खराब विचार आएँ तो उसके लिए प्रतिक्रमण कर लोगे तो आपने क्लियर रखा। तो उन पर उस क्लियरेन्स का असर होगा।

आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते! तप शुरू हो जाता है। जिसे ज्ञान नहीं होता, उसे आर्तध्यान-रौद्रध्यान होते हैं। जबकि यहाँ तप में तपता है। इतना तपता है, अच्छी तरह से! यानी आपके तप तो... कोई ऐसे अपमान करे कि तप हो जाता है।

ज्ञानी पुरुष यह स्पष्टीकरण कर देते हैं। कलियुग में प्राप्त तप को भुगतना। जो तप आ पड़ें, उतना भुगत लेना तो बहुत हो गया। लेकिन उसे भुगतते नहीं हैं, वहाँ पर मारा-मारी और अटैक वगैरह सब करके वापस व्यापार (नया कर्म बंधन) करते हैं।

भेद, बाह्य तप व अंतर तप के बीच

प्रश्नकर्ता : नापसंद खाना आए और उसे खा ले तो वह भी तप है?

दादाश्री : हाँ, तप है लेकिन सच्चा तप तो यह अंतर तप कहलाता है। बाह्य तप तो लोग जान जाते हैं कि इन्होंने नहीं खाया है, आज उपवास किया है, एक पैर पर खड़े रहे हैं। ऐसे तप तो सभी करते हैं। कोई पद्मासन लगाकर तप करता है, वे सारे बाह्य तप हैं। उसके फलस्वरूप यह संसार मिलता है जबकि अंतर तप का फल मोक्ष है। अदीठ तप, अंतर तप। अदीठ अर्थात् जो किसी को दिखाई न दे।

प्रश्नकर्ता : अंतर तप और प्राप्त तप, ये दोनों एक ही कहलाते हैं?

दादाश्री : प्राप्त तप अलग है। प्राप्त तप तो अपने आप ही आ खड़ा होता है जबकि आंतरिक तप हमें करना पड़ता है। प्राप्त तप अर्थात् अभी खाने को कुछ नहीं मिला, अभी कोई ठिकाना नहीं मिला। कुछ भी नहीं मिले उस दिन कहना कि, 'भाई, आज अपना उपवास', वह प्राप्त तप है। 'आज प्राप्त तप मिला इसलिए यह तप करो', ऐसा कहना। 'तप मिला है।'

प्रश्नकर्ता : कोई अपमान करे और सहन कर लें तो फिर उसे भी तप माना जाएगा?

दादाश्री : उसे भी प्राप्त तप कहा जाएगा। आपके लिए तप जल्दी क्यों आया, क्योंकि उसका जल्दी हल आना है, साफ हो जाने वाला है स्पीडिली! उखाड़ते समय अंदर तप होता है न! चित्त में दुःख होता है? उसे तप कहते हैं। उस तप को देखते रहना है। उसे दुःख नहीं मानना है। दुःख मानोगे तो उस समय तप खत्म हो जाएगा।

ज्ञान - दर्शन - चारित्र और तप

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह दर्शन है। उसका जो अनुभव होता है वह ज्ञान है। जिस हद तक का अनुभव, उस हद तक वीतरागता और उतना ही चारित्र। यानी कि यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, ये चौथे पाए (आधार स्तंभ) का *निकाल* तो करना ही पड़ेगा न? उस समय अंदर हृदय तपे तो उसे आपको देखते रहना है। उसे तप कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तप अर्थात् क्या? अंदर घर्षण होता है?

दादाश्री : नहीं, अंदर *अजंपा* (बेचैनी) और अकुलाहट होती है। बाहर मुँह पर नहीं बोल सकते लेकिन अंदर ही अंदर अकुलाहट हो जाती है। उस तप को सहन करना पड़ता है। बाहर तो फाइलों का *निकाल* करते हो समभाव से लेकिन अंदर अकुलाहट हो जाती है।

उसे सहन किया और वह भी सामने वाले को दुःखी किए बिना शांति से सहन किया, इसे कहते हैं तप। इसे अदीठ तप कहा गया है।

महात्मा हम से कहते हैं, 'हम से इतना खराब वर्तन हो जाता है, फिर भी आपको कुछ नहीं होता?' मैंने कहा, 'मुझे क्या होगा, भला?' यह तो अनुभव में आ चुका है, इसमें और क्या होना है? वह तो, आप कहते हो कि 'मुझे बताइएगा, इसलिए बताता हूँ, वर्ना आपको बताऊँ भी नहीं।'

पहले ज़बरदस्त तप करता है, उसके बाद वह दर्शन में से ज्ञान में आता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन तप ज़बरदस्ती करता है या समझ कर करता है, इससे फर्क पड़ जाता है न, दादा?

दादाश्री : ज़बरदस्ती करे तब भी ऐसे करते-करते उसका नुकसान तो कम हो जाता है।

प्राप्त तप में चूक जाते हैं समता...

अतः हम जो करते हैं, वही आपको बताते हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद को प्राप्त तप करने का मौका आए तब याद नहीं रहता, तब तो कषाय हो जाते हैं।

दादाश्री : कुछ समय ऐसा होने के बाद में फिर एडजस्ट हो जाएगा। आपको ऐसा लगे कि ऐसा ही होता रहता है, उससे फिर सब बिगड़ जाता है। एक मिनट में कढ़ी उतार लें तो चलेगा क्या? उबलने देना चाहिए, उबालकर खीर की तरह, अठारह उफान आएँ तब कढ़ी बनती है। उसी प्रकार से हमें वह मेहनत तो करनी पड़ेगी न! जागृति के लिए भावना करनी चाहिए। 'ऐसा क्यों होता है', कहना! चंदूभाई से यह कहना पड़ेगा कि, 'आए हुए प्राप्त तप को भोगो, ऐसे क्यों करते हो?'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह स्थिरता क्यों नहीं रहती?

दादाश्री : ऐसा बोलोगे तो ऐसा ही हो जाएगा न! 'मैं विधवा हो गई हूँ' तो फिर विधवा हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : एक बार तो पूरा हिल जाता है, उसके बाद...

दादाश्री : हिल (अस्थिर हो) जाए, उस समय प्रतिक्रमण करना। कभी भी, हिल जाने के बाद में प्रतिक्रमण करने पर अगली बार हिलना कम होता जाएगा। ऐसे करते-करते स्थिर होगा और फिर यह शुरू हो जाएगा। प्रतिक्रमण करते रहना है। सब से बड़ा पुरुषार्थ प्रतिक्रमण है।

समझ तप के समय में

प्रश्नकर्ता : तप के समय समझ कैसी रहनी चाहिए?

दादाश्री : यह मेरे हित के लिए हो रहा है। दादा जो बताते हैं वह सब मेरा है और जिसके लिए दादा मना करते हैं, वह मेरा नहीं है इस तरह से अलग कर देना चाहिए अंदर।

प्रश्नकर्ता : इतना जलता रहता है, और ऐसा लगता है कि यह सहन नहीं होगा। तब भी अंदर ऐसा रहता है कि, 'यह हित के लिए है, काम का है, इसे बुझा नहीं देना है', फिर ऐसा रहा करता है।

दादाश्री : ज्ञान नहीं जलेगा, जो अज्ञान भाग है वही जलेगा। अत: तुझे संभाल कर सो जाना है। जलने देना है, भले ही पूरा जल जाए। ज्ञान नहीं जलेगा, उसकी हम गारन्टी देते हैं।

अंतर तप तो भगवान बना देता है। जब अंतर तप हो तब जानना चाहिए कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप चारों स्तंभ हैं। ऐसा पक्का हो जाना चाहिए। सिर्फ ज्ञान और दर्शन होंगे तब चार स्तंभ पूरे नहीं होंगे। अत: तू पुण्यशाली है कि तेरा अंतर तप चलता रहता है। वह उत्पन्न करने से नहीं होगा। कोशिश करके उत्पन्न करने जाएँ तो कुछ हो पाएगा क्या? अभी कोई ऐसे करके हाथ पकड़े और कहे, 'कहाँ जा रहा है, चल।' तब वहाँ पर अंतर तप उत्पन्न हो जाएगा।

हमें निरंतर तप रहता है। आपका तप स्थूल तप है, हमारा तप

तो बहुत सूक्ष्म है। लेकिन जब यह स्थूल जल जाएगा उसके बाद तप स्थूल में से सूक्ष्म में आएगा, सूक्ष्म में से सूक्ष्मतर तप आएगा। उसके बाद, जैसा मेरा तप है, आपका तप उसके नज़दीक आएगा।

अतः जैसे-जैसे यह सुनोगे वैसे-वैसे आपको समझ में आएगा कि आपको तप कहाँ पर करना है? यह तो, जहाँ तप करना है वहाँ पर उत्तेजित हो जाते हो। दूसरों को तप करवा देते हो! सामने वाला फिर तप कर लेता है। समभाव से *निकाल* कर लेता है न। हमारा तो रात-दिन तप ही है। आपने तो तप किए ही नहीं हैं, सो जाते हो लंबी तान के तो सुबह हो जाती है!

ध्येय के विरुद्ध हो, वहाँ है तप

तप होने पर ही अनुभव होता है न! वर्ना अनुभव किस तरह से होगा? अंतर तपता है यानी, जिस बारे में आपका अंतर तपता है, उससे अलग रहने की कोशिश करते हो और अंतर तपता है तो उसका आपको अनुभव हो ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जिस-जिस बारे में तप उत्पन्न होता है, वह चीज़ छूट जाती है फिर?

दादाश्री : वह चीज़ छूट जाती है और वही उसका अनुभव है। वही आत्मा का अनुभव है, बस! सुख और प्रकाश बढ़ता जाएगा, बस!

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्या उत्पन्न होता है कि तप करना पड़ता है?

दादाश्री : हम जब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार के विरुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं उस समय वे ज़ोर लगाते हैं और उस समय तप करना पड़ता है। जलता है उस क्षण।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि अपने ध्येय के अनुसार हो तो तप उत्पन्न नहीं होगा न?

दादाश्री : वहाँ पर नहीं होगा। ध्येय के विरुद्ध हो तो तप, और

वह होना ही चाहिए। वह हमेशा के लिए नहीं है लेकिन तप होना चाहिए। यदि तप नहीं होगा तो फिर स्तंभ ही गलत है। चारों स्तंभ होने चाहिए।

विषय अच्छा नहीं लगता। ध्येय निश्चित किया हो कि, 'अब तो मुझे ब्रह्मचारी रहना है', और वह किसी स्त्री को देखे तो क्या उसे तप नहीं करना पड़ेगा? उस समय वह बिल्कुल सम्यक् तप में तपे, ज़रा भी नहीं ललचाए तो उसका तुरंत अनुभव हो जाएगा। उसे तप कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जहाँ मिठास का अनुभव होता था, वहाँ पर खुद का दर्शन उत्पन्न होता है कि, 'यह मैं नहीं हूँ', अतः वहाँ पर वह तप शुरू हो जाता है। उसमें फिर से मिठास लगती है और तप वापस चला जाता है।

दादाश्री : नहीं। फिर सहन नहीं होता, तब वापस मिठास में चला जाता है। तप के लिए तो निश्चय बल की ज़रूरत है। एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'लो, अंगूठा रखो, देखते हैं।' मैंने कहा, 'ले रखा।' तो कहा, 'सिगरेट लगाता हूँ।' 'दियासलाई जला न', मैंने कहा। तो उसने दो दियासलाईयाँ जलाईं लेकिन मैं वैसे ही खड़ा रहा! तो किस आधार पर वह तप किया? अंदर अहंकार था। जो होना हो वह हो जाए। उसी प्रकार से ब्रह्मचर्य के लिए निश्चय। जो होना हो वह हो जाए। अब हम तुझ में नहीं फँसेंगे। अनंत जन्मों तक फँसे हैं, अब नहीं फँसेंगे, ऐसा निश्चय। अब हम ध्येय को नहीं तोड़ना चाहते। निश्चय नहीं होगा तो मिठास खींच ले जाएगी तुरंत।

खूब तेज़ हवा चले, ऐसी कि जो इंसान को उड़ा दे, अगर अपना निश्चय होगा तो बैठ जाएँगे, लेकिन यदि निश्चय रहे कि नहीं उड़ना है, कुछ भी नहीं होगा तो आप रह जाओगे। और यदि कोई कहे, 'अरे, उड़ जाएँगे, उड़ जाएँगे', तो वह उड़ जाएगा तेज़ी से। आकाश में उड़ जाएगा!

प्रश्नकर्ता : तूफान में तो हवा उड़ाती है, इसमें कौन उड़ाता है?

दादाश्री : यह भी वैसी ही हवा चलेगी न, आकर्षण का प्रवाह, उसमें खिंच जाता है। आकर्षण उसे अच्छा लगता था, इसलिए आकर्षण होता रहता है। खुद के ध्येय को साकार करना हो तो पसंदीदा छोड़ देना पड़ेगा और जब तक ध्येय कच्चा होगा तब तक कुछ भी नहीं हो पाएगा।

प्रश्नकर्ता : अनंतकाल की आदतों को लेकर ऐसा है न!

दादाश्री : चंदूभाई की आदतें। नहीं तो और क्या? ये आदतें पड़ी हुई हैं, उसी की झंझट है न! आदतें न हों तो कोई हर्ज ही नहीं है। लेकिन जब हो तब रक्षण कर ही लेता है, वह प्रकृति के वश हो जाता है। आप कह रहे थे न, ऐसे में मिठास लगती है। तो वह तप नहीं माना जाएगा, अदीठ तप में नहीं आएगा। गर्वरस चखता है, मज़े करता है और ऊपर से उल्टा बोलता रहता है कि, 'हम शुद्धात्मा ही हैं।' तो हमें कहाँ झंझट है? यानी कि हम सभी महात्माओं को बता कर छोड़ देते हैं। फिर अब यदि वह उल्टा करे तो उसकी ज़िम्मेदारी है।

दादा को भी अदीठ तप

हमें भी अदीठ तप करना पड़ता है, हमें अपने लेवल का करना पड़ता है। अंत तक अदीठ तप करना है, मन चिढ़े, बुद्धि चिढ़े, तब भी देखते ही रहना है। उस क्षण हमारा तप होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि अदीठ तप करना ही पड़ेगा। क्या ऐसा है? हम मन-बुद्धि वगैरह सभी को समझाते रहें तब फिर उन्हें जो जलन होती है वह बंद नहीं हो जाएगी?

दादाश्री : बंद तो होगी ही नहीं। उसके लिए आपको अंदर तप करना है। वह तप तो हो ही जाएगा अपने आप। अब, ऐसे में यदि चंदूभाई सामने वाले को डाँटे और मन में संतोष हो कि, 'मैंने इसे डाँटा, यह ठीक है', तो उसे तप नहीं रहा। वह आपसे कुछ कहे, लेकिन आपने उसे डाँटा तो आपको उस क्षण तप नहीं होगा। इसलिए

आपको वहाँ डाँटना नहीं है, तो तप हो ही जाएगा न! मन व्यग्र ही रहेगा न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा के ज्ञान से वह व्यग्रता चली नहीं जाती?

दादाश्री : वह चली जाती है लेकिन धीरे-धीरे जाती है। एक-दो बार व्यग्रता होगी और तीसरी बार में वह जा चुकी होगी। फिर से जब कोई और बात आती है तब फिर से व्यग्र हो जाता है और फिर ज़्यादा प्रैक्टिस हो जाती है तो चली जाती है। लेकिन जैसे-जैसे ऐसा कहते जाओगे वैसे-वैसे बदलता जाएगा। तप हुआ है आपसे? कितनी बार हुआ है?

प्रश्नकर्ता : बेहिसाब, कई बार, बहुत बार, दादा।

दादाश्री : ओहोहो! अभी भी बहुत बार होता रहता है? जब तक आप पूरी तरह ज्ञान में नहीं आ जाते तब तक होता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : तो जिस दशा में तप नहीं होता ऐसी दशा में कैसा रहता है?

दादाश्री : वह वीतराग दशा है, संपूर्ण तीर्थंकर भगवान! हमें कुछ बातों में तप होता है, हमें ऐसी छोटी-छोटी बातों में, हमें कोई गालियाँ दें या ऐसा कुछ हो जाए तो हमें तप नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा कहते हैं न, कि, 'हमें निरंतर तप रहता है।'

दादाश्री : रहता ही है हमें। हमें निरंतर तप रहता है। हमारा तप किसी दुःख में परिणामित नहीं होता, स्वाद में भी परिणामित नहीं होने देता, किसी सुख में परिणामित नहीं होने देता, ऐसा होता है। हमारा तप बहुत सूक्ष्म होता है।

प्रश्नकर्ता : 'परिणामित नहीं होता' अर्थात् क्या?

दादाश्री : चीज़ों का हम पर असर नहीं होता। इस जगत् की जो सभी चीज़ें हैं, हम उन चीज़ों से दूर ही रहते हैं। स्वाद के परिणाम में भी नहीं रहते, दुःख वेदना के परिणाम में भी नहीं रहते, दाँत दुःखने की वेदना हो रही हो तो उस वेदना के परिणाम में भी नहीं रहते। उसे हम जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपको किस बारे में तप होता है, दादा?

दादाश्री : अब लगभग तो वैसा नहीं होता, शायद ही कभी होता है लेकिन हमारी चार डिग्री बाकी हैं, उतना करना पड़ता है। कभी-कभी आता है वर्ना आता नहीं है न! हमारा ऐसा कुछ, कभी प्लेन में फँस गए हों...

शरीर द्वारा अन्बियरेबल हो जाए, वहाँ पर तप करना पड़ता है! वह तो जिसकी दाढ़ दुःखे उसे पता चलता है। नहीं?

प्रश्नकर्ता : अन्बियरेबल पेन को बियरेबल करना, वह तप ही है न?

दादाश्री : वह तप कहलाता है। शोर नहीं मचाते, कलह नहीं करते लेकिन शरीर में जो (वेदना) होती रहती है, उसमें दखलंदाज़ी नहीं रहनी चाहिए अपनी।

तप अर्थात् क्या? चाहे कैसे भी संयोगों में, हाथ कट रहा हो तब भी खुद के स्वरूप का भान नहीं जाए, वह तप है। उस समय हृदय तप जाए तब भी उस क्षण तप करना है।

तप, मोक्ष का

अब आपको क्या तप करना है? तो कहते हैं कि ये जितने भी तप आँखों से दिखाई देते हैं, कानों से सुनाई देते हैं, वे सारे तप 'सफल' हैं। सफल अर्थात् फल वाले हैं, बीज रूपी हैं। इसलिए फल देंगे। इसलिए तुझे यदि छूटना हो तो 'सफल' तप नहीं चलेगा, निष्फल तप होना चाहिए। जिसका फल नहीं आए और तपना पड़े। तो ये सारी

जो तप की क्रियाएँ चल रही हैं जगत् में, उनसे तो अगले जन्म के लिए पुण्य बंध जाता है। आपने यह जो ज्ञान लिया है इसलिए आपको रहना है अपने ज्ञान में ही। लेकिन यदि कोई आकर छेड़े कि, 'साहब, आपने हमारा ऐसा क्यों बिगाड़ा और ऐसा सब।' तो आपको उलझन तो है नहीं, इस ज्ञान से। आप सॉल्यूशन निकाल सकते हो, लेकिन चंदूभाई पर थोड़ा-बहुत असर होगा, यानी कि अंदर फिर उसका खुद का ही हृदय तपेगा चंदूभाई का। ऐसे समय में पहले तन्मयाकार हो जाते थे, अब तन्मयाकार नहीं होना, वह तप है। पहले तो ज़रा सा भी हृदय तपा कि तन्मयाकार। लेकिन इसमें तन्मयाकार नहीं होना, वही तप है। यानी कि यह तप, यही मोक्ष में ले जाने वाला है।

अत: भगवान ने यह तप करने को कहा है। तभी तो देखो हम कहते हैं कि भाई, आपको बाहर का कोई भी तप करने की ज़रूरत नहीं है। तो लोग समझते हैं कि इन्होंने भगवान का तप ही उड़ा दिया। अरे, नहीं भाई, तप के बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता। लोग उल्टा समझें तो हम क्या करें फिर? और एट ए टाइम एक शब्द निकलता है, यह नेगेटिव और पॉज़िटिव दोनों एक साथ नहीं बता सकता। या तो पॉज़िटिव बताता है या फिर नेगेटिव बताता है। फिर से नेगेटिव बोले, वह बात अलग है लेकिन एट ए टाइम दोनों भाव नहीं बताए जा सकते न?

अपने महात्मा लगभग पाँच ही प्रतिशत तप करते हैं। तप तो करना ही चाहिए न? अभी आपको समभाव से *निकाल* करना पड़ता है, उस समय तप नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : करना ही पड़ता है न, दादा।

दादाश्री : वे छोटे-छोटे। लेकिन फिर बड़े तप होने चाहिए। बच्चे की मृत्यु हो जाए, रास्ते में कोई ज़ेवर लूट ले एक लाख रुपये के तब भी असर नहीं, बिल्कुल भी असर नहीं हो तो वह है दादा का विज्ञान। यदि बुद्धि के कहे अनुसार किया तो जैसे थे वैसे ही हो

जाओगे न वापस। वहाँ पर तप करना है। रास्ते में लुट जाओ तो क्या करोगे आप?

प्रश्नकर्ता : हाय, हाय तो नहीं करेंगे। वे चीज़ें तो वापस आएँ या न भी आएँ, उनकी बहुत नहीं पड़ी है लेकिन मुझे लूट गया ऐसा तो मन में रहा करेगा।

दादाश्री : उससे आपको क्या फायदा होगा? उससे आपको क्या हेल्प होगी, वह देखना है! वे लूट नहीं ले जाते, वे उनका ही ले जाते हैं। अपना कोई नहीं ले जा सकता।

प्रश्नकर्ता : अंदर तप कैसे उत्पन्न होता है? वे लूट ले जाएँ, उसके बाद अंदर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अंदर वह (अंत:करण) तप जाता है तो तप सहन नहीं होता इसलिए वह खुद शोर मचाता है वह भी तप जाता है, वहाँ ज्ञान से तप करना है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से एडजस्ट होता है, पाँच आज्ञा से। लेकिन वे लूट ले गए, अंदर से ऐसे शोर मचाता ही रहता है।

दादाश्री : उस समय हृदय तपता है। सहन नहीं होता। विचार पर विचार, भँवर उठते रहते हैं। उस क्षण देखते ही रहना है उस तपे हुए को। उस क्षण मन नहीं बिगड़ना चाहिए सामने वाले के लिए। ज़रा सा भी मन बिगड़े तो तप कहा ही कैसे जाएगा? चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, समता ही रहे तो वही अदीठ तप है! और क्या है? सबकुछ खुद का ही है, पराए का है ही नहीं। पराए का हो और आपको भुगतना पड़े, ऐसा हो ही नहीं सकता। अत: उसमें प्योर रहना है। प्योर होना है, इम्प्योरिटी नहीं रहनी चाहिए। कचरा सारा निकल जाता है न, दादा के पास तो पूरा निकल जाता है। दादा सभी को भगवान बनाते हैं। आपने वह परिवर्तन नहीं देखा?

ये बाहर के तप तो लोगों को दिखाई देते हैं और अंतर तप को

तो सिर्फ आप ही जानते हो। नापसंद हो वहाँ पर स्थिर हो जाना चाहिए। नापसंद हो फिर भी, किसी को परेशानी न हो उस प्रकार से शांति से रहना चाहिए। और लोग तो जब तप आता है तब सामना करने लग जाते हैं। खुद का बचाव करते हैं, हमें बचाव नहीं करना है। बचाने का भाव हुआ तो फिर उसने तप का पूरा-पूरा लाभ नहीं लिया। वहाँ पर रिश्वत ले ली आपने।

प्रश्नकर्ता : अदीठ तप करें तो समभाव से *निकाल* हो गया, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : पूरा *निकाल* हो गया। उसमें यदि रिश्वत ली जाए तो ज़रा बाकी रह जाता है वहाँ, जितनी रिश्वत लेते हो उतना बाकी रह जाता है और *निकाल* करने से वह चला जाता है। उस क्षण आत्मा हल्का हो जाता है और आनंद ही रहता है। बहुत तप जाने पर क्या करते हो? शोर मचाकर रख देते हो? कलह की है क्या? किसी का गुस्सा किसी पर निकालता है फिर। जो भी फाइल हो, उस फाइल का आमने-सामने ही *निकाल* कर देना। किसी और फाइल का और उसका कनेक्शन नहीं है, नहीं तो किसी का गुस्सा किसी और पर निकाल देता है।

'उसमें' से अलग रखना है 'आपको'। एकाकार होने लगे... यों तो खुद अलग रहता है लेकिन यदि कोई कहे कि, 'आपने हमारा पाँच हज़ार का नुकसान कर दिया', ऐसा कहे तो उस समय एकाकार हो जाता है। उस समय तप करना चाहिए। उस समय धक्का लगता है कि, 'मैंने तो नहीं किया है।' धक्का क्यों लगता है? मन में ऐसा लगता है कि इसने मुझ पर आरोप लगाया। इसलिए फिर, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', रहेगा या वह रहेगा? उस समय तप करके फिर, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' रहना चाहिए।

मन को मनोरंजन तो तप में खंडन

अपना तप यानी कि वह तप कैसा होना चाहिए कि तपना

चाहिए, मन को तपाना है। यानी कि मन में जब वैसा टाइम आ जाए न, मन तपने लगे तब मन को खुराक चाहिए। उस समय तो उसे मीठा लगे, वैसी खुराक दे देते हो, फिर घर की कोई चीज़ याद करके उसे अंदर मन में डाल देते हो, या और कुछ डाल देते हो तो वह तप नहीं कहा जाएगा। तप तो उस समय आत्मा से जोड़ दें, आत्मा का शुद्ध उपयोग रखें, तो तप कहा जाएगा।

इन लड़कों से मैं पूछता हूँ, 'अरे! अंदर जब *उपाधि*-चिंता होती है तब क्या करते हो?' तो कहते हैं कि, 'समय बिता देते हैं सिनेमा-विनेमा जाकर।' यानी कि उसे गँवा देते हैं। जब तप करने का समय आया तब सिनेमा में जाकर मौज कर आते हैं। यानी सौ का नोट दो रुपये में दे दिया। हमें तो सौ का नोट हज़ार का हो जाए, ऐसा करना चाहिए। यानी कि ऐसा हो उस समय उन सभी के अंदर बैठे हुए शुद्धात्मा को देखना है, कुछ और देखना है या फिर अपने घर और रिश्तेदारों के प्रतिक्रमण करने चाहिए। अपने आसपास वालों को, रिश्तेदारों को याद करके, रिश्तेदारों के साथ तो सभी का दखल हुआ ही होता है न? उस सभी के, पड़ोसियों के साथ हुए दोष देखो, कुछ और देखो, चौथा घर, पाँचवा घर, इस तरफ का घर। खाली समय में सभी के प्रतिक्रमण करना। ऐसा सारा आयोजन कर लेना चाहिए। सबकुछ साफ कर दिया तो साफ-सुथरा। आपको करना पड़ेगा। कोई और नहीं करने लगेगा न? यों क्या कोई और करने लगेगा? तो क्या वाइफ करने लगेंगी? वे अपना करेंगी या आपका करेंगी? अतः ऐसा सारा आयोजन करना पड़ेगा, तब वह तप कहलाएगा। तप अर्थात् मन को पसंदीदा चीज़ नहीं देना, किसी और रास्ते पर ले जाना। मन को पसंदीदा चीज़ दे देते हो न?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी ही दे देनी पड़ती है।

दादाश्री : वह ठीक बात है। कभी-कभी में हर्ज नहीं है। वर्ना तप मिलेगा नहीं न ऐसा। आप कहते हो कि ऐसे में वहाँ होटल में ले जाकर मन को आनंद करवाओ, तो वह नहीं चलेगा।

उल्टा-सुल्टा वही पौद्गलिक भाव

प्रश्नकर्ता : उल्टे संयोगों में चेतन भाव पौद्गलिक भाव में चला जाता है। बाद में जागृति आती है कि पौद्गलिक भाव में चले गए हैं तो ऐसे में जागृति के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, शुद्धात्मा और संयोग, दो ही हैं। उनमें से कोई उल्टा भी नहीं है, सीधा भी नहीं है। संयोगों को हम उल्टा कहें तब उल्टा होता है, और सीधा कहें तब सीधा हो जाता है। कड़वा और मीठा, ये दो तो रहेंगे ही लेकिन यदि इसे कड़वा कहेंगे तो कड़वा लगेगा। उस समय इफेक्ट होगा। कड़वा-मीठा तो रहेगा ही न? हर एक का अपना स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : यानी यदि उल्टा या सीधा देखा तो पौद्गलिक भाव आ जाता है।

दादाश्री : उल्टा-सीधा, वही पौद्गलिक भाव है। उल्टा है ही नहीं। यह जो दिखाई देता है, वही अभी कमी है। संयोग हैं, और फिर वियोगी स्वभाव वाले हैं। कोई कहे कि, 'साहब, यहाँ अंगारे रखे हुए हों और इस तरफ बर्फ रखा हुआ हो तो दोनों में अंतर नहीं है? तो कहेंगे, अंतर है, दोनों संयोगी हैं। लेकिन उल्टा-सीधा कोई है ही नहीं, और फिर वियोगी स्वभाव वाले हैं। यहाँ पर बर्फ रखा होगा न, तो कोई नहीं हटाएगा। यहाँ पर अंगारे पड़े हुए होंगे तो यदि मैं नहीं हटाऊँगा तो और कोई हटा देगा। यानी कि वे संयोग अपनी जगह खाली करने के लिए आए हैं। तो फिर आपको धीरज तो रखना पड़ेगा न, भगवान ने तप करने का कहा है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप। वह उल्टा नहीं है, आपके तप करने में कमी है। चार स्तंभ तो पूरे करने ही पड़ेंगे न? तीन स्तंभ (पैर) का पलंग हो तो एक तरफ गिर ही जाएगा न! चार पैरों वाला पलंग होना चाहिए।

इसीलिए लिखा है न, कि दादा अदीठ तप करते हैं। अदीठ तप को अंतिम तप कहा है। हम अंतिम तप करते रहते हैं। आत्मा और

अनात्मा, दोनों की भेदरेखा पर अनात्मा की तरफ जाते ही नहीं हैं। फॉरेन डिपार्टमेन्ट में जाते ही नहीं हैं, होम डिपार्टमेन्ट में ही रहते हैं। वहाँ पर जो तप रखना है वह अदीठ तप है। आपका, इस तप में से तपते-तपते फिर आगे जाकर अदीठ तप तक पहुँचेगा।

आश्वासन लेने से तप कच्चा रह जाता है

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी ऐसा भी होता है न, कि बहुत भारी कर्म का उदय आए और सहन नहीं हो तब हम अपने दूसरे नंबर की फाइल से बात करते हैं, ताकि हमें कुछ आश्वासन जैसा मिले। तो ऐसा करने से अपनी कोई कमी रह जाती है क्या भुगतने में?

दादाश्री : दूसरों का आश्वासन लेने से तो कच्चा ही रह जाएगा न! मैं जल गया और सामने वाला जले पर थोड़ा पानी लगा देता है। वह तो पूरा ही भुगत लेना होगा। फिर भी यदि सहन नहीं हो तो बता देना।

प्रश्नकर्ता : सहन नहीं होता इसीलिए हम ऐसे बात करते हैं। आश्वासन लेने के लिए ऐसा बोल देते हैं तो वह टेपरिकॉर्डर नहीं है?

दादाश्री : टेपरिकॉर्डर ही है न! वह उपाय ढूँढा न! सहन हो पाए तो नहीं बताते न। सहन नहीं होता इसीलिए बताते हैं। इसलिए उपाय ढूँढा!

हमें तो वहाँ बड़ौदा में तीन डिग्री बुखार हो तब भी हीरा बा को कभी बताया नहीं कि बुखार आया है। उस आश्वासन का क्या फायदा? हीरा बा तो एकदम से, 'यह ले आऊँ और वह ले आऊँ और फलाना ले आऊँ', करके रख दें। बल्कि, लोगों को बता दें। लोग देखने आएँ और बाहर मुझे परेशानी हो जाए। इससे अच्छा तो ''एक 'ना' सौ दु:खों को हरता है।'' लोगों से कुछ हो नहीं पाता है भाई! बिना बात की *उपाधि*! और फिर जो मिलने आए उसे हमें, 'आइए', कहना पड़ता है, साथ में बैठना पड़ता है। अरे भाई, तो वापस यह झंझट कहाँ खड़ी की? देखने वाला समझता है कि, 'अगर मैं नहीं

जाऊँगा तो इन्हें बुरा लगेगा।' मैं समझता हूँ कि, 'अभी यह कहाँ आया?' कैसे हो वगैरह ऐसा सब पूछना पड़ता है न, बिना बात के। वर्ना हम तो ऐसे ही बैठे रहते। हीरा बा पूछें, 'आपको बुखार है?' तो मैं कहता हूँ, 'नहीं, ज़रा भी बुखार नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि ऐसे हाथ लगाए और कहें कि बुखार है, तब क्या करें?

दादाश्री : तब हमें कहना चाहिए कि, 'यह आया है, अभी उतर जाएगा। और बाहर अभी यह बात करने जैसी नहीं है।' तब वे कहेंगे, 'अच्छा ठीक है।' वर्ना फिर इस चीज़ का काढ़ा बनाकर लाओ, तो उतर जाएगा। उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन उसका बहुत प्रचार करके क्या करना है? और, जो लोग आते हैं, क्या वे दुःख ले लेते हैं? जिन्हें आप यह बात बताते हो, वे क्या दुःख ले लेते हैं? ये सभी महात्मा, इनमें से कोई मुझसे कहे कि, 'दादा, ऐसा हुआ है और मुझे वैसा हुआ है।' तब मैं कहता हूँ, 'कोई हर्ज नहीं, मैं हूँ न।' तो क्या मैं ले लूँगा उसमें से? लेकिन आश्वासन रहता है इंसान को।

सत्संग के अंतराय से तप

प्रश्नकर्ता : सत्संग में आने का संयोग नहीं मिल पाए तो उस समय तप करना चाहिए न?

दादाश्री : तब तप करना चाहिए। घर के लोग रोकें, उस समय तप करना चाहिए। अपने अंतराय हैं इसलिए रोकते हैं। तो उस समय किसी भी तरह का कुछ उल्टा-सीधा नहीं करना चाहिए, उस समय तप करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किसी के प्रति ऐसा विचार नहीं आना चाहिए कि ये लोग मुझे मना क्यों कर रहे हैं?

दादाश्री : ऐसा कुछ भी नहीं, उल्टा नहीं करना है, तप ही करना है। वे तो निमित्त हैं बेचारे।

अंतर है, तप और आर्तध्यान में

प्रश्नकर्ता : मन उछल-कूद कर रहा हो तब ज्ञान से तप करे तो कभी वह आर्तध्यान में चला जाए, ऐसा हो सकता है?

दादाश्री : नहीं, उसे आर्तध्यान कहते ही नहीं हैं न! वह तो तप कहलाता है। आर्तध्यान में आता ही नहीं है न! आर्तध्यान को तो करने वाला चाहिए, मैं पन होना चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : दादा! यानी मोक्ष में जाने के लिए ऐसा तप करना ज़रूरी है?

दादाश्री : नहीं, वह तो अपने आप रहता ही है। ज़रूरत नहीं है, रहता ही है। वह नहीं होगा तो छूटेगा ही नहीं न! ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, चौथा पाया होता ही है और अगर नहीं करेगा तो फिर पिछड़ जाएगा, तो फिर वापस वैसे का वैसा ही रहेगा।

दादा ने किए ऐसे तप

हम उपवास करके पेट नहीं जलाते। अंदर जो तप है, वही करने दो न! अब फिर भला पेट जलाकर क्या करना है? यहाँ रात को जब सो जाते हैं, तब जो तप आते हैं वही सारे तप करने हैं। वे क्या कुछ कम हैं?

प्रश्नकर्ता : वे क्या होते हैं? वे कौन से आते हैं?

दादाश्री : बहुत तरह के तप आते हैं। खाँसी आए तो नींद नहीं आती। फलाना हो जाए तो दिन दहाड़े भी नींद नहीं आती।

प्रश्नकर्ता : उसमें आप किस तरह से तप करते हैं?

दादाश्री : बस! फिर अपने ज्ञान में रहते हैं, जो है वह। जैसे 'कुछ हुआ ही नहीं हो', उस तरह से! आप सब निदिध्यासन में रहते हो, हम ज्ञान में रहते हैं। हम किसके निदिध्यासन में रहें?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान में यानी किस तरह से?

दादाश्री : हमारा ज्ञान अलग है और आपका ज्ञान अलग है। हमारा जो है यह स्पष्ट वेदन है। यानी कि निरालंब है। आपका अस्पष्ट वेदन है इसलिए आपका थोड़ा अवलंबन वाला होता है। शब्दों का अवलंबन कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', और हमारा अलग है, उसकी तो बात ही कहाँ हो सकती है!

प्रश्नकर्ता : स्पष्ट वेदन और अस्पष्ट वेदन, यह ज़रा स्पष्ट रूप से समझाइए।

दादाश्री : आपने पैर छूए तो मुझे पैर छूते हुए दिखाई देते हैं, यह स्पष्ट है। जबकि आपके मन में ऐसा रहता है कि, 'यह क्या हुआ, कौन छू रहा है', वह अस्पष्ट। वह तो आपको दिया है न? वह कोई आपका कमाया हुआ है? धीरे-धीरे कमाई इकट्‌ठी करनी है। खुद नहीं कमाया है न! जिसने खुद कमाया हो, उसे प्राप्त तप को भुगतना आता है। क्योंकि वह रास्ते से होकर (अनुभव करके) आया है। हम इस रास्ते से होकर आए हैं।

यह चिट्ठी आई है न, 'दादा आपको गोली मार दूँगा'। तब हमें कैसा तप करना पड़ता है? हमारी यह अनुभव दशा है न, इसलिए तप भी नहीं करना पड़ता। ऐसा है कि वह बेचारा नासमझी में लिखता है न! वह बेचारा कहता है, 'मेरे पास सत्ता हो तो मैं आपको गेट आउट कर दूँ।' कुछ ऐसी सत्ता वाले भी निकल आते हैं। कोई भी न निकले, ऐसा थोड़े ही है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस तरह की यह पहली ही चिट्ठी आई है!

दादाश्री : हाँ, पहली आई है। इनाम है न, यह तो शायद ही कभी ऐसा इनाम मिलता है।

प्रश्नकर्ता : यह इनाम मिला, तप आया, ये सारे शब्द ही इतने अच्छे होते हैं न, 'यह इनाम मिला', पहले ऐसा हाज़िर हो जाए न, तो वह प्रॉब्लम ही नहीं रहेगी!

दादाश्री : ऐसा तो हम ढूँढ निकालते हैं, लेकिन कोई ऐसा कहेगा ही नहीं न! हम किसी को दस हज़ार दें तब भी वह नहीं कहेगा। कहेगा, 'मेरी क्या दशा होगी?' रुपये दें तब भी काम नहीं करेगा। यह उस तरह का यों ही कर रहा है तो इनाम ही कहा जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : 'इनाम आया', ऐसे जो शब्द हैं न, यह एक ही शब्द यदि हाज़िर रहे न तो बहुत अच्छा समाधान रहेगा।

दादाश्री : आप पास नहीं हुए हो, पास किए गए हो। हुए होते तो आ जाता। इतना जो है वही बहुत है। लेकिन अब भावना करोगे तो वैसा होगा, अभी भी भावना करो न, प्रतिक्रमण करते जाओ, भावना करते जाओ। लेकिन यदि बोला कि, 'नहीं हो पाता', तो बिगड़ जाएगा। 'नहीं हो पाता' बोलना हो तो विवेकपूर्वक बोलना चाहिए कि, 'चंदूभाई से बहुत कहता हूँ लेकिन इससे हो नहीं पाता।'

प्रश्नकर्ता : ऐसे में भी ज्ञान में रहकर उपयोगपूर्वक बोलना है?

दादाश्री : हाँ, तब फिर आप पर असर नहीं होगा। यह तो, 'नहीं हो पाता', बोलने से तो उसका असर होता है। फिर आत्मा उसी रूप हो जाता है, जैसा चिंतवन करता है वैसा ही हो जाता है!

नहीं है तप व्यवस्थित में

प्रश्नकर्ता : इस तप में भावना क्या करनी है? यह तो ऑटोमैटिक हो जाता है न?

दादाश्री : ऑटोमैटिक होता होगा? तप तो करना है। पुरुषार्थ करना है। यह क्या ऑटोमैटिक हो जाता होगा? डिस्चार्ज है क्या यह चीज़? कैसे लोग हो? ऐसा ढूँढते हो? पुरुषार्थ है यह तो। यह तो, पुरुष हुए उसका पुरुषार्थ है। यह तो ज़बरदस्त पुरुषार्थ है। पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ कौन सा रहा? तब वह है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप।

प्रश्नकर्ता : तप व्यवस्थित में नहीं आता?

दादाश्री : नहीं। तप कहीं व्यवस्थित में होता होगा? ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप व्यवस्थित में नहीं होते। वे पुरुषार्थ की चीज़ें हैं। व्यवस्थित में तो प्रारब्ध है, डिस्चार्ज चीज़ें हैं!

इन भाई से तो बहुत बड़ी भूल हो गई थी, इसलिए वह भूल का खेद कर रहा था और तप कर रहा था। बाद में उसने अपने भाई को बताया तो उसके भाई ने कहा कि, 'डिस्चार्ज है'। इसलिए फिर यह जो तप कर रहा था, वह भी बंद हो गया। इसे भान नहीं है तो इसने बिगाड़ दिया। एक तरफ तप करना है, दूसरी तरफ प्रतिक्रमण करना है। और इस डिस्चार्ज को देखने के लिए ही बैठा है न! लेकिन यह तो दुरुपयोग किया। हर चीज़ को डिस्चार्ज कहता है, इसलिए उस पर बहुत असर ही नहीं होता। वैसे का वैसा ही रहता है फिर। जहाँ पर तप है वहाँ पुरुषार्थ करना रह जाता है और वह उसे व्यवस्थित में रख देता है। 'डिस्चार्ज है', ऐसा कहता है।

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ नहीं होता तो कोई दूसरा शॉर्ट कट बता दीजिए।

दादाश्री : यह शॉर्ट कट बताया न! शॉर्ट कट ही है यह। वह डिस्चार्ज है। इसके बाद में तप है। तप से पुरुषार्थ करना है। यह शब्द दुरुपयोग करने के लिए नहीं है। तप करो। क्या करें तो तप कहा जाएगा? मन अंदर परेशान करे तब तप करना है। डिस्चार्ज का अर्थ ही यह है कि डिस्चार्ज हमेशा तप सहित होता है। यों ही डिस्चार्ज कह दिया तो नहीं चलेगा न! ऐसा करने से ही तो यह दशा हो गई है, दो-तीन साल बेकार चले गए।

चारित्र में आने से रोकता कौन है?

क्रमिक मार्ग में ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप और अक्रम में दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप। आपके पास ज्ञान था ही कहाँ? शास्त्रों का कुछ ज्ञान नहीं था और किसी भी तरह का ज्ञान नहीं था, और एकदम से दर्शन हो गया। यानी कि यह दर्शन, फिर ज्ञान, उसके बाद

चारित्र और तप। ज्ञान लाए बगैर तो कोई चारा ही नहीं है। यह ज्ञान औरों को उपदेश दे सको, ऐसा है। क्योंकि अनुभवपूर्वक है। और क्रमिक में अनुभवपूर्वक प्रतीति है। क्रमिक मार्ग में ज्ञान के अनुसार, ज्ञान के अनुभव से प्रतीति प्राप्त होती है। हमें इस अक्रम मार्ग में प्रतीति के अनुसार अनुभव होता है और उतना ज्ञान प्रकट होता है।

प्रश्नकर्ता : तप तो चारित्र से पहले करना पड़ता है न?

दादाश्री : हाँ। वह तो पहले ही करना पड़ेगा न, तभी चारित्र का उदय होगा न? जिसके ये तीन पाए (आधार स्तंभ) शुद्ध हैं उसका चारित्र शुद्ध है। तप के बिना चारित्र नहीं आ सकता। आपको तप नहीं करना पड़ा होगा? इसीलिए वह अनुभव हुआ। अब फिर से ऐसा मत करना, वह अनुभव तू भूल नहीं पाए, ऐसा होता है।

प्रश्नकर्ता : जब तप आए तब चारित्र है, वह किस प्रकार से पता चलेगा?

दादाश्री : रहता ही है चारित्र।

प्रश्नकर्ता : तो तप को देखना, वह चारित्र में माना जाएगा?

दादाश्री : वही चारित्र है। तप को देखा और जाना, वही चारित्र।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, तप को अंत में क्यों रखा गया है?

दादाश्री : इसमें ऐसा है न, तप इनके साथ बैठता है बेचारा, लेकिन ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सामने तप की क्या कीमत? बीच में एक यह ज़रूरी है। अपने यहाँ सब से पहले दर्शन है, आपको यह जो ज्ञान देते हैं न, उससे पूरा दर्शन ही हो गया। उस क्षण कुछ ज्ञान तो हो ही जाता है, बाकी के ज्ञान की पूर्णाहुति इन बातों से होती है। इस प्रकार बातें करते हैं उससे, सत्संग से और ज्ञान-दर्शन, दोनों इकट्ठे हो जाएँ तो चारित्र अपने आप उत्पन्न होता है और तप तो अंदर होता ही रहता है। जो अच्छा नहीं लगता वहाँ पर तप करना है। बाकी कोई भूखे नहीं मरना है!

चार पायों (आधार स्तंभ) की आवश्यकता है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप। जहाँ-जहाँ जो ज़रूरत है वह चाहिए। आपको दर्शन-प्रतीति हो गई है। जो प्रतीति हुई है वह अनुभव में आना, उसे ज्ञान हुआ कहते हैं। ज्ञान हो गया हो और प्रतीति हुई थी तो दोनों इकट्ठे होकर चारित्र फल देते हैं। लेकिन बीच में, चारित्र में आने से रोकता कौन है? वह वाला तप नहीं करता इसलिए! तप करेगा तो चारित्र में आएगा।

अक्रम में तप, अंदर

ये चार पाए जिनके पूर्ण हो गए, उसका सभी कुछ पूर्ण हो गया है। यहाँ बाहर आप चाहे कितने भी इत्र लगाते रहो, मुझे उसमें हर्ज नहीं है, अंदर का तप चाहिए अपने यहाँ तो। बाहर के तप से संसार, भौतिक फल मिलता है और आंतरिक तप से मोक्ष। उस आंतरिक तप की ज़रूरत है, बाहर नहीं तपना है। पूरा जगत् बाह्य तप को ही ढूँढता रहा है।

अक्रम अर्थात् अंदर तप और क्रमिक अर्थात् बाह्य तप। पीसे हुए को वापस पीसना, उसे कहते हैं बाह्य तप। पिछले जन्म में पीसा था, इसलिए अभी कहते हैं, 'मैं पीस रहा हूँ', वह क्रमिक तप कहलाता है। उसके फलस्वरूप ये संसार फल मिलते हैं। पूरा जगत् इसी में फँसा हुआ है और उसमें गहरे ही गहरे उतरता जाता है। कभी भी उसका अंत नहीं आता और देहाध्यास जाता नहीं है, क्रोध-मान-माया-लोभ की निर्बलताएँ जाती नहीं हैं, मतभेद कम नहीं होते, उनकी चिंता बंद हुई हो ऐसा तो देखा ही नहीं है। आपकी चिंता बंद हो गई या नहीं हुई?

प्रश्नकर्ता : बंद हो गई।

दादाश्री : बस तो फिर हो गया! जिसकी चिंता बंद हो गई उसका मोक्ष नज़दीक ही है। ऐसा तप कौन कर सकता है, अंतर तप? बाहर के तप तो सभी बाबा करते हैं। अंतर तप तो भगवान महावीर करते थे और उनके ग्यारह गणधर करते थे। ऐसे जो तप करते हैं न जिन्हें लोग देख सकें, उनसे तो उन्हें पुण्य मिलता है। जबकि इसे लोग

देख नहीं पाते हैं, अदीठ तप कहा गया है। दादा का अदीठ तप। फॉरेन में जब न्यूयॉर्क के एयरपोर्ट पर दादा उतरते हैं तब गरम कोट पहनकर उतरते हैं लेकिन अंदर तप कर रहे होते हैं, अदीठ तप!

माँगें तप या सुख

प्रश्नकर्ता : अपनी जो चरणविधि की किताब है उसमें, ज्ञान-दर्शन-चारित्र और सुख, ऐसा लिखा है।

दादाश्री : दर्शन होने के बाद में तप ही पुरुषार्थ है। उसका फल क्या है? तो कहते हैं, चारित्र और सुख! प्रथम है तप, पुरुषार्थ में।

प्रश्नकर्ता : तप पुरुषार्थ है और सुख उसका फल है। लेकिन आपने इस चरणविधि में ऐसा क्यों लिखा है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र और सुख, ऐसा लिखा हुआ है, तप नहीं लिखा है?

दादाश्री : वह ठीक है, तप का फल है सुख, ऐसा सब है। क्योंकि ज्ञान-दर्शन का फल ही सुख है, लेकिन पहले तप की आवश्यकता है, यह चौथा पाया (आधार स्तंभ) है पुरुषार्थ का, और आप ऐसी भावना करते हो, माँग करते हो, 'जैसा आपका रिज़ल्ट आया है, वैसा ही रिज़ल्ट मेरा भी आए।' ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, चार आधार स्तंभ। यानी कि ज्ञान व दर्शन दो हों तब भी, कहते हैं कि चारित्र नहीं आएगा। तो कहते हैं, चारित्र कब आएगा? जितना तप करोगे उतना चारित्र आएगा। जितना बोझ कम होगा उतना चारित्र। दर्शन तो, जब से ज्ञान मिला तभी से है, अब जैसे-जैसे ज्ञान का अनुभव होता जाएगा, वैसे-वैसे अब अंदर चारित्र आता जाएगा। जितना तप करोगे उतना चारित्र उत्पन्न होगा!

चारित्र में कब आता है? तप होता है, तब। तप होना, वह भाग चारित्र में आता है। जितने भाग में तप हुआ, उसे कहते हैं चारित्र।

प्रश्नकर्ता : दादा, चारित्र का जो परिणाम आता है, वह तप के साथ ही आता है न? एक साथ ही हो जाता है न?

दादाश्री : अब, तप पूरा होने के बाद ही चारित्र आता है।

जब-जब चारित्र आता है, तब तप पूर्ण हो ही चुका होता है। तप आए और तप नहीं हो पाए तो वह चारित्र को बाहर भी रख आए।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसी दशा आती है कि फिर अंतर तप भी बंद हो जाता है?

दादाश्री : अंतर तप बंद हो जाता है तब चारित्रमोह खत्म हो चुका होता है। जब तक चारित्रमोह है तभी तक तप है।

प्रश्नकर्ता : तो जब तक चारित्रमोह रहता है तब तक तप रहता ही है।

दादाश्री : हाँ। तप होता ही है। जितना चारित्रमोह निकल जाए, मोह क्षय हो जाए तब फिर क्षीण मोह हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : चारित्रमोह खत्म हो जाए, अंतर तप खत्म हो जाए, उसके बाद केवलज्ञान होता है?

दादाश्री : उसके बाद केवलज्ञान होता है। तब तक उसे क्षीण मोह कहा जाता है। फिर केवलज्ञान उसके कुछ समय बाद होता है।

समभाव से निकाल करते हुए होता है तप

प्रश्नकर्ता : लेकिन तप में भी आनंद हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : तप में हमेशा एक तरफ दु:ख लेता है और तप के ज्ञाता-द्रष्टा रहने का आनंद होता है। तप में तप होता ज़रूर है लेकिन फिर आनंद होता है। कोई ऑफिस में आकर चंदूभाई का अपमान करे कि, 'आपको बिज़नेस करना नहीं आता और आपने हमें परेशान कर दिया।' इस तरह से कोई चाहे कैसे भी शब्द बोल जाए तो अपनी दृष्टि तुरंत ही ज्ञान पर आ जाती है कि अपना यह ज्ञान क्या कहता है? तो कहते हैं कि, 'इस फाइल का समभाव से *निकाल* करो।' ऐसा होता है न? लेकिन अब सामने वाला बोला, तो उसे इस शरीर में जो मन वगैरह सब हैं न, वे पकड़ लेते हैं तुरंत। अंत:करण तुरंत पकड़ लेता है और सामने उसे जवाब देने के लिए, हिंसक जवाब देने के

लिए अंदर पूरा लाल-लाल हो जाता है। लेकिन उस समय यदि वे जवाब नहीं दे और निश्चित ही रखे कि समभाव से *निकाल* करना है। तब, 'ओहोहो, अंदर लाल-लाल हो गया है', जिस समय ऐसा देखता है उस समय आत्मा क्लियर हो जाता है। जो तप को देखता है, वह क्लियर आत्मा है। उस लाल-लाल को देखता है, उसके बाद वह शांत हो जाता है। कभी भी, कोई भी संयोग तप वाला संयोग हो या ठंडक वाला हो, लेकिन वह वियोगी स्वभाव वाला होता है। वह उफान कुछ देर बाद शांत हो जाता है। लेकिन एक बार तो बहुत ही तपता है। उसे फिर यदि इस प्रकार इस अभ्यास से देखा जाए, तब आनंद हो जाता है, लेकिन तप तो जाता ही नहीं है। वह तप तो रहता ही है।

प्रश्नकर्ता : आपने बताया कि उसका समभाव से *निकाल* करना चाहिए और एक बार आपने सिखाया था कि यह अपना ही वापस आया है।

दादाश्री : उसका समभाव से *निकाल* करने के लिए क्यों कहा है? क्योंकि वह वापस आया है। अत: उसका समभाव से *निकाल* करना है, उसी को ध्यान में रखकर है यह सारा। हर एक वाक्य संबद्ध है।

ज्ञानी का तप

स्थूल में तो हमें कभी तप करना ही नहीं होता। यानी तप करना ही नहीं होता। तपता ही नहीं है न कुछ! निरंतर सूक्ष्म में तप रहता है।

प्रश्नकर्ता : चारित्र में आ गया है इसलिए?

दादाश्री : चारित्र में आ चुका है, इसीलिए। चारित्र की उस बात को जान सकते थे लेकिन जैसा चाहिए वैसा चारित्र रह नहीं पाता है। चारित्र वाले ऐसा सब नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : क्या नहीं कहते?

दादाश्री : भगवान जो कहते थे न, मैं भी वही कहता हूँ लेकिन

भगवान अंदर दखल नहीं करते थे, मैं दखल करता हूँ। इसलिए उतना चारित्र दखल वाला कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो उस समय तप रहता है?

दादाश्री : नहीं। तप की ज़रूरत नहीं है! तप तो कोई हुआ ही नहीं है। तप होने पर तो चेहरा बिगड़ जाता है। तप से तो टेन्शन रहता है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, कि स्व और पर, दोनों जॉइन्ट न हो जाए, ऐसा तप रहा करता है हमारा।

दादाश्री : उसमें तो हमारा ज्ञान ही बरतता रहता है। तप पूरा हो चुका होता है। ये दोनों कभी भी जॉइन्ट नहीं होते। यह प्रतीति और यह अनुभव, दोनों ही नहीं बदलते, ऐसा चारित्र होता है हमारा। फिर अंदर तो तप बिल्कुल भी नहीं रहा।

बेटा, अपना या वह तप का कारण है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन किसी को एकदम ऐसा तप नहीं आए कि इस तरह तपना पड़े तो? जितना हिस्से में आए उतना ही न!

दादाश्री : वह तो आएगा न लेकिन। अभी नहीं आ रहा है तो बाद में आएगा। अभी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं आई, इसका मतलब ऐसा नहीं है कि हमेशा के लिए वह व्यवस्था चली जाएगी पूरी!

प्रश्नकर्ता : तो सभी को ऐसी व्यवस्था आती ही है?

दादाश्री : आती ही है। होती है तो आती है, नहीं होती तो नहीं आती। कल उठकर बेटा सामने विरोध करे, उस समय? अब कौन विरोध नहीं करेगा, क्या कहा जा सकता है? यहाँ कोई भी अपना नहीं है, यह विरोध किया, ऐसा हुआ, वर्ना मारेगा अभी तो। कलियुग का माल है यह तो। माँ को मारता है, बाप को मारता है, सभी को मारता है, उस क्षण तप नहीं करना पड़ेगा क्या? इसलिए बी केयरफुल तप करने के लिए।

तप अर्थात् क्या? चाहे कैसा भी हो जाए, बेटे की मृत्यु होने के बाद में अंदर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार उछल-कूद मचा देते हैं। लोग भी कहते रहते हैं कि अब यह संपत्ति कौन भोगेगा, फलाना कौन भोगेगा, नाम कैसे रहेगा? इन सभी में तप करते रहना है। इन दुनियादारी की चीज़ों के लिए क्यों हाय-हाय करनी? बेटा और बेटी, वैधव्य आया या नहीं आया? मर गया तो गया। अनंत जन्मों से किसके बच्चे थे? किसका बेटा था? शरीर ही किसका था? पहले से प्लस-माइनस करके बैठे हों तो झंझट खत्म हो जाएगी न! सही है या गलत? फिर हिसाब की किताब में कोई छलने वाला रहा ही नहीं न! मैं तो पहले से ही प्लस-माइनस करके बैठा था। सेफसाइड हो जानी चाहिए न। बेटे की मृत्यु हो गई, उसके बाद तुरंत दादा का ज्ञान हाज़िर! ऐसा तप तो लोगों को याद ही नहीं आता, उस समय परेशानी में रहते हैं। दुनियादारी की चीज़ें ऐसी हैं, आत्मऐश्वर्य प्रकट करें ऐसी हैं! लेकिन इसने तो बल्कि आत्मऐश्वर्य ले लिया।

और बच्चे तो लेन-देन के हिसाब वाले हैं। वे कोई आपके बच्चे हैं! एक बार डाँटो एक घंटे तक, एक घंटे ही डाँटकर देखो। फिर पता लगाना! यों बेकार ही बिना बात के हाय-हाय करते हैं। खा-पीकर मौज करो। दादा ने ऐश्वर्य दिया है। इतनी हाय-हाय क्यों? तप करो, तप करो, तप करो!

शूरवीर उठाता है, तप का बीड़ा

तप की बात ही आज निकली न, तो इस तप को पकड़ लो एक बार। तप का पुरुषार्थ शुरू करो। महावीर भगवान ने इस तप के बारे में बताया था। मैंने यह (तप) बताया, जबकि लोग समझे कि बाहर के तप के बिना मोक्ष में कैसे जा पाएँगे? वह, यह तप नहीं है। वह तप तो संसार में भटकने का साधन है।

तप करने की भावना होती है क्या किसी को? उँगली उठाओ, शूरवीर दिखाई देते हैं? कुछ शूरवीरता रखो। बार-बार यह ताल नहीं मिलेगा। फिर से यह दर्शन नहीं मिलेंगे। ये दादा फिर से नहीं मिलेंगे!

प्रश्नकर्ता : 'ऐसे दादा अब फिर नहीं मिलेंगे', तो इससे हमें क्या समझना चाहिए?

दादाश्री : फिर से नहीं मिलेंगे इसलिए ये जो मिले हैं इनसे जितना सीखना हो उतना काम निकाल लो। फिर कोई ऐसा नहीं सिखाएगा, एक शब्द भी। कौन ऐसा फालतू बैठा है! कौन ऐसा फालतू बैठा होगा? ऐसे तप करवाने वाला कौन होगा?

यों तो तप की बहुत बातें नहीं करते हैं। इंसान के बस की बात नहीं है। लेकिन फिर कभी ही ऐसा बताते हैं! इंसान के बस की बात कहाँ है इसमें! यह तो, सब्ज़ी खराब हो जाए तो दिन भर किच-किच करता है। समभाव से *निकाल* अर्थात् क्या? तप करना। उसके सामने कितना बड़ा ऐश्वर्य प्रकट होता है। एक बड़ा साम्राज्य मिल जाता है! जितना इस तरफ जाने देते हो उतना ही साम्राज्य मिलता है। और इसमें क्या छोड़ देना है? था ही नहीं आपका कुछ! अभी मर जाओगे टें होकर, तो वहाँ रख आएँगे एकदम से, चार नारियल बाँधकर, कोई बाप भी नहीं पूछेगा। तो काम निकाल लेना। इस शरीर से काम निकाल लेने जैसा मौका मिला है। तो यह काम निकाल लो न! आपको नहीं निकालना है! तो खड़े होकर बोलो, शूरवीरता से बोलो न, ऐसे क्या बोल रहे हो! काम निकालना है या नहीं निकालना?

प्रश्नकर्ता : काम निकालना है, दादा।

दादाश्री : हाँ, तो काम निकाल लो अब। बेकार ही टें होकर मर जाएँगे। कोई बाप भी देखने नहीं आएगा। अरे, देखने आएँगे तो शरीर को देखेंगे। क्या आत्मा को देखेंगे? बेकार ही हाय-हाय-हाय! अनंत जन्मों से भिखारीपन किया था और हम अपनी दुनिया में। जिसके पास ज्ञान नहीं है उसे ऐसा नहीं कहा जा सकता, एक अक्षर भी नहीं कहा जा सकता। वही उसका सर्वस्व है। यह तो, जिसके पास ज्ञान है उसी को कहा जा सकता है और वही तप कर सकता है, और कोई नहीं कर सकेगा न!

तप से प्रकट होता है आत्मऐश्वर्य

प्रश्नकर्ता : दादा, हम जो अदीठ तप करते हैं, वह क्या कर्तापद में नहीं आता?

दादाश्री : नहीं, अदीठ तप अर्थात् आत्मा का ही तप, पुरुष का पुरुषार्थ। डॉक्टर ने कहा हो कि अब दो दिन भी नहीं टिकेंगे और वह टिक सके ऐसा हो तो उसके मन में ऐसा लगेगा, 'अरे! अब क्या होगा?' तो अंदर चक्कर चलाता रहता है। उस क्षण तप करना है। मन–बुद्धि–चित्त और अहंकार सब उछल–कूद मचाएँगे, उसे देखते रहना है। अपनी बात है या किसी और चीज़ की? अगर हाँ, तो टिकेगी। वर्ना उसे जाना होगा तब जाएगी लेकिन आपको तप करते रहना है। अपनी चीज़ें प्रकट होती हैं। बल्कि ऐश्वर्य प्रकट होता है। कैसा ऐश्वर्य प्रकट होता है! एक बार तप करने से तो कितना अधिक ऐश्वर्य प्रकट हो जाता है! पूरा घर जल रहा हो, एक ही घर हो और वह जल रहा हो तब जाना वहाँ पर, बाल्टियाँ लेकर सब जगह पानी डालना। बाह्य क्रियाएँ सभी करना लेकिन अंदर तप रहना चाहिए। 'इसमें से अपना है ही क्या? यह अपना नहीं है', ऐसा रहना चाहिए!

तप हुआ कि आत्म ऐश्वर्य प्रकट, सब से पहले तो इस सम्यक् दर्शन से आत्म ऐश्वर्य प्रकट हुआ। हम यह ज्ञान देते हैं तो इसमें तो आपका कोई पुरुषार्थ नहीं है न? बाद में जैसे–जैसे ज्ञान के लिए पुरुषार्थ होगा वैसे–वैसे उसका अनुभव होगा।

यह जो प्रकट हुआ है, यह दादा का ऐश्वर्य है। यह सारा ऐश्वर्य है, बेहिसाब ऐश्वर्य प्रकट हुआ है। इसे इन लोगों ने देखा नहीं है अभी तो! इतना अधिक ऐश्वर्य प्रकट हुआ है। जैसे–जैसे निकलेगा तब पता चलेगा कि यह किस प्रकार का ऐश्वर्य है! और उतना ही ऐश्वर्य हर एक आत्मा में है। ऐश्वर्य प्रकट नहीं हुआ है और प्रकट हो जाए तो उसे व्यक्त कहते हैं। अभी आप में अव्यक्त भाव से पड़ा हुआ है! हमारा ऐश्वर्य व्यक्त हो चुका है।

[9.1]

भुगतना - वेदन करना - जानना

ज्ञानी दैहिक वेदना में...

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को भी शरीर के दु:ख भुगतने होते हैं?

दादाश्री : ज्ञानी को ही भुगतने होते हैं। बाकी लोग तो इन्जेक्शन व दवाईयाँ लेकर दु:ख को शांत कर देते हैं। उसका ओवरड्राफ्ट लेते हैं। हम ओवरड्राफ्ट नहीं लेते। *निकाल* कर देते हैं। कृपालुदेव को बेहिसाब दु:ख था। लघुराज स्वामी को बरसों तक शौच में खून आता था। भगवान महावीर पर भी बेहिसाब दु:ख पड़े थे। इसीलिए तो महावीर कहलाए।

विचार ऐसा आना चाहिए कि ये ज्ञानी शारीरिक वेदना का *निकाल* किस प्रकार से करते हैं।

अशाता वेदनीय में भी समाधि

यह ज्ञान ही ज्ञाता-द्रष्टा रहने का है। *अशाता* वेदनीय में निरंतर हाज़िर रहे, ऐसा यह ज्ञान है। इन पाँच आज्ञाओं का पालन करे तो उसके पास *अशाता* वेदनीय आ ही नहीं सकती। आत्मा प्राप्त होने के बाद में नींद से जागने पर तुरंत ही आत्मा हाज़िर हो जाता है। उसे कहते हैं, आत्मा प्राप्त हो गया। और ऐसा आत्मा प्राप्त होने के बाद में कुछ भी बाकी ही नहीं रहता। अत: आपको किसी भी चीज़ से

डरना नहीं है। 'लाखों गुना वेदनीय आओ,' कहना लेकिन वेदनीय आएगी ही नहीं। *अशाता* वेदनीय में भी समाधि रखे, ऐसा यह ज्ञान है। लेकिन यदि आप पहले से ही ऐसा कहो कि, 'आएगी तो क्या होगा? आएगी तो क्या होगा?' तो वैसा परिणाम आएगा। वर्ना यदि कहो, 'आओ'! इन्वाइट करो तो कुछ भी बाधक नहीं होगा!

प्रश्नकर्ता : और बल्कि आनंद उत्पन्न होता है।

दादाश्री : आनंद उत्पन्न होता है। यह तो, सिर दु:खा कि, 'मेरा सिर तो बहुत दु:ख रहा है।' 'अरे, लेकिन तेरा दु:ख रहा है या चंदूभाई का दु:ख रहा है? तू तो शुद्धात्मा है।' तो कहता है कि, 'हाँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ। वह तो चंदूभाई का दु:ख रहा है।' अब चंदूभाई का सिर दु:खे तो ऐसे में उसका दु:खने लगता है। 'मेरा सिर दु:खा' ऐसा कहते ही मल्टीप्लाई बाइ टु। 'मेरा दु:ख', ऐसा कहा तो मल्टीप्लाई हो जाता है और 'मेरा स्वरूप नहीं है' तो छूट जाता है।

खुद की तबीयत अच्छी है या नहीं, ऐसा खुद जानता है। अत: शरीर से खुद जुदा है या नहीं, उसका विश्वास हो जाता है। पहले अच्छी रहती थी, ऐसा भी जानता है। अब अच्छी नहीं रहती, ऐसा भी जानता है। अब अच्छी है ऐसा भी जानता है। सभी कुछ जानता है।

दु:खता है पड़ोसी को, 'मुझे' नहीं

प्रश्नकर्ता : जो-जो महात्मा ज्ञान लेते हैं, उन्हीं को पहले के परिषह और उपसर्ग क्यों आते हैं?

दादाश्री : क्या हो सकता है लेकिन? क्या वे बंद हो जाएँ? लेकिन उन्हें वेदना कम होती है। सौ मन का गोला लगना हो, उसके बजाय एक कंकड़ लगा हो ऐसा लगता है, लेकिन असर हुए बगैर तो रहता नहीं। निमित्त छोड़ता नहीं है न!

महावीर भगवान ने क्या कहा था? भगवान से पूछा कि, 'साहब, देवताओं ने आपकी परीक्षा ली तो आपको तकलीफ नहीं हुई थी?' तब (भगवान ने) कहा, 'ज्ञानी वेदे धैर्य से, अज्ञानी वेदे रोकर।'

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी वेदे धैर्य से,' लेकिन वे वेदते तो हैं न?

दादाश्री : वेदना तो जाती ही नहीं है। लेकिन वे धैर्य से वेदते हैं। धैर्य से यानी हर किसी में अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार धीरज होता है। हालांकि महावीर भगवान केवल 'जानते' ही थे। खटमल उन्हें काटते थे तो उसे भी वे खुद 'जानते' थे, बस इतना ही। वेदते नहीं थे। जितना अज्ञान भाव है, उतना वेदते हैं।

आपको यह ज्ञान तो पूरा हो ही चुका है लेकिन श्रद्धा से शुद्धात्मा हुए हो। अभी ज्ञान से आत्मा होओगे तब सिर्फ जानना ही रहेगा, तब तक वेदन तो करना है। वेदन करने में तो हम आपसे कहते हैं न, कि जुदा बैठ जाना। अपने 'होम डिपार्टमेन्ट' में से इधर-उधर नहीं जाना। चाहे कितनी भी घंटियाँ बजाए तब भी होम डिपार्टमेन्ट छोड़ना नहीं है। भले ही घंटियाँ बजाए, बारह सौ घंटियाँ बजाए तो भी हम क्यों छोड़े अपना ऑफिस?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें वेदना अधिक होती है।

दादाश्री : वेदना बिल्कुल होती ही नहीं है। वेदना होने का कारण यह है कि आप चंदूभाई बन जाते हो। वैसा नहीं होना है आपको। चंदूभाई को जो वेदना होती है, उसे आप देखते रहोगे तो वेदना बंद हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : उस वेदना को देखते हैं इसीलिए ऐसा लगता है कि इन चंदूभाई को वेदना क्यों हो रही है?

दादाश्री : चंदूभाई को वेदना होनी ही चाहिए क्योंकि उसने खुद उस वेदना के कारणों का सेवन किया था। इसलिए उस कारण में से कार्यफल आता है। वह होनी ही चाहिए। आपको उससे कहना होगा कि, 'चंदूभाई को होनी ही चाहिए।' यदि ऐसा कहता है, 'क्यों हो रहा है', तो वह अपना *ऊपरी* नहीं है या किसी ने ऐसा आयोजन नहीं किया है। अत: यदि किसी का दखल हो तो हम कह सकते हैं कि क्यों हो रहा है? उनसे आप कहना, 'चंदूभाई, आप तो इसी लायक हो।'

ऐसा है, क्रमिक मार्ग में वेदकता, वह आत्मा के लिए कहा गया है। अब उस वेदकता के अपने यहाँ दो अर्थ होते हैं। वेदकता चंदूभाई पर लागू होती है और वेद, वह वेदकता अर्थात् जाननापन, आप पर लागू होता है। वेदकता का अर्थ जाननापन भी होता है और वेदन करना, ऐसा भी होता है। वह जाननापन आपका है कि इन चंदूभाई को इतनी वेदना उत्पन्न हुई। अब यदि आप खुद यहाँ से स्लिप होकर उस वेदना के मारे उसमें एकाकार हो जाओगे तो वेदना का असर ज़्यादा महसूस होगा। और ज़रा अलग रहोगे तो असर कम होगा। लेकिन आखिर में उसका हल तो लाना ही होगा न?

अब, आप सिंह की संतान हो। ये सब तो उलझनें पैदा करते ही रहेंगे, 'पेट में क्यों दुःखा? किस वजह से दुःखा?' तो कहते हैं कि, 'ठीक होने के लिए दुःखा' वर्ना दुःख तो अंदर पड़ा हुआ था ही। उसका उदयकाल नहीं आया था। तो उदयकाल आने पर यह ठीक हो जाएगा कुछ समय बाद, सो जाओ आराम से। जो था वह तो खाली हो जाना चाहिए न?

हमें भी कभी-कभी शारीरिक वेदना होती है। नहीं होती है, ऐसा नहीं है। हम जानते हैं कि, 'ओहोहो! यह ठीक होने के लिए आया है।' उस समय वह मारने नहीं आया है। मारने आए तो उसे भी हम पहचानते हैं और ठीक होने के लिए आए, उसे भी हम पहचानते हैं।

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि अभी मेरी तबीयत खराब हो गई और मुझे कोई ऑपरेशन करवाना पड़ा, शरीर अच्छा रहे उसके लिए। तो अगले जन्म में भी मुझे वापस वैसा कर्म भुगतना होगा?

दादाश्री : नहीं-नहीं! ऐसा कुछ भी नहीं है। आपको इतना ध्यान रखना है कि, 'यह मैं चंदूभाई हूँ या शुद्धात्मा हूँ? फिर, मैं कर्ता हूँ या व्यवस्थित कर्ता है?' फिर आपको कुछ भी स्पर्श नहीं करेगा। अब नए बीज नहीं डलेंगे। अभी तो कड़वे-मीठे फल भुगतने पड़ेंगे। कड़वा आए तो कड़वा भी भुगत लेना और मीठा आए तो मीठा भी भुगतना होगा।

प्रश्नकर्ता : ऑपरेशन करवाया इसका मतलब यह कि मैंने कर्म पूरी तरह से नहीं भुगता? तो वापस मुझे अगले जन्म में भुगतना होगा?

दादाश्री : नहीं। ऐसा कुछ भी नहीं है। जिसके लिए साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिल जाते हैं तो वह कर्म खत्म हो गया। फिर चाहे अस्पताल मिला हो या चाहे कुछ भी मिला हो। सिर्फ इतना ही है कि अब उसमें नई वेदना उत्पन्न नहीं होगी। यह पुरानी वेदना है न, वह इफेक्ट है। कॉज़ेज़ का इफेक्ट है यह। नए कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह इफेक्ट कब तक चलेगा?

दादाश्री : वह तो, जब तक जीवित हैं तभी तक। बस, आपको देखते रहना है वेदना को। नई वेदना उत्पन्न नहीं होगी और पुरानी को देखते रहना है। आप ज्ञाता-द्रष्टा हो उसके!

प्रश्नकर्ता : हम शुद्धात्मा हैं, हम ज्ञाता-द्रष्टा हैं, हमें ऐसा लगता है लेकिन फिर भी मन में जो वेदना होती है सुख-दुःख की, तो वह क्यों होती है?

दादाश्री : वह तो होनी ही चाहिए। हमें जितने चाय के प्याले पीने हैं, उतने लेकर आए हैं अंदर। वह तो, कड़वा और मीठा दोनों पीना पड़ेगा। मीठा लगे तब मन को ज़रा अच्छा लगता है। कड़वा आए तब मन को ज़रा खराब लगता है। आपको तो दोनों को ही जानना है। राग-द्वेष नहीं करने हैं।

प्रश्नकर्ता : हम उन दोनों को जानते हैं लेकिन फिर हम कदम पीछे तो नहीं ले जाते हैं न?

दादाश्री : कदम पीछे नहीं, एडवान्स कदम उठा रहे हो। आप तो बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहे हो। वर्ना मैं घर पर डाँटने आता कि हमारा ज्ञान लेकर ऐसा क्यों करते हो? इसके बावजूद भी यदि आपको खेद होता रहे तब भी मेरे मन में यही रहेगा कि कोई हर्ज नहीं है।

जबकि शास्त्रकारों ने कहा है कि समझने के बावजूद भी जो इसका लाभ नहीं उठा सके तो फिर उसका क्या हो सकता है? तब कहते हैं, नासमझी से जो काम किए थे, नासमझी से जो पुण्य किए थे, उन्हें भोगते समय नासमझी ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह ज़रा विस्तार से बताइए न।

दादाश्री : नासमझी से पुण्य कर्म किए हों तो उन्हें भोगते समय नासमझी ही रहती है। और समझ-बूझकर पाप किए हों तो उन्हें भुगतते समय समझकर ही पाप कर्म भुगतने पड़ते हैं। अत: उसके आधार पर यह जो वेदनीय है, वह ज़रा परेशान करती है। वह भी किसे? चंदूभाई को। उसका और आपका कोई लेना-देना नहीं है। आपको तो, अंदर से आत्मा क्या कहता है? 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह वीतराग। वह अपना स्वरूप है। और पहले, 'ऐसा होना चाहिए, ठीक ही है, यही सही है,' पहले जिसे पुष्टि देते थे, वहाँ अब आप अलग रहते हो।

आप जितने ज्ञाता-द्रष्टा रहोगे तो आपके इस पड़ोसी का जो भी हाल होता है उसके जानने वाले हो। वह सारा हाल, 'मेरा हो रहा है' ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आप भी ज्ञाता-द्रष्टा तो हैं ही न?

दादाश्री : हाँ, नहीं तो और क्या? ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा अन्य कुछ 'इन्हें' है ही नहीं। उससे आगे कोई दशा ही नहीं है। ज्ञायकता, ज्ञायक स्वभाव! ज्ञायक स्वभाव अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा। उसके अलावा और कुछ है ही नहीं और आप भी उसी में हो। आपको सिर्फ इस पड़ोसी का ध्यान रखते रहना है। पड़ोसी रोए तो आपको नहीं रोने लगना है। पड़ोसी को सहला देना कि हम हैं तेरे साथ!

दादा का उपयोग भोजन करते समय...

हम भोजन करते समय क्या करते हैं? भोजन में टाइम ज़्यादा लगता है, खाते थोड़ा सा हैं और भोजन करते समय हम किसी से

बातचीत नहीं करते, तूफान नहीं मचाते। इसलिए भोजन में एकाग्रता ही रहती है। हम चबा पाते हैं इसलिए हम चबाकर खाते हैं और उसमें जो स्वाद है उसे वेदते नहीं हैं, जानते हैं। जगत् के लोग उसे वेदते हैं, हम जानते हैं। कितना अच्छा सूक्ष्म स्वाद ले रहे हैं, उसे जानते हैं कि ऐसा था। एक्ज़ेक्ट जानना, वेदन करना और भोगना। जगत् के लोग या तो भोगते हैं या फिर वेदन करते हैं।

प्रश्नकर्ता : भोगना और वेदन करना, इन दोनों में क्या अंतर है दादा?

दादाश्री : स्थूल चीज़ को भोगना कहा जाता है और सूक्ष्म को वेदन करना कहा जाता है और इन सभी से आगे जाकर खुद जानता है। जानने से सब छूट जाता है। वेदन किया तो चिपक जाता है। तो जिसने यह वेदन किया उसे ऐसा कहा कि, 'आप क्यों खा रहे हो?' तो फिर छूट जाएगा वह। भोजन करने वाले से आप बातें करोगे तो आप अलग ही हो।

प्रश्नकर्ता : पिछली बार बात हुई थी न, कि, 'खाना खाते समय हम उपयोगपूर्वक खाना खाते हैं कि कढ़ी में किस चीज़ का छौंक है, हर एक चीज़ का हम अलग-अलग स्वाद लेते हैं,' तो यह सारा सूक्ष्म पुरुषार्थ है या इससे भी आगे सूक्ष्म पुरुषार्थ है?

दादाश्री : है, हाँ। उस सूक्ष्म पुरुषार्थ के लिए चीज़ों की ज़रूरत नहीं पड़ती! यहाँ तो चीज़ें हैं, चावल है, सब्ज़ी है, दाल है।

तो जब हम खाते हैं, उस समय चावल-दाल वगैरह सब मिलाकर खाते हैं तो बासमती चावल वास्तव में कितना सुगंधित है, ऐसा पता नहीं चल पाता। अतः कई बार मैं सबकुछ अलग-अलग ही खाता हूँ, और उसके बाद कभी मैं सब मिलाकर चखता हूँ। खाता सब अलग-अलग ही हूँ।

अलग करने से क्या होता है कि कौर रखने वाला अलग, चबाने वाला अलग, चखने वाला अलग। जो चखता है, वह भी अलग है।

चखकर फिर तृप्त होने वाला भी अलग और इन सभी को तृप्ति हुई है या नहीं, उसे जानने वाला अलग।

प्रश्नकर्ता : तो ये सभी क्रियाएँ करने वाले अलग-अलग हैं?

दादाश्री : यों इनका विभाजन करें तो अलग-अलग हैं, नहीं तो एक ही है। विभाजन करने पर समझ में आएगा कि यह हाथ खाना खिलाता है, उसके बाद दाँत चबाते हैं। अब यदि दाँत चबाने का काम नहीं करें न तो वह जो तृप्ति वाला है न, वह शोर मचाएगा कि ठीक से स्वाद नहीं आ रहा है। यानी कि किसी को शोर न मचाना पड़े, उस प्रकार से चबाना। खाने वाला खाता है, चबाने वाला चबाता है, फिर चखता है कि बहुत तीखा-खारा नहीं है न! फिर स्वाद लेने वाला स्वाद लेता है। संपूर्ण स्वाद लेता है। जैसे कि बहुत अच्छा स्वाद है, लेकिन वह तृप्ति उसकी नहीं है। तृप्त होने वाला तृप्त होता है और इन सब को जो जानता है, वह आत्मा है।

अब, आत्मा को हाज़िर रखना हो तो अपने अक्रम विज्ञान में ऐसा हो सकता है, अलग-अलग रखकर खा सकते हैं। क्रमिक में नहीं खा सकते, क्रमिक में तो वह एकाकार हो जाएगा। क्योंकि क्रमिक में हाथ मेरा, खाने वाला मैं, चखने वाला भी मैं, चबाने वाला भी मैं और स्वाद लेने वाला भी मैं, लेकिन तृप्ति नहीं होती इसलिए वहाँ आत्मा नहीं है। यह तृप्ति उसे नहीं होती। जबकि इसमें तृप्ति सहित होता है क्योंकि आत्मा पूरा जानकार है न! क्रमिक में आत्मा नहीं होता। आंशिक होता है, आंशिक रूप से आत्मा और आंशिक रूप से बाकी का सब मिलाजुला, और मिलाजुला है इसलिए तृप्ति नहीं होती, संतोष होता है।

सुख चखता है उसे दुःख भुगतना पड़ता है

प्रश्नकर्ता : जागृति की बात की न आपने, उस समय उपयोग में रहकर हवा खाना, ऐसा किस तरह से? वह हमें समझाइए न, दादा।

दादाश्री : उपयोग में नहीं रहेगा तो जिस प्रकार से हवा सुख का असर महसूस करवाती है, उसी प्रकार कोई दूसरी चीज़ दुःख का

असर महसूस करवाएगी, तब दु:ख उत्पन्न होगा। आत्मा किसी भी असर से मुक्त रहता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् खुद जैसे बाहर का रिलेटिव सुख रिसीव करता है, वैसे ही जब दु:ख आए तो वह भी रिसीव हो जाता है।

दादाश्री : सुख आए तब उपयोग चूक जाता है। अब यहाँ पर सुख लिया इसलिए दु:ख उठाना ही होगा। नियम से उठाना ही होगा। यदि यहाँ के रिलेटिव सुख के ग्राहक नहीं हो तो दु:ख के भी ग्राहक नहीं बनोगे। फिर तो उसका वास्तविक सुख उसे खुद को मिलता ही रहता।

प्रश्नकर्ता : मान लीजिए कि हम खाना खाने बैठें और कोई सब्ज़ी अच्छी लगी तो अच्छी तरह से खाने में दिक्कत नहीं है, अच्छा है ऐसा कहने में भी दिक्कत नहीं है न?

दादाश्री : अच्छा चखने में, अच्छा अनुभव करने में भी दिक्कत नहीं है लेकिन उसे जानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार से जानना चाहिए, दादा?

दादाश्री : वह जागृति है, उसी को जागृति कहते हैं न, उसी को उपयोग कहते हैं। उसका कोई तरीका नहीं होता।

भोजन करते समय अलग, तो वेदन करते हुए भी अलग

आप यदि अलग रहने की कला जानते हो तो वेदना स्पर्श नहीं करेगी। वह तो फिर अलग रखना आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो शरीर की व्याधियों का असर नहीं होगा?

दादाश्री : हाँ, यानी कि ये जो शरीर के दु:ख हैं, जो उनसे अलग रहने की कला जानता है, उस पर फिर इस वातावरण का असर नहीं होगा। अच्छा हो या खराब दोनों का ही उस पर असर नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : कला किस प्रकार जानें? बीमारी आए तब अलग नहीं रह पाते। आप सिखाइए।

दादाश्री : लेकिन अलग किस प्रकार से रह पाओगे? क्या आप खाना खाते समय अलग रहते हो? यह तो खाना खाते समय एकाकार हो जाता है। उसका स्वाद चखता है, उसके बाद में वह फल तो देगा ही न! वह तो, यदि आप खाना खाते समय अलग रहोगे तभी वेदना में अलग रह पाओगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे अलग कैसे रहें?

दादाश्री : बताया ही है न, कि भाई, यह आहार कौन ग्रहण कर रहा है? उसमें आपको अंदर दखल नहीं देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। साठ साल से यह साइनस का रोग है मुझे, अब उससे मुक्त किस प्रकार से रहूँ?

दादाश्री : खुद अपने आपको, निरोगी है, ऐसा जाने, तब वह मुक्त ही हो गया न! खुद रोगिष्ठ है ही नहीं, ऐसा उसे विश्वास हो जाए तो फिर मुक्त ही है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि उसे रोग है तो ऐसा विश्वास कैसे कर सकता है कि निरोगी है?

दादाश्री : वही देखना है न, कि रोग होने के बावजूद भी निरोगी है, ऐसा खुद को विश्वास हो जाए तो फिर निरोगी ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : नाक में से पानी टपक रहा हो तब हम किस प्रकार से रह सकते हैं? वह निरोगी कैसे बन सकता है?

दादाश्री : लेकिन देखो इन्हें हार्ट अटैक नहीं आया था? उसमें खुद अलग ही रहते थे न? उसी प्रकार वह भी रह सकता है। इन्हें अटैक आया था तब भी कहते थे कि, 'वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अलग हूँ' ऐसा भान हो जाना चाहिए न? गप्प नहीं चलेगी। यह तो, 'मुझे हो गया, मुझे हो गया', तो असर होगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो यदि ऐसा सोचें कि, 'नहीं, यह मुझे नहीं

हुआ है, यह इसे हुआ है,' लेकिन जब पीड़ा होती है तब वापस अंदर एकाकार हो जाता है।

दादाश्री : वापस खुद पर ले लेता है। हाँ, उसके बाद फिर ऐसा लगता है कि, 'पीड़ा मुझे हुई।' पीड़ा होने से आत्मा कहीं कम नहीं हो जाता या बढ़ नहीं जाता तो फिर और क्या हो जाता है अंदर?

प्रश्नकर्ता : हम लगातार सोचते रहते हैं कि, 'मुझे नहीं है, मुझे नहीं है,' और जैसे ही दर्द होता है तो एकदम से वहाँ एकाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : अत: इस शरीर ने जितना स्वाद चखा है उतना ही इस शरीर को बेस्वादपन चखना पड़ेगा। हाँ! क्योंकि इस शरीर के जो सुख हैं वे आपको किस्त चुकाने की शर्त पर ही लेने हैं। ये किस्तें भरनी पड़ेंगी वापस। जो सुख चखा होगा, उसका फल तो भुगतना ही पड़ेगा। उसमें भी आप अलग ही हो। आत्मा तो वैसे का वैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा वैसे का वैसा ही रहता है। लेकिन मुझे पीड़ा हुई, वह नहीं होनी चाहिए।

दादाश्री : आप तो, नहीं हो फिर भी इस पीड़ा को बुला लेते हो। सिर दु:ख रहा है (गुजराती में कहते हैं, सिर चढ़ गया) तो वह कहाँ चढ़ा? आकाश में बैठा है क्या?

यह तो इस हद तक का विज्ञान है कि अँगूठा काट दिया हो न, तब भी असर न हो। लेकिन इस काल में उतना अधिक स्थिर रह पाना संभव नहीं है, काल विचित्र है न! बाकी, जानने वाला तो जानता ही रहता है निरंतर, वेदन नहीं करता। वेदक वेदता है कि, 'मुझे ऐसा हुआ', उसे ऐसा लगते ही वह वेदन करता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उस वेदक का *निकाल* कैसे करना है?

दादाश्री : वेदन करके। वेदन करके ही उसका *निकाल* होगा।

इस काल में वैसा ज्ञान रह पाए, ऐसा नहीं है न! ऐसा तो ज्ञानी को ही रह सकता है। बाकी औरों को, हर एक को नहीं रह सकता न! वेदन करने के सिवा उसके पास कोई चारा ही नहीं है। लेकिन उसके लिए ज़रा ऐसे उपाय करने चाहिए कि, 'मेरा नहीं है'। ऐसा सब करने से फिर ज़रा कम हो जाएगा।

तीर्थंकरों का तरीका वेदनीय में

हम तो फिर ज्ञानियों का तरीका सीख गए, तीर्थंकरों का तरीका सीख गए कि दुःख को सुख मान लेते हैं। यानी कि जब दाढ़ दुःखे तब हम जानते हैं कि, 'आज सुख है, अच्छा हुआ!' क्योंकि साइकोलॉजिकल इफेक्ट ऐसा है कि आत्मा जैसी कल्पना करता है वैसा ही बन जाता है। 'मुझे दुःखा', ऐसा कहे तो वैसे ही बरतने लगेगा। आप इतना कहो कि, 'चंदूभाई को दुःख रहा है', तो दिक्कत नहीं होगी! और दुःख हो रहा हो, उसे तो हम कहते हैं कि, 'मेरे जैसा सुखी कोई नहीं है', तो वैसा बन जाएगा लेकिन यदि भाव नहीं टूटे तो! लेकिन कुछ देर बाद भाव तोड़ देता है।

हम आत्मा के तौर पर कहते हैं कि शरीर भले ही बीमार हो जाए! आत्मा तो वैसे का वैसा ही रहता है हमेशा, और आप आत्मा रूप हो गए हो। एक बार आत्मा रूप होने के बाद में निरंतर *लक्ष* रहता है। कितने ही पाप धुल जाते हैं तब जाकर वह चीज़ निरंतर रह पाती है! ये सारे पाप खत्म हो चुके हैं। भाप रूपी पाप खत्म हो गए हैं, पानी रूपी पाप खत्म हो गए हैं। बर्फ रूपी खत्म नहीं होते। सिर्फ वे बर्फ रूपी बचे हैं, जो गाढ़ हैं। अतः उन्हें भुगतना ही होगा! वह तो मुझे भी भुगतना ही पड़ता है।

वेदना, अनुभव करने से लेकर पूर्ण जानने तक

प्रश्नकर्ता : वेद का अर्थ तो है जानना, बस इतना ही होता है लेकिन वेदन करना का अर्थ अनुभव करना नहीं है?

दादाश्री : वास्तव में वेद का अर्थ सिर्फ जानना ही होता है।

लेकिन लोग तो वेदन करते हैं। वेदन अर्थात् अनुभव करते हैं, तन्मयाकार होकर अनुभव करते हैं। इसलिए उसे ऐसा कहा जाएगा कि, 'वेदन करते हैं'। इस बीमारी से जो वेदना होती है न, उस वेदना का अर्थ कहाँ तक का है? अनुभव से लेकर जानने तक का अर्थ है, उसका। अब 'हमें' भी वेदना होती है और इन भाई को भी वेदना होती है। लेकिन मैं जानपने में रहता हूँ और वह वेदना में रहता है।

प्रश्नकर्ता : जानने से फिर वेदन करना रुक जाता है क्या?

दादाश्री : नहीं, जानना यानी तन्मयाकार नहीं होता और इसीलिए उसे खुद का वेदनफल नहीं मिलता, जानने का ही फल मिलता है। यह सब क्या हो रहा है शरीर में, वह सब देखते रहना है आपको। 'हम शुद्धात्मा हैं', जो *लक्ष* बैठ गया है इसे, और अंदर शरीर में जो भी हो रहा है उसे देखते रहना है। पैर में टीस उठे तो उसे भी देखते रहना है, दाढ़ दु:खे तो उसे भी देखते रहना है। दु:ख दे तो टेलीफोन तो पहुँचेगा न। वास्तव में टेलीफोन भी पड़ोसी को पहुँचता है लेकिन साथ ही यदि ऐसा हुआ कि 'मुझे दु:खा', तो फिर वहाँ शुरू हो जाएगा। 'मुझे नहीं, दाढ़ को दु:ख रहा है,' ऐसा कहना। हाँ, आपको कहाँ दु:खता है? यदि 'मुझे', कहा तो बहुत, सीधा असर होता है। आप आत्मा रूप हो गए, उसके बाद 'मुझे' का आरोपण किस पर करोगे? तो मुझे दु:ख रहा है, वह क्या है? अत: आपको ऐसा कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई की दाढ़ दु:ख रही है।'

यह दु:ख रहा हो तो जानते तो हो लेकिन आपको कहना है। आप तक वेदना पहुँचेगी भी सही। जितने ऐसे भाव हैं न पहले के, वे कर्म के उदय भाव हैं। उतनी वेदना आपको पहुँचेगी तो सही, लेकिन जैसे-जैसे भाव छूटते जाएँगे, वैसे-वैसे वेदना भी नहीं पहुँचेगी। सिर्फ जानोगे, बस इतना ही। यह चाहे वेदन करे, दोनों होगा। लेकिन पहले जो 'मैं चंदूभाई हूँ और मुझे यह हुआ', कहने से जो दु:ख होता था, वैसा नहीं होगा। जैसे पड़ोसी को कह रहे हों, उस तरह से, 'चंदूभाई को दु:ख रहा है,' ऐसे कहा तो हर्ज नहीं है। पड़ोसी को

दुःखे तो उससे हमें क्या? पड़ोसी के छींटे उड़ेंगे, लेकिन बहुत विलाप करते रहेंगे तो क्या मिलेगा? विलाप करने से क्या कम हो जाएगा? यह बात पक्की है कि बढ़ेगा। विलाप करने से कम नहीं होगा लेकिन बढ़ेगा। उसके बजाय आप कहना, 'चंदूभाई को दुःख रहा है।' 'ठंड किसे लग रही है?' तो कहना, 'चंदूभाई को ठंड लग रही है। तो लाओ भाई ओढ़ने का।' व्यवहार ही पड़ोसी जैसा कर दो। अंत में व्यवहार तो साफ-साफ कहता ही है न, कि, 'हमें इसे छोड़कर चले जाना है?' हम जानते ही हैं तो फिर पहले से ही व्यवहार अलग कर दिया जाए तो क्या बुरा है?

प्रश्नकर्ता : अभी जो वेदन करता है न, लेकिन बाद में ऐसा हो जाएगा कि सिर्फ जानेगा।

दादाश्री : हाँ, फिर धीरे-धीरे इतना ही रह जाएगा कि सिर्फ जानेगा। क्योंकि असर सारा कम होता जाएगा। असर वास्तव में आत्मा तक नहीं पहुँचता। पहले के जो रिएक्शन आते हैं, उसका परिणाम भुगतना पड़ता है। इसलिए थोड़ी तो वेदना होगी लेकिन उसे कम करने का सरल उपाय कौन सा है? तो कहना कि, 'चंदूभाई की दाढ़ दुःख रही है।' फिर अगर ज़्यादा दुःख रही हो तो कहना कि, 'अभी दर्द ज़रा कम हुआ है।' कम हुआ बोलने से कम हो जाएगा। जैसा आप बोलोगे वैसा परिणाम आएगा, ऐसा है यह। और कोई कहे, 'अरे बाप रे! मैं मर गया।' तो वैसा ही *भोगवटा* (पीड़ा) होगा!

आत्मा व्यथित नहीं है अब। पहले जो व्यथित होता रहता था वह, खुद वह नहीं है। शरीर की व्यथा तो होती रहेगी। सिर दुःख रहा हो तो आप कहना, 'चंदूभाई हम हैं न आपके साथ!' शरीर व्यथित हो सकता है, सिर व्यथित हो सकता है, मन ज़रा उछल-कूद करता है लेकिन आत्मा को कुछ नहीं हो सकता। वह आत्मा अपना स्वरूप है। यह सारा पराया माल है, वह तो टेढ़ा भी निकलेगा और मेढ़ा भी निकलेगा।

वेदना से अलग रहे, वह तप

और वापस ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप चार स्तंभों सहित होना

चाहिए। उसे हम नकार नहीं सकते। अब तप कब करना है? आप खुद शुद्धात्मा हो, लेकिन चंदूभाई तो हैं ही न। खुद अलग हो गए चंदूभाई से, लेकिन चंदूभाई तो जैसे थे वैसे ही हैं न? अतः जब चंदूभाई को अंदर अकुलाहट होगी तब हृदय तपेगा, लेकिन दोनों के बीच का सहयोग टूट गया है न?

आप शुद्धात्मा के तौर पर अलग हो गए हो न, इसलिए अब चंदूभाई को सहन करना पड़ेगा लेकिन फिर उसकी वेदकता का असर आत्मा पर होगा क्योंकि अभी जब तक संपूर्ण अनुभव नहीं हुआ है तब तक वेदकता रहेगी। जब वह अनुभव संपूर्ण हो जाएगा तब उसे जाननापन कहा जाएगा। अगर जाननापन संपूर्ण नहीं हुआ, कच्चा रहा तो चिपका रहेगा। तब फिर दुःख होगा। लेकिन वहाँ पर अलग रखना है, उसी को कहते हैं तप। तप उसी को कहते हैं कि अंदर गरम-गरम हो जाता है। गरम नहीं होता? कभी तो आता होगा न? तप तो आता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तपता है, वेदन होता है।

दादाश्री : अब यदि उस वेदन से अलग रहे तो वह तप है! तो उसे जाननापन कहा जाएगा। यदि उस वेदना से अलग नहीं रह पाए तो वह वेदकता है, वेदनपना है! क्रमिक मार्ग में वेदकता ही होती है। वेदन ही करना, जानना नहीं। यहाँ, अपने यहाँ जानपने में होते हैं लेकिन वह जो पिछला माल है, ज़रा गाढ़ माल है इसलिए ज़रा वेदकता हो जाती है। फिर भी अगर सेटिंग करके बैठेगा न, 'नहीं, मैं तो जानता हूँ', तो फिर वैसा ही रहेगा। और क्या है? ज्ञायकपना ही उसका धर्म है।

प्रश्नकर्ता : वेदन तो चंदूभाई को अंत तक रहेगा ही न?

दादाश्री : लेकिन आपको देखना है उसे। वह रहेगा, लेकिन आप जानकार की तरह रहोगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन चंदूभाई को तो वेदन रहेगा न?

दादाश्री : चारा ही नहीं है। वह कभी वेदन करता है न? तब

तो फिर आप दर्पण के सामने ले जाकर कहना कि, 'हम हैं'। लेकिन वैसे केस रोज़ के सौ तो नहीं आते न? दो-तीन केस ही न! चंदूभाई को वेदन करने का बहुत कुछ होता है, यानी कि अच्छा और मीठा अधिक होता है। कोल्ड बहुत होता है, तो हॉट कभी तो आएगा न। कोल्ड तो पूरी रात रहता है तभी नींद वगैरह सब आती है न! जबकि हॉट तो कभी-कभी ही आता है तब निबेड़ा ला देना। निबेड़ा ला दोगे न?

वेदक और ज्ञायक दोनों भिन्न

प्रश्नकर्ता : वेदनीय कर्म के उदय के समय जो वेदना का वेदन करता है, वह कौन है? उस समय जो वेदना होती है, उसे जानता कौन है?

दादाश्री : वेदन करता है अहंकार और प्रज्ञा जानती है। प्रज्ञा वेदक को भी जानती है। और यह जो वेदक है, यह वेदना का वेदन करता है। वेदक अर्थात् अहंकार कह दो न! अहंकार में सब आ गया। अहंकार जो है वह ऐसा मानता है कि यह दुःख मुझ पर ही आया है। यानी कि वह वेदन करता है। इसीलिए वेदक कहलाता है। वेदक अर्थात् वेदन किया है ऐसा मानता है, वेदन किया हुआ! और प्रज्ञाशक्ति जानती है उसे। अब अपने कई महात्माओं की प्रज्ञाशक्ति एक तरफ रह जाती है और वेदक भाव में आ जाते हैं, उससे दुःख बढ़ जाता है। और कुछ नहीं होता। 'खुद' तन्मयाकार हो जाए तो दुःख बढ़ता है।

अतः यदि हम इस वेदक में एकाकार हो जाएँगे तो बहुत दुःख होगा। अतः यदि ज्ञायक रह पाए तो दुःख बिल्कुल कम हो जाएगा, दुःख ही नहीं रहेगा।

जो वेदन करता है वह खुद नहीं है। खुद तो मात्र जानकार, वेदक का भी जानकार है, वेदना का भी जानकार है। यानी कि खुद वेदक का भी ज्ञायक है और वेदना का भी ज्ञायक। जबकि लोग तो वेदक के ज्ञायक नहीं बनते और वेदना के ज्ञायक बनते हैं। 'मेरा सिर दर्द ज़रा कम हो गया है, ऐसा लग रहा है,' जब ऐसा कहता है तब

वेदना का ज्ञायक है, तब वेदक का नहीं है। तो कहते हैं, 'नहीं, मेरा सिर दु:ख रहा है।' आपको तो कहना है कि, 'चंदूभाई का सिर दु:ख रहा है।' तू जानने वाला है और वेदन करने वाला वेदन करता है अंदर। जिसका सिर है, वह वेदेगा। हमें न तो लेना है, न ही देना। खाते नहीं है, पीते नहीं हैं तो फिर अपना सिर कैसे दु:खेगा?

यानी कि वह वेदना को जानता है। वह वेदना को जानता है कि, 'हाँ, यह वेदना कम हुई, बढ़ी।' जो ऐसा सब जानता है वह वेदक कैसे हो सकता है? वह वेदक का भी ज्ञायक होता है। दाढ़ दु:खती है तो वह किसकी दु:खती है? तो कहते हैं, वेदक की दु:खती है। और वेदक को क्या दु:ख रहा है, वेदक को क्या हो रहा है, ज्ञायक वह सब जानता है। इतना भेदभाव रहे तब दु:ख, वेदना ज्ञायक तक नहीं पहुँचेगी। बीच में काउन्टरपुली डाल दी जाए तो वेदना ज्ञायक तक नहीं पहुँचेगी। काउन्टरपुली नहीं डालते? एक पुली ऐसे डाल देते हैं और एक पुली वैसे डाल देते हैं तो फिर वज़न आधा नहीं हो जाता?

प्रश्नकर्ता : हो जाता है।

दादाश्री : उसी प्रकार से यहाँ एक पुली डाल दें तो वेदक ही भुगतेगा और हम जानेंगे कि अभी वेदक को ज़रा ज़्यादा वेदना है। भगवान महावीर को अनार्य देश में पत्थर मारे गए थे, अपमान किया गया था। लोगों ने देखा तो लोगों के मन में ऐसा हुआ कि, 'ओहो, भगवान को बहुत दु:ख हो रहा है।' लेकिन वे यह नहीं देखते थे कि यह 'वेदक' कौन है और यह 'ज्ञायक' कौन है। वे खुद तो ज्ञायक थे।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले को दु:ख होता है तब तो हम प्रतिक्रमण कर लेते हैं। लेकिन अब, जब खुद को ही शारीरिक वेदना होती है और दु:ख होता है, तन्मयाकार हो जाते हैं तब क्या वहाँ पर प्रतिक्रमण करना है? किस प्रकार से करना है?

दादाश्री : आपको उस वेदना को देखते रहना है। वेद अर्थात्

जानना और वेद अर्थात् भुगतना। तो ज्ञानी भोगने से लेकर जानने तक के सभी पदों में होते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि उसमें तन्मयाकार हो जाएँ तो?

दादाश्री : हाँ, तन्मयाकार हो जाते हैं। मेरी दाढ़ दुःखती है न, तब मुझे तन्मयाकार नहीं होना हो फिर भी हो जाता हूँ।

प्रश्नकर्ता : उस समय शुद्धात्मा को भूल जाते हैं।

दादाश्री : भूल नहीं जाते शुद्धात्मा को। खुद को तन्मयाकार नहीं होना है, वह ज्ञान ही 'शुद्धात्मा है', ऐसा सिद्ध करता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा बाद में पता चलता है न? उस समय तो तन्मयाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, फिर एक सेकन्ड बाद ही, एक मिनट बाद ही आ जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी अपने पास ज्ञान हाज़िर है न? चाहे झोंका आ गया लेकिन बाद में जागृति आ गई, आपको तो यह देखना है।

प्रश्नकर्ता : तो उसका कुछ असर होगा? कुछ करने की ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : कुछ भी असर नहीं होगा। ऐसा पद ही नहीं आया है। ऐसा पद शास्त्रों में आया ही नहीं है, वह पद प्राप्त ही कैसे हो सकता है? यह पद जो मिला है आपको, वह ग़ज़ब का पद मिला है। इसीलिए इतना संभालना, इतना संभालना... क्योंकि ऐसा पद दुनिया में उत्पन्न ही नहीं हुआ है, कहीं भी!

[9.2]

पुद्गल सुख-आत्मसुख

सच्चा सुख किसमें?

सुख की खोज करते हो? कौन से डिपार्टमेन्ट में आपको सुख महसूस हुआ? कहाँ-कहाँ पर नहीं हुआ?

प्रश्नकर्ता : बाहर कहीं भी सुख नहीं दिखाई देता। *पुद्गल* में सभी जगह अंतरदाह (दु:ख) ही दिखाई देता है।

दादाश्री : विवाह में, सभी में? बेटी का फादर बना, उसमें भी अंतरदाह (दु:ख) है? पहले भी ऐसा अंतरदाह देखा है?

प्रश्नकर्ता : ज़िंदगी भर अंतरदाह ही देखा है। यह जो अंतरदाह होता है न, उसका कोई एन्ड है या नहीं?

दादाश्री : उसका एन्ड है। पहले अज्ञानता में जितना आनंद उठाया था, उसी हद तक अंतरदाह होता है।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह है कि अज्ञानता में खूब आनंद उठाया है।

दादाश्री : उसी वजह से है यह। सभी को एक सरीखा नहीं होता।

यह तो, बहुत अच्छी तरह से भोगा है इसलिए सामने उतना ही रिएक्शन आता है! जिसे बिल्कुल सही माना है, वही बिल्कुल गलत निकला! ज़ोरदार भोगा था मनचाहा, इसीलिए फिर वैसा ही रिएक्शन आएगा न बाद में।

प्रश्नकर्ता : अब तो संसार बिल्कुल भी नहीं पुसाता, ऐसा लगता है।

दादाश्री : किस तरह पुसाएगा? परिणाम भुगते बगैर कोई चारा है क्या? लेकिन ज्ञाता-द्रष्टा रहकर 'देखोगे' तो चला जाएगा और यदि आप कहोगे कि, 'ओहोहो, चंदूभाई आपने तो बहुत भारी काम किए हैं इसलिए भोगो अब।' तो आपको असर नहीं करेगा। या फिर वैसा अंदर खड़ा होने पर 'मेरा नहीं है', ऐसा कह दोगे तब भी असर नहीं करेगा।

दुःख देने वाले महाउपकारी

एक भाई तो कहते हैं, 'शरीर में ऐसा लगता है जैसे मुझे मार पड़ रही हो। इसका ऐसा कोई उपाय कीजिए ताकि मेरा यह ठीक हो जाए।' मैंने कहा, 'ये दुःख देने वाले नहीं मिलेंगे।' ये दुःख देने वाले क्या कहते हैं? 'मोक्ष में जाओ! यहाँ क्यों सोए हुए हो?' यह तो बहुत अच्छा कहा जाएगा। अतः ये जो दुःख देने वाले हैं उनका उपकार मानना। यहाँ इलाज करवाने मत आना। दवाई वाले के पास दवाई लेने भी मत जाना। दुःख देने वाले कहाँ से मिलेंगे? महान भाग्यशाली को मिलते हैं दुःख देने वाले!

प्रश्नकर्ता : वे उपकारी कहलाते हैं?

दादाश्री : हाँ! वर्ना हार्ट फेल हो जाए, भाग्यशाली को तो! लेकिन दुःख देने वाले नहीं मिलते। दुःख देने वाले तो, जो मोक्ष में जाने वाले होते हैं उन्हें दुःख देते रहते हैं। घर पर पत्नी भी दुःख देती है।

देखो न, इन भाई को लोग कितना दुःख देते हैं। छः-सात साल

से इन्हें दु:ख दे रहे हैं। तब जाकर ये भाई दो-तीन साल से कह रहे हैं कि, 'अब मोक्ष में ही जाना है। अब कहीं भी नहीं जाना है।' ऐसा तय हो गया है अब। क्योंकि रोज़-रोज़ दु:ख आए, फिर मोह रहेगा क्या? मोह रहेगा फिर?

प्रश्नकर्ता : फिर मोह नहीं रहेगा।

दादाश्री : हर कहीं से दु:ख आते हैं। अब दु:ख से बचने का रास्ता निकालोगे तो फिर मोह रह जाएगा। बड़ी मुश्किल से दु:ख देने वाले लोगों को किराये पर रखना पड़ता था। लेकिन किराये वाले ठीक से दु:ख नहीं देते! आपके यहाँ भी दु:ख देने वाले तो ही होंगे न? सब के घर पर दु:ख देने वाले होते हैं। यह शब्द क्या समझने जैसा नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत अच्छी बात है।

दादाश्री : जो हमें दु:खदायी लगता था, वही सुखदायी हो गया। 'ओहोहो, ऐसा!' इस सुखदायी को हम दु:खदायी मानते थे, वह भूल थी। यह भूल खत्म हो जाए तो उसका काम हो जाएगा। हम तो ज़िंदगी भर इसी तरह से रहे हैं। दु:ख से बचने का इलाज नहीं करवाया। भाई! हम तो, यदि कोई दु:ख नहीं दे न, तो खुद ही वैसा कर देते हैं। ये बहन पूछती हैं कि, 'दादा, आप रात को ओढ़ा हुआ क्यों निकाल देते हैं?' तब मैंने कहा, 'ओढ़ने से तो फिर नींद आती है। ज़रा ठंडक लगे न, ठंड लगती रहे तो फिर जागृति रहती है। दु:ख देने वाला होना चाहिए। वह रात भर दु:ख देता रहेगा और आप ऐसा कहना, 'तू है और मैं हूँ।' कब नहीं सोया था? अनंत जन्मों से सोया हुआ ही था न! वर्ना और क्या था?

प्रश्नकर्ता : जो आरामपसंद होता है वह सब से पहले इलाज करता है।

दादाश्री : जब आप यह पट्टी लगाकर यहाँ आए थे तब मैंने पूछा कि, 'यह पट्टी क्यों लगाई है?'

प्रश्नकर्ता : मैंने दादा को बताया कि, 'यहाँ लग गया था न तो बहुत मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। इसलिए पट्टी लगाई है। तब आपने कहा था कि, 'यह तो आपने उपाय ढूँढ निकाला।'

दादाश्री : लोग कहते हैं, 'दादा, मैं आपको खाँसी की दवाई देता हूँ।' मैंने कहा, 'अरे, भाई खाँसी तो मैं खुद पैदा करता हूँ, और फिर दवाई से अच्छा कर रहे हो? तू तो ठीक करने के लिए दवाई दे रहा है फिर! खाँसी आएगी तो फिर काम हो जाएगा न! यह दु:ख देती है, ऐसा पता चलता है न? अब इसके लिए दवाई लेंगे तो दु:ख देने वाला खत्म हो जाएगा। यानी कि दु:ख देने वालों की ज़रूरत है इस काल में। मैंने आपको हाथ में मोक्ष दिया है। अब दु:ख देने वाले होंगे तो फिर गाड़ी अच्छी चलेगी। आपको भी दु:ख देने वाले बहुत मिले हैं। नहीं? बड़ों को बड़े मिलते हैं और छोटों को छोटे मिलते हैं। अपमान पसंद है?

प्रश्नकर्ता : जब कोई अपमान करे तब जागृति ज़्यादा रहती है।

दादाश्री : तो फिर मनौती क्यों नहीं माँगते? किसी से मनौती माँगोगे तो लोग अपमान करेंगे, झगड़े की शुरुआत करेंगे। कोई करने वाला नहीं मिलता, नहीं न? एक भाई कह रहे थे कि, 'रात भर, जैसे अंदर कोई दु:ख दे रहा हो, उस तरह से कोई मारता है। उसके लिए विधि कर दीजिए न।' मैंने कहा, 'दु:ख देता है तो बहुत अच्छा है। तेरे पुण्य जाग्रत हुए हैं भाई। दु:ख देने वाला क्या कहता है? मोक्ष में जाओ! तो वह दु:ख देने वाला तो अच्छा है न?

प्रतीति, दु:खदायी देह की

यह शरीर दु:ख देता है या नहीं देता? ऐसी आपको श्रद्धा हो गई है या नहीं? यह शरीर निरंतर दु:खदायी है। फिर भी क्या वह श्रद्धा बैठी है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, शरीर दु:खदायी है।

दादाश्री : क्या दु:ख देता है यह?

प्रश्नकर्ता : सिर दु:खता है!

दादाश्री : तब तो फिर, अगर सिर नहीं दु:खे तो सुखदायी ही है न! शरीर क्या दु:ख देता है? अभी इस दोपहर को गर्मी में एयर कंडीशन बंद हो जाए न तो पता चलेगा, इस प्रकार से उस समय जाग्रत नहीं रहता और यों सुख ढूँढता है।' इसीलिए इस पर उसकी श्रद्धा बैठ जाती है कि निरंतर दु:खदायी ही है यह! 'उससे' कहना, 'इसमें क्या सुख ढूँढते रहते हो? रोज़ उठकर संडास में जाना पड़ता है न। यह दु:ख पड़ता है न! यह दु:खदायी है तभी न! सुखदायी तो कहलाएगा ही नहीं। फिर भी हम यह सुख उठा लेते हैं इसीलिए यह सारी झंझट है न! उनमें सुख ढूँढते हैं।

हम कहते हैं न, कि, 'सर्दियों की रात में जब बहुत ठंड होती है न, तो कई बार हम ओढ़ने का हटा देते हैं। फिर, ठंड लगती रहे वैसा करते रहते हैं। फिर निरंतर ऐसी श्रद्धा रहा करती है कि यह दु:खदायी है। श्रद्धा तो बैठनी चाहिए न!

घड़ी भर भी सुख है ही नहीं शरीर में! मन तो दु:खदायी है, ऐसी बहुत श्रद्धा बैठ गई है और वाणी भी दु:खदायी है, यह श्रद्धा भी बहुत बैठ गई है लेकिन यह शरीर दु:खदायी है, ऐसी श्रद्धा नहीं बैठी है। एयर कंडीशन बंद हो जाए न, तो तुरंत पता चल जाएगा, या फिर बाहर का वातावरण ठंडा हो गया हो और यहाँ पर एयर कंडीशन चलता रहे तब कहेगा कि, 'अरे, बंद करो, बंद करो, मैं तो ठंड में जम गया।'

वास्तव में तो मानसिक दु:ख ही अधिक हैं! शरीर भी दु:खदायी तो है निरंतर, वह तो पुण्य के आधार पर यह सब मिल जाता है इसलिए गाड़ी चलती है। पकौड़े खाते हैं, जलेबी खाते हैं और उनमें इन्टरेस्ट बढ़ा! आइसक्रीम खाने को मिल जाए तो उससे भी अंदर पेट में ठंडक हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह सब तो मिल जाता है उसकी वजह से जागृति कम ही हो जाएगी न!

दादाश्री : नहीं! यह शरीर दु:खदायी है, ऐसी श्रद्धा नहीं बैठने दे, फिर होगा क्या? तब भी उसके कर्म के हिसाब में जितना लिखा है उतना तो आएगा ही!

सुविधाएँ बनाती हैं आरामपसंद

बात को समझना है, इसमें कोई और झंझट काम ही नहीं आती न? हमें तो, जितना हो सके उतनी *उपाधि* (दु:ख) कम करनी है। अपनी ये जो पाँच आज्ञाएँ हैं न, वे *उपाधि* रहने ही नहीं देतीं, ऐसी हैं। इनमें कुछ *उपाधि* वाला है ही नहीं। यह तो, मैंने खुद पंखे का अनुभव किया है कि मेरे साथ क्या हुआ? पहले पंखा नहीं रखता था। 1956 तक तितिक्षा नामक गुण का विकास किया था। हमेशा एक दरी पर सो जाता था और पंखा नहीं रखता था। जब सारे मित्र आते थे तो वे कहते थे कि, 'आप पंखा नहीं रखते हैं क्योंकि आप तो तपस्वी पुरुष हैं लेकिन हमारा क्या होगा?' तब मैंने कहा कि, 'चलो लगाते हैं।' पंखा लगाने से फिर यह शरीर आरामपसंद हो गया।

एक किसान रोज़ जूते पहने और फिर अगर कभी जूते नहीं हों तो तब उसके पैर जल जाएँगे । वर्ना शरीर ऐसा बन जाता है कि जले ही नहीं। अत: अब आरामपसंद हो गए हैं तो परवश होना पड़ता है। पंखा नहीं हो तो परवश होना पड़ता है। और मुझे उपयोग बाहर रखने में परेशानी होती है। तब क्या हुआ, मैं अपनी वह बात बता रहा हूँ। अत: इस बात को आप समझना। पंखा बंद मत कर देना लेकिन यह पंखा हितकारी नहीं है, ऐसा मानना।

अपने महात्माओं के लिए वह अनुभव हितकारी नहीं है। बाहर के लोगों को तो हम नहीं कह सकते। बाहर के लोग बाह्य सुख ढूँढते हैं और आप आंतरिक सुख ढूँढते हो, सनातन सुख ढूँढते हो। अत: यह तो मेरे अनुभव की बात बताई।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ पंखा ही क्यों? कई चीज़ें हितकारी नहीं हैं।

दादाश्री : अन्य चीज़ें नहीं देखनी हैं। यह पंखा ही अतिरिक्त है। अन्य चीज़ें तो आपको डायरेक्ट असर नहीं करती। सिर्फ यही एक डायरेक्ट असर करता है। अन्य चीज़ों में हर्ज नहीं है। बाकी तो, घर के लोग फ्रिज़ ले आएँ तो उससे आपको क्या नुकसान है? वे कहेंगे, बर्फ वाला पानी पीओ तो अगर आपको वह नहीं पीना हो तो आप मना कर सकते हो। घर के लोग रेडियो, फोन का उपयोग करते हों तो उससे आपको क्या लेना-देना? क्लेश होगा तो उन्हें होगा, आपको क्या लेना-देना? सिर्फ यह पंखा एक ऐसी चीज़ है जो खुद को असर करती है।

जिसे ऐसी किसी बाह्य चीज़ की ज़रूरत नहीं होती और फिर भी वह वैसा करे तो भी हमें हर्ज नहीं है। अपना मार्ग कैसा है कि आपत्ति रहित मार्ग है। वह तो, जहाँ मानता है वहीं पर है और वह कहेगा, 'हम बिना पंखे के नहीं रह सकते।' आप कहना, 'ठीक है, ऐसा ही होता है। हो सके तो पंखा ले आना,' ऐसा कहना आप। जिसे जो चाहिए, उसे उसी चीज़ की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : आरामपसंद नहीं बनना है, ऐसा कहा आपने?

दादाश्री : बाहर की सुविधाओं के कारण आरामपसंद बन जाता है इंसान। फिर जब सुविधाएँ नहीं होतीं तब परेशान होता है। इस शरीर को तो आप जैसा रखोगे न, वह वैसा ही तैयार हो जाएगा।

नेसेसिटी नहीं है, यह तो जान-बूझकर आदत डाली है हमने। उल्टी आदत डाल दी पंखे की। तो बल्कि मैं ठंडा पड़ गया, उसके बाद से! यह भी कोई तरीका है? और जब अहमदाबाद जाते हैं तब एयर कंडीशन लगाते हैं। कहते हैं, 'दादाजी, मेरे यहाँ ठहरने वाले हैं।' तो वे लोग एयर कंडीशन लगा देते हैं। उन्हें पता नहीं है कि एयर कंडीशन की मुझे ज़रूरत नहीं है। मुझे तो ऐसा एयर कंडीशन चाहिए कि तेरे घर पर एयर कंडीशन हो लेकिन वापस सत्संग में जाते समय,

वहाँ पहुँचने तक एयर कंडीशन रहे न, ऐसा चाहिए। जबकि इसमें तो बाहर निकलते ही वापस गर्मी... हम ठंडक में से बाहर निकलते हैं तब बाहर क्या होता है? तपते हुए अंगारे जैसा लगता है। तो यह क्या है? इसलिए भगवान ने कहा है कि आरामपसंद मत बनना। इसे आरामपसंद कहा जाता है।

इस शरीर को कुछ तो मज़बूत बनाना चाहिए न! बाईस प्रकार के परिषह सहन करने को कहा गया है। उसके लिए तो मैं मना करता हूँ, आपसे नहीं कहता हूँ। मैं वैसा कहूँगा तो आप सभी घबरा जाओगे, उसके बजाय तो नहीं कहूँ, वही अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह शरीर बाह्य सुख ढूँढता है न?

दादाश्री : लेकिन हमें सुख नहीं ढूँढना है। हमें अंदर का सुख मिला है। जिन्हें नहीं मिला, वे तो बाहर का ढूँढते हैं। जिसे अंदर का सुख मिल गया हो, उसे यदि बाहर का सुख नहीं होगा तो चलेगा या नहीं चलेगा? अंदर का नहीं मिला हो, उसे हमें कुछ नहीं कहना है। जिसे नहीं मिला है, वह क्या करेगा? लेकिन यहाँ पर तो भटकता ही रहता है बाहर। कितने लोग तो सिर्फ राह देखते हैं कि, 'यह हवा चली, हं यह चली, यह चली, यह चली।' यदि बंद नहीं होनी हो तो भोग ले, लेकिन कहता है, 'वह गई'!

इंसान में इस तरह की परवशता रहती है। देखो, भगवान ने बाईस परिषह सहन करने को कहा है। लिखा है या नहीं लिखा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, परिषह सहन करने को कहा है।

दादाश्री : हाँ! यह तो मैं आपसे कहता ही नहीं हूँ। आपके लिए तो सिर्फ इतना ही है कि ज़रा ऐसा हो तो आपको अंदर उपयोग रहेगा। वर्ना उपयोग फिर बाहर ही भटकता रहेगा। ज़रा सी उमस हो जाए तो उपयोग बाहर ही रहा करता है। फिर भी यदि पंखा चल रहा हो तो उसे बंद मत करना। अगर है तो समभाव से *निकाल* कर लेना,

लेकिन इसमें सुख है, ऐसा मत मानना। इसमें सुख है, ऐसा माना तो फिर, अन्य में दु:ख है, ऐसा मान लिया। अत: उपयोग दूसरी जगह पर जाता रहेगा।

एयर कंडीशन में से बाहर निकले हुए इंसान की क्या स्थिति होती होगी? वह बताओ। ये पंखों-वंखों की खोज किसने की थी? यह तो फॉरेन वालों ने। किस तरह से? वह खोज उनके लिए है, अपने यहाँ वह घुस गई है। वर्ना अपने यहाँ तो सिर्फ राजा के वहाँ पंखे होते थे। बाकी सब जगह तो यों ही पंखे होते थे साधारण, वह भी यदि सेठ हो तो। वर्ना जो दिन भर काम करता है उसे पंखा क्यों चाहिए? कुदरत तो हर प्रकार से आपकी हेल्प कर ही रही है न। जब हवा की ज़रूरत होती है तब मंद हवा भी चलती है, बाकी सब तरह की हेल्प करती है और जितना पसीना निकलना चाहिए उतना निकलने देती है। फिर अकुदरती जीवन जीएँ तो उसका अर्थ ही क्या है? यह बातचीत कोई अपने धर्म के बारे में नहीं है। यह तो सिर्फ जानने के लिए है।

पंखे को आधा घंटा बंद करके और उपयोग में रहकर देखो, तो आपको पंखे की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जो उपयोग में रहता हो, उसे पंखे की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। पंखे की ज़रूरत तो जब तक बाह्य रहता है, तभी तक है। और फिर भी हम उसके लिए मना नहीं करते। चाहे तेरा बाह्य हो न, फिर भी तू बाह्य में, 'मैं आत्मा हूँ', ऐसा भान रहेगा तो बहुत हो गया। तब भी हर्ज नहीं है, लेकिन थोड़ा आगे बढ़ने में हर्ज क्या है? हर्ज है क्या?

प्रश्नकर्ता : घर में जो कुछ चीज़ें होती हैं जब वे खराब हो जाती हैं, तब पूरी जान उसी में चली जाती है। मेरी बात करूँ तो सत्तर साल की उम्र तक फ्रिज़ का पता भी नहीं था। बाद में फ्रिज़ आया और एक दिन वह खराब हो गया तो पूरे घर को हिला दिया।

दादाश्री : हाँ, वह तो ऐसा ही होता है। ये सब आफतें हैं।

उपाधि (परेशानी) अलग चीज़ है और आफत अलग चीज़ है। *उपाधि* तो साथ में लगी होती है और आफत तो मोल ली हुई होती है। आपको जो होता है वह स्वाभाविक है। ये सब तो आफतें हैं।

ज्ञान नहीं था तब हीरा बा कहतीं कि, 'नल खराब हो गया है,' तो फिर मेरे लिए *उपाधि*। फिर बुलाने जाना, उसे लेकर आना, वह है *उपाधि*। वे ज़रूरत की चीज़ें हैं न? लेकिन ये तो गैरज़रूरी आफतें हैं। टी.वी. लाते हैं, फलाना लाते हैं, लोग कुछ कम लाते हैं क्या? आँखें खराब होती हैं और फिर आफत।

प्रश्नकर्ता : यह टी.वी. ऐसे टाइम पर खराब हो गया तब आस-पास वाले सभी लोग... 'टी.वी. नहीं चल रहा?' टी.वी. नहीं चलता तब आत्मा-वात्मा सब उसी में।

दादाश्री : हाँ, सब उसी में। फिर भी हमारे द्वारा उसका तिरस्कार तो होना ही नहीं चाहिए न? क्योंकि वह औरों को अच्छा लगता है। वे चाहे कुछ भी करे। अपने घर का बच्चा ही चाहे कुछ भी करे, तो क्या हम उसे मना कर सकते हैं? मना करोगे तो आपको द्वेष होगा।

जब उपयोग में रहते हैं तब कुछ भी नहीं रहता। उपयोग में रहते हैं तब ध्यान भी नहीं रहता कि यह गर्मी है या सर्दी है, ऐसा कुछ भी नहीं। बच्चा परीक्षा दे रहा हो और पंखे बंद हो जाएँ तो उसे पता भी नहीं चलता। वकीलों का जो कामकाज चल रहा होता है और जज अच्छी तरह से सुन रहे हों तो उस समय यदि पंखे बंद हो जाएँ तो उन्हें पता ही नहीं चलता। यह तो खाली बैठें कि पता चलता है। उसे बाह्य उपयोग कहते हैं। भटकता रहता है। फिर भी मैं तो कहता हूँ कि कोई हर्ज नहीं। इतना सा ही, लेकिन कुछ करना। पाँच आज्ञा में रहता है न? पंखे चलाना लेकिन पाँच आज्ञा में रहना। लेकिन इतना समझ के रखना कि, 'ये सारी चीज़ें भूल वाली हैं।' मैं नहीं चलाता ऐसा नहीं है। मैं भी चलाता हूँ ये। अब इसमें से थोड़ा-थोड़ा कम करते-करते फिर मूल जगह पर आ सकते हैं।

अब, ये जूते पहनकर घूमते हैं और फिर एक दिन अगर रास्ते

में कोई लुटेरा जूते ले ले और फिर धूप में चलना पड़े, तब रोड या रेत पर क्या दशा होगी? अब किसानों के पैर अभ्यस्त ही हो जाते हैं। उन्हें तो कुछ होता भी नहीं और ज़रूरत भी नहीं है। कुदरत का नियम है कि जिसे जितना जो चाहिए न, वह उसे सेट हो ही जाता है। तो फिर हम उस नियम का लाभ क्यों न उठाए? कुदरत का नियम ही ऐसा है। क्योंकि आप स्वतंत्र हो। कुदरत आपके अधीन है। आप कुदरत के राइट बिगाड़ रहे हो।

मेरी संपूर्ण स्वतंत्रता मैंने देखी है। अनुभव की है। उसके बाद मुझे ज्ञान हुआ है।

देखना, रीपे करना पड़ेगा

आपका सुख उसमें जाता है। फिर उसमें से वापस आपको सुख प्राप्त होता है। अब, इसीलिए आप उस *पुद्‌गल* में सुख मान लेते हो लेकिन जब वही *पुद्‌गल* दु:ख देता है तब मन में ऐसा होता है कि यह ऐसा क्यों कर रहा है? फिर वही जलेबी नहीं भाती। यानी कि वापस रीपे करना पड़ता है आपको। जिसमें सुख नहीं है और उसमें से लेते हो इसलिए फिर रीपे करना ही पड़ता है। मूल जहाँ पर था वहीं पर रख दोगे तो फिर आप शुद्ध हो जाओगे, वर्ना हो नहीं पाएगा न! ये सारी आपकी कल्पनाएँ ही हैं। यहाँ जितनी गांठे लगाई हैं, उतना ही फिर उस तरफ रीपे (वापस) करना पड़ेगा। आपका आयोजन है। वह कुछ नया उत्पन्न नहीं होता, कुछ भी।

प्रश्नकर्ता : *पुद्‌गल* में से जो-जो सुख लिया वह रीपे करना ही पड़ेगा?

दादाश्री : किसी भी तरह, लेकिन करना ही पड़ता है क्योंकि वहाँ कोई अपने पिताजी का बैंक नहीं है। हम तो कुछ लेते नहीं इसलिए हमें रीपे भी नहीं करना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं को तो यह क्लियर है कि मन-वचन-काया में से सुख नहीं आता।

दादाश्री : यों रीपे ही कर रहे हैं, यह और कुछ नहीं कर रहे हैं। जबरन करना ही पड़ता है। नापसंद हो तब भी करना पड़ता है न? यह सब रीपे कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर से उसका रीपेमेन्ट नहीं आएगा न?

दादाश्री : यही रीपे है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मन से ये जो सारे सुख चख लेते हैं, वाणी से चख लेते हैं, देह से चख लेते हैं तो हमें उन्हें जानना है। जानेंगे तो फिर चिपकेगी नहीं न वह चीज़?

दादाश्री : 'जानने वाले' को कुछ भी असर नहीं करता। भोगने वाले को सब असर करता है। आप बाहर का सुख लेते हो उनमें से कौन सा रीपे नहीं करना पड़ता? तो कहते हैं, माँगे बिना कुछ भी दिया जाए न, बिना माँगे दूध दिया जाए न, इच्छा के बिना और मैं पी जाऊँ तो वह रीपे नहीं करना होगा। बाकी सब रीपे वाला है।

ऐसे होते हैं मन से और वाणी से दुःख

प्रश्नकर्ता : मन से सुख लिया हो, ऐसा उदाहरण दीजिए न, कि इसे मन से सुख लेना कहते हैं।

दादाश्री : ये सभी मन से ही लिए हुए कहे जाएँगे न! यों बहुत गर्मी हो और उस समय हवा चले तो उस समय सुख लगता है तो वह सुख कहाँ से आया?

प्रश्नकर्ता : मन में से।

दादाश्री : हाँ। जल गया हो न, और ठंडी दवाई लगाएँ तो? आह! सो जाता है वह। वह, सुख उत्पन्न हुआ।

प्रश्नकर्ता : वाणी के सुख किसे कहते हैं?

दादाश्री : अभी पति डाँटे और फिर कहे कि, 'मेरा मन ही

विचित्र हो गया है, खराब हो गया है' तब फिर अच्छा लगता है। पहले का कहा हुआ भूल जाती है, यह है वाणी का सुख। पति कहे कि, 'मेरा दिमाग़ खराब हो गया है, तुझे बहुत दुःख दिया।' तो वह कहेगी, 'नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं है। कोई दिक्कत नहीं है!' मारी हुई सभी टोंट भूल जाती है। आपको ऐसी चाबी आनी चाहिए।

समझ से विकास 'बियरिंग पावर' का

पंखा चलाने से नींद आ गई, तो फिर इंसान में और जानवर में फर्क क्या रहा? बल्कि आपका उतना टाइम बेकार गया। सुख ले ही कैसे सकते हैं इसमें से? इसे तो पराया सुख कहा जाएगा। जब पराया सुख भोगता है तब स्व का सुख आना बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसका अर्थ ऐसा हुआ कि सुख हो और हम उसे भोग लें तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन अगर उसके बिना न रह पाएँ... या फिर उसमें ओतप्रोत नहीं हो जाना है?

दादाश्री : सहन करने की शक्ति यदि कम नहीं हो जाती है तो आप उनका इस्तेमाल करो। वह तो, लेकिन फिर कम हो जाती है। मनुष्य में हर तरह की बियरिंग पावर है। वह बियरिंग घिस जाती है फिर। जिस प्रकार ये गाड़ी के बियरिंग घिस जाते हैं न उसी तरह इसमें भी बियरिंग घिस जाते हैं, वर्ना बियरिंग पावर तो होती ही है।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो उस बियरिंग पावर को विकसित करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : करना क्या है? समझना है। और तय करना है कि अब वह है और हम है। 'चलो आ जाओ,' कहना।

नींद अर्थात् आत्मा को डाल दिया बोरे में

प्रश्नकर्ता : दादा, छः घंटे की नींद कैसी कही जाएगी? या तीन-चार घंटे या उससे भी कम होनी चाहिए?

दादाश्री : नींद की तो ज़रूरत ही नहीं है। नींद तो अपने आप ही आ जाती है। 15 मिनट में तो इंसान चार घंटे की नींद ले सकता है। यों ही झपकी आ जाती है न! फिर भी सो जाना। लेकिन अंदर स्थिति जाग्रत रखना। अंदर सेट करके सो जाना।

प्रश्नकर्ता : अंदर कैसी जागृति रखनी है?

दादाश्री : सेट करोगे तो रहेगी। अंदर दादा को बैठाकर और फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोलते रहना। रोज़ रात को नींद आने तक दादा का निदिध्यासन करना। फिर सो जाना। नींद नहीं आए तो उपयोग में रहना चाहिए। उपयोग किस प्रकार से रख सकते हैं कि दादा के निदिध्यासन में रहना है। उसमें रहते-रहते नींद आ जाए तो फिर सो जाना। फिर से जब जागो तब वापस उपयोग में रहना। मोक्ष के लिए उपयोग रखने की ज़रूरत है। नींद में से जो सुख आता है वह पराधीन सुख है, अपना सुख नहीं है। पराधीन सुख है न, वह इन्द्रियों के तथा इस देह के अधीन है। कितने ही लोग तो चूँटियाँ काटकर उपयोग में रहते हैं। आप तो सहज रूप से रह पाते हो, ऐसा है। अतः इस अनुसार उपयोग रखना। बाकी, नींद का सुख, वह *पुद्गल* सुख कहलाता है। मोक्ष में नहीं जाने देता।

जगाने वाला होना चाहिए, वर्ना ओढ़कर सोता रहेगा। इस आत्मा को बोरे में बाँधकर नहीं रखना चाहिए। देखो, ये रात को बोरे में बाँधकर सो जाते हैं न! दादा मिले हैं, ज्ञानी मिले हैं फिर ऐसे टाइम कैसे बिगाड़ सकते हैं। पूरा लपेटकर सो जाता है आराम से, बोरे में बाँधकर!

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा तो भान ही नहीं है न! खुद को ही संभालते रहते हैं इसलिए। भोग लेने का ही शौक है, इसलिए!

दादाश्री : क्या भोगना है लेकिन? वह श्रद्धा टूटती नहीं है। इस पर से आपकी श्रद्धा टूट जानी चाहिए कि नींद में सुख है। नींद *पुद्गल* का सुख है, वह अपना सुख नहीं है। इसमें ऐसा है कि अभी

तक आपकी जो श्रद्धा है वह पुद्गल पर है। यह पुद्गल तो किसी भी जगह पर सुखदायी है ही नहीं। एक तो नींद और दूसरा विषय, ये दोनों अधिक परेशान करते हैं। छलने वाले ये दो ही हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन नींद तो नैचुरल गिफ्ट है न?

दादाश्री : वह तो जिसे संसार में भटकना हो, उसके लिए। हम तो यहाँ ठंड में हमें ओढ़ाया जाता है न, तो मैं ज़रा शॉल यों हटा देता हूँ। यदि ठंडी हवा लगे तो जग जाते हैं, इस प्रकार पूरी रात जागते हैं। और कुछ न हो तो फिर खाँसी आती है, उससे जग पाते हैं। फिर उपयोग में रहते हैं।

दो शॉल की बजाय एक ही शॉल ओढ़ता था। जान-बूझकर, वर्ना यदि ठंड नहीं लगे तो फिर पूरी रात सोते रहते, इसलिए फिर थोड़ा ठंड का असर तो रहना ही चाहिए न शरीर को, हाँ। वर्ना फिर नींद में ही चला जाएगा सब। खाने का अच्छा आए तो ज़्यादा खाकर फिर गहरी नींद सो जाता है। ऐसा नहीं, थोड़ा ठंड का असर होना ही चाहिए। ओढ़ने का तो यह दुनिया देगी अच्छा-अच्छा। कौन नहीं देगा? लोग ओढ़कर सोये रहते हैं और आपको भी ओढ़ाएँगे लेकिन यदि आप ओढ़ोगे तो आप खोओगे न! तब नुकसान होगा। आप ओढ़ोगे तभी खोओगे न!

हम कितने ही सालों से, यदि रात को तबीयत खराब हो गई हो, रात को चाहे कुछ भी हो गया हो लेकिन हम एक्ज़ेक्ट साढ़े छः बजे उठ जाते हैं। हम जब उठते हैं तब साढ़े छः ही बजे होते हैं। हालांकि हम तो सोते ही नहीं है। हमारे अंदर रात को ढाई घंटे तो विधियाँ चलती रहती हैं। साढ़े ग्यारह तक सत्संग चलता है। ऐसे, बारह बजे सो जाते हैं। सोने का सुख, यह भौतिक सुख हम नहीं लेते। इन भाई को नींद अच्छी आती है, तो मन में क्या कहते हैं कि, 'आज अच्छी नींद आई।' लेकिन सुख कहाँ से आया वह नहीं जानता। इस *पुद्गल* में से सुख आया, यह आत्मा का सुख नहीं है। इस *पुद्गल*

में से सुख चखते हो न, तब आत्मा का सुख बंद हो जाता है। क्योंकि अभी तो नींद से दोस्ती है या नहीं? नींद में से सुख लेते ही हैं ये लोग! अभी भी भौतिक सुख की आदतें गई नहीं हैं। वे आदतें जानी नहीं चाहिए क्या? सोना तो स्त्री से भी ज़्यादा खराब है। स्त्री तो डाँटती भी है। लेकिन यह तो आराम से सो जाता है, लंबी तानकर सो जाता है। आप कभी लंबी तानकर सोये हो?

प्रश्नकर्ता : मैं दो चादरें ओढ़कर सो जाता था, दादा का सुनकर अब एक कर दी है।

दादाश्री : अच्छा किया। आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं है, यह ज्ञान ही काम करेगा। यह ज्ञान ही आपको सावधान करेगा अंदर से। जबकि हम तो जब सोने का समय होता है तब यों ज़रा पैर पर से शॉल हटा देते हैं इसलिए फिर ऐसे ज़रा, हिलाकर उठाने की ज़रूरत नहीं रहती। अतः हम कहते हैं न, कि 'हम सोते नहीं हैं।' भगवान एक क्षण के लिए भी नहीं सोते क्योंकि निरंतर जाग्रत स्थिति। कैसी स्थिति होगी? आँखें बंद होती हैं। शरीर तो सो जाता है लेकिन अंदर से जाग्रत रहते हैं। उसका मतलब गहरी नींद नहीं। लोगों की गहरी नींद देखी है आपने? सुबह उठकर कहते हैं, 'आज बहुत अच्छी नींद आई!' यानी कि ज़्यादा सुख आया। तो भाई, नींद तो क्या बीवी थी कि नींद के साथ सो गया? नींद के साथ सो जाते हैं लोग। शास्त्र में ऐसे डराया नहीं है न, हं!

पुद्‌गल रस रोक देता है केवलज्ञान को

प्रश्नकर्ता : *पुद्‌गल* में से रस चखें तो केवलज्ञान रुक जाता है।

दादाश्री : केवलज्ञान की बात ही कहाँ करते हो? यह पूरा ज्ञान ही उससे रुका हुआ है। आप यह जो आज्ञा पालन करते हो वही, और क्या? ज्ञान के तो अब जितने अनुभव हों उतने सही हैं। दर्शन हो गया है। अन्य ज्ञान है ही कहाँ? रस (रुचि) कब खत्म होना है? जो खत्म ही नहीं होना है, उसके बारे में पूछने का अर्थ ही क्या है?

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* में से रस नहीं चखना है, ऐसा निश्चय किया है।

दादाश्री : यही रस तू चखता है। पता ही नहीं चलता न! वह धीरे-धीरे आगे बढ़ते-बढ़ते जा पाओगे। एक काम पूरा हो जाने के बाद में, दूसरा काम हाथ में लेना है। आज किस तरह से कम हो, वह करना है। आज क्या करते हो, ध्यान में इतना ही रखना है। अभी नींद में से सुख लेते हो क्या? अच्छी नींद आई? मज़ा आता है न!

प्रश्नकर्ता : यों जब नींद आती है तब उसमें मज़ा आता है लेकिन उसमें यदि अब तय करें कि पाँच बजे उठना है, चार बजे उठना है।

दादाश्री : वह सब नहीं, वह तो अज्ञानी भी करते हैं। यह *पुद्गल* सुख है, बस उसे अलग जानो! महात्माओं को पता ही नहीं है न! रस चखना गलत है, ऐसा यदि समझ जाएँगे तो हर कहीं से उसे कम करते जाएँगे।

सर्वप्रथम संपूर्ण प्रतीति की आवश्यकता

आपको मोक्ष में जाना है, वह बात तय है या फिर ज़रा बदल जाएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं। वह तो बदलेगा ही नहीं न! दृढ़ निश्चय हो गया है। निश्चय नहीं बदलेगा, उसके लिए खुद की तरफ से कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : आत्मा के अलावा और किसी भी जगह पर सुख नहीं है, ऐसी प्रतीति हो जानी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ऐसी प्रतीति पूरी तरह बैठ जाए इसके लिए क्या आधार है?

दादाश्री : सही ज्ञान मिले तब सही चीज़ पर प्रतीति आ ही

जाती है। एकदम उबलती हुई चाय डालकर ले आए तो तू एकदम से पीने नहीं लगेगा न? नहीं। क्योंकि तुझे प्रतीति बैठी हुई है कि जीभ जल जाएगी। प्रतीति भूलने नहीं देती है कुछ भी। प्रतीति का ज्ञान भूलने नहीं देता। कोई पागल हो फिर भी वह नहीं भूलता, उसे प्रतीति हो गई है इसलिए।

प्रश्नकर्ता : वह चाय की बात तो सिर्फ एक ही है लेकिन इस मोक्षमार्ग के बारे में क्या-क्या हो सकता है?

दादाश्री : यह सबकुछ जो है न, वह प्रतीति बैठी ही है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि हर एक बात में उसे आत्मसुख की प्रतीति में रहना पड़ेगा न?

दादाश्री : होना ही चाहिए। प्रतीति होगी तभी चलेगा।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के अलावा सुख नहीं है, ऐसी प्रतीतिपूर्वक चलना है मोक्षमार्ग में। और दूसरी जगह इन्टरेस्ट आने लगे तो उसका सॉल्यूशन कैसे लाएँ?

दादाश्री : 'कुछ भी नहीं चाहिए', तो चला जाएगा वह तो। 'आत्मा के अलावा और कहीं भी सुख नहीं मिलेगा,' जिसे ऐसी प्रतीति रहती है, उसके वे सारे सुख चले जाते हैं।

अब उसकी प्रतीति बैठी हुई हो कि चिवड़ा खाता हूँ और खाँसी हो जाती है तो चिवड़ा देखता है तभी से उसे पता चल जाता है कि भाई, आफत आई। प्रतीति उसे कहते हैं। उसे मूर्च्छित स्थिति में भी भूल नहीं पाता। शराब पीने के बाद भी भूल नहीं पाते। प्रतीति अर्थात् प्रतीति होती है। या तो वह प्रतीति नहीं है, या फिर प्रतीति कच्ची है, पक्की नहीं है वह।

प्रश्नकर्ता : तो यह दूसरा इन्टरेस्ट उत्पन्न होता है तो इसका मतलब वह प्रतीति नहीं है। ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : नहीं, वह प्रतीति अलग है और इन्टरेस्ट अलग है। प्रतीति होती है, इन्टरेस्ट भी उत्पन्न होता है। दोनों साथ में हो सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार से?

दादाश्री : जहाँ प्रतीति है, वहाँ इन्टरेस्ट नहीं है और जहाँ इन्टरेस्ट है वहाँ उसे प्रतीति नहीं है। उसी में लोग उलझ गए हैं। इन्टरेस्ट और प्रतीति, दोनों ही हो सकते हैं। जो प्रतीति वाला है, वह अलग है और इन्टरेस्ट वाला भी अलग है।

प्रश्नकर्ता : वे कौन-कौन हैं?

दादाश्री : उन दोनों को तो पहचान लेना है तुरंत। पता लगाना है कि इन्टरेस्ट किसे है और प्रतीति किसे है?

प्रश्नकर्ता : यदि इन्टरेस्ट आने लगे तो उसे किस प्रकार से खत्म कर सकते हैं?

दादाश्री : उसका तरीका नहीं होता। उसमें तो डिस्इन्टरेस्टेड हो जाना है।

कलियुग में दुःखों का अभाव, वही सुख

प्रश्नकर्ता : तो चंदूभाई को कुछ भी होता है, वह हम देखते हैं लेकिन आनंद क्यों उत्पन्न नहीं होता?

दादाश्री : होता है न आनंद। आनंद यदि नहीं होता है तो क्या होता है? बताओ। चिंता होती है? आप अलग तरह का आनंद ढूँढते हो। दो प्रकार के आनंद हैं, एक संसारी दुःख का अभाव, उस जैसा बड़ा आनंद कोई है ही नहीं और दूसरा, खुद के स्वाभाविक सुख का सद्भाव। वह वहाँ है, यहाँ पर नहीं मिलेगा, जहाँ शरीर है, वहाँ पर नहीं मिलेगा। खुद के सुख का जो सद्भाव है, वह तो वहाँ पर है। अत: यहाँ पर संसार में रहने के बावजूद भी जो दुःख का अभाव है उसे सब से बड़ा आनंद कहा गया है। दूसरा कौन सा

आनंद खोज रहा है? मीठा लगे ऐसा? वह तो नहीं चलेगा। वह सब तो बाहर है ही न, वहाँ पर मिठास ढूँढ ले न! बाकी आनंद अर्थात् अरे... आकुलता नहीं, व्याकुलता नहीं, निराकुलता, वही आनंद। निराकुलता, वह सिद्ध का गुण है, वही आनंद व निराकुलता है। निराकुलता रहती है क्या? आप अभी भी वैसा मिठास वाला आनंद ढूँढ रहे हो?

प्रश्नकर्ता : सत्संग में एक बात हुई थी कि पहले दुःख का अभाव होता जाता है और फिर सुख का सद्भाव महसूस होता है। तो जब तक दुःख के अभाव की वह प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती, तब तक सुख का सद्भाव आएगा ही नहीं?

दादाश्री : जगत् में दुःख के अभाव को ही सुख कहते हैं। क्योंकि और कोई सुख होता ही नहीं है न! सुख के सद्भाव में तो परमानंद उत्पन्न होता है, स्वाभाविक आनंद होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह इससे अलग होता है न? इस दुःख के अभाव के कारण जो सुख महसूस होता है, उससे जो सुख का सद्भाव है, वह तो बिल्कुल अलग ही प्रक्रिया होती है न?

दादाश्री : वह सुख है ही नहीं। वह तो स्वाभाविक आनंद है। सभी प्रकार का आनंद रहा करता है उसमें।

प्रश्नकर्ता : तो अभी जो दुःख के अभाव के कारण सुख महसूस होता है, इसीलिए अभी उस (सुख के सद्भाव) आनंद की प्रक्रिया समझ में नहीं आ पाती।

दादाश्री : ऐसा है न, सोना शुद्ध होने के बाद भी भट्टी में हो सकता है। फिर भी शुद्ध हुए सोने पर कोई असर नहीं होता, भट्टी में। लेकिन फिर बाहर निकलकर जब उससे सिक्का बनता है तब वह कैसा होता है? भट्टी छूट जाती है न? उसी तरह यह भी है तो भट्टी, लेकिन भट्टी का दुःख नहीं है। शरीर है लेकिन शरीर के दुःख नहीं हैं।

पूरा जगत् दुःख का अभाव ढूँढता है। दुःख के अभाव को सुख

कहता है। वास्तव में सुख मिलता नहीं है। दो दुःख आते हैं, उनके बीच के समय को लोग सुख कहते हैं। दुःख उत्पन्न हुआ और खत्म हो गया और दूसरा अभी उत्पन्न नहीं हुआ है। तब तक इतने में सुख महसूस होता रहता है। वास्तव में वह सुख नहीं है। लेकिन दुःख नहीं हो, दुःख का अभाव, वही सुख है। ऐसा सुख ढूँढते हैं लोग। और आत्मा स्वाभाविक रूप से सुखिया है। लेकिन भट्टी में से निकले हुए और भट्टी के अंदर वाले में जितना अंतर है, उतना ही अंतर इसमें है। सुख का सद्‌भाव उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : भट्टी में से निकला हुआ, वह सुख का सद्‌भाव है, दादा।

दादाश्री : उसमें आनंद ही रहता है और जब भट्टी में होता है तब सुख के सद्‌भाव की शुरुआत हो जाती है, लेकिन संपूर्ण आनंद तो जब मुक्त हो जाएगा तब आएगा।

जितना वह संसार में अंदर उतरता गया, उतना ही उसका दुःख बढ़ा। नहीं उतरे तो दुःख नहीं है। ज्ञान नहीं था तब तो वही व्यापार था। यही मैं हूँ और यही मेरा। ज्ञान लेने के बाद 'मैं यह नहीं हूँ' और 'यह मेरा नहीं है'!

प्रश्नकर्ता : यानी कि संसार में उतना गहरा उतरना बंद हो गया इसलिए उसे सुख बरतने लगा।

दादाश्री : तभी से सुख बरतने की शुरुआत हुई। और पाप हमने भस्मीभूत कर दिए हैं न! पाप भस्मीभूत कर दिए इसलिए सब हल्का लगता है और जागृति रहती है वर्ना जागृति हो ही नहीं सकती न! जगत् पूरा सोता है, ऐसा कहा है शास्त्रकारों ने। क्रमिक मार्ग में ठेठ तक दुःख रहता है, अंतिम अवतार तक और अपने यहाँ, दुःख का अभाव ही हो जाता है। क्योंकि पूरा आत्मा प्राप्त हो गया है। क्रमिक में तो क्रमशः जितना आत्मा बाकी होता है उतना उसे दुःख रहता है। यहाँ पर तो अक्रम अर्थात् पूरा ही आत्मा प्राप्त हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : पौद्‌गलिक दुःख का अभाव अर्थात् दादा का ज्ञान लेने के बाद से ज्ञान का परिणाम आता है, तो तात्कालिक वह तो हो ही जाता है।

दादाश्री : हो ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन अब खुद के सुख का जो सद्‌भाव होना चाहिए वह तो, जैसे-जैसे हम ज्ञान में विशेष आज्ञा का पालन करेंगे वैसे...

दादाश्री : पिछला माल भर लाए हो तो जैसे-जैसे वह खत्म होता जाएगा वैसे-वैसे सद्‌भाव आता जाएगा, निरावृत होता जाएगा वह सुख।

प्रश्नकर्ता : अब वह जो सुख है और यह सुख, उसमें सांसारिक दुःखों का अभाव, वह सुख और यह सद्‌भाव, इन दोनों सुखों में कोई अंतर है क्या, दादा?

दादाश्री : अंतर तो है। यह जो दुःख का अभाव हुआ है न, इसमें बहुत शांति जैसा महसूस होता है। और वह सुख का सद्‌भाव होना, उसकी तो बात ही अलग है। स्वाभाविक सुख में आ गया। दुःख का अभाव होना, यह स्वाभाविक सुख नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सुख का सद्‌भाव जो होगा वह उसके पुरुषार्थ पर आधारित है न?

दादाश्री : अंदर माल खत्म हो जाएगा, तब।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष का सहवास मिलता रहे तो वह सारा माल ऑटोमैटिक खाली होता ही रहेगा।

दादाश्री : तो खाली हो जाएगा, यही रास्ता है। अन्य कोई रास्ता नहीं है। उनका संयोग मिले तो बहुत हो गया।

मोक्ष, प्रथम स्टेज का

यह ज्ञान क्या है? संसार में मुक्ति है। यह मुक्त दशा है संसार में। संसार में बैठे हुए मोक्ष, वीतरागता। राग-द्वेष नहीं होंगे अब। अब, संसार में मोक्ष यानी क्या, उसका अर्थ समझाता हूँ आपको। आप जो ढूँढते हो, वह अभी मत ढूँढना। वह तो अपने आप ही आकर रहेगा। संसार में मोक्ष होना अर्थात् संसार के दुःखों से मुक्ति!

यह पूरा ही जगत् दुःख से पीड़ित हो रहा है और माँगता क्या है, 'हे भगवान, मुझे इस दुःख में से मुक्त कर।' इन सर्व दुःखों का क्षय करने वाला वीतराग मार्ग है। उन सर्व दुःखों का क्षय हो गया है अब, लेकिन सद्‌भाव का उत्पादन शुरू नहीं हुआ है। क्यों? पिछला ओवरड्राफ्ट लेकर आए हो इसलिए रोज़ बैंक में ज़मा करवाने पड़ते हैं। पाँच-दस साल में खत्म हो जाएगा। ये ओवरड्राफ्ट लेकर आए हो, कोई ज़्यादा ओवरड्राफ्ट लाया हो तो दस-पंद्रह साल में चुक जाएगा। तो यह दुःखों से मुक्ति, उसी को कहते हैं पहला मोक्ष! संसार में बैठे हुए मोक्ष और फिर स्थूल शरीर की मुक्ति, वह अंतिम मोक्ष। अतः वह मत ढूँढना, अपने आप आकर रहेगा। अपने ओवरड्राफ्ट जमा हो जाएँगे, तब!

अनुभव किया आत्मा का आनंद

ज्ञान लेने से पहले जो आनंद था न, वह तो विनाशी आनंद था। ज्ञान के बाद अब सच्चा आनंद उत्पन्न होता है। पहले हमारे सत्संग से और बातचीत से आनंद होता था लेकिन वह हमेशा नहीं टिकता था। अब यह खुद का स्वाभाविक आनंद उत्पन्न होगा।

प्रश्नकर्ता : आनंद यानी सुख नहीं कहेंगे?

दादाश्री : नहीं। आनंद और सुख में तो बहुत अंतर है। सुख तो देखा ही नहीं है, परछाई भी नहीं है उसकी। यह सुख तो वेदना कहलाती है। जिसे लोग सुख कहते हैं न, उसे वेदना कहा जाता है। यह मीठी वेदना और कड़वी वेदना लेकिन दोनों ही वेदनाएँ हैं।

प्रश्नकर्ता : जो आनंद आता है, वह कहाँ से आता होगा?

दादाश्री : आत्मा का स्वभाव ही आनंद है। अत: बाहर से नहीं लाना है। यदि आत्मरूप रहेंगे तो निरंतर आनंद ही रहेगा। बाहर से कुछ भी नहीं लाना है जबकि शांति बाहर से लानी पड़ती है। जलेबी खाए तब उसे शांति होती है।

प्रश्नकर्ता : फिर वह आनंद चला क्यों जाता है?

दादाश्री : चला ही जाएगा न! ठीक से, पूरी तरह से नहीं करते हैं, इसलिए। निरंतर आत्मस्वरूप में रहना, ऐसा कर लेना चाहिए। यानी कि ऐसा पक्का कर ले तो फिर खत्म, वह हमेशा रहेगा। निरंतर आत्मा में ही रहना चाहिए। रमणता आत्मा की ही होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो फिर व्यवहार में घोटाला हो जाएगा न?

दादाश्री : जिसे व्यवहार की ज़रूरत नहीं होगी, वही आत्मा में रहेगा न! व्यवहार तो पूर्ण करना ही पड़ेगा न! इसीलिए सुख ज़रा कम हो जाता है न? फिर ऐसे करते-करते जब व्यवहार खत्म हो जाएगा तब सुख आएगा। निरंतर आत्मरमणता की आवश्यकता है।

[10]

समझ ध्येय स्वरूप की

सूक्ष्म भेद, हेतु और ध्येय में

जगत् के सभी लोग हेतु रहित क्रिया करते हैं। कोई हेतु तय ही नहीं किया होता।

प्रश्नकर्ता : हेतु को ध्येय कहा जा सकता है?

दादाश्री : ध्येय और हेतु दोनों अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : तो ये सारी क्रियाएँ तो ध्येय रहित ही हैं न?

दादाश्री : ध्येय रहित नहीं कहा जा सकता, लेकिन हेतु रहित कहा जा सकता है। हेतु वाले का तो ध्येय हो या न भी हो।

प्रश्नकर्ता : हेतु और ध्येय, इन दोनों के बीच किस तरह से अंतर है?

दादाश्री : हेतु वाले का ध्येय हो और न भी हो। यानी कि ध्येय तो सब से अंतिम चीज़ है।

भौतिक सुख प्राप्त करने का हेतु होता है, उसे ध्येय नहीं कहा जाता। ध्येय तो, जो अंतिम स्टेशन तक ले जाता है, उसे कहते हैं ध्येय।

प्रश्नकर्ता : तो भौतिक में ध्येय जैसी चीज़ रही ही नहीं?

दादाश्री : उसे ध्येय कहना गलत है। उसे ध्येय नहीं कहा जा सकता, उसे हेतु कहा जा सकता है। ध्येय कहते हैं लेकिन ध्येय शब्द वहाँ पर फिट नहीं होता।

हेतु अर्थात् अपना विवेक, सद्विवेक रहना चाहिए। उसे कहते हैं हेतु। सद्विवेक अर्थात् क्या? खुद को जो सुख की भावना है... अतः हर एक जीव के प्रति इसी हेतुपूर्वक रखे, यानी कि विवेक रखे कि इससे उसे दुःख होगा। क्योंकि हर एक जीव सुख की इच्छा रखता है, सुख ही ढूँढता है, उसे दुःख अच्छा नहीं लगता।

क्या बनना है?

तेरा ध्येय क्या बनने का है?

प्रश्नकर्ता : दादा जैसा बनना है।

दादाश्री : यह फिर कहाँ तय किया? दादा जैसा बनकर क्या करना है? शुद्ध होने का रख न! आप तो मोक्ष में जाने की बात करो। यों दादा जैसे बनना है, ऐसा बनना है ऐसा कोई भी भाव नहीं करना चाहिए। वह मारा गया समझो, लटक जाएगा। अपने पास शुद्ध उपयोग और ये सभी साधन हैं। अगर शुद्ध हो गए तो दादा से भी बढ़कर। दादा जैसे नहीं, दादा से भी आगे। 'हमें ऐसा बनना है'। ऐसा किसलिए? ऐसा हेतु नहीं रखना है। शुद्ध ही रहो।

प्रश्नकर्ता : फिर जो हो सो।

दादाश्री : फिर उसका जो भी फल आए, वह। बाकी, ऐसा बनना है, वह भाव तो बंधनकर्ता है।

प्रश्नकर्ता : कोई ध्येय तय किया हो न, तो उस अनुसार ज़रा जल्दी चलते रहेंगे।

दादाश्री : यही ध्येय पक्का करना है, शुद्ध उपयोग। शुद्ध ही हो आप। वर्ना उसमें तो पोतापना रहा करेगा। आपका शुद्ध उपयोग पोतापन रहित कहा जाता है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वही ध्येय

प्रश्नकर्ता : यानी ध्येयपूर्वक रहना और इस प्रकृति को खपाना, ऐसा कैसे हो सकता है?

दादाश्री : आज्ञा में रहोगे, तो। आज्ञा ऐसी चीज़ है कि आपका सबकुछ पार लगा देगी और फिर हम कोई खाने के लिए थोड़े ही मना करते हैं। थाली में रस, रोटी आए तो समभाव से *निकाल* करना। क्या उस फाइल से आपत्ति है?

प्रश्नकर्ता : कोई आपत्ति नहीं।

दादाश्री : हाँ, ये दो बेटे हैं उनकी शादी करवाना, बेटी की शादी करवाना, क्या उसके लिए मना करते हैं? लेकिन समभाव से *निकाल* करना। दस-पंद्रह लाख रुपये खर्च करके नहीं। तरीके से, जैसे नॉर्मल लोग करते हैं, वैसे।

प्रश्नकर्ता : आज्ञापालन करना, वह महात्माओं का ध्येय माना जाता है न?

दादाश्री : नहीं, आज्ञापालन करना, ध्येय नहीं है। ध्येय तो आत्मा, लेकिन ध्येय की प्राप्ति के लिए आज्ञा का पालन करना है। वर्ना ध्येय प्राप्त नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान हुआ है महात्माओं को इसलिए, ध्येय प्राप्त हो गया, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : लेकिन उस ध्येय की पूर्णाहुति होनी चाहिए न! पूर्णाहुति ध्येय की। यानी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इस ध्येयपूर्वक ही चलना है।

भयंकर परिषह आएँ तब...

सख्त ठंड पड़ रही हो तब ओढ़ने का याद नहीं आए और आत्मा ही याद रहा करे।

प्रश्नकर्ता : उसे ध्येयपूर्वक कहा जाएगा?

दादाश्री : वही ध्येय।

प्रश्नकर्ता : अब ऐसे में आज्ञापूर्वक वाला कैसे रहता है? जो आज्ञा में रहता हो, तो ठंड पड़ने पर उसका एडजस्टमेन्ट किस तरह का होता है?

दादाश्री : जो आज्ञापूर्वक रहता है न, उसे दिक्कत नहीं होगी। वह समभाव से *निकाल* करता है। लेकिन वास्तव में ध्येय वाला तो उसे कहा जाएगा जो बहुत ही ठंड पड़ने पर ओढ़ने का नहीं ढूँढे बल्कि आत्मा में ही रहे।

फिर भी आत्मा प्राप्त करने से कलह चली गई, वह आपको सब से बड़ा फायदा है। कलह नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : फिर भी वह जो कहा है न, वह ध्येयपूर्वक नहीं होगा तो वह गद्दी को उड़ा देगा।

दादाश्री : कुछ जन्म ज़्यादा होंगे।

प्रश्नकर्ता : कुछ यानी कितने?

दादाश्री : लेकिन वह गिनती के जन्मों में आ जाएगा। एक ही जन्म क्लेश रहित जीवन जी लिया तब भी लिमिट में आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : सख्त ठंड पड़ रही हो तब कुछ ओढ़ने का नहीं ढूँढे और आत्मा में आ जाए...

दादाश्री : ओढ़ने का याद ही नहीं आना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो वह आत्मा में किस तरह से घुस जाएगा?

दादाश्री : उस समय आत्मा ही है न वह।

प्रश्नकर्ता : उसे ध्येय की जागृति कहा है।

दादाश्री : आत्मा तो है ही, यह ओढ़ने का हो तब बाहर निकलता है।

प्रश्नकर्ता : अतः अगर ज़्यादा ठंड पड़े तो आत्मा बन जाता है।

दादाश्री : मूल स्वरूप में आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : इस शरीर से अलग हो जाता है उस समय।

दादाश्री : है ही अलग, मैंने अलग तो कर दिया है। अब, जब यह ओढ़ने का होता है तब फिर रौब से बाहर निकलता है। जब उस स्वाद को चखता है उस समय आत्मा का स्वाद बंद हो जाता है। किसी भी विषय का स्वाद चखने पर आत्मा का स्वाद आना बंद हो जाता है। इसीलिए ब्रह्मचारियों से कहा है न, ब्रह्मचर्य का सुख अलग ही होता है।

प्रश्नकर्ता : ये जो क्रमिक मार्ग वाले होते हैं, उन्हें आत्मा का ध्येय रहता है? उनकी जागृति कैसी होती है?

दादाश्री : बहुत अच्छी होती है। आत्मा के ध्येय वाले बहुत ही कम लोग होते हैं। क्योंकि काफी कुछ इस संसार के भौतिक सुखों के लालच में ही पड़े हुए होते हैं। जितना आगे बढ़ते हैं उतना अधिक लालच, अंत तक लालच।

प्रश्नकर्ता : इस क्रमिक मार्ग में सभी बाह्य तप करते हैं। जंगल में जाकर एकांत का भय और सारे उपसर्ग-परिषह सहन करते हैं, तो वह आत्मा का यानी कि इस ध्येयसहित है?

दादाश्री : क्या दानत है, ऐसा पता नहीं चल सकता न हमें? कृपालुदेव का तो आत्मा का, उसके अलावा अन्य कोई चीज़ ही नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : यानी कि 'ऐसे कठिन उपसर्गों व परिषहों में आत्मा के तौर पर रह सकें', ऐसी जागृति विकसित की थी न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : औरों के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। बाकी लोग जो ऐसे तप करते हैं, उनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता?

दादाश्री : बेकार जाता है। हाथी नहाता ज़रूर है लेकिन फिर धूल उड़ाता है। गज स्नानवत्... हम कहते हैं न, कि, 'मोहनीय अनेक प्रकार की होने से उनके सामने मैं अनंत सुख का धाम हूँ।' वह मोहनीय अनेक प्रकार की अर्थात् कौन-कौन से प्रकार की? जो त्याग किया वह मोहनीय; सांसारिक लोग कपड़े पहनते हैं, वह मोहनीय; जो कुछ भी करते हैं वह सारा ही मोहनीय।

प्रश्नकर्ता : ठंड पड़ रही हो और ओढ़ने का याद आए तो वह भी मोहनीय है?

दादाश्री : मोहनीय।

प्रश्नकर्ता : अत: जिस-जिस चीज़ से आत्मा चूक जाएँ...

दादाश्री : वह मोहनीय है। अनेक प्रकार की मोहनीय होती हैं। ये लोग जो मोह छोड़ने निकले हैं न, वह भी एक प्रकार की मोहनीय है! छोड़ने निकले मोहनीय और क्या छोड़ने की ज़रूरत थी? तू तेरी जगह पर चला जा न?

प्रश्नकर्ता : ध्येय वाला मोहनीय को हटाने नहीं जाता। खुद जो है उसी रूप बन जाता है।

दादाश्री : अनेक प्रकार की मोहनीय हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह प्रकृति तो मोहनीय वाली ही कही जाएगी न?

दादाश्री : सारी मोहनीय ही है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग वाले जंगल में जाते हैं, जहाँ बाघ और शेर बैठे हों, वहाँ पर भी खुद की स्थिरता नहीं डिगती।

दादाश्री : वह सब भी मोह कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : वह भी मोह?

दादाश्री : यदि यह भगवान से पूछे कि, 'साहब, यह जो मैं कर रहा हूँ, उसे क्या कहा जाएगा?' तो कहेंगे, 'यह मोह है।' लेकिन यह मोह उस ध्येय के लिए है।

प्रश्नकर्ता : मोह को हटाने का प्रयत्न करते हैं, त्याग करने का प्रयत्न करते हैं, उसे ध्येय नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : उसे ध्येय कैसे कहा जाएगा? उसमें तो क्या है? एक को हटाते हैं तो दूसरा इकट्ठा करते हैं।

मैं ज्ञानी पुरुष हूँ तब भी ऐसे जो घूमता हूँ, वह सारा मोह ही कहा जाएगा। अगर हम में से कोई पूछे भगवान से कि, 'साहब, इसे क्या कहा जाएगा?' तो कहेंगे, यह मोह कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : अब आपका तो ध्येयपूर्वक होता है।

दादाश्री : ध्येयपूर्वक नहीं, ध्येय रूप ही हो चुका होऊँ तब भी बाहर दिखने वाली ये क्रियाएँ तो मोहनीय ही हैं न!

प्रश्नकर्ता : तो जब मोह की ये क्रियाएँ हो रही हों तब ध्येय स्वरूप रहना कैसे संभव है?

दादाश्री : हुआ ही है न!

प्रश्नकर्ता : कैसी जागृतिपूर्वक होता है?

दादाश्री : ये क्रियाएँ डिस्चार्ज हैं इसलिए अपने आप ही होती रहती हैं। खुद करनी नहीं पड़तीं। जहाँ करना पड़े वहाँ पर मोह है। वह ध्येयपूर्वक नहीं कहा जाएगा।

ध्येय रूप हो जाए तो कुछ है ही नहीं। *पुद्गल* मोही ही होता है और वह *पुद्गल* के स्वभाव में ही है। *पुद्गल, पुद्गल* के स्वभाव में है और अंदर आत्मा, आत्मा के स्वभाव में ही रहता है, दोनों अलग हैं।

ध्येय, निश्चय और नियाणां

प्रश्नकर्ता : ध्येय और निश्चय, इन दोनों के बीच कोई संबंध है क्या?

दादाश्री : निश्चय तो छोटा कहलाता है। ध्येय तो अलग चीज़ है। निश्चय तो, अलग-अलग करने पड़ते हैं। ध्येय तो एक ही, आत्मा प्राप्त करने का और मोक्ष में जाने का, जो कहो वह, एक ही शब्द, ध्येय। निश्चय तो तरह-तरह के हो सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : निश्चय सारे व्यवहारिक भी हो सकते हैं?

दादाश्री : निश्चय को बहुत बड़ा नहीं माना जाता।

प्रश्नकर्ता : यह जो *नियाणां* कहते हैं, मोक्ष का *नियाणां?*

दादाश्री : *नियाणां* अर्थात् अभी तक जो कुछ भी किया हो आपने, आत्मा के लिए तप-जप वगैरह जो भी किया हो, आपने वह किया, तो वह आपके पास पूँजी है, जिसमें उसका उपयोग करना हो उसमें उपयोग करने की छूट होती है आपको। अतः यदि कहो कि, 'अमरीका खत्म हो जाए', यदि ऐसा *नियाणां* करे न तो आपकी सारी पूँजी वहाँ पर खर्च हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् संसार हेतु में खर्च हो जाएगा, *नियाणां?*

दादाश्री : हाँ, खुद ऐसे अहंकार करता है तो खर्च हो जाता है। 'ऐसा कर दूँगा', उसमें खर्च हो जाता है फिर।

प्रश्नकर्ता : तीन शब्द हैं, मोक्ष का *नियाणां,* शुद्धात्मा का निश्चय और कल्याण की भावना, तो इन तीनों के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : *नियाणां* मोक्ष का करना है, वर्ना किसी के साथ स्पर्धा हो जाएगी। मोक्ष के अलावा और कुछ भी नहीं चाहिए, ऐसा *नियाणां* होना चाहिए तो फिर अपनी सारी कमाई, उसी में खर्च होगी।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', यह निश्चय नहीं डिगना चाहिए। यह जो निर्णय हुआ है यह निर्णय बदल नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : और जगत् कल्याण की भावना, ऐसा?

दादाश्री : बस, जैसे अपना कल्याण हुआ है वैसा ही लोगों का हो।

प्रश्नकर्ता : इन महात्माओं को शुद्धात्मा का ध्येय प्राप्त हुआ है, मोक्ष का ध्येय, तो यदि वे ध्येय में से चलित हो जाएँ और फिर से ध्येय में स्थिर होना हो तो ऐसा किस प्रकार से हो सकता है?

दादाश्री : जो चलित हो जाए उसे ध्येय नहीं कहा जाएगा। ध्येय अर्थात् यही मेरा सबकुछ है, मेरा सर्वस्व।

प्रश्नकर्ता : अत: पहले ध्येय मज़बूत होने की ज़रूरत है। तो वह किस प्रकार से मज़बूत हो सकता है?

दादाश्री : ध्याता ध्येय का ध्यान धरकर फिर ध्येय स्वरूप हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें ध्याता कौन है?

दादाश्री : खुद।

प्रश्नकर्ता : और ध्येय?

दादाश्री : आत्मस्वरूप।

प्रश्नकर्ता : ध्येय स्वरूप होने के लिए किस प्रकार से ध्यान करना चाहिए?

दादाश्री : ये आज्ञाएँ दी हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ध्यान रहना चाहिए।

❖❖❖❖❖

[11]

सत्संग का माहात्म्य

बीज बोने के बाद पानी नहीं दिया जाए तब...

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा आइडिया लाना पड़ता है, वह ज़रा मुश्किल है।

दादाश्री : नहीं, वैसा होना चाहिए। रखना नहीं पड़ता, अपने आप ही रहता है। उसके लिए क्या करना पड़ेगा? उसके लिए फिर मेरे पास आते-जाते रहना पड़ेगा। जो पानी छिड़कना है, वह छिड़का नहीं जाता, इसलिए यह सब इतना मुश्किल हो जाता है। यदि हम व्यापार पर ध्यान नहीं दें तो व्यापार का क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : डाउन हो जाएगा।

दादाश्री : हाँ, उसी तरह इसमें भी है। ज्ञान ले आए फिर इस पर पानी छिड़कना पड़ेगा, तब पौधा बड़ा होगा। छोटा पौधा होता है न, उसे भी पानी छिड़कना पड़ता है। तो कभी महीने, दो महीने में ज़रा पानी छिड़कवाना चाहिए आपको।

प्रश्नकर्ता : घर पर छिड़कते हैं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन घर पर रहकर नहीं चलेगा। ऐसा कहीं चलता होगा? ज्ञानी खुद यहाँ पर आए हों और उनकी आपको वैल्यू ही नहीं है! स्कूल में गए थे या नहीं गए थे? कितने साल तक गए थे?

प्रश्नकर्ता : दस साल।

दादाश्री : तो क्या सीखा उसमें? भाषा! इस अंग्रेजी भाषा के लिए दस साल बिताए तो यहाँ मेरे पास तो सिर्फ छः महीने कहता हूँ। छः महीने मेरे पीछे घूमेगा न तो काम हो जाएगा।

निश्चय स्ट्रोंग तो अंतराय ब्रेक

प्रश्नकर्ता : बाहर के प्रोग्राम तय हो चुके हैं। इसलिए आने में तकलीफ होगी, ऐसा है।

दादाश्री : वह तो, यदि आपका भाव स्ट्रोंग होगा तो अंतराय टूट जाएगा। अंदर अपना भाव स्ट्रोंग है या कमज़ोर है, वह देख लेना चाहिए। उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहना चाहिए।

गारन्टी है, सत्संग से सांसारिक लाभ की

मेरे यहाँ सभी व्यापारी आते हैं न, वे बहुत बड़े व्यापारी होते हैं। वे अगर एक घंटा दुकान पर देर से जाएँ न, तो पाँच सौ-हज़ार रुपयों का नुकसान हो जाता है, ऐसे हैं। तब मैंने कहा कि जितने समय तक यहाँ रहोगे उतने समय तक नुकसान नहीं होगा और अगर रास्ते में किसी दुकान पर आधा घंटा खड़े रहोगे तो आपको नुकसान हो जाएगा। यहाँ पर आओगे तो जोखिमदारी मेरी, क्योंकि इसमें मुझे कोई लेना-देना नहीं है। यहाँ आपके आत्मा के लिए ही आए हो। इसलिए कहता हूँ सभी से कि आपको नुकसान नहीं होगा किसी भी प्रकार का, अगर यहाँ पर आओगे तो।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि वाले से बुद्धि का त्याग किया जा सके, तो भी बहुत हुआ!

दादाश्री : उन्हें भी बुद्धि परेशान तो करती है, छलती है, ऐसा सब करती है लेकिन ये हमें छोड़ते ही नहीं हैं न!

ऐसा है न, इस शुद्धात्मा पद को तो कोई छोड़ेगा ही नहीं न!

यहाँ पर तो यदि रोज़ चिमटे से मारते रहें तब भी यह पद नहीं छोड़ना चाहिए!

दादा के सत्संग की अलौकिकताएँ

जब कर्म के भारी उदय आएँ, तब हमें समझ लेना चाहिए कि 'यह उदय भारी है इसलिए शांत रहो।' उदय भारी हो तब तो फिर (फाइल-1 को) शांत रखकर सत्संग में ही बैठे रहना चाहिए। ऐसा तो चलता ही रहेगा। कैसे-कैसे कर्म के उदय आ जाएँ, वह कहा नहीं जा सकता।

यहाँ पर बैठे हो तब अगर कुछ भी नहीं करो तब भी अंदर बदलाव होता ही रहता है क्योंकि सत्संग है। सत् अर्थात् आत्मा, इसका संग! यह प्रकट हुआ सत् है और इसके संग में बैठे हो तो यह सर्वोच्च सत्संग कहा जाता है। बाकी सभी सत्संग तो हैं लेकिन सर्वोच्च सत्संग नहीं हैं। जिस प्रकार यह जो बॉम्बे सेन्ट्रल है, उसके बाद गाड़ी आगे नहीं जाती!

प्रश्नकर्ता : जागृति और अधिक बढ़े, उसका क्या उपाय है?

दादाश्री : उसके लिए तो इस सत्संग में पड़े रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आपके पास छः महीने बैठे रहने से स्थूल परिवर्तन होता है, उसके बाद सूक्ष्म में परिवर्तन होता है, ऐसा कह रहे हैं।

दादाश्री : हाँ, सिर्फ बैठने से ही बदलाव होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : स्थूल परिवर्तन अर्थात् क्या?

दादाश्री : स्थूल परिवर्तन अर्थात् बाहर के भाग की उसकी सारी परेशानियाँ चली गईं, सिर्फ अंदर की बचीं! बाद में यदि फिर से उतना ही सत्संग हो तो अंदर की परेशानियाँ भी चली जाती हैं। दोनों खत्म हो गए तो संपूर्ण हो जाएगा। अतः यह परिचय रखना चाहिए। दो घंटे, तीन घंटे, पाँच घंटे। जितना जमा किया उतना तो लाभ! ज्ञान प्राप्ति

के बाद लोग ऐसा समझ जाते हैं कि, 'अब तो हमें कोई काम रहा ही नहीं!' लेकिन परिवर्तन तो हुआ ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : महात्माओं को क्या गर्ज़ रखनी चाहिए, पूर्ण पद के लिए?

दादाश्री : जितना हो सके उतना दादा के पास जीवन बिताना, वही गर्ज़। अन्य कोई गर्ज़ नहीं। रात-दिन, चाहे कहीं भी लेकिन दादा के पास ही रहना चाहिए। उनकी विसिनिटी (ऐसे कि उनकी दृष्टि पड़े) में रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम यह जो सत्संग करते हैं, वह पुण्य के विभाग में जाता है या शुद्ध कर्म के विभाग में जाता है?

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, कि ये जो शुद्ध हो चुके हैं, अहंकार से विमुक्त हो चुके हैं उनके लिए शुद्ध के विभाग में ही जाता है और जिसे ऐसा अहंकार है, 'यह मैं हूँ'... तब तक, यदि इसका फल चाहिए तो सिर्फ पुण्य ही है। यदि इस अनुसार बरते तो मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। बाकी, फल तो... बहुत बड़ा पुण्य मिलता है। वास्तविक आत्मा की बात सुनना और उस पर थोड़ी-बहुत श्रद्धा हो जाना, वह क्या कोई ऐसी-वैसी बात है?

हम यहाँ पर सत्संग करते हैं न, यह जो बातचीत होती है न, उस समय देवी-देवता सुनने आते हैं! ऐसी बातें तो दुनिया में कहीं पर हुई ही नहीं। ये किसकी बातें चलती हैं? यहाँ पर किंचित्‌मात्र भी संसार की बात नहीं है, इस बात में संसार का भाग बिल्कुल भी नहीं है, एक सेन्ट भी।

सत्संगी की गालियाँ भी हितकारी

तुझे दादा याद रहा करते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : दस प्रतिशत व्यवहार और व्यापार करता हूँ, बाकी नब्बे प्रतिशत दादा का निदिध्यासन रहा करता है।

दादाश्री : ठीक है। यानी नब्बे प्रतिशत यहाँ रहता है और दस प्रतिशत जितना ही सर्विस में रहता है न! तब ठीक है। काम *निकाल* लिया है न!

प्रश्नकर्ता : अब तो हम अलग ही हो चुके हैं। अब दिखाई ही देता है, अलग ही लगता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन अभी भी इस जगत् का भय है न, आपको कुसंग मिल जाए तो? निरा कुसंग का ही वातावरण है। अत: यदि कुसंग में डूब जाएगा तो थोड़ा मार खा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब चाहिए ही नहीं न, कुसंग ही नहीं चाहिए अब।

दादाश्री : वह नहीं चाहिए लेकिन यहाँ कोई व्यक्ति फँस जाएगा न तो गिर जाएगा। इसलिए कुसंग से दूर ही रहना, ऐसा हमारे कहने का भावार्थ है। बाकी, इसमें कोई नाम नहीं दे सकता, ऐसा यह जगत् है। अभी यह जो सेटिंग करते हो न, उसमें इतनी ही सावधानी रखनी है। बाकी सब व्यवस्थित में है, वहाँ पर चिंता करने का कोई स्थान नहीं है।

कुसंग मिल जाए तो फिर कभी झंझट हो जाएगी। ऐसे में भी कुछ समय के लिए यदि सत्संग की अधिक पुष्टि मिल जाए तो कुसंग का असर जा भी सकता है। कभी उसका जोखिम रहता है। हमेशा अपवाद तो होते ही हैं न! इसलिए कुसंग से दूर रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कुसंग तो चाहिए ही नहीं अब।

दादाश्री : लेकिन फिर भी जितना हो सके उतना, अधिक से अधिक सत्संग में पड़े रहना। चाहे गालियाँ दें फिर भी उनके पास ही पड़े रहना अच्छा। सत्संगियों के वहाँ गालियाँ दें तब भी हर्ज नहीं है।

नहीं रख सकते विश्वास विषैले सर्प पर

प्रश्नकर्ता : लेकिन कुसंग का कुसंग की तरह असर नहीं होता हो तो वह कुसंग नहीं कहलाएगा न?

दादाश्री : फिर भी उस पर विश्वास नहीं रखा जा सकता। साँप को पाला हो तब भी उस पर विश्वास नहीं रखा जा सकता। कब वह अपने स्वभाव में चला जाए, वह कहा नहीं जा सकता। उससे तो अपना यह सत्संग अच्छा, चाहे कैसे भी पागल या बेवकूफ के साथ पड़े रहना तो भी हर्ज नहीं है क्योंकि यह सत्संग है न! कुसंग कब काट खाएगा, वह कहा नहीं जा सकता। एकाध उल्टा विचार अंदर घुस गया तो वह बीस सालों तक भी न निकले। अंदर उगने लगा तो बड़ा पेड़ बन जाएगा। कुसंग की सभी बातें मीठी होती हैं, एकदम अंदर घुस जाए, ऐसी।

तू मुंबई में ओबेरॉय होटल में जाकर एक बार चाय पी आ। देखना, मन पर कितना खराब असर हो जाएगा! वहाँ ऐसे सारे लोग मिलेंगे उससे नहीं, लेकिन परमाणु वगैरह का असर तो रहता है।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ एक चाय का इतना असर हो जाता है, तो...

दादाश्री : सिर्फ चाय का असर नहीं, वहाँ पर जाकर सीढ़ियाँ चढ़ो तभी से असर होने लगता है। इतनी सी लहसुन की कली घी में डाली जाए तो बाहर क्या होगा?

कुसंग में से सत्संग में खींचता है पुण्य

प्रश्नकर्ता : कुसंग में से सत्संग में जाना, वह प्रज्ञा का पुरुषार्थ कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं, वहाँ पर प्रज्ञा आती ही नहीं है। वहाँ पर तो ऐसा कोई पुण्य किया हो तो वह पुण्य उस समय ज़ोर लगाता है।

बाकी, मूल आत्मा तो किसी भी संग का संगी नहीं बनता।

असंग ही है, स्वभाव से ही असंग है। और लोग असंग होने के लिए भाग-दौड़ करते हैं। व्यवहारिक में सत्संग होना चाहिए। क्योंकि कुसंग और सत्संग दो प्रकार के जो भाव होते हैं, उनमें से यदि यहाँ सत्संग में पड़ा रहेगा तो कभी न कभी उसका निबेड़ा आएगा। कुसंग में पड़े हुए का निबेड़ा नहीं आता।

बसो, महात्माओं के वास में

प्रश्नकर्ता : तो दादा के महात्माओं को इस प्रश्न की सेटिंग भी करनी पड़ेगी कि व्यवहार किस प्रकार का रखना चाहिए? और जिनकी आयु लंबी हो उन्हें बाकी बची आयु किस प्रकार से संभलकर बिताई जाए कि शुद्धात्मा का उपयोग रहे!

दादाश्री : नहीं, इसमें तो ऐसा है कि पिछली उम्र में तो यहाँ पर, जहाँ पर सब सत्संगी रहते हों, महात्मा रहते हों न, उनके साथ ही रहना चाहिए। कुसंग से दूर, उसी को कहते हैं सत्संग।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें टिक सकेंगे न?

दादाश्री : टिक सकोगे न! कोई नुकसान नहीं होगा और हानि नहीं होगी, नफा ही होता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, उसमें दो प्रकार के भय स्थान हैं कि पीछे जो फाइल छोड़कर आए होते हैं न, वे सब खींचती रहती हैं। यदि फाइलें सेट नहीं हुई हों, खुद की आर्थिक व्यवस्था नहीं हो पाई हो तब भी दादा वहाँ से वापस खींच ले जाते हैं।

दादाश्री : ऐसा तो आएगा। आएगा और जाएगा तो फिर उसका निबेड़ा लाते जाना है। जो खुद छूटने का प्रयत्न करता है न, उसके छूटने के सभी प्रयत्न सफल होते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसे संयोग मिल आते हैं!

दादाश्री : जिसे बंधना है, जिसे सारी शंकाएँ है, उसे वह सब

मिल जाएगा। बाकी तो कोई भी चीज़ नहीं बाँधती। चाहे कितना भी कुछ करे, फिर भी!

प्रश्नकर्ता : अक्रम में तो बंधते ही नहीं हैं न कर्म?

दादाश्री : जो अक्रम की पाँच आज्ञा का पालन करता है उसे बंधेंगे ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : पूरी तरह से आज्ञा का पालन नहीं हो पाए और भाव में ही हो तो?

दादाश्री : सत्तर प्रतिशत पालन होगा तब भी चलेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन एक प्रकार से तो दादाजी जब आपने अलग कर दिया है कि तू आत्मा है और यह अनात्मा है, तभी से चार्ज बंद हो गया और भावकर्म उड़ा दिया।

दादाश्री : नहीं, लेकिन फिर भी बाहर यह कुसंग तो है न! निरा कुसंग है। इसलिए अगर पाँच आज्ञा में रहते हो तो वह बाड़ है। बाड़ टूट जाएगी तो कुसंग ज्ञान को खत्म कर देगा, धूल में मिला देगा।

यह काल कैसा है कि सभी तरफ कुसंग है। रसोई से लेकर ऑफिस में, घर में, रास्ते में, बाहर, गाड़ी में, ट्रेन में, इस प्रकार से सभी जगह कुसंग ही है। कुसंग है इसीलिए आपको दो घंटे में यह जो ज्ञान दिया है, इसे यह कुसंग खा जाएगा। कुसंग खा नहीं जाएगा? तो उसके लिए पाँच आज्ञाओं के प्रोटेक्शन की बाड़ दी है कि इससे प्रोटेक्शन करते रहोगे तो अंदर की दशा में ज़रा सा भी बदलाव नहीं होगा। यह ज्ञान, जिस स्थिति में दिया था, उसी स्थिति में रहेगा। इसलिए आपको पालन करने के लिए यह आज्ञाएँ दी हैं। उतना भाग आपके पास रखा है। यों अकेले रहो तो हर बार तो प्रोटेक्शन रहेगा नहीं न! वह समूह, पूरा गाँव ही यदि सत्संग का हो तो प्रोटेक्शन रह सकेगा।

[12]

निर्भयता, ज्ञान दशा में

छूटें तमाम भय, ज्ञानी के संग से

प्रश्नकर्ता : दादा, भय की गांठ किस तरह से खत्म की जा सकती है?

दादाश्री : अपना ज्ञान मिलने के बाद में सारे भय कम हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यों किसी को काल्पनिक प्रकार का भय रहता है न?

दादाश्री : नहीं! काफी सारे भय यानी कि जो बड़े हौवा जैसे भय लगते थे, वे सभी चले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बिल्कुल निर्भय कब हो पाएगा?

दादाश्री : निर्भय तो... ज्ञानी पुरुष के साथ रहना पड़ता है। दो महीने, चार महीने साथ में रहना पड़ता है। साथ में ही रहेंगे न, तो फिर वह भय चला जाएगा, सारा। भय खुद कोई 'चीज़' नहीं है, समझने में भूल से है। लेकिन ज्ञानी के पास रहने से पता चल जाएगा कि यह तो समझने में भूल हो गई है और अकेले रहने से समझने में भूल होने पर उलझन में पड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो भरा हुआ माल होता है न, वह भरा हुआ माल निकलते...

दादाश्री : यह नया माल नहीं है, भरा हुआ माल है इसीलिए निकल जाएगा सारा। अपने यहाँ पर मार्ग ही ऐसा है न, कि सब निकलता ही जाता है। एक के बाद एक निकलता जाता है। निकलता ही रहता है सारा!

संपूर्ण निर्भय पद दिया है। मार्ग ही इतना सुंदर और स्वतंत्र है, इन्डिपेन्डेन्ट मार्ग। एक तो, कितने सारे भय निकालने के लिए 'व्यवस्थित' दे दिया है। कितने सारे भय दूर कर दिए! भय रखने का कोई कारण ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कितने सारे भय निकालने के लिए व्यवस्थित दिया, लेकिन व्यवस्थित सारे ही भय निकालने के लिए है न?

दादाश्री : हाँ! लेकिन जितना व्यवस्थित समझ में आता जाएगा न, उतने ही बाकी के सारे भय जाने लगेंगे और जब व्यवस्थित पूर्ण रूप से समझ में आ जाएगा तब केवलज्ञान हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ। यानी संपूर्ण व्यवस्थित समझ में आ जाने पर सभी प्रकार के भय चले जाएँगे न?

दादाश्री : जाने ही चाहिए। व्यवस्थित को, जैसा है वैसा जानने से सारे भय चले जाते हैं। इतने तक तो जान लिया है आपने। अब साथ में बैठने से जानते जाओगे। कभी पंद्रह दिन साथ में रहने का हो तो काफी कुछ जान सकोगे। तैयारी कर रखी होगी तो फिर पंद्रह दिन साथ में रह पाओगे। साथ में बैठना होता है, साथ में खाना, साथ में पीना, साथ में सो जाना, साथ में बातें करनी। सभी महात्मा एक ही मकान में रहते हैं।

जिस तरह चिड़िया छटपटाती है वैसे, छटपटाहट, छटपटाहट। काफी कुछ छटपटाहट खत्म हो गई है न? इस ज्ञान से खत्म हो गई न वह सब?

प्रश्नकर्ता : हाँ, चली गई सभी।

भय के सामने रक्षण रहता ही है

दादाश्री : अब वह सब बताओ न, कि ज्ञान बढ़ता है या नहीं। वैसी वर्धमान स्थिति बताओ न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान की तो वर्धमान स्थिति है। लेकिन जाग्रत अवस्था जितनी बढ़ती है, उतना ही उसका भय भी बढ़ता है न?

दादाश्री : लेकिन फिर जितने भय दिखाई देते हैं, उतना ही आपको रक्षण मिलता है न। ऐसा है, जितनी जागृति, उतने भय, और उतना ही रक्षण मिलता है, अपने आप ही भान उत्पन्न होता है। अत: जितनी जागृति है, उतने ही भय दिखाती है और उतनी ही निर्भयता की जगह दिखा देती है। घर में साँप को घुसते हुए देख ले तो उसे नींद नहीं आती। साँप को निकलते हुए देख ले, तब नींद आती है।

निजघर में सदा ही निर्भय

प्लेन में जाना पड़ता है न, तो बैठने के बाद में लोग सिगरेट पीते हैं। अपने महात्माओं के मन में विचार आता है कि, 'कब क्रैश हो जाए क्या पता? इसलिए अपने आत्मा में रहो।' विमान में भय लगता है क्या? भय हो तब मज़ा आता है क्या?

प्रश्नकर्ता : ऐसे में तो मज़ा आ ही नहीं सकता न!

दादाश्री : तब किसमें मज़ा आता है आपको? किस जगह पर भय नहीं है, वह मुझे बताओ! निर्भय जगह ढूँढ निकालो आप।

रास्ते पर आते हुए आप रोड से दूर हों, तब कोई गाड़ी उल्टी घुमाकर, आकर और कुचल जाता है। सेफसाइड कहाँ है आपकी? ऑन्ली फॉर 'आई', देयर इज़ ऑलराइट, सेफसाइड, एन्ड 'माई' इज़ अनसेफ। तो क्या मज़ा आ सकता है उसमें?

न जाने कारखाना कब जल जाए? आज सेठ मज़े कर रहे होते हैं और कल (कारखाना) खत्म हो जाता है। ऐसा होता है या नहीं? उस समय समाधान किस प्रकार से रखा जा सकता है?

रात को आपको घर जाना पड़ता है या कहीं भी अच्छा लगता है? जहाँ आनंद आए वहीं पर बैठे रहते हो? बहुत आनंद आ रहा हो, फिर भी साढ़े बारह बजे उस जगह को छोड़ देना पड़ता है और घर जाना पड़ता है, या नहीं जाओगे तो चलेगा?

प्रश्नकर्ता : एकाध दिन हो तो चलेगा, लेकिन रोज़ तो नहीं चलेगा ऐसा।

दादाश्री : उसी प्रकार आपको अपने 'घर' (मोक्ष में) तो जाना ही चाहिए न, 'यह' (संसार) आपका घर नहीं है। यहाँ पर मौज-मज़े करो, एकाध दिन हो तो ठीक है लेकिन रोज़? यानी कि आपको घर जाना पड़ता है। खुद के घर जाने पर सेफसाइड हो जाती है। मैं सभी से यह कहता हूँ कि भाई, घर जाओ, घर जाओ। यह घर नहीं है, आराम से बैठने जैसी जगह नहीं है यह। मज़ा तो बहुत आता है। मुझे भी बहुत मज़ा आता था लेकिन क्या हो सकता है! प्लेन में बैठता हूँ तो ये लोग सिगरेट के धुएँ उड़ाते हैं। मैं समझ जाता हूँ कि वे किस ध्यान में हैं। जबकि हमारे मन में ऐसा लगता है कि, 'न जाने कब क्रैश हो जाएगा!' अतः इस तरह भयपूर्वक बैठना होगा। गाड़ी में बैठते हैं तब भी मन में ऐसा लगता है कि यह न जाने कब टकरा जाए, कब एक्सिडेन्ट हो जाए? अतः जहाँ देखो वहाँ पर भय, भय और भय दिखाई देता है हमें।

अपने स्वरूप में तो कोई नाम भी नहीं दे सकता। जिसे भय असर नहीं करता, वीतराग, निर्भय! कृष्ण भगवान ने गीता में कितना अच्छा बताया है कि आत्मा वीतराग है, निर्भय है!

ज्ञानी होते हैं भय रहित

जब अंतिम भय चला जाएगा तब काम होगा। लोगों का भय नहीं जाता। चाहे कहीं भी हो लेकिन वह भय नहीं जाता। निरंतर छटपटाहट, भय रहा ही करता है।

रास्ते से जाना हो और कोई कहे कि, 'ऐसा है, यहाँ पर लुटेरे

मिल सकते हैं।' अब वहाँ जाए बिना चले नहीं, ऐसा हो तब फिर अंदर क्या होता है? ज्ञान सुना इसलिए छटपटाहट। अपनी दुनिया में छटपटाहट क्यों आई? यह दुनिया अपनी है, मालिक हम हैं और छटपटाहट क्यों आई? क्योंकि उसे पराया जगत् दबाए रखना है। वर्ना क्या छटपटाहट होनी चाहिए ज़रा सी भी? चोर और लुटेरे सब आएँगे, वह तो उनका काम है। उसमें छटपटाहट कैसी? काम नहीं है क्या उनका? व्यापार है, और अगर हम अच्छे ग्राहक होंगे तो वे हमें माल देंगे, वर्ना माल भी नहीं देंगे! कहेंगे कि, 'अरे, इन्हें कहाँ माल दें! बेकार जाएगा!'

किसी भी प्रकार का भय नहीं रहना चाहिए। जब तक भय है तब तक कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। अब आपको तो, ज्ञान मिलने के बाद यदि भय उत्पन्न हो तो आपको ज्ञान से उसे पलट देना चाहिए तो निकल जाएगा। आत्मा को भय कैसा? आत्मा कोई चोरी कर लेने जैसी वस्तु नहीं है। उस पर कोई गोलाबारी नहीं कर सकता। उसे कोई कुछ भी नहीं कर सकता। उसे भय कहाँ रहा? तब कहे कि, 'लुट जाने का भय तो इस चंदूभाई को है, जिसकी जेब है उसे। आप उसके मालिक बन गए हो।' ऐसा है न? और वह ऐसा समझता है कि चिंता करेंगे, परेशान होंगे तो फिर नहीं लुटेंगे। नहीं? तेरे सिर पर परेशानी देखकर जल्दी लूटेगा वह। मार-मारकर दम निकाल देगा!

मुझे तो पुलिस वाले भी ऐसा कहते थे कि, 'कोठरी में डाल देंगे।' तब मैंने कहा, 'ले जाओ न, घर पर तो मैं अकेला था तो दरवाज़ा बंद करना पड़ता था। यहाँ तो रोज़ सिपाही बंद कर देंगे।' वास्तव में मेरे अंदर भी ऐसा ही था। वह तो चौंक गया। ऐसे शब्द दो-तीन बार बोले न तो वह चौंक गया और फिर उसने दूसरे पुलिस वाले से कहा कि, 'किसी बड़े मंत्री के संबंधी हैं ये।' ऐसा कोई बोलता है क्या? दुनिया में, किसी राजा ने भी ऐसा नहीं बोला होगा। प्रधानमंत्री को भी पीछे छोड़ दे! यह फैक्ट बात बता रहा हूँ। भय तो कहाँ गया लेकिन कॉन्ट्रैक्टर समझकर चाय पिलाई। दस-एक मिलेंगे ऐसी आशा रख रहा

था। वे तो देने ही पड़ते हैं न? अरे भाई, हम से आशा रखी? सती से आशा रखते हैं? सती और सता दो, उन पर आपने नियत बिगाड़ी? जहाँ भगवान को भी दूर खड़े रहना पड़ता है। भगवान को भी मर्यादा का ध्यान रखना पड़ता है, बहुत दूर खड़े रहना पड़ता है!

स्थिर को नहीं हिला सकता कोई

हम खुद स्थिर हों न तो दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो अपना नाम ले। हम ज़रा भी विचलित होंगे तो दूसरी शक्ति खा जाएगी। हमें विचलित होने की ज़रूरत नहीं है। अंदर भय लगे तब भी, 'दादा का आशीर्वाद है न, मुझे कुछ नहीं होगा', ऐसा करके रहो। आपको विचलित नहीं होना है तो कोई भी शक्ति आपका नाम नहीं लगाएगी। शक्ति क्या देखती है कि विचलित हुआ? विचलित हुआ, वह देख लेती है। ज़रा सा भी विचलित होने की ज़रूरत नहीं है! आप विचलित हो जाओगे तो चंदूभाई की आ बनेगी और अगर आप विचलित नहीं होंगे तो?

प्रश्नकर्ता : तो कुछ भी नहीं होगा।

दादाश्री : विचलित होने के संयोग तो होते ही हैं, उसी को कहते हैं संसार। संसार किसे कहते हैं कि जिसमें निरंतर विचलित होने के संयोग ही होते हैं। विचलित, विचलित, विचलित कर देते हैं, लेकिन विचलित होने वाले को होने देना, आपको विचलित नहीं होना है। स्थिरता रहेगी न ऐसी?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : कोई भय नहीं लगता है न? इन सब को भय नहीं लगता तो वह आश्चर्य है न! क्योंकि जब स्थिरता होती है तो फिर भय नहीं लगता।

प्रश्नकर्ता : दो-चार ऐसे पुलिस वालों से जान-पहचान रखनी चाहिए जो कि आकर महात्माओं को टेस्ट कर जाएँ।

दादाश्री : अपने कुछ महात्माओं का टेस्ट हो जाता है। वे सब तैयार हो चुके हैं। किसी चीज़ से नहीं डरते। क्योंकि रात-दिन तैयार किया है, परीक्षा लेकर!

प्रश्नकर्ता : वह तो, टेस्टिंग का सामान भी मिलता रहता है न!

दादाश्री : हाँ। इसलिए मुझे विश्वास हो गया है कि ये लोग तैयार हैं, रेडी! चाहे कुछ भी करो न! फाँसी की सज़ा के लिए भी तैयार हो जाएँ, ऐसे तैयार हो गए हैं।

'चंदूभाई हैं क्या?' करके हथकड़ी लेकर आ जाए तो?

प्रश्नकर्ता : तो कहूँगा, 'ले जाओ।'

दादाश्री : ऐसा? ऐसा सब याद नहीं आएगा कि ये लोग मुझे क्या कहेंगे? हमने तो पुलिस वाले से कहा था कि, "अच्छा हुआ, रस्सी लेकर आना था न, कोई बात नहीं। बल्कि लोग कहेंगे, 'अंबालाल भाई ऐसे हैं। उससे लोगों को आनंद होता, बेचारों को!" इससे पुलिस वाला तो घबरा ही गया। यानी कि हर परिस्थिति के लिए तैयार हो जाओ। चाहे कैसी भी परिस्थिति आ जाए, क्योंकि व्यवस्थित है न! व्यवस्थित से बाहर नहीं है न कुछ भी? अब समभाव से निकाल तो करना पड़ेगा न? तो क्या जवाब दोगे अगर वे (हथकड़ी) लेकर आ जाएँ तो? क्या वह अपने आप लेकर आया है? नहीं, उसका भी बाइ ऑर्डर है। किसी का ऑर्डर है।

प्रश्नकर्ता : उसके हाथ में भी नहीं है कुछ।

दादाश्री : उसका भी बाइ ऑर्डर है और वह ऑर्डर देने वाले साहब के हाथ में भी कुछ नहीं है, सबकुछ अपने कर्माधीन है।

प्रश्नकर्ता : इसमें तो अंदर का परमाणु भी नहीं हिलना चाहिए।

दादाश्री : एक परमाणु भी नहीं हिलना चाहिए। वैसा ही होना चाहिए। पूरी दुनिया घबराकर पसीना-पसीना हो जाती है, बिना गर्मी के। सर्दी के दिनों में भी पसीना हो जाता है! मार-ठोककर मज़बूत

बनाता हूँ, मेरे साथ बैठे हुए सभी लोगों को। यहाँ से लगाता हूँ (शब्दों से), उधर से लगाता हूँ। भय रखने जैसी चीज़ है ही कहाँ?

किसी को भय न लगे, ऐसा जीवन बनाओ

क्योंकि मैंने तो जगत् को निर्दोष देखा है, कोई दोषित है ही नहीं, ऐसा देखा है मैंने! इस जगत् में कोई जीव दोषित नहीं है, ऐसा मेरी दृष्टि में रहा ही करता है, निरंतर। जो कुछ भी दोष है, वह मेरे ही कर्मों का परिणाम है।

कोई जीव ऐसा नहीं है जो आपकी बनाई हुई डिज़ाइन को तोड़ सके। आपकी ही डिज़ाइन है यह सारी। किसी का दखल नहीं है। किसी रास्ते पर आधे से ज़्यादा लोग लुटेरे हों फिर भी आप लाखों रुपये के ज़ेवर पहनकर उस रास्ते जा सकते हो और आपको कोई लूट नहीं पाएगा, ऐसा है यह जगत्। किसी भी तरह से घबराने की ज़रूरत नहीं है।

जहाँ उसने ऐसा कर दिया हो कि किसी को उससे डर न लगे तो उसे इस दुनिया में किसी भी प्रकार से डरने की ज़रूरत नहीं है। खुद से (किसी को) डर नहीं लगना चाहिए। यहाँ तो, जाने से पहले तो चिड़ियाँ उड़ जाती हैं। अरे भाई, ऐसा कैसा पैदा हुआ कि चिड़ियाँ उड़ जाती हैं? फिर उसकी चंचलता या अचंचलता है, वह अलग चीज़ है। लेकिन चिड़ियों को भी ज़रा विश्वास आना चाहिए, जानवरों को भी विश्वास आना चाहिए। नहीं आना चाहिए? अभी लाख साँप आ जाएँ न, तो वे क्या देखते हैं कि 'यह कैसा पॉइज़नस इंसान है', वे देखते हैं, आँखों की तरफ। वे खुद पॉइज़नस हैं, ऐसा तो वे जानते ही हैं। लेकिन कहता है, 'यदि यह पॉइज़नस होगा तो इसे डंस लूँगा।' और उसमें यदि उसे वैसा कुछ नहीं दिखाई दे तो वह कुछ भी किए बगैर चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : दूसरों को डरा दे, तो उसे क्या कहा जाएगा? कैसा फल आएगा?

दादाश्री : उससे आपको डरने की ज़रूरत नहीं है। औरों को डराने की इच्छा ही नहीं हो, किसी को भय न लगे, ऐसा जीवन होना चाहिए। ऐसा जीवन यहीं पर बना लो। साथ में क्या ले जाना है, बेकार ही डराकर?

महात्माओं को भय नहीं है पर घबराहट है

अब हम सब ने शुद्धात्मा पद को प्राप्त किया है। किस चीज़ की कमी है अब? कोई कमी नहीं रही।

प्रश्नकर्ता : कोई कमी नहीं दिखाई देती लेकिन ज़रा भय रहता है।

दादाश्री : भय नहीं रहता दुनिया में। जिसे यह ज्ञान नहीं दिया हो, उसे भय लगता है। पूरा जगत् भय में फँसा हुआ है। और इस ज्ञान के बाद अपने महात्माओं में भय नहीं रहता लेकिन घबराहट रहती है। भय तो अज्ञान से है। घबराहट शरीर का गुण है।

प्रश्नकर्ता : घबराहट यानी क्या?

दादाश्री : शरीर का गुण है, जैसे कि एक खिलौने में चाबी लगाई जाए तो जैसी चाबी लगाई होगी, वह खिलौना उसी तरह से चलेगा। वह उसका मूल गुण नहीं है। उसी प्रकार से शरीर में घबराहट घुस गई है। अतः यदि हमें नहीं घबराना हो तब भी हो जाता है। यहाँ पर कोई धमाका हो तो आपकी आँखों को यों बंद नहीं होना हो तब भी हो जाती हैं, उसी प्रकार से यह घबराहट है। ज्ञान प्राप्ति के बाद घबराहट रहती है और अज्ञान हो तो भय रहता है। भय तो अज्ञान की वजह से है।

इस जगत् को जो भय रहता है, वह अज्ञान का भय है। अज्ञान का भय चला जाए तो फिर भय नहीं रहेगा, सिर्फ घबराहट रहेगी।

अभी कोई नई तरह की आवाज़ हो जाए न, तब हमारा शरीर भी काँप जाएगा, इस तरह से। अब कोई कहे कि, 'भाई, दादा वास्तव

में काँप गए हैं।' तो कहेंगे कि, 'नहीं, दादा ऐसे नहीं हैं कि उन पर बिल्कुल भी असर हो! लेकिन यह घबराहट है।' इसे संगी चेतना कहा जाता है। संगी चेतना कैसी? कि संग की वजह से खुद ने चेतन भाव को प्राप्त किया है।

ये चार जीत लिए, उसने जीत लिया जगत्

कोई चार लुटेरों से नहीं डिगता (घबराता, विचलित नहीं होता) लेकिन पंद्रह-बीस की टोली शोर मचाते हुए आए तो वह काँप जाए फिर तो हो चुका न। खत्म हो जाएगा न! यदि चार से नहीं डिगा तो चालीस से नहीं डिगेगा और जो चालीस से नहीं डिगा, वह चार हज़ार से नहीं डिगेगा और जो चार हज़ार से नहीं डिगा, वह चार लाख से नहीं डिगेगा और चार करोड़ से भी नहीं डिगेगा तो आखिर में इसका अंत आएगा! चार अरब से ज़्यादा लोग नहीं हैं। जो किसी से भी नहीं डिगा तो वह डिगेगा ही नहीं! जो नहीं डिगता है उसके लिए चार का क्या हिसाब? ऐसे चार लाख हों तब भी उनका क्या हिसाब और चार अरब हों तब भी क्या हिसाब? दादा यही कहना चाहते हैं न, कि भाई, अज्ञान का इतना भय चला जाएगा तो सर्व भय चले जाएँगे। भय अज्ञान का है। कोई और भय है ही नहीं। लोगों से क्या भय रखना? ये बेचारे तो लट्टू हैं, वे अपनी तरह से घूमते रहते हैं। किसी को लग भी जाती है कभी। लेकिन उनकी खुद की सत्ता नहीं है, किसी की भी। जब तक, 'मैं चंदूभाई हूँ', तब तक भय वाले हो। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो निर्भय हो। आप शुद्धात्मा हो, फिर बाकी बचा यह पड़ोसी तो उस पड़ोसी को कोई डाँटने आए तो वह न्याय संगत है।

दुःख न हटे तब हट जाए खुद

यह तो फूल जैसा, बहुत कोमल है, हं! लेकिन मुझसे सीख गया है, जब बहुत भय आए तब तुरंत निर्भय हो जाता है। थोड़ा-बहुत भय हो न, दो मच्छर काट रहे हों न, तो मच्छर को लेकर पूरी

रात बिता देता है और अब, भले सौ मच्छर हों न, तब भी सो जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह समझाइए न, कि वह *पुद्गल* में क्यों घुस जाता है। दो-तीन मच्छर हों तो पूरी रात मच्छरों के ध्यान में क्यों बीतती है?

दादाश्री : 'इस दु:ख को हटाना है', इसलिए लाओ हटा दूँ और 'इसे हटाना ही नहीं है', इसीलिए रख देता है एक तरफ।

प्रश्नकर्ता : पहले उस दु:ख को हटाने जाता है फिर खुद ही हट जाता है।

दादाश्री : सही कहा। दु:ख नहीं हटे तो खुद हट जाता है! और अपना, जिन्होंने आत्मा प्राप्त किया है, उनका नियम क्या है कि जब वह बहुत परेशानी में पड़ जाता है तब खुद की गुफा में ही घुस जाता है, आत्मा में। बाहर ऐसा दर्द हो कि सहन न हो सके, वह दु:ख ऐसा हो कि सहन न हो सके, तब गुफा में घुस जाता है। जबकि लोग तो जब कोई परेशानी नहीं रहती तब बाहर घूमने निकलते हैं। तब वे यह चारा चरने जाते हैं। परेशानी में तो वे अंदर चले जाते हैं। परेशानी नहीं है, इसलिए ऐसा दुरुपयोग होता है।

प्रश्नकर्ता : तो परेशानी न हो तभी बहुत ध्यान रखना पड़ता है न?

दादाश्री : हाँ, तब ज़्यादा ध्यान रखना चाहिए, लेकिन वह रहता नहीं है, फिर भी, इसी तरह इसका हल आएगा। क्योंकि मार्ग सरल है न? वैज्ञानिक मार्ग है यह!

अभी कोई एकदम से कहे कि आपने जो पाँच लाख उधार रुपये दिए थे, वे चले गए। तब फिर शॉक लगा हो, ऐसा हो जाता है तब आत्मा में चला जाता है। सहन नहीं होता न? आत्मा का यह मुख्य गुण बहुत अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : अंदर आत्मा की गुफा में चला जाए, ऐसा हो तो

इससे उत्तम और क्या है? वर्ना यदि ज्ञान नहीं लिया हो तो कुछ का कुछ हो जाए।

दादाश्री : हाँ!

बम गिरें तब ज्ञान पूर्ण

अद्‌भुत ज्ञान दिया है। रात को जब जागो तब हाज़िर हो जाता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' आप जहाँ कहोगे वहाँ हाज़िर हो जाएगा। बहुत परेशानी आ जाए तो निरंतर जाग्रत रहेगा। बहुत बड़ी परेशानी आ जाए और उससे भी बड़ी परेशानी आ जाए, बम गिरने लगें तो फिर गुफा में घुस जाएगा। केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी। बाहर बम गिरने लगें तो केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी, ऐसा ज्ञान दिया है।

फिर भी जब हम कहते हैं कि, 'बम गिरें तो अच्छा है न!' तो लोग कहते हैं कि, 'नहीं, मत गिरने देना भाई साहब, बम मत गिरने देना।' 'अरे, केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाए ऐसा है, गिरने दे न, यहाँ!' अगर दो मच्छर होते हैं न मच्छर दानी में, तो पूरी रात जागता है। 'अरे, वापस क्यों उठ गया?' 'लाइट जलाई तो मच्छर घुस गए।' 'अरे पागल, ये मच्छर तो गुफा में नहीं रहने देते और बम गुफा में रहने देते हैं तो कौन सा अच्छा? बम गिरें, वह! लेकिन भाई! जल्दी से हल आ जाएगा। यों एक-एक करके सिर पर मारने से सिर में छेद होगा, उसके बजाय उड़ा दे एकदम से! एक-एक चपत लगने से छेद हो, सड़ जाए, खराब हो जाए, उसके बजाय हल ला दे न! तब कहेगा, 'ये बम गिरने को हैं। हे भगवान! अभी बम नहीं गिरे।' अरे भाई, गिरने दे न! तैयार हो जा!

हमारे माँगने पर भी नहीं गिरे, ऐसा है। ये कीमती बम कौन डालेगा? बम कीमती हैं, यदि गिर रहे हों तो अपने महात्मा, 'धन्य है यह दिवस' कहकर, गुफा में घुस जाएँगे। केवलज्ञान हो जाएगा। केवलज्ञान हो जाए ऐसा नहीं, लेकिन गुफा में घुस जाएँगे।

बम गिरने पर आत्मा का चूरा नहीं होगा लेकिन सभी वासनाओं का चूरा हो जाएगा। अज्ञानी, जिसे ज्ञान नहीं मिला हो वह तो, 'मेरे बेटे की शादी होनी थी, बंगला बनवाना था, सारी वासनाएँ अधूरी रहीं।' तो वह अधूरी वासनाओं को लेकर मरता है न, तो फिर जानवर बनता है। बम गिरने से एक व्यक्ति जानवर बनता है और दूसरे पर बम गिरे तो मोक्ष जैसा हो जाता है, क्योंकि वासनाएँ फ्रेक्चर हो जाती हैं। वह खुद फ्रेक्चर कर सके, ऐसा नहीं है!

मृत्यु के समय, ज्ञान में या भय में?

यह आत्मा दिया है न, तो भय लगने पर अंदर घुस जाता है। यदि भय नहीं हो न, तब तो बाहर से ज़रा यह ले आता है, वह ले आता है। लेकिन बम गिरने लगे तो अंदर घुस जाता है। जहाँ भय न हो, ऐसी जगह ढूँढता है तो अंदर ही घुस जाता है। अतः भय में यह (ज्ञान) बहुत अच्छा रहता है। मरते समय अच्छा रहता है या फिर मरने जैसा भय हो न तब बहुत अच्छा रहता है।

प्रश्नकर्ता : भय आए तब आत्मा में घुस जाता है?

दादाश्री : तब तो, जो बाह्य भाव हैं न, वे सभी आत्मा में घुस जाते हैं, जागृति जो बाहर बरतती थी, वह आत्मा में आ जाती है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा हो जाता है। फिर तो बाहर का वह सब छोड़ ही देता है, सभी चिट्ठियाँ लिखना (भाव करना) बंद कर देता है और जब तक भय नहीं आए न, तब तक तो कहेगा, 'चलो, थोड़ी जलेबी ले आता हूँ, थोड़ा नाश्ता ले आता हूँ।' और भय आते ही अंदर घर में घुस जाता है और मृत्यु का भय आए तब उस समय 'घर' (आत्मा) में रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो भय लगने पर जागृति हज़ारों गुना बढ़ जाती है?

दादाश्री : बढ़ती ज़रूर है, जागृति बढ़ती है लेकिन उसमें हमेशा ज्ञाता-द्रष्टा की तरह रहने का भाव तो रहता है न! लेकिन वह बाहर

जब कोई आफत आएगी, उस समय अंदर घुस जाएगा। और अंदर घुस जाता है तब संपूर्ण आनंद ही रहता है। दु:ख ही नहीं रहता न!

इस ज्ञान के मिलने के बाद में उसे कोई भी भय सता नहीं सकता। निरंतर निर्भय रह सकता है। होता है या नहीं होता? कोई निर्भय देखे हैं?

प्रश्नकर्ता : आप जिस सेन्स में कह रहे हैं, उस सेन्स में निर्भय नहीं देखे हैं।

दादाश्री : निर्भय हो ही नहीं सकते। वह तो ये कृष्ण भगवान हो गए, ये महावीर भगवान हो गए। बाकी कोई नहीं हो सकता। इंसान की बिसात ही क्या निर्भय होने की? अत: वीतरागता हो तभी निर्भय हो सकते हैं। राग-द्वेष नहीं हों तब निर्भयता आती है।

तब विज्ञान होता है पूर्ण

किसी भी संयोग में भय न लगे, चाहे कैसे भी एटम बम डाले, चाहे वैसा कुछ भी हो जाए लेकिन भय नहीं लगे, बिल्कुल भी विचलित न हो जाए, तब समझना कि विज्ञान पूर्ण हो गया है। या फिर जिसने ऐसा लक्ष्य बनाया हो कि, 'किसी भी संयोग में मुझे भय नहीं लगना चाहिए', और उस रास्ते पर चलता है, उस व्यक्ति में विज्ञान पूर्ण होने की तैयारी है।

भय नहीं लगना चाहिए। किसी भी प्रकार से भय नहीं लगना चाहिए। क्योंकि जहाँ मालिक ही आप हो वहाँ भय कैसा? मालिक हो, दस्तावेज हैं, टाइटल है, सभी कुछ आपके पास है लेकिन आपको पता नहीं है तो फिर क्या हो सकता है?

एटम बम गिरने वाला हो, फिर भी एटम बम डालने वाला डरेगा लेकिन जिस पर गिरने वाला है, वह नहीं डरेगा। इतना शक्तिशाली विज्ञान है यह!

[13]

निश्चय - व्यवहार

उचित व्यवहार - शुद्ध व्यवहार

प्रश्नकर्ता : दादा, अक्रम में तो अपना जो व्यवहार है उस पूरे को ही आपने *निकाली* कहा है न?

दादाश्री : अपने व्यवहार को? उसे चाहे *निकाली* कहा या ग्रहणीय, उसका प्रश्न नहीं है लेकिन अपना यह व्यवहार उचित व्यवहार है। उचित व्यवहार से लेकर और अंत में शुद्ध व्यवहार तक का व्यवहार है अपना।

प्रश्नकर्ता : उन दोनों की, 'उचित' और 'शुद्ध' की स्पष्टता कीजिए न!

दादाश्री : उचित से शुरुआत होती है। उचित अर्थात् 'जो गलती निकालने जैसा न हो।' कोई आमने-सामने गालियाँ दे रहा हो तब भी वह व्यवहार उचित है। उससे आगे फिर शुद्ध व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैसे? आपने उचित व्यवहार की परिभाषा बताई कि, 'जिसमें कोई गलती न निकाल सके' और दूसरी तरफ ऐसा कहा कि उचित व्यवहार अर्थात् अगर गालियाँ दे रहा हो तब भी वह उचित व्यवहार कहा जाएगा।

दादाश्री : आप यहाँ पर किसी से चिढ़ जाओ तब भी अपने यहाँ सब समझते हैं कि, 'कुछ *निकाल* कर रहे होंगे, समभाव से।'

ऐसा ही कहते हैं न? कोई भी नोट डाउन नहीं करता। नहीं? आपने ऐसा नोट डाउन किया है किसी का?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नोट डाउन नहीं होता।

दादाश्री : उसका क्या कारण है? क्यों उचित व्यवहार है वह? क्योंकि राग-द्वेष रहित है, राग-द्वेष नहीं हैं। राग-द्वेष रहित व्यवहार, फिर चाहे हथौड़े मार रहा हो लेकिन वह उचित व्यवहार कहा जाएगा। उसमें ज़रा भी तिरस्कार नहीं आता। ऐसा होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : तो दादा, हम महात्माओं के लिए तो यही चीज़ है न, कि आपने हमें आत्मा दिया है। अब हमारा व्यवहार शुद्ध हो जाना चाहिए न?

दादाश्री : हो गया है न! उचित से लेकर शुद्ध व्यवहार तक हो गया है।

प्रश्नकर्ता : अब वह व्यवहार को शुद्ध व्यवहार रखना, ऐसा कुछ अलग है?

दादाश्री : हाँ। शुद्ध व्यवहार तो शुद्ध व्यवहार ही रहा लेकिन जब तक वह शुद्ध दिखाई नहीं देता तब तक उसमें उचित से लेकर शुद्ध तक का भेद है। है तो शुद्ध ही, लेकिन उचित शुद्ध से लेकर शुद्ध, शुद्ध तक का भेद है।

ऐसा है न, अपना यह व्यवहार शुद्ध ही कहलाता है। लेकिन जब तक शुद्ध व्यवहार नहीं दिखाई देता तब तक उसे उचित व्यवहार कहा जाएगा। जब दिखने लगे तब शुद्ध कहा जाएगा। उचित व्यवहार बाहर के लोगों में नहीं होता। बाहर तो यदि उसे चिढ़ना हो तो चिढ़ता है और रोना हो तो रोता है और हँसना हो तो हँसता भी है।

अत: अपने व्यवहार की बिगिनिंग उचित व्यवहार से होती है और अंत में शुद्ध व्यवहार तक पहुँचता है! शुद्ध निश्चय और शुद्ध व्यवहार। अब जितना व्यवहार शुद्ध हो गया उतना शुद्ध निश्चय आपके

पास प्रकट हो गया। संपूर्ण शुद्ध व्यवहार हो जाएगा तो शुद्ध निश्चय, संपूर्ण। अर्थात् पूर्णाहुति!

अब अपना यह उचित व्यवहार है लेकिन लोगों को कैसे समझ में आ सकता है? अपना व्यवहार मोक्ष के लिए उचित व्यवहार है, लेकिन लोगों को अनुचित लगता है।

अब शुद्ध व्यवहार यानी क्या? ये भाई मेरा अपमान करते हैं, वह उनका अशुद्ध व्यवहार है लेकिन मुझे उन्हें शुद्धात्मा भाव से देखकर और उनके साथ शुद्ध व्यवहार रखना है। मेरा व्यवहार नहीं बिगड़ने देना है। क्योंकि वह जो गालियाँ देता है, वह जो कुछ भी ऐसा अपमान करता है, वह खुद नहीं करता, यह मेरे कर्म के उदय उसके माध्यम से निकलते हैं। इसलिए ही इज़ नॉट रिस्पॉसिबल एट ऑल (वह उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं है)। इतना आप समझ गए न? अब, वह शुद्धात्मा में हो या न भी हो, लेकिन आपको उसे शुद्धात्मा देखना चाहिए और निर्दोष देखना चाहिए, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। दोषित को भी निर्दोष देखना आ गया। पूरा जगत् जिसे दोषित कहता है, उसे आप निर्दोष देखते हो, इस प्रकार से। खुद शुद्ध है और सामने वाला भी शुद्ध ही है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह शुद्ध व्यवहार है।

इन पाँच आज्ञाओं का पालन करें न, तो वह बिल्कुल शुद्ध व्यवहार है। पाँच आज्ञा इसीलिए हैं। यह उचित व्यवहार है न, यह शुद्धता को पकड़े रखने के लिए है। और इन पाँच आज्ञाओं का पालन नहीं हो पाता तो वह उचित व्यवहार में जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपने यहाँ इसी प्रकार से चलता है न! लेकिन उचित की जो भूमिका बताई है आपने, उसमें आपने शुद्ध की बात की है, वह क्या है?

दादाश्री : हमारा यह व्यवहार शुद्ध के नज़दीक वाला है बिल्कुल। इसे शुद्ध कहोगे तो चलेगा लेकिन शुद्ध का नज़दीकी होता है सहज रूप से।

प्रश्नकर्ता : तो फिर परफेक्ट शुद्ध कैसा होता है? पहले यह बताइए।

दादाश्री : शब्द से भी किंचित्मात्र किसी को नुकसान न हो, मन से नुकसान नहीं, मन से नुकसान तो आप भी नहीं करते लेकिन शब्दों से और शरीर से नुकसान न पहुँचाए, वह बिल्कुल शुद्ध व्यवहार।

प्रश्नकर्ता : तब आप जो कहते हैं, आपका लगभग शुद्ध है तो उसमें और संपूर्ण शुद्ध में क्या अंतर है?

दादाश्री : यह हम जो कभी कहते हैं न, चार डिग्री कम है तो उससे अंतर पड़ता है।

निकलता हुआ माल, यह नहीं है व्यवहार

यह पुराना, पड़ा हुआ माल निकलता है, इसी को यदि व्यवहार कहे... लेकिन यह पुराना माल तो फिर बदबू मारता है। यानी भरा हुआ माल व्यवहार नहीं है। व्यवहार कौन सा है? तो कहते हैं कि, 'अभी 'वह' किसमें है', वह व्यवहार है। अभी ये भाई हैं, वे किसी को डाँट रहे हों, तो मैं उसे डाँटूँगा नहीं। मैं जानता हूँ कि वह खुद उसे डाँटने में नहीं है क्योंकि डाँटने के बाद खुद को पछतावा होता है कि यह गलत हो गया है, ऐसा नहीं होना चाहिए।

अब यह बात उन्हें गहराई से समझ में नहीं आती है न? इसकी कितनी अधिक गहनता है, वह लोगों को समझ में नहीं आता। ऐसे यों जो दिखाई देता है, वह तो ऊपर, ऊपर से देखते हैं न? सुपरफ्लुअस देखते हैं न वे तो। अब यह गहराई अर्थात् वह उनको गालियाँ दे रहा हो फिर भी मैं जानता हूँ कि वह उसमें नहीं है। वह खुद गालियाँ नहीं दे रहा है अभी। खुद पछतावा कर रहा है इसलिए व्यवहार उसका उचित है। लेकिन यह तो जो पिछला भरा हुआ माल है, वह निकल जाता है। उसे निकालना तो पड़ेगा ही न?

प्रश्नकर्ता : आपने सुंदर उदाहरण दिया है। तानसा (मुंबई में

स्थित सरोवर) का पानी जो है वहाँ से बंद कर दिया, वह कॉक। पाइप में भरा हुआ पानी निकल रहा है।

दादाश्री : इन लोगों का इनलेट (पानी आने) वाला कॉक बंद हो गया है, लेकिन निकासी वाला कॉक तो खुला है न! अब जो पानी निकल रहा है उसमें अगर थोड़ा डामर पड़ा हुआ होगा तो डामर वाला निकलेगा। उसके लिए क्या अब उन्हें डाँटना चाहिए? जो तूने पहले भरा था, वही अब निकल रहा है। इसके लिए तू उसे डाँट क्यों रहा है? खाली तो करना पड़ेगा न?

अतः इन सभी का व्यवहार उचित व्यवहार है। क्योंकि आपको गुस्सा होते ही अंदर क्या लगता है? 'यह नहीं होना चाहिए।' ऐसा होता है न? एक तरफ गुस्सा करता है और दूसरी तरफ खुद अंदर पछतावा करता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' यह जो अभिप्राय बदल गया, वह आपका व्यवहार है। 'ऐसा नहीं होना चाहिए', उसे कहते हैं उचित व्यवहार। जबकि लोग बाहर का देखते हैं इसलिए मुझसे कहते हैं, आपके महात्माओं का बाहर का व्यवहार कुछ बदलता नहीं है। तब मैंने कहा, 'वह नहीं बदलना है हमें।' तब कहते हैं, 'ऐसा कैसे चल सकता है?' तब मैंने कहा, 'वह सब तो हमारे यहाँ चलता है, भाई।' क्योंकि उसे अगर समझाने बैठूँ तो नहीं समझेगा और मेरा टाइम बिगड़ेगा चार घंटे का।

तय किया, वही व्यवहार

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपना जो व्यवहार है, और जिसे परमार्थ मूल व्यवहार कहा गया है, वह कैसा होता है?

दादाश्री : नहीं, वैसा नहीं है। अपना व्यवहार तो शुद्ध व्यवहार है तो फिर परमार्थ मूल की बात ही नहीं रही। परमार्थ मूल व्यवहार तो किसे कहा जाता है? सद्व्यवहार को। अतः परमार्थ तक पहुँचना है, ऐसा तो सद्व्यवहार में है। अपने यहाँ सद्व्यवहार नहीं है, अपना तो यह शुद्ध व्यवहार है। जिसका कुछ कम रह जाता होगा, उसका

सद्व्यवहार हो जाता होगा लेकिन सद्व्यवहार से नीचे नहीं जाता। अपने यहाँ शुद्ध निश्चय और शुद्ध व्यवहार है क्योंकि पाँच आज्ञा, वह शुद्ध व्यवहार के रूप में दी गई हैं।

सामने वाला गालियाँ देगा, लेकिन तू फाइल का समभाव से *निकाल* कर। फिर यदि सामने वाला कुछ उल्टा बोल जाए, तब खुद तय करता है कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है।' जो तय किया है, उसे व्यवहार माना जाता है। जो बोलता है उसे व्यवहार नहीं माना जाता। झगड़ा-फसाद, मारा-मारी हो जाए तो वह व्यवहार नहीं है, लेकिन 'मारा-मारी नहीं करनी है', उसने जो ऐसा तय किया है कि समभाव से *निकाल* करना है, वही उसका व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : यह आपने जो बताया, उस आशय तक कितने पहुँच पाते हैं?

दादाश्री : आशय तक तो कम पहुँचते हैं लेकिन फिर भी जो बिल्कुल ही वीरान हो गया था, उसमें से कुछ तो उगेगा न!

प्रश्नकर्ता : जो व्यवहार डिस्चार्ज के रूप में है, तो फिर व्यवहार को शुद्ध करने की या होने की बात कैसे आई?

दादाश्री : वह डिस्चार्ज के रूप में है। और यह जिन्हें हमने ज्ञान दिया है, उनके लिए है। इसके बावजूद भी अपना अंदर का जो व्यवहार है वह आदर्श है। यह बाहर के भाग वाला डिस्चार्ज है। अंदर का व्यवहार शुद्ध है।

प्रश्नकर्ता : अंदर का व्यवहार, वह ज़रा स्पष्ट कीजिए, वह ज़रा समझ में नहीं आया।

दादाश्री : वह जो है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह व्यवहार है। बाहर गुस्सा करता है और साथ-साथ अंदर ऐसा रहता है, 'यह नहीं होना चाहिए', वह व्यवहार है। यह शुद्ध व्यवहार है। आत्मा जानकार, और बीच में ऐसा रहता है, 'ऐसा नहीं होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : 'ऐसा नहीं होना चाहिए', यह कहने वाला कौन है?

दादाश्री : वह सब इस प्रज्ञा में से है, लेकिन वह शुद्ध व्यवहार है एक प्रकार का। अत: जब कोई गाली दे रहा होता है तब भी, अंदर अपना उसकी तरफ का व्यवहार बहुत अच्छा होता है। मन बिगाड़े बगैर व्यवहार होता है।

ज्ञानी ही प्राप्त करवाते हैं शुद्ध व्यवहार

शुद्ध व्यवहार प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। हमारी आज्ञा का पालन करने पर जो व्यवहार होता है, वह सारा शुद्ध ही है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध व्यवहार लाना है किसी व्यक्ति को, तो उसमें ज्ञानी की प्रत्यक्ष उपस्थिति की आवश्यकता तो होगी ही न?

दादाश्री : ज्ञानी के बिना तो यह होगा ही किस प्रकार से? ज्ञानी के बिना आत्मा प्राप्त ही नहीं होता न! फिर आगे की तो बात ही नहीं। लेकिन शुद्ध व्यवहार आप सभी का उत्पन्न होगा। किसी का पाँच साल में, किसी का दस साल में, किसी का पंद्रह साल में, लेकिन जैसे-जैसे आज्ञा का पालन करोगे न वैसे व्यवहार शुद्ध होता जाएगा। शुद्ध व्यवहार अर्थात् ऐसा कि किसी को कोई भी त्रास न हो, अड़चन न हो! ज्ञानी के बिना शुद्ध व्यवहार हो ही नहीं सकता न! सद्व्यवहार भी ज्ञानी के बिना नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : पच्चीस साल बाद यदि ज्ञानी नहीं होंगे तब फिर शुद्ध व्यवहार बंद हो जाएगा।

दादाश्री : इन सभी का तो, मैं नहीं होऊँगा तब भी होता रहेगा। इनका ज्ञान है न, पीछे लगाम है फिर। जिसका ज्ञानी पुरुष के साथ संबंध स्थापित हुआ है, ज्ञानी पुरुष पूरी ज़िंदगी, जब तक वह खुद है, तब तक साथ ही रहेंगे। इसलिए उसे इस बारे में कोई कल्पना ही करने जैसा नहीं है। जिनका संबंध नहीं हुआ है या परिचय नहीं हुआ है, उन्हें अन्य रास्ते मिल जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : फिर शुद्ध व्यवहार बंद हो जाएगा?

दादाश्री : नहीं! वह तो, जब क्रमिक के ज्ञानी आएँगे, तब भी शुद्ध व्यवहार चलता रहेगा। जब तीर्थंकर आते हैं तब दो-दो लाख लोगों का शुद्ध व्यवहार रहता है। बाकी, भगवान महावीर तो शुद्ध व्यवहार पूर्वक ही थे। भगवान के जो सारे फॉलोअर्स थे, जो मोक्ष में गए, वे भी शुद्ध व्यवहार पूर्वक गए। शुद्ध व्यवहार के बिना तो मोक्ष में जा ही नहीं सकते न!

आत्मा जानता है और व्यवहार चलता है

जगत् का व्यवहार कल्पित है। हर किसी की कल्पना में जो आया, वह कल्पित व्यवहार। अपने यहाँ शुद्ध व्यवहार है। यानी कि जिस व्यवहार में क्रोध-मान-माया-लोभ का उपयोग नहीं करना होता, वह शुद्ध व्यवहार कहलाता है। अपने यहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ का उपयोग ही नहीं होता और जो गुस्सा करते हो वह क्रोध नहीं है, ऐसा हमने साबित कर दिया है, अतः अपना व्यवहार, शुद्ध व्यवहार है।

फिर आपकी वाइफ को आप व्यवहारिक दृष्टि से वाइफ कहते हो, लेकिन अंदर आप ऐसा जानते हो कि यह 'फाइल नं. टू' है! और आपने बच्चों को भी 'फाइल नं. थ्री' कहा है। इस शरीर को 'फाइल नं. वन' कहते हो। अतः जब से 'फाइल' कहा तभी से आत्मा और शरीर, दोनों अलग ही रहते हैं। वह बात सभी के ध्यान में रहती ही है। साफ, खुल्ली, दीये जैसी स्पष्ट बात! अतः बहुत सुंदर बात है यह, उससे निरंतर समाधि रहती है न, इधर-उधर नहीं होती है न!

खाते-पीते हो, तब भी वह आपका शुद्ध व्यवहार है या अशुद्ध? शुद्ध व्यवहार। क्योंकि आपको खाना ही नहीं है न! अपना व्यवहार क्या कहता है? आहारी आहार करता है। अतः बहुत सुंदर विज्ञान है न अपना? वर्ना एक घंटे के लिए भी समाधि कैसी रहे? ज्ञान के बिना तो किसी का मोक्ष ही नहीं हो सकता। बाहर यह जो है, उसे शुभाशुभ वाला व्यवहार कहा जाएगा, उसे ज्ञान भी नहीं कहा जाएगा।

शुद्ध व्यवहार अर्थात् आत्मा कोई भी दखल नहीं देता। आत्मा जानता रहता है और व्यवहार चलता रहता है, उसी को कहते हैं शुद्ध व्यवहार। फिर चाहे वह कोई भी हो, डॉक्टर अस्पताल चला रहे हों या कोई खेती कर रहा हो या व्यापार हो, वह नहीं देखना है। आत्मा कहाँ बरतता है, उतना ही देखना है। बाकी सारी हिंसा, वास्तव में तो रियली स्पिकिंग है ही नहीं। कोई जीव मरता भी नहीं है और जन्म भी नहीं लेता। ये सारे तो *पुद्गल* के पुतले उत्पन्न हुए हैं और स्पंदन टकराते हैं। तब सामने वाले दूसरे स्पंदन फेंकते हैं। लेकिन उसमें सामने वाले को ऐसी भ्रांति है कि, 'यह मैं हूँ', इसीलिए उसे खुद को दोष लगता है!

शुद्ध व्यवहार किसे कहा जाता है कि व्यवहार में ममता नहीं, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। फिर चाहे कैसा भी हो, उसकी हमें ज़रूरत नहीं है। जिस व्यवहार में ममता होती है वहाँ पर कषाय होते हैं और वह शुद्ध व्यवहार नहीं कहलाता।

नहीं हो सकता शुद्ध व्यवहार आत्मज्ञान के बिना

प्रश्नकर्ता : यदि आत्मा की प्रतीति अच्छी तरह से हो जाए, तभी शुद्ध व्यवहार हो सकता है?

दादाश्री : हाँ, वर्ना शुद्ध व्यवहार हो ही नहीं सकता। शुद्ध व्यवहार कब कहा जाता है, वह आपको बताता हूँ? गधे में आत्मा दिखाई देता है, कुत्ते में आत्मा दिखाई देता है, बिल्ली में आत्मा दिखाई देता है, पेड़ में आत्मा दिखाई देता है, इस तरह सभी को आत्मारूपी देखा जाए तब वह शुद्ध व्यवहार है।

शुभ का कर्ता, वही है सद्व्यवहार

प्रश्नकर्ता : लौकिक व्यवहार में, सद्विचार और सदाचार की जो बात होती है, तो पाँच आज्ञा में रहने से निरंतर वैसा ही रहता है न?

दादाश्री : पाँच आज्ञा का निरंतर पालन करता है तब वह खुद सदाचार में शायद न भी हो, सद्व्यवहार भी न हो लेकिन शुद्ध व्यवहार

में तो रहता ही है। पाँच आज्ञा का पालन करते हैं तब व्यवहार शुद्ध ही रहता है। सदाचार तो शुभ व्यवहार है। सदाचार और सद्व्यवहार, दोनों ही अहंकार के अधीन हैं और शुद्ध व्यवहार निर्अहंकार के अधीन है। शुद्ध व्यवहार में क्या-क्या होता है? चंदूभाई बच्चे को झिड़कते हैं, लेकिन आप खुद अंदर कहते हो कि, 'चंदूलाल, यह क्या कर रहे हो?' तो यहाँ आपका शुद्ध व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : तो शुद्ध व्यवहार में क्या-क्या करना होता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं करना होता। कर्ताभाव भयंकर भ्रांति है। और जो कर्ता वाले हैं शुभ के कर्ता हैं, वह सद्व्यवहार और अशुभ के कर्ता हैं, वह असद्व्यवहार, और आप किसी चीज़ के कर्ता नहीं हो तो वह आपका शुद्ध व्यवहार है। किसी कर्म के कर्ता नहीं हो, ऐसा आपको भान रहता है न? वह भान रहा तो शुद्ध व्यवहार हुआ। व्यवहार शुद्ध हुआ अर्थात् निश्चय शुद्ध हुआ।

अत: अपने यहाँ ये जो पाँच आज्ञा का पालन करते हैं, वह शुद्ध व्यवहार है, बिल्कुल शुद्ध व्यवहार। सद्व्यवहार तो उससे निम्न स्तर वाला कहा जाता है, बहुत निम्न। जगत् ने शुद्ध व्यवहार देखा ही नहीं है। सद्व्यवहार तक ही पहुँचा है जगत्।

सद्व्यवहार की गहन समझ

प्रश्नकर्ता : सद्व्यवहार की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : जिसमें खुद के कषाय सामने वाले को नुकसान नहीं पहुँचाएँ, खुद के कषाय सिर्फ खुद को ही नुकसान पहुँचाएँ, किसी और को नुकसान नहीं पहुँचाएँ तो वह सद्व्यवहार है और वे कषाय औरों को नुकसान पहुँचाएँ तो वह शुभाशुभ व्यवहार है। क्षण भर में कषाय फायदा भी करते हैं और क्षण भर में नुकसान भी पहुँचाते हैं, वह शुभाशुभ व्यवहार है। यह शुभाशुभ व्यवहार तो व्यवहार भी नहीं है। व्यवहार तो सद्व्यवहार होना चाहिए। शुद्ध व्यवहार तो समझो कि ज्ञानी पुरुष की आज्ञा पालन करने से हो पाता है लेकिन संसार में सद्व्यवहार होना

चाहिए। अब, सद्व्यवहार कैसा होना चाहिए कि लोग दुःख दें तो खुद उसे जमा कर ले और 'मुझे खुद किसी को दुःख नहीं देना है', ऐसा भाव रहना चाहिए। अनजाने में शायद दे दिया जाए, बाकी, मन में ऐसा भाव रहना चाहिए कि दुःख तो देना ही नहीं है। लेकिन फिर भी अगर दे दे तो वह सारा पूर्व कर्म के उदय के अधीन है। तभी से वह सद्व्यवहार कहा जाएगा जबकि शुद्ध व्यवहार तो कषाय रहित होना चाहिए।

शास्त्रों के आधार पर अर्थात् महान पुरुषों ने जो बताया है, उस आधार पर व्यवहार रखना, वह सद्व्यवहार है। कैसा व्यवहार रखता है? तो कहते हैं कि मोक्ष में जाने का रास्ता, मोक्ष में जाने के साधन वगैरह, वैसे व्यवहार में आ जाएँ तब कहा जाएगा कि सद्व्यवहार में आ गया जबकि संसार में शुभ व्यवहार को सद्व्यवहार कहा जाता है। हेतु पर आधारित है। संसार में डूबे लोग ऐसा जो सद्व्यवहार करते हैं, उसे शुभ व्यवहार कहा जाता है। जबकि यहाँ पर अध्यात्म व्यवहार को सद्व्यवहार कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : सद्व्यवहार के बारे में फिर से एक बार बताइए।

दादाश्री : मोक्ष में जाने के जो सभी साधन हैं व्यवहार में वह सद्व्यवहार है, और संसार के जो भौतिक साधन हैं, वह शुभ व्यवहार। संसार में सद्व्यवहार नहीं हो सकता। सद्व्यवहार अर्थात् क्या कि दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य, यह सारा सद्व्यवहार कहा जाता है। सामने वाला ऐसा करे या न करे, लेकिन खुद में ये गुण होते हैं, वह सद्व्यवहार।

शुद्ध व्यवहार अहंकार रहित

वास्तव में यथार्थ व्यवहार किसे कहा जाएगा? शुद्ध व्यवहार को। निश्चय प्राप्त होने के बाद में जो बाकी बचा रहता है, उसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। 'जो व्यवहार निर्अहंकारी होता है, जिसमें अहंकार का छींटा तक नहीं होता, वह शुद्ध व्यवहार।' शुद्ध व्यवहार और सद्व्यवहार में अंतर है। सद्व्यवहार अहंकार सहित होता है और शुद्ध

व्यवहार अहंकार रहित होता है। अपने यहाँ यह व्यवहार अहंकार रहित व्यवहार कहा जाता है। चाहे यों देखने में खराब दिखता होगा, ज़रा कच्चा दिखाई दे लेकिन वह अहंकार रहित कहलाता है। अत: अपना तो यह शुद्ध व्यवहार कहा जाता है, सद्व्यवहार नहीं।

शुद्ध व्यवहार अर्थात् अंदर निरंतर संयम रहता है। आंतरिक संयम, बाह्य संयम न भी हो। बाह्य संयम तो यह बाहर दुनिया में सभी जगह होता है, त्यागियों में भी होता है। आंतरिक संयम रहे तभी मोक्ष होता है, फिर यदि बाह्य संयम नहीं होगा तब भी चलेगा। आंतरिक संयम उत्पन्न हो गया तो कल्याण हो जाएगा।

अंतर, शुभ और शुद्ध व्यवहार में

प्रश्नकर्ता : शुद्ध व्यवहार और शुभ व्यवहार में क्या अंतर है?

दादाश्री : शुभ व्यवहार तो अज्ञानी और ज्ञानी दोनों ही कर सकते हैं। क्योंकि ज्ञानी को शुभ व्यवहार नहीं करना होता, अपने आप ही हो जाता है। और जिसने ज्ञान नहीं लिया है, वह यह करता है। अहंकार है न, इसलिए शुभ व्यवहार करता है। अत: आप उनसे कहो कि, 'आप हमें नुकसान पहुँचाते हो। मुझे आपके साथ काम नहीं करना है', तो वे भाई क्या कहेंगे? 'जो नुकसान हो गया उसे भूल जाओ, लेकिन अब नए सिरे से अपना काम अच्छी तरह करो न!' अत: हमने अशुभ किया, लेकिन सामने वाला शुभ करता है। जहाँ चिढ़ना है वहाँ पर चिढ़ता नहीं है और बल्कि हमें मना लेता है। 'अभी तक जो कुछ भी हुआ, उसे भूल जाओ और अब नए सिरे से जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, कोई गुनाह ही नहीं किया हो, इस तरह से भूला देता है न? तभी गाड़ी आगे चलती है, वर्ना गाड़ी खड़ी रहेगी डिरेल होकर। आपने डिरेलमेन्ट हो चुके देखे हैं वे सब? अत: ऐसा शुभ व्यवहार तो अज्ञानी और ज्ञानी दोनों कर सकते हैं। ज्ञानी का सहज भाव से होता है और अज्ञानी को करना पड़ता है।

व्यवहार जागृतिपूर्वक हो तो उसे आत्मा का उपयोग कहा जाता है। शुभाशुभ व्यवहार जागृतिपूर्वक हो तब भी वह आत्मा का उपयोग

है। शुद्ध व्यवहार हो तो वह भी जागृति है। यह शुद्ध व्यवहार आत्मा के अनुभव सहित व्यवहार है और वह शुभ व्यवहार आत्मा के अनुभव रहित व्यवहार है। लेकिन आत्मा को स्वीकार किया है, इसलिए फिर जागृति आती है।

शुभ, अशुभ और अशुद्ध व्यवहार

प्रश्नकर्ता : अशुभ व्यवहार क्या है? शुभ के सामने अशुभ?

दादाश्री : अशुभ व्यवहार तो ये सारे चल ही रहे हैं न! जेब काट लेते हैं या मारा-मारी करते हैं, गालियाँ देते हैं। अशुभ व्यवहार से तो चिढ़ ही मचती है। जब चिढ़ मचे, तो शुभ चला जाता है। इसीलिए ये वकील रखने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : अशुद्ध व्यवहार में शुभ और अशुभ दोनों व्यवहार आ जाते हैं?

दादाश्री : नहीं, अशुद्ध व्यवहार तो है ही नहीं। बहुत कम लोगों का होता है। यूज़लेस, सातवीं नर्क में जाने जैसा इंसान। ये तो शुभ और अशुभ। अशुभ भी अच्छा है। अशुभ व्यवहार अर्थात् पापी, और शुभ व्यवहार अर्थात् पुण्यशाली। लेकिन वह पापी बनकर फिर से पुण्यशाली बनेगा कभी न कभी। लेकिन अशुद्ध व्यवहार वाले का तो ठिकाना ही नहीं पड़ेगा।

शुद्ध के अलावा बाकी सारा व्यवहार अहंकारी...

प्रश्नकर्ता : दादा, यानी कि वह जो 'व्यवहार मूल व्यवहार', जो कहा है, और जो 'परमार्थ मूल व्यवहार' कहा है, उस प्रकार से 'व्यवहार मूल व्यवहार' अर्थात् शुभ-अशुभ व्यवहार?

दादाश्री : हाँ, 'व्यवहार मूल व्यवहार' को तो शुभाशुभ व्यवहार कहा जाता है और यह जो परमार्थ वाला व्यवहार होता है न, वहाँ पर फिर अहंकार रहता है, पॉइज़नस होता है। क्रमिक मार्ग में परमार्थ व्यवहार होता है, वह भी पॉइज़नस होता है।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ ऐसा हुआ न, कि निश्चय प्राप्त हुए बिना जो भी व्यवहार है वह अहंकारी व्यवहार है। ऐसा हुआ न?

दादाश्री : अहंकारी ही कहा जाएगा न! नहीं तो और क्या कहा जाएगा? यह शुभाशुभ व्यवहार अर्थात् अहंकारी व्यवहार।

प्रश्नकर्ता : तो क्या सद्व्यवहार में अहंकार है?

दादाश्री : हाँ! सद्व्यवहार में अहंकार है। यदि अहंकार नहीं हो तो सहज भाव से होता है।

प्रश्नकर्ता : सद्विचार और सद्व्यवहार में अहंकार नहीं हो तो वह ज़्यादा अच्छा है न?

दादाश्री : अहंकार नहीं हो तब तो उसके जैसा उत्तम कुछ है ही नहीं न! अहंकार ही पॉइज़नस है।

प्रश्नकर्ता : जब तक सद्व्यवहार में अहंकार है तब तक वह कमी तो है ही न?

दादाश्री : कमी यानी कैसी कमी? ये कच्चे आलू की सब्ज़ी खाते हैं वैसी कमी!

प्रश्नकर्ता : दादा, सद्व्यवहार में अहंकार तो रहता ही है न? जब तक ज्ञान नहीं मिला हो तब तक।

दादाश्री : हाँ, वह तो रहता ही है। अपना वह व्यवहार अहंकार के बिना सहज भाव से होता है और अपना जो निकाली व्यवहार है न, वह सहज भाव से है।

कषाय खत्म होने के बाद में शुद्ध व्यवहार

प्रश्नकर्ता : यह शुभ व्यवहार और यह अशुभ व्यवहार। इसमें भी व्यवहार शब्द ही रखा है न?

दादाश्री : वह व्यवहार है ही कहाँ? उसे व्यवहार नहीं कहा

जाएगा। उसे तो ऐसा कहते हैं, इतना ही है, नाम ही दिया है। बाकी शुभाशुभ व्यवहार अर्थात् अहंकारी व्यवहार।

प्रश्नकर्ता : अब क्रमिक मार्ग में तो यह सब करते-करते कितने ही जन्म बीत जाते हैं। जबकि यहाँ पर आप क्या करते हैं? पहले अलग कर दिया, उसके बाद में कहते हैं कि अब तेरे व्यवहार को शुद्ध व्यवहार रखना, शुभ व्यवहार रखना, सद्व्यवहार रखना...

दादाश्री : वह सब आपको इसमें करना आ जाएगा अब। शुभ व्यवहार और सद्व्यवहार सहज भाव से उत्पन्न होंगे और शुद्ध व्यवहार खुद के पुरुषार्थ से होगा।

शुद्ध व्यवहार कब माना जाएगा कि जब जीवन आज्ञापूर्वक हो जाता है और जब कषाय असर नहीं डालते। जहाँ पर कषाय शांत हो गए हैं वहाँ पर शुद्ध व्यवहार है, ऐसा समझना।

निश्चय शुद्ध है। व्यवहार शुद्धि किसे कहेंगे? कषाय रहित व्यवहार, वह व्यवहार शुद्धि है। फिर चाहे मोटा हो, पतला हो या दुबला हो, काला हो या गोरा हो, यह सब उसे देखने की ज़रूरत नहीं है लेकिन कषाय रहित है क्या? तो कहते हैं, 'हाँ'। तब वह शुद्ध व्यवहार है।

भादरण जाना था तो यहाँ पर बस खड़ी रही। तो पाँच-छः घंटे देर हो गई, तब भी किसी पर कोई असर नहीं हुआ। हाँ, वे उन भाई से कह रहे थे कि, 'हम तो, संस्था वाले तो, घंटे-आधे घंटे देर हो जाए तो झगड़ा करते हैं', यहाँ पर तो एक भी व्यक्ति पर ज़रा सा भी असर नहीं हुआ। पाँच-पाँच घंटे लेट हो गए फिर भी! यह जो है, वह शुद्ध व्यवहार कहलाता है।

यहाँ पर कोई आए और उसका आचरण ज़रा टेढ़ा हो तो वह औरों को हटाकर (दादा के चरणों में) विधि कर लेता है। लेकिन ऐसा करते हुए भी कषाय नहीं हैं। उसका आचरण उल्टा-सुल्टा है। इस तरह हटाना गलत नहीं कहा जाएगा? हम सब समझते हैं, यहाँ बैठे-बैठे सभी कुछ जानते हैं कि कौन क्या करता है लेकिन हम जानते

हैं कि भले ही तेरा आचरण टेढ़ा है, लेकिन अंदर कषाय नहीं हैं न? उल्टा आचरण तो प्रकृति है, प्रकृति का गुण है। विधि के लिए नाम लेकर किसी को बुलाते हैं तब भी यह भाई बीच में घुसे बगैर नहीं रहता। यहाँ से इस तरह दो लोगों को हटाकर विधि करने बैठ जाता है।

हमारे साथ तो ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती हैं न! अरे, मैं तो दाढ़ी बना रहा होता हूँ तब भी, पैर ऐसे नीचे रखा हो न तो लोग विधि करने बैठ जाते हैं। उन्हें ऐसा नहीं लगता कि, 'अगर ये हिल जाएँगे तो क्या होगा?' अरे, खाना खाते समय भी विधि करना नहीं छोड़ते न! फिर भी शुद्ध व्यवहार है। हम जानते हैं न, कि यह कषाय रहित परिणाम है। उसे मन बिगाड़े बगैर कह दें कि, 'अभी विधि नहीं करनी है, चले जाओ', फिर भी कुछ नहीं।

अब, कषाय कहाँ उत्पन्न होते हैं? जहाँ नियम होते हैं वहाँ कषाय होते हैं। 'अरे, खाते समय नहीं जाना है, वहाँ गड़बड़ मत करना।' तब मन अंदर उल्टा घूमेगा, फिर कषाय बचाव करने की कोशिश करेंगे। यानी कि यहाँ तो कषाय हैं ही नहीं न! जब आना हो तब वापस आते हैं। शायद अगर कभी अंदर भूल हो जाए न, तब वह तुरंत प्रतिक्रमण कर ही लेता है। प्रतिक्रमण करता है या नहीं, तुरंत? अपने आप ही हो जाता है प्रतिक्रमण।

विविध उदाहरण विविध व्यवहारों के

प्रश्नकर्ता : अशुद्ध व्यवहार, अशुभ व्यवहार और शुद्ध व्यवहार, इनके ज़रा एक-एक छोटे-छोटे उदाहरण दीजिए न।

दादाश्री : अशुद्ध व्यवहार यानी क्या? वह दिन भर हिंसा ही करता रहता है। मनुष्य होकर पूरे दिन हिंसा में ही बरतता है। अंतिम ग्रेड की नालायकी वाला व्यवहार। नालायकी की भी अंतिम ग्रेड। यानी कि यदि कोई इंसान, इंसान को मारकर उसका माँस खा जाए तब हमें कहना पड़ेगा कि इसका व्यवहार ही अशुद्ध है।

किसी जीव को, हिरण को मारे, खुद के शौक की खातिर ही मारे तो वह अशुद्ध व्यवहार है। लेकिन यह किस पर लागू होता है? जो बहुत विचारवान नहीं है, बिना बात के मूर्खता करते हैं, फूलिशनेस करते हैं, वहाँ पर ऐसा सारा अशुद्ध व्यवहार होता है।

अब, यदि खुद के बच्चों को खिलाने के लिए हिरण मारे तो वह अशुभ व्यवहार कहा जाएगा। हिंसा करते समय उसे भान रहता है कि, 'मैं यह गलत कर रहा हूँ।'

और तीसरे व्यक्ति ने खुद के बच्चों को खिलाने के लिए हिरण को मारा और बहुत पछतावा किया। 'अरे-अरे! मेरे हिस्से में ऐसा कहाँ से आया?' तब अशुभ में से वह माइनस हो जाता है। यानी कि शुभाशुभ साथ में हों तो वह मिक्सचर। देखो न, इस तरह से भाव कितना काम करता है!

फिर, शुभ व्यवहार अर्थात् सामने वाला हिंसा कर रहा हो फिर भी वह नहीं करता। और दूसरा है, शुद्ध व्यवहार। बीच में सद्व्यवहार आता है, इन साधुओं का। साधुओं के सभी व्यवहार शुभ से भी उच्च स्तर वाले होते हैं।

और शुद्ध व्यवहार, अपना यह व्यवहार शुद्ध व्यवहार कहलाता है। यों हन्ड्रेड परसेन्ट शुद्ध निश्चय है, शुद्धात्मा, अर्थात् व्यवहार भी शुद्ध है। शुद्ध व्यवहार यानी क्या? कि चंदूभाई (फाइल नं.-1) सामने वाले को गालियाँ दे रहे हों और आप खुद चंदूभाई को दूसरे व्यक्ति की तरह देखो तो उसे शुद्ध व्यवहार कहा जाएगा। गालियाँ देते समय कभी भी इस तरह से (जुदा) नहीं देखा जा सकता, हालांकि कुछ हद तक के व्यवहार को इंसान देख सकता है। खुद अपने व्यवहार को देखना, वह शुद्ध व्यवहार है। ऐसी इच्छा वाले हैं अपने महात्मा। जितना हो सके उतना इसके लिए प्रयत्न करते हैं। वर्ना फिर भी व्यवहार को जानते तो हैं ही कि, 'यह व्यवहार है, यह मैं नहीं हूँ।' तभी से शुद्ध व्यवहार का पता चलता है।

शुद्ध व्यवहार के आधार पर शुद्ध निश्चय

शुद्ध निश्चय शुद्ध व्यवहार पर खड़ा है। सामने वाले के साथ व्यवहार शुद्ध होना चाहिए और उस पर शुद्ध निश्चय होना चाहिए। जहाँ व्यवहार नहीं है, वहाँ पर निश्चय नहीं है!

प्रश्नकर्ता : तो दादा, इसमें पहले निश्चय आ जाता है, उसके बाद व्यवहार शुरू होता है न?

दादाश्री : नहीं, दोनों साथ में ही होते हैं। दोनों अलग हुए ही नहीं हैं कभी भी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पहले निश्चय प्राप्त होता है उसके बाद व्यवहार है न?

दादाश्री : वह तो, व्यवहार की उपस्थिति में ही निश्चय प्राप्त हो जाता है। निश्चय प्राप्त होना अर्थात् अनुभव होना। अनुभव नहीं हो तो निश्चय प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : जिसे शुद्ध व्यवहार कहते हैं, वह तो अनुभव होने के बाद में ही आता है न?

दादाश्री : उसके बाद में शुद्ध व्यवहार आता है।

प्रश्नकर्ता : तो जब तक निश्चय का ज्ञान नहीं हो तब तक शुद्ध व्यवहार माना ही कैसे जाएगा?

दादाश्री : निश्चय शुद्ध है इसलिए व्यवहार शुद्ध हो गया। यानी उसका बेस (आधार) कब बनता है कि निश्चय में आ जाए तभी व्यवहार शुद्ध हो सकता है। अर्थात् जो व्यवहार था, वह निश्चय में आने के बाद शुद्ध ही हो गया और अभी बेस शुद्ध व्यवहार का है।

यदि बेस नहीं होता न तो जिसे शुद्ध निश्चय कहते हैं न, कि, 'मैंने आत्मा प्राप्त कर लिया है', तो किस पर बैठा है तेरा आत्मा? वह मुझे बता। कोई कहे, 'व्यवहार की क्या ज़रूरत है?' तो कहते

हैं, 'आत्मा भी गया, भाई। जहाँ व्यवहार नहीं है वहाँ आत्मा नहीं है।' व्यवहार के बिना चलाया है इसे लोगों ने, कि व्यवहार की कोई ज़रूरत नहीं है। उपादान की ही ज़रूरत है, निमित्त की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अब पूरे ही व्यवहार को डिस्चार्ज कह दिया है हमने। तो फिर उसके आधार पर निश्चय खड़ा है, ऐसा कैसे हो सकता है?

दादाश्री : लेकिन परेशानी क्या है इसमें? जब तक व्यवहार है तभी तक यह बैठेगा न! नहीं होगा तब फिर व्यवहार है ही नहीं न, ज़रूरत भी नहीं है न! जब तक ये डिस्चार्ज कर्म हैं तब तक आत्मा फिल्म देखता रहेगा। बाद में उसे पूरे जगत् की फिल्म देखते रहना है। ये कर्म कब खपेंगे? जब शुद्ध के साथ ही रहेगा, तब।

व्यवहार यथायोग्य होना चाहिए। वहाँ पर कोई शिकायत करे कि, 'साहब, आत्मा-वात्मा हो गया, अब व्यवहार की क्या ज़रूरत है?'

प्रश्नकर्ता : वह तो बाहर के लोगों की बात हुई।

दादाश्री : यहाँ के लोगों की। बाहर के लोगों को क्या झंझट है? जहाँ निश्चय है ही नहीं वहाँ पर, बाहर के लोगों के पास तो व्यवहार ही है न! यह तो निश्चय वालों के लिए बताया है। निश्चय व्यवहार सहित होना चाहिए। व्यवहार के आधार पर निश्चय होना चाहिए। जहाँ निश्चय है लेकिन व्यवहार नहीं है वहाँ पर निश्चय भी नहीं है। अतः अपना यह अक्रम मार्ग है, इसमें तो व्यवहार के आधार पर निश्चय खड़ा है। यानी कि शुद्ध व्यवहार और शुद्ध निश्चय है। बाकी सभी जगह आत्मा की बातें होती हैं, वहाँ कभी भी व्यवहार की बात नहीं होती। व्यवहार नहीं है तो आत्मा की पूर्ण दशा नहीं है।

निश्चय को निश्चय में रखना और व्यवहार को व्यवहार में रखना, इसे कहते हैं शुद्ध व्यवहार। फिर भी व्यवहार का और निश्चय का कोई लेना-देना नहीं है।

पाँच आज्ञा में संपूर्ण व्यवहार धर्म

जहाँ शुद्ध व्यवहार नहीं है, जहाँ पर व्यवहार की फाउन्डेशन ही नहीं है वहाँ पर निश्चय जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। और व्यवहार शुद्धि के बिना निश्चय कभी काम ही नहीं करेगा।

शुद्ध व्यवहार के इस आधार पर शुद्ध निश्चय खड़ा है। शुद्ध व्यवहार का आधार जितना कच्चा उतना ही निश्चय को प्राप्त नहीं कर सकोगे। क्योंकि निश्चय का नियम ऐसा है कि शुद्ध व्यवहार होगा तभी निश्चय शुद्ध होगा। अपने यहाँ पर तो 'फुल' (पूर्ण) व्यवहार सहित धर्म है। 'फुल' निश्चय और 'फुल' व्यवहार। हमारी जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं न, वह संपूर्ण व्यवहार धर्म है।

अर्थात् हम तो क्या कहते हैं कि अपना यह शुद्ध व्यवहार और शुद्ध निश्चय वाला मार्ग है। अक्रम विज्ञान है। हमने जो आज्ञाएँ दी हैं उन आज्ञाओं के अधीन आपका शुद्ध व्यवहार है। फिर यदि पालन नहीं करे, कम पालन करे, वह बात अलग है। लेकिन जो व्यवहार आज्ञाधीन व्यवहार है, वह शुद्ध व्यवहार है।

ड्रामेटिक को ही कहते हैं शुद्ध व्यवहार

मैं तो क्या कहता हूँ, वास्तव में आत्मा प्राप्त हुआ है, ऐसा कब कहा जाएगा कि शुद्ध व्यवहार होना चाहिए। व्यवहार ड्रामेटिक होना चाहिए। कोई कहे, 'चाय पीनी पड़ेगी आपको।' तब वह मना करता है कि, 'मैं नहीं पीता।' तब वह आग्रह करने लगता है। वह कहता है, 'पीनी पड़ेगी।' दूसरा कहता है, 'नहीं पीनी है।' और फिर कप गिर गए, कप और रकाबी दोनों ही टूट गए। क्या व्यवहार ऐसा होना चाहिए? मैं तो कहता हूँ कि, 'लाओ भाई, कितनी पीऊँ?' यदि वह कहे, 'एक रकाबी।' तो पी लेंगे। नहीं पीते हों तब भी चाय पी लेंगे। ड्रामा कितना अच्छा दिखाई देता है!

और अपना व्यवहार तो असल व्यवहार है, शुद्ध व्यवहार है। शुद्ध व्यवहार पर शुद्ध निश्चय है। शुद्ध व्यवहार अर्थात् आपके घर बाहर

के लोग आते हैं न, तो उन्हें ज्ञान नहीं हो और आप उनसे कहो कि, 'भाई, ज़रा चाय–वाय पीकर जाओ न।' तब कहे, 'अरे, आपको क्या ज़रूरत है अब (ऐसा व्यवहार करने की)? आप तो ज्ञानी हो गए।' तब कहते हैं, 'नहीं! व्यवहार है न?' बाहर वाले यों ही शिकायत न करने लगें कि, 'चंदूभाई तो दादा के पीछे पड़े हैं न, तो अब व्यवहार का ध्यान ही नहीं रखते।' ऐसा नहीं होना चाहिए। व्यवहार ड्रामेटिक होना चाहिए, सभी बातों में। टोपी–वोपी पहनाकर, टीका–वीका लगाकर, बेटी की शादी करवाओ, नई धोती–वोती पहनकर!

नहीं रुकेगी अब मोक्ष की गाड़ी

व्यवहार में तो रचे–बसे रहना चाहिए और निश्चय को छोड़ना नहीं चाहिए और व्यवहार में रचे–बसे रहकर निश्चय को ध्यान में रखना चाहिए।

आप चंदूभाई हो और डाकोर के हो, वह भूलना नहीं चाहिए। आप नवसारी नौकरी करने जाओ तो कहना कि, 'मैं नवसारी का हूँ', लेकिन उसकी वजह से कहीं आपका मूल छूट नहीं जाना चाहिए। बाकी, जितने भी भेस मिलें उतने धरने ही पड़ेंगे न? उससे तो कोई छुटकारा ही नहीं है, ऐसा कहना। फिर आप ही सारे भेस उत्पन्न करते हो। अब यह तो अच्छा हुआ, यह ज्ञान मिल गया तो भेस बंद हो जाएँगे, वर्ना भेस ही चलते रहते हैं। ऐसे करते–करते अपनी गाड़ी मोक्ष में जाएगी। दो बैल जोत दिए हैं न! दो बैल कौन से? व्यवहार और निश्चय के। तो जिसने ये दोनों बैल रखे हैं, उनकी गाड़ी कभी भी रुकेगी नहीं।

अक्रम विज्ञान व्यवहार को करता है पार

अपने इस वीतराग विज्ञान में... अपना अक्रम विज्ञान संपूर्ण व्यवहार–निश्चय वाला मार्ग है। क्योंकि व्यवहार बिल्कुल ही संयमपूर्वक होता है। व्यवहार कैसा होता है? गालियाँ देने वाला चंदूभाई है और खुद मना करता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह आपका संयम

है। और आपके संयम की कीमत है, चंदूभाई के संयम की कीमत नहीं है। यानी कि यह व्यवहार संयमपूर्वक है इसलिए इस व्यवहार को हम शुद्ध व्यवहार कहते हैं और शुद्ध व्यवहार के आधार पर कम्प्लीट शुद्ध निश्चय खड़ा है। जहाँ शुद्ध व्यवहार है वहाँ आत्मा है। जहाँ व्यवहार संयमपूर्वक नहीं है वहाँ ऐसा नहीं माना जा सकता कि आत्मा प्राप्त हो सकेगा। व्यवहार संयमपूर्वक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी महात्माओं के समझने में ज़रा गड़बड़ हो जाती है।

दादाश्री : नहीं। यह ज्ञान देने के बाद आपका व्यवहार, शुद्ध व्यवहार ही है लेकिन वह मानता है उल्टा। क्रिया हिंसक दिखाई देती है लेकिन व्यवहार शुद्ध ही है।

प्रश्नकर्ता : दादा का ज्ञान मिलने के बाद अंदर से संयम परिणाम उत्पन्न होते हैं।

दादाश्री : संयम ही है। खुद अलग ही है। अंदर संयम परिणाम के कारण उसे शुद्ध व्यवहार ही कहते हैं। यह परिणाम, इस पर संयम रहने के कारण यह शुद्ध ही कहलाता है। यह अलौकिक विज्ञान है! व्यवहार में यों आर-पार निकल जाना चाहिए। अपना ज्ञान व्यवहार के पार उतार दे, ऐसा है। अलौकिक विज्ञान है। विज्ञान यदि जानने में आ जाएगा तो कल्याण हो जाएगा पूरे जगत् का!

गालियाँ देने वाले में भी दिखाई देते हैं शुद्धात्मा

हमारा व्यवहार कैसा है?

प्रश्नकर्ता : टॉप, सर्वोच्च।

दादाश्री : यानी कि ऐसा होना चाहिए। इस जन्म में वे (महात्मा) खुद समझे हैं। फिर भी ऐसा समझ में आ गया है कि दादा का यह व्यवहार उच्च व्यवहार है तो अगले जन्म में इनका व्यवहार वैसा ही हो जाएगा।

और दूसरे लोग जो हिसाब चुकाते हैं वह अपना हिसाब है। कोई माला पहनाने आता है, पैर छूने आता है तो वह भी अपना हिसाब है। फिर कोई मारे तब भी अपना हिसाब। आपको कोई गालियाँ दे, उस समय उसमें आपको शुद्धात्मा ही दिखने चाहिए। व्यवहार नहीं दिखना चाहिए। व्यवहार आपका हिसाब है। आपका भुगतने का जो हिसाब था, वह खत्म हो रहा है। इसीलिए वह ऐसा व्यवहार कर रहा है लेकिन वह खुद तो शुद्ध ही है। यदि उसके प्रति शुद्धता की दृष्टि रहे तो उसे शुद्ध निश्चय कहा जाएगा। आप शुद्ध हो और जगत् शुद्ध है। जितना शुद्ध उपयोग, उसे कहते हैं शुद्ध निश्चय, वही शुद्ध आत्मरमणता और तभी शुद्ध व्यवहार रहेगा। जितना शुद्ध निश्चय होगा उतनी ही व्यवहार शुद्धता रहेगी। एक तरफ यदि निश्चय कच्चा है, अशुद्ध है तो उतनी व्यवहार अशुद्धता।

निश्चय प्राप्ति के बाद ही शुद्ध व्यवहार

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार से भी कहा है न, कि निश्चय प्राप्त होने के बाद में जो बाकी बचा, वह शुद्ध व्यवहार, उसी को व्यवहार कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, निश्चय प्राप्त होने के बाद में। लेकिन जब तक (निश्चय प्राप्त) नहीं हो जाता तब तक सारा व्यवहार रुक जाता है। तब तक व्यवहार को व्यवहार भी नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : समझ में नहीं आया ज़रा। वह बताया न, कि, 'निश्चय प्राप्त हुए बिना व्यवहार को व्यवहार नहीं कहा जाता', तो कहते हैं कि, 'पहले तो व्यवहार है और बाद में निश्चय प्राप्त हुआ न?'

दादाश्री : पहले व्यवहार था ही नहीं। जगत् के लोग जिसे व्यवहार कहते हैं, वे तो बिना समझे बात करते हैं। व्यवहार अर्थात् आधारित होना चाहिए। क्यों यह व्यवहार वास्तव में व्यवहार नहीं है? तो कहते हैं, 'यह जो व्यवहार है न, वह आधारित है', यानी कि यदि निश्चय प्राप्त हो गया है, 'मैं तो आत्मा हो गया' तो अब क्या रहा?

तो कहते हैं, 'व्यवहार बाकी रहा।' 'तुम्हें आत्मा प्राप्त हुआ है तो क्या अब एकदम से मोक्ष में चले जाओगे?' 'नहीं भाई, अभी व्यवहार तो बाकी है।' अतः तभी से व्यवहार की शुरुआत होती है। अंदर से निश्चय निकाल दिया जाए तो जो बाकी बचा, वह व्यवहार।

तेरा खड़ा किया हुआ व्यवहार है यह। यू आर रिस्पॉन्सिबल। अतः इसका निपटारा लाकर *निकाल* कर दे पूरा।

प्रश्नकर्ता : और निश्चय प्राप्त होने के बाद में उसे शुद्ध व्यवहार कहा जाता है न?

दादाश्री : हाँ, उसके बाद शुद्ध व्यवहार कहा जाता है। कोई भी मोक्षमार्ग व्यवहार व निश्चय के बिना नहीं होता। वीतराग, व्यवहार और निश्चय, दोनों पंखों से मोक्ष में गए थे।

नहीं होनी चाहिए खेंच व्यवहार की

निश्चय नहीं मिला तो व्यवहार बेकार चला जाएगा। व्यवहार, निश्चय को लाने के लिए है और यदि निश्चय नहीं प्राप्त हुआ तो बेकार चला जाएगा। और निश्चय प्राप्त होने के बाद व्यवहार की *खेंच* नहीं रहती। *खेंच* टूट जाती है। हर साल किसी जगह पर हम जाते हैं तो जाना ही पड़ेगा, ऐसी सारी *खेंच* नहीं रहती। वैसे संयोग मिलें तो जाएँगे। कहीं और जाने के संयोग मिल जाएँ तो वहाँ भी जाना, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन उस व्यवहार में *खेंच* नहीं रहनी चाहिए।

निश्चय हाथ में नहीं आया है तो व्यवहार की कोई कीमत ही नहीं है। बाकी, व्यवहार की कीमत तो निश्चय आने के बाद में ही है। बिना गवर्नर के हस्ताक्षर वाले नोट सब बेकार नोट हैं।

हम बारात तो पाँच सौ लोगों की ले गए पटेलों की, लेकिन अगर दूल्हे राजा गुम हो गए तो हम किसके यहाँ जाएँगे? लड़की वालों के वहाँ जाएँगे तब वे कहेंगे कि, 'दूल्हे राजा के बिना क्यों आए हो? जाओ लेकर आओ न।' तो यह पूरा व्यवहार दूल्हे राजा के बिना

बारात जैसा है। व्यवहार को कब संभालते हैं? जब दूल्हे के साथ बारात जाए, तब। बारात की कीमत है या दूल्हे की?

प्रश्नकर्ता : दूल्हे की ही न!

दादाश्री : बारात में दूल्हा लंगड़ा होगा तो भी चलेगा लेकिन अगर बाराती सुंदर होंगे तब भी नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् व्यवहार पहली ज़रूरत है।

दादाश्री : हाँ, अतः व्यवहार की ज़रूरत है, फिर भी उसे पकड़े नहीं रहना है। पकड़े रहना है निश्चय को, ज़रूरत इसकी है।

व्यवहार रहित निश्चय पंगु है। पलंग चार पैरों वाला न हो तो किस काम का? आत्मा ऐसा है, आत्मा वैसा है, ऐसा है, वैसा है, फिर भी वह है, ऐसे शब्द बोलने से कुछ हो नहीं जाता। अपना व्यवहार दिखाओ? व्यवहार का बेस (आधार) होगा तभी निश्चय खिलेगा। अपना व्यवहार आदर्श होना चाहिए।

अंत तक रहा व्यवहार

जो निश्चय व्यवहार के बिना है, वह निश्चय गलत है। 'अपना' विज्ञान इस बेस पर खड़ा है कि समभाव से *निकाल* करो।

व्यवहार शुद्ध होगा तो खुद निश्चय में आ ही गया समझो! निश्चय में कोई कमी नहीं रहनी चाहिए। निश्चय अर्थात् निश्चय। उसमें कुछ कमी नहीं रखनी चाहिए। लेकिन व्यवहार में भी अगर कमी रहेगी तो उसे भूल कहा जाएगा। व्यवहार साफ, निर्मल होना चाहिए। वीतराग, राग-द्वेष रहित, ज़रा भी किसी को दुःख न हो। व्यवहार में कच्चा रह जाए तो निश्चय में भी कमज़ोर रह जाता है। अकषायी व्यवहार ही वास्तव में व्यवहार है। खुद के स्वरूप का *लक्ष,* वह निश्चय है और उससे मोक्ष होता है। अब लोग व्यवहार को छोड़कर भाग गए। वे विधुर ही रहे, पत्नी नहीं हो तो क्या करोगे?

व्यवहार छोड़ने का कब कहा है? भगवान ने ऐसा नहीं कहा,

यह तो मैं कह रहा हूँ कि जब यह भोजन बंद हो जाएगा तब व्यवहार छोड़ देना। यदि व्यवहार नहीं है तो निश्चय है ही नहीं। व्यवहार है तो निश्चय है, वर्ना यदि आप व्यवहार को दूर करोगे तो निश्चय है ही नहीं। अपने तो पाँच वाक्य हैं न, वे संपूर्ण व्यवहार हैं और वे शुद्ध व्यवहार हैं। फिर भी जलेबी खाने देते हैं, दही बड़े खाने देते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आज दादाजी व्यवहार में किसी की शादी में जाते हैं या ऐसा कुछ रहता है। जबकि दीक्षा लेने वाले जब सब छोड़ देते हैं उसके बाद तो वे व्यवहार में नहीं जाते होंगे न कहीं भी? अपने में और उनमें इतना फर्क है न?

दादाश्री : व्यवहार ही था न, वे निश्चय में आए ही कब थे? यानी लोगों को ऐसा लगता है कि यह सब छोड़ दिया, लेकिन वह तो कर्म के उदय से छूट गया। अब मेरा यह कर्म के उदय से छूट गया इसलिए घर नहीं जाता हूँ लेकिन क्या यह व्यवहार नहीं है? अब मैं औरों के घरों में ही घूमता हूँ न! जब तक इस शरीर में हूँ तब तक व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा का जो व्यवहार है, वैसा ही महावीर भगवान का व्यवहार था? ऐसा पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : उनका व्यवहार ज़रा उच्च प्रकार का था। तीर्थंकर भगवान थे इसलिए शुरू से ही, जन्म से ही व्यवहार उच्च प्रकार का था। जन्म से ही तीन प्रकार के ज्ञान के धारक थे वे। अत: उनकी तो बात ही नहीं हो सकती हम से। बहुत सुंदर! उनकी बात की तुलना ही नहीं की जा सकती!

व्यवहार व निश्चय का नहीं है कोई संबंध

प्रश्नकर्ता : सत्ज्ञान जानने वाला कौन?

दादाश्री : वह जो जानने वाला है, वह जो जानने की इच्छा रखता है, वह है। जिसे इच्छा है जानने की, वह है। आत्मा को ऐसी इच्छा नहीं है। व्यवहार आत्मा को इच्छा है यह जानने की। अत: उसकी इच्छा है।

प्रश्नकर्ता : दोनों अलग हैं या एक हैं?

दादाश्री : व्यवहार से अलग हैं, निश्चय से एक हैं। ज्ञान मिलने के बाद अब तू एक ही हो गया। अभी तू वहाँ गया था, वहाँ दो अलग दिखाई दे रहे थे। वापस से यहाँ बैठ गया तो फिर एक हो गया।

व्यवहार तो अलग है ही न! आप अलग बैठे हो और ये साहब अलग बैठे हैं, एक ही जगह पर दो नहीं रह सकते? इसे कहते हैं कि व्यवहार अलग है। और निश्चय एक ही है। आत्मा एक ही स्वभाव वाला है, एक सरीखा ही है।

व्यवहार के बिना निश्चय बेकार है, लँगड़ा कहा जाएगा। व्यवहार अच्छा होना चाहिए, फिर न रहे तो वह बात अलग है, लेकिन हमें अच्छा रखना चाहिए। न रहे, वह तो 'व्यवस्थित' के ताबे में है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार और निश्चय दोनों अलग नहीं लगते, एक ही हैं तो फिर व्यवहार की बात करने की ज़रूरत ही क्या है?

दादाश्री : व्यवहार के आधार पर तो हम रहते हैं। खाना-पीना, वह सारा व्यवहार नहीं है क्या?

प्रश्नकर्ता : तो यह व्यवहार कहाँ से आया? उसका बेसिस (आधार) क्या है?

दादाश्री : सारे अपने ही कर्म हैं। जो सारे कर्म खपाने बाकी रहे हैं, वे। मोक्ष में जाते हुए जितना हिसाब साफ करना बाकी रहता है, वह व्यवहार है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यवहार किसके आधार पर है, निश्चय के आधार पर नहीं है?

दादाश्री : निश्चय तो अलग ही बात है, लेकिन व्यवहार का आधार निश्चय नहीं कहलाता न! व्यवहार सारा इफेक्ट है। यानी कि कॉज़ेज़ के आधार पर व्यवहार हुआ है और यह इफेक्ट है इसलिए भुगतना

ही होगा। इसमें तो चलेगा ही नहीं न! इसीलिए हमने कहा है कि इन सभी फाइलों का समभाव से *निकाल* करो, आप ज्ञाता-द्रष्टा हो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अच्छा व्यवहार, वह निश्चय में से जन्म लेता है न?

दादाश्री : नहीं। निश्चय में से जन्म ले तब तो फिर निश्चय को उसकी मदर कहा जाएगा। निश्चय उसका संबंधी है ही नहीं। निश्चय किसी की मदर भी नहीं बनता और फादर भी नहीं।

देह और आत्मा दोनों जिस प्रकार एक-दूसरे के साथ में ही हैं, उसी प्रकार ये व्यवहार और निश्चय, दोनों साथ में रहने चाहिए। आत्मा निश्चय है और शरीर व्यवहार है, दोनों का काम पूरा होना चाहिए। देह जो भूमिका अदा करता है, वह सारा व्यवहार कहलाता है। अतः संपूर्ण निश्चय हो जाने के बाद में फिर उसे व्यवहार की ज़रूरत नहीं रहती। लेकिन जब तक शरीर है तब तक व्यवहार की ज़रूरत है। कुछ ही समय में मुक्ति होने वाली हो तो कम ही व्यवहार रहता है। बहुत देर बाद मुक्ति होने वाली हो तो व्यवहार ज़्यादा रहता है। लेकिन व्यवहार तो होना ही चाहिए। व्यवहार के बिना तो चलेगा ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : जब तक शरीर है तब तक व्यवहार की ज़रूरत है न?

दादाश्री : शरीर है तब तक व्यवहार रहेगा ही। हमें नहीं रखना हो तब भी रहता है। महावीर भगवान वहाँ उपदेश देते थे, वह भी जब तक शरीर था तभी तक वह व्यवहार था और अभी उनसे कहें कि अब उपदेश दीजिए, तो वे कैसे दे पाएँगे?

प्रश्नकर्ता : शरीर अनादिकाल से है? कहाँ से आया वह?

दादाश्री : जो वस्तु अनादिकाल से है, उसके लिए यदि ऐसा पूछें कि, 'वह कहाँ से आई' तो उसकी आदि (शुरुआत) हुई ऐसा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : शरीर अनादिकाल से है या नहीं?

दादाश्री : अनादिकाल से ही है न! यह बला अनादिकाल से है। यह शरीर अर्थात् बला। मन-वचन-काया की बलाएँ हैं। तो इनमें, पेड़ में मन नहीं होता। उनकी सिर्फ काया ही होती है और अंदर बहुत थोड़ा सा मन होता है। कोई काटे तब उसे पता चलता है। तब तक ऐसा पता नहीं चलता। कुछ पेड़ ऐसे होते हैं जैसे कि अशोक, उन्हें यदि स्त्रियाँ हाथ लगाएँ तो अंदर से खिल उठते हैं और यदि छुईमुई को हाथ लगाएँ तो वह संकुचा जाती है।

प्रश्नकर्ता : और फिर शरीर अनादिकाल तक रहेगा?

दादाश्री : अज्ञानता से शरीर रहा हुआ है। अज्ञान चला जाएगा तो शरीर छूट जाएगा और यह व्यवहार भी छूट जाएगा। अज्ञान से यह व्यवहार रहा हुआ है। खुद के स्वरूप के अज्ञान की वजह से ही यह रहा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : तो व्यवहार और निश्चय दोनों में ही जागृति रखनी पड़ेगी न?

दादाश्री : नहीं। निश्चय में आपको कुछ भी नहीं करना है। निश्चय का मुझे देखना है, आपके लिए सिर्फ व्यवहार ही। निश्चय का आपको नहीं देखना है।

व्यवहार में वीतरागता नहीं आ रही हो, तो फिर निश्चय प्राप्त नहीं हुआ है! निश्चय तो शुद्ध ही है लेकिन आपको लाभ नहीं मिलेगा। जितना आप व्यवहार को शुद्ध करोगे उतना ही आपको प्रकट होगा।

प्रश्नकर्ता : और निश्चय हुए बिना व्यवहार आता ही नहीं है।

दादाश्री : उस व्यवहार की कीमत ही नहीं है। जब तक उस पर निश्चय की मुहर नहीं लग जाती, तब तक व्यवहार की कीमत ही नहीं है।

नहीं हटा सकते व्यवहार को

प्रश्नकर्ता : यदि व्यवहार को अगर हटा दें, तो चल ही नहीं सकता।

दादाश्री : व्यवहार के बिना निश्चय किस प्रकार से रहेगा? निश्चय अर्थात् क्या? कोई दूसरी अनिश्चय वाली चीज़ होनी चाहिए तभी निश्चय है। सिर्फ निश्चय होता होगा? एक अनिश्चय वाली चीज़ होगी तभी निश्चय है। एक टेम्परेरी चीज़ हो तो दूसरी परमेनन्ट वस्तु होती है, सनातन वस्तु होती है।

प्रश्नकर्ता : जहाँ कल्चर्ड मोती होते हैं, वहीं पर सच्चे मोती होते हैं।

दादाश्री : अभी पूरे वर्ल्ड में कल्चर्ड मोती हैं तो हम ऐसा समझ जाते हैं कि पहले कभी सच्चे मोती रहे तो होंगे, वर्ना कल्चर्ड बनते नहीं। उस पर से समझ लेना चाहिए। अतः इन व्यवहार वालों ने क्या कहा कि निश्चय की ज़रूरत नहीं है। निश्चय वालों ने क्या कहा है कि व्यवहार की ज़रूरत नहीं है। वे दोनों ही भटक मरे। हिन्दुस्तान में दोनों ही भटक मरे हैं। आत्मा की बातें करते हैं लेकिन भटकते रहते हैं। अनंत जन्मों तक भटकना नहीं छूटता। जहाँ व्यवहार और निश्चय समानतापूर्वक हैं, तरीके से हैं, वहीं पर मोक्ष है।

व्यवहार में भी अगर निश्चय हो जाए तो भूल हो जाती है, भटकने का धंधा। यदि निश्चय में ही निश्चय हो गया तो कल्याण हो जाएगा। व्यवहार का निश्चय करने जाते हुए कई लोग भटक मरे हैं।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि वह व्यवहार उसके हाथ में है ही नहीं, वह तो परसत्ता है।

दादाश्री : हाँ, परसत्ता है। कर्म हम से स्वसत्ता मनवाते हैं। जो कभी भी खुद की सत्ता में नहीं आया है, उसे। उसे तो स्वच्छंद कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : निश्चय का निश्चय अर्थात् क्या दादा?

दादाश्री : निश्चय यानी कि वह जो वास्तव में सार है। और व्यवहार यानी सतही और निश्चय, वह आत्मा है। शुद्ध वस्तु निश्चय

कहलाती है। तत्त्व वस्तु निश्चय कहलाती है और अवस्थाएँ व्यवहार कहलाती हैं। जो अविनाशी होती है, उसे निश्चय कहा जाता है। उसी का यदि निश्चय हो गया तो काम हो गया और पूरे जगत् को व्यवहार में ही निश्चय बैठ गया है, उसी से भटकन है। 'अब आत्मा हो गया,' कहते हैं। *पुद्गल* को ही आत्मा मानते हैं। कुछ लोग क्रियाजड़ हो गए हैं। क्रियाजड़ किसे कहते हैं? तो कहते हैं, क्रिया को ही आत्मा मानते हैं। देहाध्यास को ही आत्मा मानते हैं, वही भटकन है। अब, देहाध्यास छूटेगा तभी निश्चय हाथ में आएगा। उसका निश्चय हो गया कि सब हो चुका। आपको निश्चय तो हो चुका है, ऐसा कि अब फिर डिगे नहीं।

पुद्गल व्यवहार और चेतन निश्चय

जो निश्चय का विस्तार करने गया उसका व्यवहार कच्चा रह गया। उसका मोक्ष नहीं होगा। जो व्यवहार का विस्तार करने गया उसका निश्चय कच्चा रह गया। उसका भी मोक्ष नहीं होगा। जो व्यवहार और निश्चय दोनों में उदासीन है उसका मोक्ष होगा।

किसी एक पक्ष में नहीं पड़ना चाहिए। इस शरीर में दोनों रहे हुए हैं, व्यवहार और निश्चय। दोनों एक ही जगह पर रहे हुए हैं। *पुद्गल* व्यवहार है, चेतन निश्चय है। किसी का कुछ कम-ज़्यादा है ही नहीं। यह *पुद्गल* ज्ञेय व दृश्य है और चेतन ज्ञाता व द्रष्टा है। अन्य कोई अंतर नहीं है। इन दोनों को नहीं समझने के कारण भ्रांति उत्पन्न हो गई है। तो कहते हैं, *पुद्गल* खुद ही जानने वाला बन गया। उसने जाना, 'यह मैं ही देख रहा हूँ।' 'अरे भाई, तो कर कौन रहा है?' तो कहता है, 'किया भी मैंने ही।' करना और जानना दोनों का इकट्ठे हो जाना, उसी को कहते हैं दोनों धाराओं का एक हो जाना। स्वपरिणाम और परपरिणाम, दोनों धाराएँ साथ में चलीं, उसे कहते हैं भ्रांति। दोनों धाराएँ निजस्वरूप में रहें, उसे कहते हैं ज्ञान। दोनों धाराएँ अपने-अपने स्वभाव में ही रहें। देखने वाली धारा देखती रहे, वह देखना नहीं छोड़े और दृश्य, दृश्यभाव को नहीं छोड़े।

स्वाभाविक अर्थात् निश्चय और विभाविक है व्यवहार

व्यवहार क्या है, इतना ही यदि समझ जाए तब भी मोक्ष हो जाएगा! यह व्यवहार सारा रिलेटिव है और ऑल दिस रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट एन्ड रियल इज़ द परमानेन्ट। इस जगत् में सिर्फ आत्मा ही नहीं है, इस जगत् में और भी बहुत सी चीज़ें हैं। जितनी वस्तुएँ रियल हैं वे सब परमानेन्ट हैं और जितनी रिलेटिव हैं वे सब टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं। यानी यह रिलेटिव, यह सारा व्यवहार है और व्यवहार सारा नाशवंत है। इस नाशवंत पर *पोतापन* का आरोप करना वह रोंग बिलीफ है। आप निश्चय से ऐसा मानते हो, 'मैं चंदूभाई हूँ, इस स्त्री का पति हूँ', ये रोंग बिलीफें हैं।

प्रश्नकर्ता : निश्चय अर्थात् क्या?

दादाश्री : निश्चय अर्थात् क्या कि जो स्वाभाविक चेन्जेबल है। हर एक चीज़ चेन्ज होती ही रहती है। यानी उसके पर्याय बदलते रहते हैं लेकिन स्वाभाविक बदलते रहें तो वह निश्चय है और विभाविक बदलते रहें तो वह व्यवहार है। *पुद्गल* की यह दशा विभाविक दशा है इसलिए वह व्यवहार में आया, और आत्मा की स्वाभाविक है, उसे निश्चय कहा जाता है। अर्थात् जब उसके द्रव्य-गुण व पर्याय स्वाभाविक में आते हैं तब वह निश्चय कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अविनाशी भाग को निश्चय कहा गया है।

दादाश्री : हाँ, और विनाशी को व्यवहार कहा गया है। अविनाशी, व्यवहार में कुछ भी नहीं करता और व्यवहार, अविनाशी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। दोनों अलग-अलग हैं।

व्यवहार होता है, व्यवहार करने वाले के सहित

प्रश्नकर्ता : हम निश्चय और व्यवहार के बीच उलझन में पड़ जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। किस बारे में? क्यों उलझन में पड़

जाते हो? निश्चय, वह निश्चय है और व्यवहार, वह व्यवहार है। व्यवहार दृश्य और ज्ञेय है और निश्चय द्रष्टा और ज्ञाता है। दोनों अलग ही चीज़ें हैं फिर उलझन में पड़ने की ज़रूरत ही कहाँ रही?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार करने जाते हैं तो निश्चय में चूक जाते हैं।

दादाश्री : नहीं चूक सकते। क्योंकि व्यवहार उसके जानने वाले के सहित है। जानने वाला नहीं होगा तो व्यवहार भी नहीं होगा। व्यवहार है तो उसका जानकार होना चाहिए और निश्चय है तो उसे खुद जानने नहीं जाना पड़ता। निश्चय खुद जानकार रहता ही है फिर। हमें क्यों जानने के लिए जाना पड़ता है? हम व्यवहार के जानकार हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब व्यवहार कम हो जाएगा तभी निश्चय की तरफ एकाग्रता आएगी।

दादाश्री : ऐसा नहीं है, निश्चय क्या कहता है? देयर इज़ नो कंडीशन इन निश्चय। कंडीशन भी नहीं है उसमें। कंडीशन नहीं होगी तभी वह निश्चय रहेगा। किसी भी प्रकार की कंडीशन नहीं होती है।

ये सभी व्यवहार के काम करने में तन्मयाकार थे और खुद निश्चय में रहते थे, वह देखा या नहीं देखा?

अब, यदि निश्चय जानकार है और व्यवहार करने वाला है तो व्यवहार, व्यवहार करने वाले के सहित होता है। व्यवहार को करने वाला हो तभी वह व्यवहार है, वर्ना व्यवहार कैसे कहा जा सकता है? उस करने वाले को आप पहचानते नहीं हो, इसलिए ऐसा समझते हो कि, 'मैं ही करने बैठता हूँ यह।' लेकिन व्यवहार को करने वाला है ही।

यानी व्यवहार, व्यवहार करने वाले के सहित ही होता है। जिस प्रकार हमें खाना हो न, तो उँगलियाँ अपने आप काम करती ही जाती हैं। आप निश्चय में रहो, वह सारा काम करता ही जाएगा और यदि आप इसमें आ गए तो फिर से भूलचूक हो जाएगी। व्यवहार को व्यवहार रहने दो, (फाइल नंबर एक) बहुत ही अच्छी तरह से करेगा

क्योंकि मिकेनिकली है। मिकेनिकली में भूल नहीं होती। लेकिन मिकेनिकल में खुद ऐसे हैन्डल घुमाता है। अरे भई, मत घुमाना। वह चल ही रहा है लेकिन यह दखल देता है!

यह पूरा जगत् दखल ही देता है न? व्यवहार चलता ही रहता है। उसमें दखल देता ही रहता है। इस प्रकार व्यवहार में करने वाला साथ में रहता ही है। व्यवहार खुद ही ऐसा कहता है कि, 'हमें अब खाना खाने जाना है।' तब हमें कहना है, 'चल'। लेकिन वह व्यवहार ही खाना खा रहा है। इन्फर्मेशन भी देता है। 'हमें भूख लगी है', इन्फॉर्म करता है। प्यास लगी हो तो वह भी इन्फॉर्म करता है। व्यवहार खुद ही इन्फॉर्म करता है। उस व्यवहार को देखते रहना है। 'भूख लगी है, क्या खाता है, क्या नहीं? दोनों हाथों से खाता है या एक हाथ से खाता है?' जल्दी है तो कहेगा, 'लाओ न दो हाथों से खा लें?' नहीं!

जब थकान लगे तब क्या हमें सो जाना चाहिए? वह जो थकान लगती है न, तब वह हमें इन्फॉर्म करता है कि, 'अब मैं सो जाता हूँ।' तब आप कहो कि, 'सो जाओ हाँ ज़रा, बिस्तर पर एक तकिया है भाई, दो ले लो आराम से। हाँ आराम से सो जाओ न! चादर बदलनी हो तो बदल दो।' अपने आप ही यह सारा व्यवहार... और व्यवहार करने वाला व्यवहार सहित ही होता है। वर्ना व्यवहार कैसे हो पाएगा? व्यवहार हो ही नहीं पाएगा।

प्रश्नकर्ता : अतः दादा, पूरा ही फर्क पड़ गया कि, 'व्यवहार मैं नहीं करता हूँ' जबकि पहले, 'यह व्यवहार मैं करता हूँ', ऐसा करके चल रहे थे।

दादाश्री : नहीं, लेकिन यह 'मैं' करने का सवाल ही नहीं है। 'मैं' नहीं करता और वह भी नहीं करता। उसका भी प्रश्न नहीं है। व्यवहार करने वाला होता ही है, उसे हमें देखते रहना है। कौन करता है 'यह'?

अपना ज्ञान ऐसा है कि व्यवहार करने वाले को दिखाएगा कि,

'यह हुआ, देखो न।' यह वाक्य बहुत बड़ा है, समझने जैसा है। आज ही यह वाक्य निकला, हम भी सोच में पड़ गए! हमें पता था लेकिन शब्दों के रूप में नहीं था। यह तो पूछना पड़ता है, तब। यह तो बिना पूछे नहीं निकलता। यानी पूछ लेना है, यह रेडियो नहीं है।

व्यवहार, व्यवहार करने वाले सहित ही होता है। इसलिए फिर उसमें दखल ही नहीं रहा और आपने जाना कि, 'ओ हो! व्यवहार का करने वाला है।' फिर इसमें अपना दखल ही कहाँ रहा? उसे देखते रहोगे तो व्यवहार का करने वाला कर ही रहा होता है। लेकिन अंदर, बीच में अक्लमंदी करने जाते थे, व्यवहार करने वाले के आने से पहले ही घुस जाते हैं। इसलिए व्यवहार करने वाला बाहर खड़ा रह जाता था बेचारा!

वाक्य बहुत अच्छा है। कभी-कभी ही निकल जाता है ऐसा। यह 'ज्ञान' हमारे *लक्ष* में तो है लेकिन वह ज्ञान शब्दों में नहीं आया है। व्यवहार, व्यवहार करने वाले के सहित ही होता है। इसलिए आपको कोई दखल नहीं देना है। व्यवहार में जाना ही नहीं है। जहाँ निश्चय व व्यवहार आ गए तो वहाँ पर व्यवहार अलग ही है।

प्रश्नकर्ता : फिर आगे ऐसा नहीं कहेंगे कि उसका (व्यवहार) करने वाला मैं नहीं हूँ।

दादाश्री : नहीं, ऐसा कहेंगे तब तो परेशानी है न! 'व्यवहार करने वाले के सहित ही होता है', ऐसा कहा तभी से समझ जाना है। उसमें फिर, 'मैं नहीं हूँ,' ऐसा कहने से क्या होगा, कि उन सभी को गुस्सा आएगा। हम कभी भी ऐसा नहीं कहते कि, 'यह मैं नहीं कर रहा हूँ।' फिर वे सब कुछ भी नहीं करेंगे। वैसे भी अपने पास ऐसा कहना को था ही कहाँ कि, 'यह मैं नहीं करता हूँ और मैं करता हूँ?' हम, ज्ञाता-द्रष्टा वालों के पास यह बात, ये शब्द होंगे ही कहाँ से! ज्ञाता-द्रष्टा होने के बाद अपनी भाषा ही बदल जानी चाहिए। वाक्य बहुत बड़ा है कि, 'व्यवहार, व्यवहार करने वाले के सहित ही होता है।' यानी कि बात बोझ रहित हो गई। व्यवहार निर्बोझ हो गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, मैं क्या समझा हूँ कि उसे करने वाला व्यवस्थित ही है न?

दादाश्री : व्यवस्थित है लेकिन यह उसके करने वाले के सहित ही है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है दादाजी, लेकिन व्यवहार करने वाला कौन है?

दादाश्री : वही, उसके सहित ही है। यानी कि आपको मन में यह जो पीड़ा है कि, 'अब मैं तन्मयाकार हो गया, वह गलत है', तो वह, व्यवहार करने वाला ही तन्मयाकार है। आप करने वाले नहीं हो तो तन्मयाकार होओगे ही कैसे?

प्रश्नकर्ता : जिसका व्यवहार व्यवहार नहीं है, उसका निश्चय निश्चय नहीं है।

दादाश्री : यही इस बात पर लागू होता है। व्यवहार, व्यवहार नहीं है इसलिए, जिस व्यवहार में ऐसा मानता है कि, 'यह मैं कर रहा हूँ', वह व्यवहार, व्यवहार नहीं है। व्यवहार, व्यवहार सहित ही होता है। अतः उसके करने वाले के सहित ही होता है। और तभी निश्चय में रह पाएगा, वर्ना रफा-दफा हो गया। वहाँ का यहाँ और यहाँ का वहाँ।

प्रश्नकर्ता : जिसने व्यवहार को व्यवहार के रूप में नहीं रहने दिया...

दादाश्री : उसे निश्चय रहेगा ही नहीं!

नहीं काँटना चाहिए व्यवहार बीच में

प्रश्नकर्ता : लेकिन महावीर भगवान संसार छोड़ने के बाद में व्यवहार में थे ही नहीं न, या थे?

दादाश्री : संसार छोड़ा ही नहीं था उन्होंने। वह तो जब उदय

आता है न, ज्ञानियों से लेकर तीर्थंकरों तक के सभी उदयाधीन बरतते हैं। *पोतापन* नहीं होता। अतः जैसा उदय आता है वैसे ही बरतते हैं। उन्हें ऐसा नहीं है कि, 'ऐसा ही करना है।' अतः भगवान महावीर व्यवहार में अंत तक, इकतीस साल तक रहे थे। अच्छी तरह से, 'ससुराल' भी कहते थे और बेटी हुई थी। क्या व्यवहार किए बिना बेटी पैदा हो सकती है? व्यवहार बाधक नहीं है आपका। आप व्यवहार से भागते हो, वह बाधक है। और दुःख के मारे आपकी पलायनवृत्ति रहती है, 'कहाँ से भाग छूटें!' देखो, हम घर पर रहते हैं, हमें क्या कोई पलायनवृत्ति है या भाग छूटने की वृत्तियाँ होती हैं कि, 'लाओ, भाग जाएँ अब यहाँ से!'

ये भाई कहते हैं कि, 'मैं वकालत छोड़ देता हूँ।' यानी कि जिसने व्यवहार छोड़ देने की तैयारी की तो हम समझते हैं कि इनका निश्चय सही नहीं है। व्यवहार छोड़ देगा तो कल निश्चय भी छोड़ देगा। जब तक शरीर है तब तक व्यवहार है और तब तक व्यवहार का बेस होना चाहिए। शरीर नहीं हो और छोड़ दे तो बात अलग है। क्या छोड़ोगे लेकिन? बढ़े हुए नाखून काट देगा लेकिन क्या जो नहीं निकले हैं, वे नाखून काटे जा सकते हैं? आपके बाल अभी जो अंदर से उगे नहीं हैं, क्या उन्हें काटा जा सकता है? जितने निकले हैं उन्हें काट दो। लेकिन जो अभी अंदर हैं, उन्हें काट सकते हो क्या? क्या छोड़ दोगे आप? छोड़ दोगे तो फिर से आएगा, बार-बार। अतः बात को समझो।

प्रश्नकर्ता : दादा, यों तो यह प्रपंच छूटे तो अच्छा, ऐसे भाव होने चाहिए लेकिन 'मैं कल छोड़ दूँ,' ऐसा नहीं। यह भेद समझना है।

दादाश्री : जिसमें संडास जाने की शक्ति नहीं है, वह शोर-मचाता है, 'मैं ऐसा कर दूँ और वैसा कर दूँ!' यानी समझना चाहिए। जहाँ शक्ति नहीं है वहाँ पर शक्ति का आरोपण क्यों करता है! जहाँ अनंत शक्ति है वहाँ पर, वहाँ बोल न, 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ।' जहाँ शक्ति नहीं है वहाँ आरोपण करके क्या फायदा होगा?

व्यवहार निकाली चीज़

प्रश्नकर्ता : आपने तो ज्ञान देने के बाद हमें ऐसा बताया था कि अब से आपका यह सारा व्यवहार *निकाली* है।

दादाश्री : हाँ! *निकाली* है। इसलिए इस अक्रम विज्ञान के प्रताप से मोक्ष में जा सकते हैं न? वर्ना मोक्ष में कैसे जा सकते हैं? जहाँ व्यवहार *निकाली* नहीं हो, वहाँ मोक्ष में किस प्रकार से जा सकते हैं फिर? ...और राग-द्वेष रहित किया जा सके, ऐसा है यह विज्ञान! राग-द्वेष रहित रह पाता है। कोई थाली उठा ले जाए तब भी अंदर उसके लिए द्वेष नहीं होता, फिर राग तो होगा ही नहीं न! द्वेष तो, मैं जब ज्ञान देता हूँ तभी से चला जाता है!

आपके लिए अंदर जो आंतरिक संयम है, वही व्यवहार है और वह शुद्ध व्यवहार है। अब बाहर का व्यवहार, वह *निकाली* व्यवहार है। सिर्फ समभाव से *निकाल* ही करने जैसा है, अन्य कुछ करने जैसा नहीं है।

व्यवहार *निकाली* चीज़ है, निश्चय ग्रहणीय चीज़ है। ग्रहण करने योग्य तो निश्चय है, व्यवहार का *निकाल* कर देना है। गाढ़ हो, हल्का हो, मोटा या पतला हो, लेकिन पकड़कर रखने जैसा नहीं है।

सेन्ट्रिंग, व्यवहार है; स्लैब, निश्चय है

स्लैब अपना निश्चय है और सेन्ट्रिंग, वह व्यवहार है। अब सेन्ट्रिंग तो करनी पड़ेगी। लेकिन सेन्ट्रिंग निकाल देनी है ऐसा समझना है। बाद में उस स्लैब को रहने देना है। यानी कि इस प्रकार से ऐसा समझ में आ जाता है कि सेन्ट्रिंग *निकाली* है। 'छोड़ देना है,' ऐसा नहीं कह सकते। *निकाल* कर देना है। फिर तोड़-फोड़कर, टुकड़े करके, चाहे कैसे भी *निकाल* कर दो। पैसे आएँ तो ठीक है और नहीं आएँ तो कोई बात नहीं। हमें तो स्लैब ही बनाना था न!

उतना समझ में आ जाना चाहिए न! व्यवहार व निश्चय के भेद

की बात समझनी पड़ेगी न! अभी तो व्यवहार में पक्षपात ही चल रहा है न? 'व्यवहार करेंगे तभी निश्चय हो पाएगा', कहते हैं। अत: सेन्ट्रिंग करके ऊपर घूमते रहते हैं आराम से कि, 'अब यह चलेगा', कहते हैं। स्लैब के बारे में जानते ही नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : सही है दादा। दादा के पास आकर और फिर जो दृष्टांत मिलते हैं न, उन दृष्टांतों से बात को और अधिक अच्छी तरह समझ पाते हैं!

दादाश्री : मैं दृष्टांत देता हूँ न, उस पर से बात समझ में आ जाती है कि क्या-क्या लिपटा हुआ था और क्या नहीं लिपटा था, ऐसा पता चलता है।

अपना यह जो ज्ञान है उसका सेन्ट्रिंग से संबंध है या नहीं? सामने वाले व्यक्ति को समझ में स्पष्ट हो जाए इसलिए दृष्टांत दिया। ऐसा दृष्टांत किसी भी जगह नहीं पढ़ा होगा!

अपना सारा व्यवहार *निकाली* है। किसी चीज़ का *निकाल* करना हो न, उस पर आपको प्रेम नहीं रहता। जिसे रहने देना है, उस पर प्रेम रहता है। फिर भी जिसका *निकाल* करना होता है न, उसे भी रँगवाता तो है ही। रँगवाना तो पड़ेगा न, उसे पूरा। कोई उसे देखेगा तो भी खराब दिखाई देगा न! रँगवाना नहीं पड़ेगा?

निश्चय हाथ में आ गया हो तो सही-गलत व्यवहार को आप गाढ़ मत करना। सही-गलत करके गाढ़ करोगे तो निश्चय छूट जाएगा। यानी कि उसमें सेन्ट्रिंग ही की है। इतनी मज़बूत की है कि उसे रँगा, किया और कहता है, कितनी अच्छी सेन्ट्रिंग बनाई है!

आपने देखी है क्या सेन्ट्रिंग? यों सपोर्ट रखकर ऐसे सेन्ट्रिंग के लकड़ी के पट्‌टे वगैरह रखते हैं। ऐसा किसलिए? उनसे शोभा बढ़ती है? ऐसा क्यों करते हैं? ऐसे बाँस की बल्लियाँ रखकर ऊपर से लकड़ियों के पट्‌टे जमाते हैं। लेकिन आधार किसे देना है? उस पर किसे बैठाना है? लोगों को?

नहीं, वह स्लैब डालने के लिए हैं। और बाद में निकाल लेने हैं। स्लैब डालना हो तब वहाँ पर बल्लियाँ खड़ी करके उन पर पट्टियाँ सेट करके तैयार करते हैं। तब हम सोचते हैं कि यह फिर से क्या नया किया? तो कहते हैं, 'स्लैब डालेंगे ऊपर, उसका आधार लेकर। बाद में यह सब निकाल लेंगे। कुछ दिनों के बाद उसे निकाल देंगे' तो यह व्यवहार का निरूपण किया। मैंने क्या कहा कि व्यवहार के बेस पर निश्चय रहा हुआ है। अतः व्यवहार साफ ही होना चाहिए। फिर भी व्यवहार की *खेंच* (पकड़) नहीं रखनी है, निश्चय की *खेंच* (पकड़) रखनी है। व्यवहार तो *निकाली* है।

अभी लोग व्यवहार से ही चिपक पड़े हैं। जबकि कितने ही लोग कहते हैं कि व्यवहार व निश्चय दोनों में संतुलन रखना चाहिए। सिर्फ व्यवहार को ही खींचकर नहीं बैठ जाना चाहिए। अतः निश्चय की तरफ आपके झुकाव और *निकाली* चीज़ की भी ज़रूरत तो है।

तब यह उदाहरण दिया कि यह जो सेन्ट्रिंग करते हैं, वह व्यवहार है। वह खुद का काम *निकाल* लेने के लिए है। क्या काम *निकाल* लेना है? तो कहते हैं, स्लैब बनाना है। उसी प्रकार से इसमें खुद का निश्चय, आत्मा प्राप्त करने के लिए इस व्यवहार की सेन्ट्रिंग बना कर, बाद में निकाल लेना है पूरा ढाँचा। *निकाल* कर देना है फिर।

यह पूरा जगत् इस सूक्ष्म बात को नहीं समझने की वजह से व्यवहार से ही चिपका हुआ है। और अगर इसे ज़्यादा पकड़ लिया हो न, तो मूल वस्तु रह जाएगी। इसीलिए हमने कहा है न, कि व्यवहार *निकाली* है, आत्मा ग्रहणीय है।

तब यदि कोई वहाँ आकर कहे कि, 'ये बल्लियाँ सागवान की लकड़ी की क्यों नहीं हैं?' 'अरे, छोड़ न! स्लैब डालने के लिए ही हैं ये बल्लियाँ। ये क्या कोई हमेशा के लिए है?' यानी कि यह व्यवहार *निकाली* है। लेकिन लोग तो कैसी सागवान की लकड़ी लाए? अच्छे सागवान की लकड़ी लाकर बल्लियाँ बनाई

हैं। फिर जब स्लैब डालना होगा तब डालेंगे लेकिन अभी तो ले आते हैं। तो लोग ऑर्नामेन्टल लकड़ियाँ रखने लगे और रंगने लगे, पॉलिश भी करने लगे। वे समझे कि, 'इतना ही बनाना है। कोई और काम नहीं है।' और हम क्या समझते हैं कि, 'हमें तो स्लैब डालना है, इन लकड़ियों को कहाँ पकड़ें!' व्यवहार नहीं होगा तो काम नहीं होगा। क्योंकि जहाँ शरीर है, वहाँ व्यवहार होना ही चाहिए। अतः बात को समझना है। मूल रास्ते को हम समझ लेंगे तो रास्ता चूक नहीं जाएँगे।

यह व्यवहार तो आदर्श हो या न भी हो। वह तो, जैसा भरा हुआ माल है वैसा ही निकलेगा। डामर डाला हुआ हो और फिर हम कहें कि घी नहीं निकल रहा है, यह डामर निकल रहा है! जो हुआ वही करेक्ट है। अतः करुणाजनक स्थिति है। किसी व्यक्ति का यदि अच्छा माल निकले, तो इसका मतलब ऐसा नहीं है कि वह अच्छा व्यवहार कर रहा है, भरा हुआ माल है। अंत में उस सारे माल का समभाव से *निकाल* करना है।

आदर्श व्यवहार हो, वहाँ पूर्णाहुति

अब, ज्ञान मिलने के बाद दिनोंदिन व्यवहार आदर्श होता जाएगा। अभी जितने भाग में आदर्श नहीं है उतना भाग आपको चुभता रहता है। कौन-कौन सा भाग चुभता है? व्यवहार का जो भाग आदर्श नहीं है, वह आपको चुभता है। यानी कि बाद में वह चुभने वाला भाग निकल जाएगा और आदर्श रहेगा।

जिसका व्यवहार आदर्श हो गया, वह संपूर्ण शुद्धात्मा हो गया। फिर आज्ञा पालन करने का नहीं रहेगा। आज्ञा पूर्ण हो जाएगी। वहाँ तक जाना है। व्यवहार आदर्श हो जाना चाहिए। यह तो क्रमिक मार्ग में कुछ लोगों ने व्यवहार पूरा ही उखाड़कर फेंक दिया है। ज़रूरत ही नहीं है। बात भी सही है। क्रमिक मार्ग है ही ऐसा। यदि व्यवहार में चित्त गया तो निश्चय का रह जाएगा क्योंकि वह मार्ग कैसा है? ज्ञाता-

ज्ञेय का संबंध नहीं है। अपना ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध है और व्यवहार आदर्श होना चाहिए अपने यहाँ। और वहाँ पर तो व्यवहार में पड़ते ही नहीं हैं न! अन्य कोई बात ही नहीं करते। मैं तो उनसे ज्ञान की बात भी करता हूँ, शादी की बात हो तो वह बात भी करता हूँ। यानी कि जिन्हें बाहर के ज्ञानियों का अनुभव है न, वे यदि यहाँ आएँ तो क्रमिक मार्ग के वे अनुभवी कहेंगे कि, 'ये ज्ञानी नहीं हैं'। क्योंकि उन्होंने जो हीरे देखे हैं, उनमें ऐसा कोई हीरा नहीं देखा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है।

दादाश्री : जो बुद्धि में बहुत उलझा हुआ हो, उसे ऐसा लगता है क्योंकि ज्ञानी को व्यवहार में हाथ नहीं डालना चाहिए न! जबकि हम तो हर बात में हाथ डालते हैं!

ऐसा होता है आदर्श व्यवहार

अपना व्यवहार आदर्श होना चाहिए। ऐसा आदर्श व्यवहार जो किसी जैन का नहीं हो सकता, किसी साधु का नहीं हो सकता, ऐसा व्यवहार। हमारा व्यवहार तीर्थंकरों जैसा होता है, आदर्श! व्यवहार ही ठीक नहीं हो तो उसका क्या करना है? व्यवहार कैसा होना चाहिए? आदर्श होना चाहिए। लोग खुश हो जाएँ, ऐसा होना चाहिए। नहीं होना चाहिए? आपका व्यवहार नहीं बदला है यहाँ पर आने के बाद?

प्रश्नकर्ता : बदल गया है दादा, बहुत बदल गया है।

दादाश्री : वह बदल ही जाता है। अब, अगर कोई चिढ़ जाए न, तब भी आप उसे प्रेम से बुलाते हो। वर्ना दुनिया का व्यवहार कैसा है? 'कोई चिढ़ जाए तो हमें भी चिढ़ जाना चाहिए। कोई हँसते हुए आए तो हमें भी हँसना है।' तो भाई! व्यवहार को ही अगर ऐसे रख छोड़ेगा तो खाली कब होगा यह? उसमें तो निश्चय लाना है कि, 'भाई, यदि वह चिढ़े तब भी हमें नहीं चिढ़ना है', तब खाली होगा। वह चिढ़े और हम भी चिढ़ जाएँ तो शुरू ही हो जाएगा न? ऐसा ही था

न ? वह चिढ़ता हुआ आया, आँखें देखी कि तैयार! अब अपना विज्ञान क्या कहता है कि वह चिढ़ता हुआ आए तो आप शांत। व्यवहार आदर्श होना चाहिए। आपको ऐसा लगता है कि व्यवहार आदर्श है ?

प्रश्नकर्ता : इन पहली दो आज्ञाओं में ही पूरा आदर्श व्यवहार आ जाता है। यों शुद्धात्मा दिखाई देते हैं और यों वे उदयकर्म दिखाई देते हैं।

दादाश्री : हाँ, आदर्श व्यवहार आ जाता है। शुद्ध व्यवहार हो तभी शुद्ध निश्चय होता है, वर्ना निश्चय नहीं है ऐसा माना जाएगा। समभाव से *निकाल* नहीं करे और फिर कहे, 'हमें निश्चय से आत्मा प्राप्त हो गया है', तो वह नहीं चलेगा, बेस होना चाहिए। आस-पास वाले शिकायत करें और यह कहे कि 'मैं आत्मा हो गया', तो कैसे चलेगा ? मेरे साथ रहने वाले सब लोगों से पूछा जाए, 'दादाजी आपको परेशान कर देते होंगे ?' तब कहते हैं, 'नहीं'।

टकराव की जगह पर नहीं टकराए तब फिर हो चुका! अत: वहाँ पर जांच करनी चाहिए, टकराने की जगह पर टकराता है या नहीं ? वह सही व्यवहार है। टकराव हो जाए तब भी माफी माँग लेता है आमने-सामने। सामने वाले व्यक्ति को पता नहीं चले तब भी माफी माँगे तो पहुँच जाती है। उसकी अनुपस्थिति में आप माफी माँगो, तब भी पहुँच जाती है ऐसा सुंदर व्यवहार अपना है, शुद्ध व्यवहार है।

आदर्श व्यवहार अर्थात् आस-पास पड़ोस में पूछो, घर में पूछो, 'एनीव्हेर', (कहीं भी) पूछो, तो हमारा व्यवहार आदर्श ही होता है। घर में, पत्नी के साथ, रिश्तेदारों के साथ, किसी भी जगह पर किसी के लिए दु:खदायी नहीं होता, ऐसा व्यवहार होता है। वर्ना फिर उसने तो निश्चय पाया ही कहाँ है ? व्यवहार आदर्श होना चाहिए। यदि नहीं हो सके तो उसका ध्येय आदर्श व्यवहार का होना ही चाहिए! जितना व्यवहार आदर्श, उतना निश्चय प्रकट होने लगेगा।

मैं एक बार एक मंत्री के यहाँ गया था। तो उनकी पत्नी से मैंने

पूछा तो कहने लगीं, 'जाने दो न उनकी बात। दिन भर मुझे इतना-इतना सुनाते हैं!' अब इन्हें मंत्री कैसे कहेंगे? व्यवहार कितना खराब कहा जाएगा? यों बाहर तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और घर में व्यवहार ठीक नहीं हो तो वह किस काम का? किसी को ज़रा सा भी त्रास न हो और घर में अपना व्यवहार सुंदर रहे, ऐसा आदर्श व्यवहार होना चाहिए। सब से पहले घर साफ हो जाना चाहिए। जिस प्रकार 'चैरिटी बिगिन्स फ्रॉम होम', उसी प्रकार आदर्श व्यवहार 'बिगिन्स फ्रॉम होम' होना चाहिए।

हमारा व्यवहार सुंदर होता है। मैं पूरे दिन आदर्श व्यवहार में ही रहता हूँ। आस-पास अगर पूछने जाओगे न, तो सभी कहेंगे, 'ये कभी भी लड़े ही नहीं हैं। कभी भी शोर नहीं मचाया है। कभी किसी पर गुस्सा नहीं हुए हैं।' सब लोग यदि ऐसा कहें तो वह आदर्श कहा जाएगा या नहीं? घर पर मेरी पत्नी से पूछने जाओगे तो वे कहेंगी, 'वे तो भगवान ही हैं!' अरे, वे तो हमारे दर्शन भी करती हैं। यहाँ पैरों पर सिर झुका कर दर्शन करती हैं। व्यवहार आदर्श व शुद्ध लगता है, फिर क्या झंझट है!

फिर भी एक बार किसी को मेरे व्यवहार में कोई भूल दिखाई दी तो उन्होंने मुझसे कहा कि, 'आपको ऐसा करना चाहिए न? यह आपकी भूल है।' मैंने कहा कि, 'भाई, आपने तो आज जाना, लेकिन मैं तो बचपन से ही जानता हूँ कि यह भूल वाला है।' तब कहते हैं कि, 'नहीं, बचपन में ऐसे नहीं थे, अभी हो गए हैं।' अतः ये सबकुछ अपनी-अपनी समझ से है। अतः हम पहले से ही अपना बता देते हैं कि, 'हम में कमी है शुरू से ही! तब फिर टकराव होगा ही नहीं न, उसका भी टाइम खराब नहीं होगा न! और उसे दुःख भी नहीं होगा!

भक्तों का व्यवहार

व्यवहार के बेस के बिना निश्चय करने वाले व्यक्ति, वे सभी भक्त कहलाते हैं। भगत व्यवहार में बावरे जैसे होते हैं। खाने के टाइम

का ठिकाना नहीं रहता। दोपहर के तीन बजे तक भी खाने का ठिकाना नहीं रहता। भक्त से यदि उनकी वाइफ कहे कि, 'ये सौ रुपये लो और दस रुपये की शक्कर ले आओ और नब्बे रुपये वापस ले आओ। बच्चे की फीस देनी है।' 'बस अभी लेकर आता हूँ', कहता है। फिर अब वह शक्कर की तो चाय बनानी थी। तो उनकी वाइफ कहती है, 'शक्कर लेकर जल्दी वापस आना तो चाय बनाएँगे।' भक्त बाहर निकला। शक्कर की दुकान आने से पहले ही भक्त को दूसरा भक्त, 'जय हरि, जय हरि नारायण' करता हुआ मिल गया। वह भक्त तो बेचारा भूल गया शक्कर लाना। 'भजन कहाँ पर है? उस तरफ है?' तो वह भजन में जाकर बैठ गया तुरंत। घर पर पत्नी चाय बनाने के लिए शक्कर का इंतज़ार करते हुए बैठी रही और बच्चे की फीस देनी थी तो वे नब्बे रुपये आते तो फीस देती न! उस बच्चे को दस बज गए। वह स्कूल नहीं जा पाया। बिना फीस के कैसे जाता? मास्टर ने कहा था, 'कल फीस लेकर आना।' तो दस बज गए, ग्यारह बज गए, बारह बज गए, तब भी भक्त नहीं आया। ढाई बजे जब भजन बंद हुए तब आया। तो शक्कर के बिना, चाय के बिना ही रह गए। तो ये भक्त सब ऐसे होते हैं! भक्त का व्यवहार बावरे जैसा होता है और जिसका व्यवहार बावरा, उसका मोक्ष कभी भी नहीं होता।

व्यवहार आदर्श होना चाहिए। इस जगत् के लोगों का व्यवहार आदर्श है ही नहीं। उनका व्यवहार तो व्यवहार ही कहाँ है? होता है या नहीं होता ऐसा? वे भक्त बावरे कहलाते हैं। जबकि यह तो आधार है! व्यवहार को बिल्कुल करेक्ट रखता है। व्यवहार बिगड़ा तो फिर निश्चय बिगड़ ही जाता है। और उस व्यवहार के फाउन्डेशन पर अपना यह मार्ग रहा हुआ है और संपूर्ण आदर्श व्यवहार! मेरा यह व्यवहार आदर्श माना जाता है क्योंकि मैं चिढ़ता नहीं हूँ। कोई उल्टा बोले तब भी नहीं चिढ़ता हूँ।

व्यवहार का डेकोरेशन भी अहंकार से

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दृष्टि वाले जीव का और मिथ्या दृष्टि वाले

जीव का जो व्यवहार है, उनके व्यवहार का मूल्यांकन करते समय देखने वाले को ज़रा मेल नहीं बैठता। अब जो सम्यक् दृष्टि वाला जीव है उसे व्यवहार करते समय उपयोग किस प्रकार से और किस तरह का रखना चाहिए? उसे व्यवहार से पीछे हट जाना चाहिए, या फिर ऐसा करके करते जाना है कि व्यवहार डिस्चार्ज है?

दादाश्री : नहीं–नहीं, बिल्कुल भी पीछे नहीं हटना है और दूसरी कोई झंझट भी नहीं करनी है। ऐसा है न, सम्यक् दृष्टि और मिथ्या दृष्टि वालों का दोनों का व्यवहार होता है और व्यवहार उदयकर्म के अधीन है। जो चीज़ आपकी स्वाधीनता में नहीं है उसके लिए आपको कहाँ, किस प्रकार रहना है और कैसे नहीं, ऐसा पूछना रहता है क्या? मिथ्यात्वी हो या सम्यक्त्वी, दोनों का व्यवहार उदयकर्म के अधीन है। मिथ्यात्वी का व्यवहार ज़रा अच्छा दिखाई देता है। उसका कारण यह है कि वह अहंकार से डेकोरेशन करता है। इससे दूसरे जन्म की ज़िम्मेदारी उठाता है, और हम डेकोरेशन नहीं करते। लेकिन कुल मिलाकर अपना ही बेहतर है। अंत में वही कहेगा कि, 'आपके साथ मुझे अच्छा रहता है।' उसका डेकोरेशन वाला है इसलिए उसका अच्छा दिखाई देता है। लेकिन इससे उसकी अगले जन्म की जोखिमदारी आती है, अपनी जोखिमदारी नहीं है। हमारे पास डेकोरेशन का सामान ही नहीं है तो फिर सजाएँगे कैसे? वह तो पूरा सजाकर बैठा है। अब मैं यदि सजाने जाऊँ तो कैसे हो पाएगा? जब डेकोरेशन का सामान ही नहीं है, फिर? और वे लोग तो सजाते हैं न! अहंकार क्या नहीं कर सकता? 'अरे, मैं तुझे मेरे प्राण दे दूँ,' ऐसा भी कहता है! अब ऐसा सब सामने वाले को अच्छा दिखता है। जबकि हम से तो ऐसा कुछ भी नहीं बोला जाता। ऐसा गलत कुछ बोल ही नहीं सकते। हम इस तरह मक्खन नहीं लगा सकते। वह तो मक्खन भी लगाता है और हर तरह का बोलता है। फिर शाम को वापस लड़ते भी हैं। और यहाँ अपने पास झगड़े नहीं दिखाई देते इसलिए अंत में वह कहता है, 'नहीं। लोग तो ये ही अच्छे हैं।'

आत्मज्ञान किसे कहते हैं कि दुनिया के लोगों में से सर्वोत्तम

व्यवहार आत्मज्ञानी का होता है। आत्मज्ञान व्यवहार सहित होना चाहिए और व्यवहार सुंदर होना चाहिए। लोग तारीफ करें ऐसा व्यवहार होना चाहिए या गालियाँ दे वैसा होना चाहिए? आपको क्या लगता है, व्यवहार कैसा होना चाहिए? व्यवहार उच्च, आदर्श हो तो समझना कि वह आत्मज्ञान है, वर्ना आत्मज्ञान नहीं कहा जाएगा।

महात्माओं का लोक व्यवहार

प्रश्नकर्ता : तो दादा, लोगों के लिए उपकारी हो सकें, उसके लिए महात्माओं को इस बारे में कुछ मार्गदर्शन दीजिए न। क्योंकि लोग तो व्यवहार ही देखते हैं।

दादाश्री : व्यवहार देखते हैं, लेकिन अपना ऐसा है न, मार्गदर्शन ऐसा होना चाहिए कि खुद का व्यवहार चाहे कैसा भी हो लेकिन संयम वाला होना चाहिए। संयम तक तो जाना ही पड़ेगा न! पुरुषार्थ होना चाहिए संयम का। संयम खुद के हाथ में है। व्यवहार अर्थात् आचार और वाणी, वह सब पराधीन है लेकिन संयम तो खुद के हाथ में है न! संयम हो न, तो लोग खुश हो जाते हैं। यदि सौ लोग उग्र हो जाएँ और आप उग्र नहीं होते, शांत रहते हो तो वे खुश नहीं हो जाएँगे? प्रभाव नहीं पड़ेगा कि देयर इज़ समथिंग। अत: धीरे-धीरे अपने महात्माओं में यह आएगा, शक्तियाँ आएँगी न! यह आंतरिक शक्ति उत्पन्न हुई है उनमें। लेकिन जैसे-जैसे बाह्यसुख व बाह्यशक्तियाँ प्रकट होंगी वैसे-वैसे ये लोग एक्सेप्ट करेंगे। वर्ना एक्सेप्ट क्यों करेंगे वे? बाहर की शक्तियाँ प्रकट नहीं होंगी तो कैसे एक्सेप्ट करेंगे?

वीतराग अधिक उपकारी विश्व के लिए

मैं विवाह समारोह में जाता हूँ तो क्या वह विवाह मुझे पकड़ लेता है? हम शादियों में जाते हैं लेकिन संपूर्ण वीतराग रहते हैं। जब मोह के बाज़ार में जाते हैं तब संपूर्ण वीतराग हो जाते हैं और जब भक्ति के बाज़ार में जाते हैं तब वीतरागता ज़रा कम हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उपकारी दशा तो वही है न, जब मोह के बीच... वीतराग का कैसा दर्शन देखने मिलता है!

दादाश्री : हमें किसी की शादी में देखो न, तब आपको पता चलेगा, संपूर्ण वीतरागता ही न! झंझट ही नहीं न! तभी तो दर्शन करते हैं न! वीतरागता हो तभी दर्शन होते हैं, वर्ना होंगे नहीं न।

नई तरह का कर दिखाया है न? शादियों में जाते हैं फिर भी मोक्ष होगा! राग-द्वेष नहीं, ऐसा व्यवहार। उस व्यवहार में दिक्कत ही नहीं है। क्रमिक मार्ग में, सिनेमा में जाए तो सिनेमा पर राग-द्वेष, जबकि हम कहते हैं कि अक्रम का व्यवहार *निकाली* है। हम कहते हैं, 'वह *निकाल* करने गया था।' क्रमिक मार्ग वाला ग्रहण करने गया था और यह *निकाल* करने गया था।

शादी के, व्यवहार के काम निपटाने हैं। व्यवहार से मैं भी निपटाता हूँ और व्यवहार से आप भी निपटाते हो, लेकिन आप व्यवहार में तन्मयाकार होकर निपटाते हो और मैं वह अलग रहकर निपटाता हूँ। अर्थात् भूमिका बदलने की ज़रूरत है, और कुछ भी बदलने की ज़रूरत नहीं है। भगवान महावीर भी कुछ समय तक व्यवहार में रहे थे। जन्म से ही 'ज्ञानी' थे वे, फिर भी व्यवहार में भाई के साथ, माँ-बाप के साथ रहे। स्त्री के साथ भी रहे, बेटी भी हुई। व्यवहार में रहने के बावजूद भी तीर्थंकर गोत्र पूर्ण किया। आप में भी उतनी शक्ति है ही लेकिन वह शक्ति आवरणमुक्त नहीं हुई है। वह आवृत हुई पड़ी है।

यानी कि शादी में जाना-करना लेकिन वे ऐसा नहीं कहते कि आप तन्मयाकार रहो। आपका मोह आपको तन्मयाकार करवाता है। वर्ना यदि आप तन्मयाकार नहीं रहोगे तो आपको कोई डाँटेगा नहीं कि आप तन्मयाकार क्यों नहीं रहते हो। हम भी शादियों में जाते हैं लेकिन मुझे कोई डाँटता नहीं है। वे तो ऐसा ही कहते हैं कि, 'आपने मेरा कल्याण कर दिया।' तन्मयाकार रहने से तो कुछ भूल हो सकती है। तब लोग आप से झगड़ेंगे।

इसलिए अधिक उपकारी कौन है? जो तन्मयाकार नहीं रहते, वे संसार के लिए अधिक उपकारी हैं। खुद के लिए उपकारी व औरों के लिए भी उपकारी हैं। हर प्रकार से उपकारी हैं। आपके लिए भी हमने ऐसा रास्ता बना दिया है कि आप तन्मयाकार न रहो। खुद की भूमिका में रहा जा सके, पराई भूमिका में नहीं जाएँ, ऐसा अपना ज्ञान है यह। पराई भूमिका अर्थात् चंदूभाई।

महात्माओं का व्यवहार निकाली

प्रश्नकर्ता : महात्माओं का व्यवहार *निकाली* है। तो जो *निकाली* है, वह व्यवहार है और महात्माओं का आत्मा ग्रहणीय हुआ तो इस भूमिका में व्यवहार को कितना संभालना चाहिए? व्यवहार को कब तक संभालना चाहिए?

दादाश्री : व्यवहार नहीं होगा तो आप देखोगे क्या? सद्व्यवहार पर राग नहीं, असद्व्यवहार पर द्वेष नहीं। सद् हो या असद् हो, लेकिन व्यवहार होना चाहिए। ज्ञेय नहीं होगा तो ज्ञाता देखेगा क्या? व्यवहार ज्ञेय है, निश्चय ज्ञाता है।

व्यवहार को कितना संभालना चाहिए? व्यवहार संभालने जाओगे तो निश्चय रह जाएगा। क्या व्यवहार हो रहा है, उसे 'देखते' रहना है। राग-द्वेष नहीं होने चाहिए, इतना संभाल लेना है और कुछ भी नहीं संभालना है। बेटे से कोई भूल हो जाए और आप एकाध थप्पड़ लगा दो तो वह व्यवहार है, उसे 'आपको' 'देखना है' कि बेटे को थप्पड़ लगा दिया। लेकिन वह जो थप्पड़ लगाई है, उस पर द्वेष नहीं और बेटे पर राग नहीं। चंदूभाई से कहना, 'प्रतिक्रमण करो।' तो उसका हल आ जाएगा झटपट! और फिर घर के लोग न्याय बताएँगे, 'यह बहुत गलत है, आप में अक्ल नहीं है।' तब आप मन ही मन कहना, 'चंदूभाई, शुरू से अक्ल थी ही कहाँ? मैं तो शुरू से ही पहचानता हूँ आपको। यह तो अच्छा है कि सब लोग आज कह रहे हैं!' आपको मन ही मन कहना है, वर्ना वे वापस पकड़ लेंगे। रोज़ सुनाते रहेंगे।

भाई, हो पाएगा या नहीं? हल लाना है हर कहीं। एक जन्म के लिए सिर पर पड़े हैं तो सिर पर पड़े हुओं के साथ हल नहीं लाना चाहिए? अत: 'देखना है' कि क्या व्यवहार हो रहा है। उसमें राग-द्वेष नहीं होने चाहिए।

व्यवहार अर्थात् ज्ञानी क्या समझते हैं कि बेटी की शादी हुई, वह भी व्यवहार है और बेटी बेचारी विधवा हो गई, वह भी व्यवहार है। 'रियल' नहीं है यह। वे दोनों ही व्यवहार हैं, 'रिलेटिव' हैं और फिर ऐसा है कि किसी से बदला नहीं जा सकता! इसलिए इसे देखते रहो! अब ये लोग क्या करते हैं? जमाई मर गया हो न, तो उसके पीछे सिर फोड़ते हैं! तो बल्कि डॉक्टर को बुलाना पड़ता है। यानी कि वह राग-द्वेष के अधीन है! व्यवहार को व्यवहार नहीं समझा है इसलिए न!

यहाँ चाहे कैसा भी व्यवहार करो फिर भी किसी की तरफ से कोई शिकायत नहीं आती, तो इसे यथार्थ व्यवहार कहा जाएगा। लेकिन इसे यथार्थ कब कहा जाएगा? जब भगवान के कहे अनुसार हो तब, भगवान की आज्ञापूर्वक हो तब। उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते, वहाँ पर व्यवहार अच्छा, शुद्ध होता है। या फिर जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ पर संयम रहे... तब तक का भगवान ने चला लिया है!

अक्रम में व्यवहार बर्फ जैसा

प्रश्नकर्ता : आज हम व्यवहार में काम करते हों और कोई व्यक्ति गलत करें तो वह फंक्शनली गलत है या सही है, ऐसा तो हमें व्यवहार में रखना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : व्यवहार में ऐसा है न, जब तक आपकी दृष्टि में आपको वह बात पसंद है, तब तक आप व्यवहार करो। जब से आपका वह व्यवहार खत्म हो जाएगा तो वह चीज़ आपको पसंद ही नहीं आएगी।

व्यवहार का स्वभाव कैसा है? यह अक्रम मार्ग का व्यवहार कैसा है? अक्रम मार्ग का व्यवहार बर्फ जैसा है। यानी कि एक मन का बड़ा बर्फ हो तो उसे लाने के बाद कहेगा कि, 'हम तो बुरादे में दबाएँगे', तब मैं कहता हूँ कि, 'आप चाहे किसी में भी दबाओ लेकिन अंत में यह पिघलकर खत्म हो जाएगा।' आप चाहे कितना भी बचाने का प्रयत्न करोगे लेकिन एक दिन वह पिघलकर खत्म हो जाएगा।

व्यवहार एक जन्म में साफ हो जाना चाहिए। अंतिम अवतार में तो व्यवहार साफ ही होना चाहिए। वहाँ पर कोई गड़बड़ नहीं चलेगी। अभी गड़बड़ चल जाएगी। लेकिन यह एकावतारी ज्ञान है। बहुत लोभी होगा तो तीन जन्म लेगा, पाँच जन्म लेगा।

व्यवहार करने में आपत्ति नहीं है, व्यवहार में एकाकार हो जाते हैं, उसमें आपत्ति है। एकरूप (एकाकार) खुद के स्वरूप में रहना चाहिए और व्यवहार तो सतही है, सुपरफ्लुअस है।

अनंत जन्मों से, करोड़ों जीव खींच रहे हैं तुझे रस्सी से

भगवान इतना ही कहते हैं कि व्यवहार में किसी के लिए बाधक नहीं हो, वैसा व्यवहार होना चाहिए। लोगों ने व्यवहार को रियल मान लिया है फिर भी व्यवहार करना नहीं आया। व्यवहार के पक्ष में चले गए फिर भी व्यवहार पूरा शुद्ध नहीं हुआ। व्यवहार कैसा होना चाहिए? आदर्श होना चाहिए। लोगों को ऐसा लगना चाहिए कि, 'वाह, कहना पड़ेगा।' यहाँ तो घर-घर दखल होते रहते हैं। जहाँ दखल हो, उसे व्यवहार कैसे कहा जा सकता है? व्यवहार का अर्थ क्या है? देकर लो, वर्ना लेकर दो, पक्का। उसे कहते हैं व्यवहार। व्यवहार तो लेन-देन का व्यवहार है। मैं किसी को देता नहीं हूँ और मैं किसी का लेता भी नहीं हूँ। मुझे कोई देता भी नहीं है और मैं अपने स्वरूप में रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : मैं तो आपके चरणों में आ गया। अंत में तो यही है, यही उपाय बचा।

दादाश्री : बस, ऐसा कोई भी एडजस्टमेन्ट होना चाहिए अपना कि निरंतर अपनी रक्षा हो जाए हर तरह से, व्यवहार व निश्चय में। व्यवहार से दाग़ पड़ने बंद हो जाएँ और निश्चय से दाग़ पड़ने बंद हो जाएँ और बोझ रहित हो जाएँ, हल्के फूल जैसे। यहीं पर मुक्ति का अनुभव करें। जितने कोने टूट गए, जितने खिंचाव टूट गए, उतने तो आप छूट गए न, मुक्त हो गए न! जितने खिंचाव छूट गए, करोड़ों जीव खींचते हैं हमें रस्सी से। और जितनी रस्सियाँ छूट गई, उतने मुक्त हुए न! जितने बाकी हैं, वे बाद में छोड़ेंगे। रास्ता यही है, इससे छूट जाएगा सबकुछ।

ऐसा है न, अपना मार्ग सरल है, सहज है। व्यापार करते हुए, घर के लोगों को परेशान किए बिना, काम निकल सके, ऐसा है। सभी का समाधान करके, संतुष्ट करने के बाद में मोक्ष में जाना है। किसी की दखल रहे और हम मोक्ष में जा सकें, ऐसा तो होगा ही नहीं न!

अपने यहाँ अपना यह शुद्ध व्यवहार कहलाता है। लोग कहेंगे, आपका व्यवहार ठीक नहीं है लेकिन हमारा यह शुद्ध व्यवहार है। आचार संहिता की कीमत आपके लिए भले ही हो। आचार संहिता की कीमत पूरे ही जगत् के लिए है। क्योंकि आचार संहिता, वही उसका बीज है। जबकि हमने आचार संहिता फल के रूप में निकाल दी है, बीज के रूप में नहीं। अत: *निकाल* कर देना है और उनके लिए आचार संहिता संसार का बीज है। अत: वह ऐसा ही कहते हैं कि आचार तो होना ही चाहिए और अपना तो यह अलग है, यह उन्हें कैसे फिट होगा? नहीं हो सकेगा। जब फिट हो जाएगा, तब आपका पूरा आचार मेरी तरह खाली हो जाएगा। तब कहेंगे, 'नहीं, यह तो सही कहते हैं।' यह आचार खाली ही हो जाने हैं।

प्रश्नकर्ता : यह तो कर्ताभाव को निकालकर आचार खाली होता है।

दादाश्री : हाँ, वही मैं कह रहा हूँ न! कर्ताभाव निकालकर आचार खाली हो जाएगा। तब लोग कहेंगे, 'क्या बात कर रहे हो!

कितना अच्छा है!' मुझे सब कहते हैं कि, 'आपके भक्तों का तो साहब हम मान ही नहीं पाते, लेकिन आपका मान सकते हैं।' क्योंकि मेरा सब खाली हो चुका है। बाकी मान्यता तो मेरी भी यही है कि *निकाल* ही करना है। अक्रम विज्ञान है यह तो!

विरोधी को भी मान, वह है शुद्ध व्यवहार

देखो न, हम मंच पर बैठे थे न, हमें द्वेष नहीं होता। हो सके तब तक हम ऐसे व्यवहार में नहीं आते लेकिन जो है उसे हम *तरछोड़* (तिरस्कार सहित दुतकारना) नहीं लगाते। वहाँ भी ऐसा सारा नाटक करते हैं। हमें ऐसा नहीं है कि ऐसा करना है और वैसा करना है। आपको व्यवहार को *तरछोड़* नहीं लगानी है। जो भी व्यवहार हुआ, उसमें 'अंबालाल मूलजीभाई' वे व्यवहार सत्ता के अधीन है। 'हम' निश्चय सत्ता के अधीन है। 'हम' तो निश्चय सत्ता में ही हैं, स्वसत्ताधारी हैं। यानी कि व्यवहार को किंचित्मात्र भी *तरछोड़* नहीं लगनी चाहिए।

व्यवहार उदयकर्म के अधीन है लेकिन व्यवहार सत्ता हम कब कबूल करते हैं कि जब आदर्श हो तब, वर्ना नहीं। अतः व्यवहार में किंचित्मात्र भी दखलंदाज़ी नहीं करनी चाहिए। किसी को ज़रा सा भी दुःख तो होना ही नहीं चाहिए, वह अंतिम 'लाइट' कहलाती है। विरोधी को भी शांति हो जाए। अपना विरोधी हो न, वह ऐसा तो कहेगा कि, 'भाई, इनके और मेरे बीच मतभेद है लेकिन इनके प्रति मुझे (अच्छे) भाव है, मान है।' ऐसा कहता है अंत में।

यह 'विज्ञान' व्यवहार को डिस्र्टब नहीं करता। हर एक 'ज्ञान' व्यवहार को *तरछोड़* लगाता है। यह विज्ञान व्यवहार को किंचित्मात्र *तरछोड़* नहीं लगाता। और पूरी तरह से खुद की 'रियलिटी' में रहकर व्यवहार को *तरछोड़* नहीं लगाता! जो व्यवहार को *तरछोड़* नहीं लगाता, वही सैद्धांतिक चीज़ है। सैद्धांतिक चीज़ किसे कहा जाता है कि जो कभी भी असैद्धांतिकपने को प्राप्त न करे। जो किसी भी जगह पर असैद्धांतिक न हो, उसे सिद्धांत कहते हैं। कोई भी ऐसा कोना नहीं है

कि जो असैद्धांतिक हो जाए। अतः यह 'रियल साइन्स' है, 'कम्प्लीट साइन्स' है। व्यवहार को किंचित्मात्र भी *तरछोड़* नहीं लगाता। जो ज्ञान व्यवहार को *तरछोड़* लगाता है, उस ज्ञान से निश्चय प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : वह तो सीधी बात है।

दादाश्री : हमारा व्यवहार आदर्श ही होता है। जगत् ने देखा न हो, ऐसा होता है हमारा व्यवहार। हमारा व्यवहार मनोहर होता है। जिनका वर्तन भी मनोहर हो, विनय भी मनोहर होता है। व्यवहार को हटाकर किसी ने भी आत्मा प्राप्त नहीं किया है। जो प्राप्ति की बात करते हैं, वह शुष्कज्ञान है। *तरछोड़* दिया तो फिर रहा ही क्या? निश्चय कहाँ रहा?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार का *तरछोड़* करने से ऑटोमैटिक निश्चय का *तरछोड़* हो ही जाता है।

दादाश्री : निश्चय उत्पन्न ही नहीं होगा न, व्यवहार का *तरछोड़* किया हुआ हो तो। व्यवहार अर्थात् आधार है, यदि आधार कच्चा तो निश्चय खड़ा नहीं रह सकेगा।

व्यवहार सत्ता मान्य ज्ञानी को भी

व्यवहार सत्ता को मान्य करते हैं। व्यवहार को समभाव से 'देखते' हैं! व्यवहार सत्ता का मान करना, मतलब क्या? यह कोई सेठ हैं, वे कितने पैसे धर्म में खर्च करते हैं। इसलिए जब वे यहाँ पर आएँगे तब हम उन्हें 'आइए पधारिए' कहकर गद्दी पर बैठाएँगे। इसे सत्ता का मान करना कहा जाएगा। लेकिन दृष्टि में हमारी उस क्षण समभाव रहता है। फिर चाहे ये बड़े सेठ हों या इनका ड्राइवर हो, हमारी दृष्टि में, समभाव में फर्क नहीं आता! व्यवहार सत्ता को तो भगवान ने भी एक्सेप्ट करने को कहा है। श्रेणिक राजा थे, उन्हें भगवान महावीर भी राजा कहकर बुलाते थे। क्योंकि वही उनकी जगह थी, वे उस पद वाले थे, ऐसा पुण्य था न! लेकिन दृष्टि तो समभाव!

व्यवहार सत्ता को एक्सेप्ट करना ही पड़ता है। धर्म में पैसों से मदद करें, उसे भी एक्सेप्ट करना पड़ता है। धर्म में शरीर से सेवा दें तब भी एक्सेप्ट करना पड़ेगा। जिस-जिसकी अधिक सेवाएँ हों, वह भी एक्सेप्ट करना पड़ेगा न? लेकिन दृष्टि में समभाव रहता है! हम सभी की खबर पूछते हैं। जिसका दिमाग़ मैड हो, उसकी भी खबर पूछते हैं, क्योंकि दिमाग़ मैड है, आत्मा मैड नहीं है! दिमाग़ तो एक जन्म के लिए ही, कुछ समय के लिए ही रहता है जबकि आत्मा तो परमानेन्ट है।

रसाल व्यवहार ज्ञानी का

अक्रम विज्ञान क्या कहता है कि व्यवहार तो सभी करते हैं, लेकिन व्यवहार *रसाल* (मधुर) रखो, *रसाल*।

घर में व्यवहार कैसा होता है? *रसाल* व्यवहार! इसलिए मेरा स्वभाव तो क्या है, कि मैं निरंतर *रसाल* व्यवहार ही रखता था। साथ बैठे हुए व्यक्ति के साथ भी *रसाल*। किसी को किसी तरह का कोई नुकसान नहीं हुआ है। *रसाल* व्यवहार से मुझे नुकसान नहीं हुआ है। व्यापारी के वहाँ जाता था तब व्यापारी के साथ भी *रसाल* व्यवहार। उसका पॉलिश्ड होता था लेकिन मेरा व्यवहार अच्छा होता था। उसके पॉलिश्ड को भी पहचानता था और फिर *रसाल* को भी पहचानता था। मेरे जैसा कोई *रसाल* मिल जाए तो उसे भी पहचान जाता था फिर। औरों को पहचानने का स्वभाव है न।

प्रश्नकर्ता : *रसाल* व्यवहार यानी वह कैसा होता है? ज़रा अधिक विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : गपोट नहीं जाता मेरे पास। वह गपोटता नहीं है मेरे पास। गपोट शब्द उपयोग करते हो या नहीं? यह बहुत पुराने जमाने का शब्द है। गपोटना अर्थात् दस लाइन बोलनी हो तो उसमें से चार लाइन भूल जाता है और आगे की बोलने लगता है। तब दूसरे बच्चे क्या कहते हैं कि, 'इसने चार लाइन गपोट लीं।' यानी

कि इतना गपोट (खा गया) लिया। जितना बोलना हो न, उसमें से इतना गपोट लिया।

अर्थात् मेरा कहना ऐसा है कि अपना व्यवहार *रसाल* होना चाहिए। सामने वाला व्यक्ति कैसा व्यवहार रखता है, वह मैं समझ जाता हूँ कि इसने इतना गपोटा। लेकिन मुख्य बात यह है कि हमें तो *रसाल* रखना है। घर में व्यवहार *रसाल* ही होता है। नहीं होता? कई लोग नियम नहीं देखते। *रसाल* यानी क्या? कि अंदर कपट रहित, शुद्धता वाला। अर्थात् अपना व्यवहार *रसाल* होना चाहिए। समभाव से *निकाल* करने से *रसाल* गुण उत्पन्न होता है। तो अपने महात्माओं का *रसाल* है ही। पैर-वैर खूब दबा लिए हो न, तब भी उन्हें उल्टा नहीं बोलते इसलिए। समभाव से *निकाल* तो करते ही हैं रोज़। इतने सारे लोग हैं लेकिन किसी का किसी से कोई टकराव नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : *रसाल* व्यवहार अर्थात् सिन्सियर व्यवहार?

दादाश्री : वह तो, ये सारे क्लर्क भी लिखते हैं न, सिन्सियरली! लेकिन वह रुखा व्यवहार कहलाता है। और *रसाल* में सिन्सियरिटी आ जाती है, लेकिन सिन्सियरिटी में *रसाल* नहीं आता। सिन्सियरिटी की बाल्टी में *रसाल* की बाल्टी नहीं आ सकती। *रसाल* की बाल्टी में सिन्सियरिटी की बाल्टी आ सकती है।

यह *रसाल* शब्द यदि याद रहे तो काम बना देगा। *रसाल,* अंदर यदि इतना याद रहेगा न, तब भी बहुत हो गया!

हमारा व्यवहार *रसाल* होता है। इसलिए आपको ऐसा लगता है कि ये कोई आप्तजन लगते हैं। दूसरा कोई बात करे तो आप्तजन नहीं लगते। मैं इन्हें झिड़कूँ तब भी *रसाल* व्यवहार। झिड़कते हैं, वह तो अंदर से माल निकला, यदि सामने वाले का ऐसा हिसाब हो तो क्या हो सकता है? मेरी इच्छा नहीं है न!

व्यवहार स्पर्श ही न करे, वह केवलज्ञान

जिस व्यक्ति को जितना व्यवहार स्पर्श नहीं करता, उतना व्यवहार, व्यवहार कहा जाएगा। ऐसा करते–करते जब पूरा ही व्यवहार स्पर्श नहीं करे तो फिर हो गया केवलज्ञान! जितना स्पर्श नहीं करता, उस व्यवहार को ही व्यवहार कहते हैं। अभी तो, जो असर करता है उस व्यवहार को व्यवहार कैसे कह सकते हैं? व्यवहार अर्थात् जो असर न करे। लोगों को ऐसा लगे कि, 'इन्होंने किया' और आपको ऐसा लगना चाहिए कि, 'यह चंदूभाई ने किया, मैंने नहीं किया!' व्यवहार अर्थात् लोगों को तो यही सब दिखाई देता है कि इन भाई ने क्या किया। अत: वे तो ऐसा ही कहेंगे न!

यह तो सिर्फ व्यवहार खड़ा हो गया है, समसरण मार्ग में। जिस प्रकार दर्पण के सामने व्यवहार खड़ा नहीं हो जाता? दर्पण में कुछ दिखाई देता है या नहीं? तो अब, वह एक्ज़ेक्ट व्यवहार नहीं है? हम एक उँगली उठाएँ तो वह भी एक उँगली उठाता है। हम दो उँगलियाँ उठाएँ तो वह दो उठाता है। एक्ज़ेक्ट व्यवहार नहीं है? लोग उस व्यवहार को घोलकर पी गए। यह व्यवहार उसी जैसा है, और कुछ भी नहीं है। जितने राग–द्वेष चले गए, उतना शुद्ध व्यवहार उत्पन्न हो गया। संपूर्ण राग–द्वेष चले गए तो सारा व्यवहार, व्यवहार रूप ही रहा। दखल रहित व्यवहार रहा, ऐसा कहा जाएगा। इन लोगों के राग–द्वेष धीरे–धीरे कम होते जा रहे हैं और कुछ–कुछ बातों में तो छूटते जा रहे हैं! कुछ ही बातों में यानी कि जितने राग–द्वेष छूटते हैं उतना ही व्यवहार छूटता है न? एकदम नहीं छूटता यह। धीरे–धीरे एक–एक अंश करके छूटता है। उसका सर्वांश रूप से छुटकारा हो जाएगा तब केवलज्ञान होगा।

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

पुद्गल – अहंकार

पूरण – चार्ज होना, भरना

गलन – डिस्चार्ज होना, खाली होना

निर्जरा – आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना

आश्रव – उदयकर्म में तन्मयाकार होना

शाता – सुख–परिणाम

अशाता – दु:ख–परिणाम

लक्ष – जागृति

उपाधि – बाहर से आने वाला दु:ख, परेशानी

ऊपरी – बॉस, वरिष्ठ मालिक

भोगवटा – सुख या दु:ख का असर, भुगतना

पोतापन – मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन

संवर – कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना

ठपका – डाँटना, उलाहना

रसाल – मधुर

राजीपा – गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता, कृपा दृष्टि

खेंच – पकड़

कढ़ापा – क्लेश

अजंपा – कुढ़न

तरछोड़ – तिरस्कार सहित दुतकारना

निकाल, निकाली – निपटारा

चीकणी फाइल – गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग

नियाणां – अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना

नौ कलमें

(प्रतिदिन तीन बार करें)

1. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे (ठेस न पहुँचे), न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

   मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।

2. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभे, न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

   मुझे, किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभाया जाए ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।

3. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी उपदेशक साधु, साध्वी या आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति दीजिए।

4. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित्मात्र भी अभाव, तिरस्कार कभी भी न किया जाएँ, न करवाया जाएँ या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

5. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के साथ कभी भी कठोर भाषा, तंतीली भाषा न बोली जाएँ, न बुलवाई जाएँ या बोलने के प्रति अनुमोदना न की जाएँ, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

कोई कठोर भाषा, तंतीली भाषा बोले तो मुझे, मृदु-ॠजु भाषा बोलने की परम शक्ति दीजिए।

6. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति स्त्री, पुरुष या नपुंसक, कोई भी लिंगधारी हो, तो उसके संबंध में किंचित्मात्र भी विषय-विकार संबंधी दोष, इच्छाएँ, चेष्टाएँ या विचार संबंधी दोष न किए जाएँ, न करवाए जाएँ या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

   मुझे, निरंतर निर्विकार रहने की परम शक्ति दीजिए।

7. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी रस में लुब्धता न हो ऐसी शक्ति दीजिए।

   समरसी आहार लेने की परम शक्ति दीजिए।

8. हे दादा भगवान ! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, जीवित अथवा मृत, किसी का किंचित्मात्र भी अवर्णवाद, अपराध, अविनय न किया जाए, न करवाया जाए या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

9. हे दादा भगवान ! मुझे, जगत् कल्याण करने का निमित्त बनने की परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

(इतना आप दादा भगवान से माँगते रहें। यह प्रतिदिन यंत्रवत् पढ़ने की चीज़ नहीं है, हृदय में रखने की चीज़ है। यह प्रतिदिन उपयोगपूर्वक भावना करने की चीज़ है। इतने पाठ में तमाम शास्त्रों का सार आ जाता है।)

प्रतिक्रमण विधि

प्रत्यक्ष 'दादा भगवान' की साक्षी में, देहधारी .... (जिसके प्रति दोष हुआ हो, उस व्यक्ति का नाम) के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न, ऐसे हे शुद्धात्मा भगवान! आपकी साक्षी में, आज तक मुझसे जो जो ★★ दोष हुए हैं, उनके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ, हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ। मुझे क्षमा कीजिए और फिर से ऐसे दोष कभी भी नहीं करूँ, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ। उसके लिए मुझे परम शक्ति दीजिए।

★★ क्रोध-मान-माया-लोभ, विषय-विकार, कषाय आदि से उस व्यक्ति को जो भी दुःख पहुँचाया हो, उन दोषों को मन में याद करें।

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
56. आप्तवाणी - 14 (भाग-1 से 3)
59. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज (मुख्य केन्द्र) : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830093230	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 795-92-DADA (3232)

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 402179706

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 91457800

www.dadabhagwan.org

पाप भस्मीभूत करती है, आप्तवाणी।

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी पढ़ते हुए दो घंटों के लिए संसार अदृश्य हो गया!

दादाश्री : ऐसे दो घंटे तो आते ही नहीं हैं। संसार की उपस्थिति को तोड़ना, वह तो बहुत बड़ी बात है। यदि आप्तवाणी को पढ़ते हुए जगत् विस्मृत हो जाए तो निरे पाप धुल जाते हैं। इससे तो सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। क्योंकि इसमें न तो संसार में और न ही मोक्ष में, बीच में रहते हो। इसमें संसार बिल्कुल भी नहीं है। आप्तवाणी तो काम निकाल दे, ऐसी है।

यह आप्तवाणी लोगों की बहुत हेल्प करेगी, यदि बाद में लोगों के हाथ में आ जाएगी, तो! क्योंकि इसमें हर एक कोने की बात समझाई गई है। ऐसा कोई कोना नहीं है, जिसे इसमें समझाना बाकी रह गया हो। और अभी तो ऐसी चौदह आप्तवाणियाँ आएँगी, वे कुछ और ही तरह की आएँगी!

-दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए.एम.पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवान के असीम जय जयकार हो